भगवान महावीर का 2600वाँ जयन्ती समारोह
वीर निर्वाण सम्वत् 2527

अंक 38

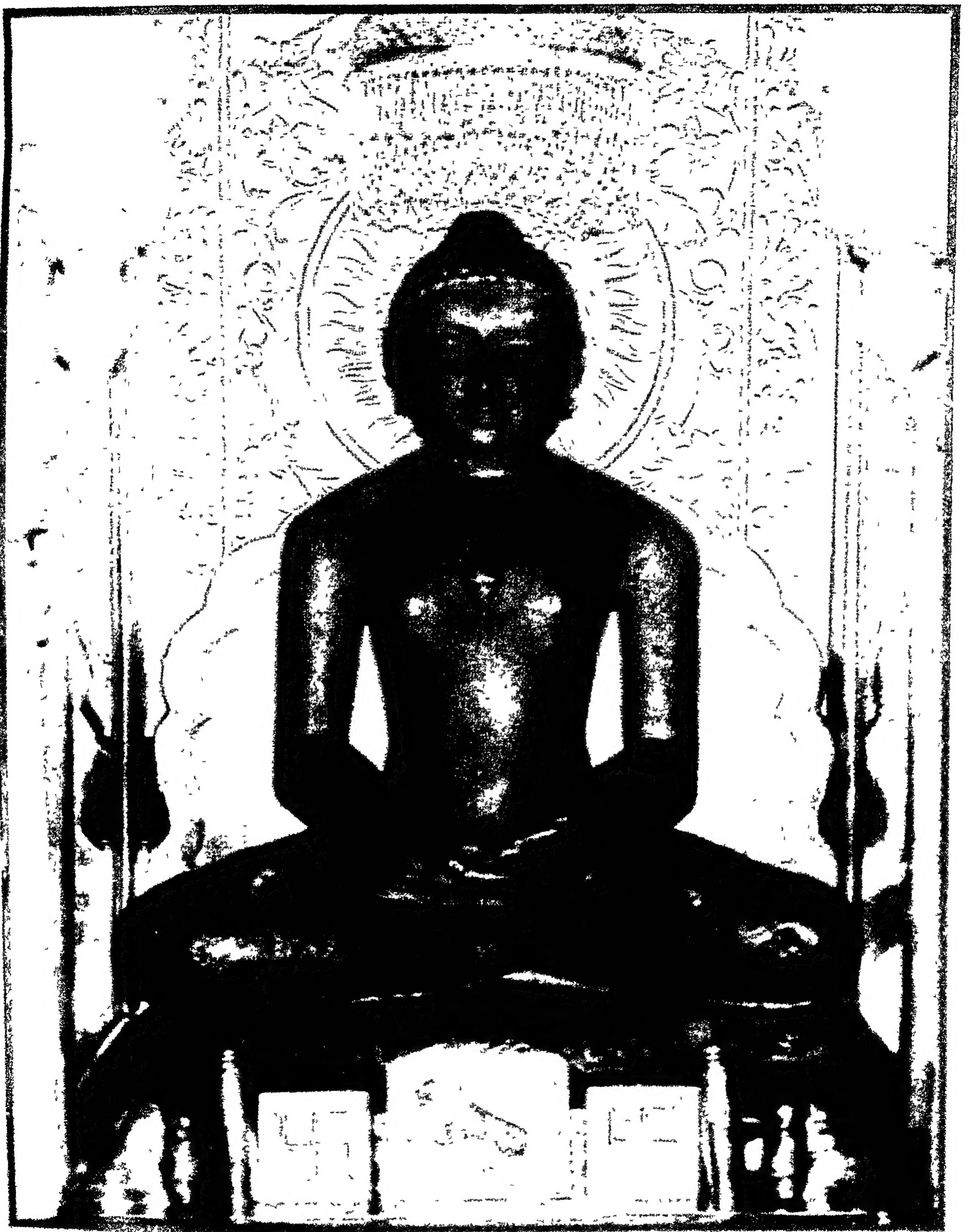
महावीर जयन्ती स्मारिका
2001

प्रधान सम्पादक :
ज्ञानचन्द बिल्टीवाला

प्रबन्ध सम्पादक :
प्रेमचन्द छाबड़ा



प्रकाशक .
महेन्द्र कुमार पाटनी
मंत्री, राजस्थान जैन सभा, जयपुर
फोन : 570511



नमः श्री वर्द्धमानाय निर्धूत कलिलात्मने। सालोकानाम् त्रिलोकानाम् यद्विद्या दर्पणायते।।

राजस्थान जैन सभा, जयपुर

चाकसू का मन्दिर, जौहरी बाजार, जयपुर- 302003

(समाज से विनम्र अपील)

राजस्थान जैन सभा समाज से विनम्र अपील करती है कि निम्न बिन्दुओं का दृढ़ता से पालन कर समाज की एकता का परिचय दें-

1. जीमन में कम से कम व्यंजन परोसे जावे, परन्तु सब मिलाकर कुल व्यंजन बीस से अधिक न हों। इसके अन्तर्गत निम्न 10 बातो का ध्यान रखना जरूरी है-

(अ) व्यंजनों की संख्या में जल को नहीं जोड़ा जायेगा।

(ब) सलाद की वस्तुएँ ककड़ी, मिर्च, टमाटर, नींबू आदि को एक ही माना जाएगा।

(स) मूंग, मोठ, चना आदि इन्हे अलग-अलग माना जाएगा।

(द) प्रत्येक किस्म के अचार को अलग-अलग माना जाएगा।

(य) मीठी चटनी व हरी चटनी को दो आइटम माना जाएगा।

(र) तवे की सब्जी के अन्तर्गत तवे पर जितने प्रकार की सब्जी होगी, उन्हें उतनी ही मानी जाएगी।

(ल) यदि कई फलों के अलग-अलग ज्यूस बनाए गए है तो उन्हें अलग-अलग ही माना जाएगा।

(व) ठंडाई-शर्बत आदि को अलग-अलग माना जाएगा।

(श) रोटियों/पूड़ियां जितनी भी प्रकार की बनाई जाएगी, उन्हे अलग-अलग आईटम माना जायेगा।

(ह) मावे की या बंगाली अथवा आगरे के पेठे से निर्मित सभी मिठाईयाँ अलग-अलग मानी जायेंगी।

2. निमंत्रण-पत्र मितव्ययी हो, और उन पर "सूर्यास्त के बाद भोजन की व्यवस्था नहीं है" अंकित किया जाना चाहिए।

3. निकासी व फेरे दिन मे ही आयोजित किए जाने चाहिए।

4. मांगलिक एवं सामाजिक समारोहो के अवसर पर आयोजित भोज दिन मे ही आयोजित किए जाने चाहिए।

5. मृत्यु भोज नहीं किया जावे तथा घड़ों के अवसर पर बर्तन आदि वितरण नहीं किये जावें।

6. सगाई-विवाहादि कार्यक्रम सादगी से सम्पन्न हो तथ सजावट में मिव्ययता बर्ती जावे।

7 दहेज की प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष न तो माँग करे और न ही विवाह के अवसर पर प्राप्त वस्तुओं का प्रदर्शन करें।

8. निकासी के अवसर पर ट्विस्ट नही करे।

9. व्रत व उपवास के उद्यापन पर एवं जिनेन्द्र भगवान की माल के पश्चात बर्तन आदि वस्तुओ का वितरण नही करे और ना ही स्वीकार करें।

10 हिंसक सौंदर्य प्रसाधनों का प्रयोग नहीं करें।



आशीर्वाद

2600वीं भगवान महावीर जयन्ती पर विशेषांक के प्रकाशन का यह एक महत्वपूर्ण अवसर है। मुनि कुंजर समाधिसम्राट आचार्य शिरोमणी श्री आदि सागर जी महाराज अंकलीकर ने कहा था कि भगवान महावीर स्वामी की देशना का प्रचार-प्रसार वैज्ञानिक चिंतन एवं ऐतिहासिक शोध पर निर्भर करता है।

प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी भगवान महावीर जयंती स्मारिका राजस्थान जैन सभा प्रकाशित कर रही है। यह उनका परिश्रम सराहनीय है क्योंकि इससे एक तो लेखकों, पाठकों का ज्ञान वृद्धिगत होता है, दूसरी बात यह है कि इससे भविष्य में भगवान महावीर स्वामी के जीवन और उनके कर्तृत्व की जानकारी से जिनधर्म के उत्थान में चार चांद लगेगें।

पं. ज्ञानचन्द बिल्टीवाला एवं उनके साथियों के संपादकत्व में यह स्मारिका जन-जन और राष्ट्र के लिए उपयोगी सिद्ध होगी, इसी भावना के साथ मेरा मंगलमय शुभाशीर्वाद है।

आचार्य सन्मतिसागर

आशीर्वाद एव सन्देश

ज्ञानचन्द बिल्टीवाले तथा महावीर जयन्ती स्मारिका प्रकाशन के कार्यकर्ताओं को मेरा शुभाशीर्वाद। आपने जो पत्र द्वारा मेरा आशीर्वाद एव लेख मगवाया उसके लिये आशीर्वाद एव लेख भेज रहा हूँ। आपने जो पत्र में यह भाव प्रकट किया कि भगवान महावीर के सिद्धान्त कैसे तेजस्वी रूप में साकार हो सकें– विषय पर आप आलेख प्रेषित करें। आपकी इस पवित्र भावना के लिए भी मेरा मगल आशीष। क्योंकि सामान्यत जैनों से लेकर श्रावक, पण्डित, साधु-सन्त तक भगवान महावीर के सिद्धान्त के बदले में स्वमत-पथ, सकीर्णता अहमन्यतादि का प्रचार-प्रसार, सवर्द्धन-सरक्षण-थोपनादि कार्य से भगवान महावीर तथा उनके सिद्धान्त को निस्तेज, मलीन, विपरीत करने में लगे हुए हैं। भगवान महावीर के सिद्धान्त की प्रभावना, प्र+भावना=प्रकृष्ठ भावना से हो सकती है। सहिष्णु(अनेकान्तात्मक दृष्टिकोण) हित-मित-प्रियवचन (स्याद्वाद) अहिसा (सरल-सहज-पवित्र भावना) उदारता (वसुधैवकुटुम्बकम्), अमूढ़ दृष्टि (वैज्ञानिक शोध-बोध पूर्णज्ञान), उपगुहन (परदोष को नहीं उछालना), स्थितिकरण (दोषी को निर्दोषी बनाकर गले लगाना), वात्सल्य (निष्कपट-निस्वार्थ मैत्री) से हो सकती है। परन्तु प्रायोगिक अनुभव इससे विपरीत पाया जाता है। धर्म में भी धन-लिप्सा विश्वमैत्री-वात्सल्य के बदले में धार्मिकों से भी ईर्ष्या-द्वेष, भेद-भाव, सहिष्णुता-उदारता के स्थान पर सकीर्णता एकान्त, हठधर्मी प्रभावना के बदले में बाह्याडम्बर बहुतायत में पाये जाते है। जैन विद्यार्थी से लेकर प्राचार्य-आचार्य तक में वैज्ञानिक सोच की कमी है, जबकि जैन धर्म परमवैज्ञानिक धर्म है। प्रथमत वे जैन सिद्धान्त का अध्ययन नहीं करते है। जो करते भी है उनमें से भी अधिकाश के दृष्टिकोण असम्यक् हैं। कुछ तो पण्डिताई करके केवल धन कमाने में तो कुछ सकीर्ण सम्प्रदाय पथवाद को पुष्ट करने में, तो कुछ अहकार को पुष्ट करने में स्व-ज्ञान का दुरूपयोग करते है।

उपलब्ध जैन ग्रन्थों में वर्णित 'अनेकान्त सिद्धान्त' एव स्याद्वाद' महान् वैज्ञानिक 'आइन्सटीन' के 'सापेक्षसिद्धान्त' से भी अधिक व्यापक तथा पूर्ण है, 'भौतिक, रसायन एव अणु सिद्धान्त आधुनिक विज्ञान से भी अधिक सूक्ष्म-व्यापक तथा पूर्णता को लिए हुए है वैज्ञानिक डार्विन के जीवविज्ञान (विकासवाद) से भी श्रेष्ठ, भ्रातिरहित जीवविज्ञान (जीव-समास, मार्गणास्थान) हैं भारतीय वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बसु के वनस्पति-विज्ञान से भी अधिक व्यापक एकेन्द्रिय जगत का वर्णन है, मनोवैज्ञानिक फ्रायड के मनोविश्लेषण से भी अधिक सूक्ष्म, परिपूर्ण भ्रातिरहित, लेश्यामनोविज्ञान, कषाय-विश्लेषण

संज्ञा-प्रकरण है, आधुनिक परामनोविज्ञान से भी चमत्कारपूर्ण गुण स्थान, ऋद्धियो का वर्णन है, आधुनिक खगोल से भी व्यापक लोक-अलोक का गणीतीय वर्णन है, आधुनिक गणित से अनन्त सूक्ष्म तथा व्यापक आयाम से अधिक लौकिक एवं अलौकिक गणित है, आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान से भी अधिक श्रेष्ठ 'सर्वांगीण सर्वोदय-शिक्षा' मनोविज्ञान है, कार्लमार्क्स के साम्यवाद से भी श्रेष्ठ साम्यवाद (समता, अपरिग्रहवाद) है, आधुनिक पारिस्थितिकि से भी श्रेष्ठ पारिस्थितिकि (विश्वव्यवस्था, परस्परोग्रहो-जीवनाम्) है, महात्मा गाँधी की अहिंसा एवं असहयोग से भी सूक्ष्म, शुद्ध, व्यापक अहिंसा एवं माध्यस्थ भाव है, सुकरात, प्लेटो, अरस्तु के दर्शनशास्त्र एवं राजनीति से भी श्रेष्ठ राजनीति एवं दर्शनशास्त्र है। जैन शास्त्रों में कार्य-कारण सिद्धान्त, क्रिया-प्रतिक्रिया सिद्धान्त, पर्यावरण सुरक्षा, कर्मसिद्धान्त, न्यायनीति, विश्वमैत्री-विश्वशान्ति, प्रगतिशीलता, प्रमाणिकता, चारित्रनिष्ठा, आधुनिकता, समाजविज्ञान, चतुःआयाम् सिद्धान्त, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तता का सिद्धान्त, गति-सिद्धान्त, प्रकाश सिद्धान्त, आनुवांशिकि सिद्धान्त आदि विश्व के सम्पूर्ण प्रसिद्ध एवं अप्रसिद्ध सिद्धान्तों का वर्णन पाया जाता है।

यह सब होते हुए भी जैन समाज की स्व-दुर्बलता, कमियों, संकीर्णता के कारण विशेष कुछ कार्य नही हो पा रहा है। आधुनिक विज्ञान ने जो कि 300-400 वर्ष का है उसके पास पहले से कुछ नहीं होने पर भी आज पुरुषार्थ, उदारता, सत्यग्राहिता आदि के कारण स्लेट से लेकर सुपर कम्प्यूटर तक, बैलगाड़ी से लेक जेट विमान तक पहुँचाया और हम मत-पंथ, रूढि में अटककर भटकते रहे हैं। इसलिये हमें पुनः स्वयं को जाग्रत होकर दूसरों को भी जाग्रत करना है, क्योकि जो स्वयं सो रहा है, वह दूसरों तक नहीं जगा सकता है, बुझा हुआ दीपक दूसरे बुझे हुए दीपक को प्रज्ज्वलित नहीं कर सकता है। इसके साथ-साथ हमें संगठित होकर कार्य करने की केवल आवश्यकता ही नहीं वरन् अपरिहार्यता भी है। भारतीय लोग, विशेषतः जैन लोग जब वैज्ञानिक लोग कुछ शोध-बोध करते हैं तो कहने लगते हैं कि यह तो हमारे धर्म में पहले ही है। परन्तु वैज्ञानिक शोध के पहले स्वयं शोध करके विश्व के सामने नहीं रखते हैं। जब तक विदेशी लोक हमारे सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं करते तब तक स्वसिद्धान्त को तुच्छ मानते हैं और उसको जो मानते हैं उसको भी कुछ अज्ञानी पुराण-पंथी मानते हैं। इन सब कमजोरियों को त्यागकर आत्म विश्वास, आत्म गौरव के साथ स्वसिद्धान्त का अनुकरण, अनुसरण एवं प्रचार-प्रसार करना चाहिए।

आ. कनकनन्दी

◆

संदेश

विश्व में चारों ओर भय, पीड़ा, अशान्ति असतोष का वातावरण व्याप्त है। भूकम्प आदि प्रकृति प्रकोप भी आज बढ़ रहे हैं। इन सबका कारण मानव का अति भौतिक वादी जीवन है, हिसा, झूठ, चोरी आदि अनैतिक प्रवृत्तिया हैं।

मानव जीवन आत्म कल्याण का सुअवसर है। यह ससार चक्र में भ्रमण करते हुए दुर्लभता से प्राप्त होता है। जन्म-मरण का ससार चक्र अत्यत दुखदायी है। भ महावीर ने उस चक्र से स्वय को मुक्त किया और उससे मुक्ति हेतु अन्यों को उपदेश दिया। उनका उपदेश हमारे लौकिक-पारलौकिक-सब दुखों से हमें छुटकारा दिलाने वाला है। उनके उपदेशों की जितनी चर्चा, चितन, पठन-पाठन, प्रचार-प्रसार हो, उतना ही हमारा व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय जीवन सुख-शान्ति पूर्ण होगा।राजस्थान जैन सभा प्रतिवर्ष की भाति भ महावीर की 2600 वीं जन्म जयती के अवसर पर स्मारिका के रूप में भगवान महावीर के सिद्धातों का प्रकाशन कर प्रचार-प्रसार का कार्य कर रही है। उन्हें मेरा शुभाशीर्वाद है।

मुनि सुधासागर

संदेश और आशीर्वाद



आज ज्ञापन, विज्ञापन और पैकिंग का जमाना है। किसी दुकान का माल कितना ही अच्छा क्यों न हो, यदि उसकी पैकिंग आकर्षक न हो तो वह दुकान चलती नहीं है। जैन धर्म के पिछड़ेपन का कारण भी यही है। जैन धर्म के सिद्धान्त तो अच्छे हैं लेकिन उसकी पैकिंग अर्थात् प्रस्तुति अच्छी नहीं है। अहिंसा अनेकांत और अपरिग्रह जैसे महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों पर आधारित जैन धर्म विश्व धर्म बनने की क्षमता रखता है लेकिन उसका व्यापक स्तर पर आकर्षक प्रचार-प्रसार न होने के कारण आज वह पिछड़ गया है।

दूसरी दुकानों के माल यद्यपि घटिया है फिर भी वह धड़ल्ले से हाथो-हाथ बिक रहा है- इसका कारण माल तो घटिया है लेकिन उसकी पैकिंग खूबसूरत और आकर्षक है। जैन धर्म के पास माल तो बढ़िया है लेकिन उसका कोई विज्ञापन नहीं है। यही वजह है कि हमारी अच्छी चीज भी धूल धूसरित हो रही है।

आज हम जब भगवान महावीर स्वामी की 2600वीं जन्म जयंति मना रहे हैं तब हमें इस ओर ध्यान की सख्त जरूरत है। अगर जैन समाज अपनी पैकिंग को समय और युग की मांग के अनुरूप कर सका तो 21वीं सदी में भगवान महावीर और उनके अमृत संदेश तेजी से दुनियां के समाने उभर आयेंगे, जिसकी आज सारे संसार को जरूरत है।

एक और बात, महावीर के मन्दिर में हर आदमी की पहुँच होनी चाहिए। वहाँ किसी के प्रवेश पर निषेध नहीं होना चाहिए। क्योंकि मन्दिरों का निर्माण मनुष्य मात्र के लिए है। पापी से पापी और दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति को भी महवीर तक पहुँचने का हक देना होगा तभी जैन धर्म विश्व धर्म बन सकता है। और, किसी अपरिहार्य कारण से यदि यह संभव न हो तो फिर 'भगवान महावीर' की पहुँच हर आदमी तक होनी चाहिए।

जैन समाज को दो में एक को चुनना ही होगा या तो महावीर तक हर आदमी को पहुँचने का अधिकार देना होगा या फिर 'महावीर' को हर आदमी तक पहुँचना होगा। यह समय की मांग है। समय रहते इसे पूरा करना है, वरना हम वर्षो पुरानी अपनी पहचान तो खो ही देंगे, साथ ही हम ओर भी अधिक पिछड़ जायेंगे।

आज परम्परा, संस्कृति ओर परिवेश को बदले माहोल में नये अर्थ और नये संदर्भ दिये जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में धर्म और उसके सिद्धान्तों की समीक्षा जरूरी है। हम वक्त की नजाकत को पहचाने तथा जो शुभ और सामयिक है उसे अपनाने में कोई संकोच न करें तथा जो प्राचीन है मगर असामयिक है उसे छोड़ने में भय न करें- यही महावीर वाणी है।

श्री ज्ञानचन्द जैन (बिल्टीवाला) के कुशल सम्पादन में राजस्थान जैन सभा द्वारा प्रकाशित महावीर जयंति स्मारिका के पुराने अंक देखे और पढ़े। अन्य स्मारिकाओं से हटकर विविध विषयों पर खोज एवं चिन्तन पूर्ण लेखों का समावेश स्मारिका की विशेषता है।

हर वर्ष की भांति इस वर्ष भी और भी अधिक भव्यता और परिपक्वता को अपने में समेटे महावीर जयंति स्मारिका प्रकाशित हो रही है। उम्मीद की जानी चाहिए यह स्मारिका एक स्मरणीय संग्रह होगा।

राजस्थान जैन सभा के सभी सदस्यों एवं सम्पादक मण्डल को मेरे बहुत-बहुत आशीर्वाद।

मुनि तरूण सागर



आशीर्वचन

अर्हम्

इस दुनिया का सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्य माना जाता है। उसके पास सर्वाधिक विकसित मस्तिष्क है, विकसित भावतत्र और विकसित मन है। उसे स्मृति, कल्पना और चिन्तन की अनुपमेय शक्ति प्राप्त है। उसका भावतत्र अहकार और ममकार के धागों से बुना हुआ है। जातिवाद उसके अहकार की परछाई है। सप्रदायवाद भी उसकी प्रतिध्वनि है। वह अपने स्थान को सबसे ऊँचा और अपने मत को सबसे श्रेष्ठ मानना चाहता है। उसमें ममकार है इसलिए वह अपने आपको और अपने निजीजनों को सबसे अधिक समृद्ध बनाना चाहता है। उसकी इस चाह ने जातीय ओर साप्रदायिक सघर्ष को जन्म दिया।

भगवान महावीर ने सघर्ष की जड़ को पकड़ा और कहा-सब आत्माए समान हैं कोई ऊँचा नहीं है, कोई हीन और कोई अतिरिक्त नहीं है-णो हीणे णो अइरित्ते। जाति मात्र सामयिक उपयोगिता है। उसे ऊँच और नीच मानना अहकार की प्रतिक्रिया है।

महावीर ने कहा-धर्म और सप्रदाय एक नहीं है। धर्म आत्मा की पवित्रता है और सप्रदाय उसकी परपरा को आगे बढ़ाने की प्रणाली है।

कुछ धार्मिक कहते थे- मेरे उपस्थान या सप्रदाय में आओ, तुम्हें मोक्ष मिलेगा, ईश्वर की प्राप्ति होगी, अन्यथा तुम्हें मोक्ष नहीं मिलेगा, ईश्वर की प्राप्ति नही होगी। महावीर ने कहा-ऐसा कहने वाले जनता को भ्रम में डाल रहे है, सत्य से परे जा रहे है।

भगवान महावीर ने समाज में अहिसा की प्रतिष्ठा की। यह इतिहास प्रसिद्ध घटना है। इस प्रसग में एक अज्ञात पहलू की ओर मैं जनता का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हू। भगवान महावीर ने हिसा के कारणों पर गहन विचार कर अहिसा के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस विषय में हमारी दृष्टि स्पष्ट होने चाहिए। हिसा के प्रमुख कारण पाच है---

1 सग्रह और परिग्रह की मनोवृत्ति
2 दूसरों पर हुकूमत करने की मनोवृत्ति
3 अपने बड़पन के लिए कमजोर लोगों का शोषण करने की मनोवृत्ति
4 अपनी जाति और सप्रदाय को सर्वोच्च मानने की मनोवृत्ति
5 अधिकतम सुविधा भोगने की मनोवृत्ति

भगवान महावीर ने अहिसा को केवल जीवों को न मारने तक सीमित नही किया इसलिए जैन

आचार-शास्त्र के अनुसार अपरिग्रह को छोड़ कर अहिंसा की व्याख्या नहीं की जा सकती और अहिंसा को छोड़ कर अपरिग्रह की व्याख्या नहीं की जा सकती। दोनों एक ही सूत्र में पिराए हुए माला के मनके हैं।

हिंसा का एक और बड़ा कारण है और वह है वैचारिक आग्रह। महावीर ने उसका प्रतिकार सत्य-शोध की स्वतंत्रता देकर किया। उन्होंने कहा–तुम स्वयं सत्य खोजो–अप्पणा सच्च मेसेज्जा। सत्य-शोध की स्वतंत्र प्रवृत्ति के बिना वैचारिक आग्रह की जंजीर को कभी तोड़ा नहीं जा सकता। अनेकांत सत्य-शोध की प्रवृत्ति का प्रायोगिक रूप है। सापेक्षता और समन्वय के प्रयोग द्वारा हम सत्य-शोध के क्षेत्र में गतिशील बन सकते हैं, रूढ़िवादी चिन्तन से मुक्त हो सकते हैं।

आज विश्व के अनेक अंचलों में शाकाहार का अभियान चल रहा है। उसका मूल स्रोत महावीर द्वारा प्रतिपादित आचार-संहिता में उपलब्ध है।

हम भगवान महावीर की छब्बीस सौवीं जन्म जयंती का आयोजन कर रहे हैं। इस आयोजन का प्राणतत्त्व है व्रती समाज के निर्माण का संकल्प। इस अवसर पर हम महावीर द्वारा प्रतिपादित तीन शब्दों पर ध्यान दें—

1. अव्रती
2. व्रती
3. महाव्रती

महाव्रत की साधना मुनि के लिए है। उनसे समाज नहीं बनता। अव्रती और व्रती–दोनों समाज के अंग हैं। अव्रती समाज स्वस्थ नहीं होता। अनैतिकता, अप्रामाणिकता, भ्रष्टाचार, अपराध, अनावश्यक हिंसा, अनावश्यक संग्रह, मादक वस्तुओं का सेवन–ये अव्रती समाज के लक्षण हैं। व्रती समाज के लक्षण इनसे भिन्न हैं। व्रती समाज का सदस्य आजीविका शुद्धि के प्रति पूर्ण सचेत होता है। उसमें नैतिकता की निष्ठा होती है। उसमें धन का अभाव ओर प्रभाव–दोनों नहीं होते।

महावीर ने ज्ञान और क्रिया–इन दोनों का समन्वय किया था इसलिए हमें आचार शून्य ज्ञान और ज्ञान शून्य आचार–इन दोनों एकांतवादो से हटकर ज्ञान और आचार के समन्वय का संकल्प लेना चाहिए। इस संकल्प के साथ होने वाला महावीर की छब्बीसवीं जन्म शताब्दी का आयोजन व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व के लिए कल्याकारणी सिद्ध होगा।

आचार्य महाप्रज्ञ

27 मार्च 2001
गंगाशहर



शुभ-संदेश

"हर एक तीर्थकर का जीवन आत्मविकास का आदर्श जीवन ही तो है।' भगवान महावीर के भव्य चरित्र -व्यक्तित्व की परिणति एक व्यक्ति की आयु कथा तक ही सीमित होने वाली नहीं है वरन् अनेक भवों में घूम-फिरकर ,भटक-भटकर आत्मविकास की चरमसीमा तक पहुँचने वाले एक दिव्य साधक की उत्कृष्ट स्थिति है।

जैन धर्म में निहित अहिसा , अनेकान्त और अपरिग्रह जैसे शाश्वत जीवन मूल्यों को जन -जन में, पहुँचाने वाले भगवान महावीर और उनके अनुयायी सचमुच ही वन्दनीय व स्मरणीय है।

धर्म की सुगन्ध को समाज की वेदिका तक फैलाने वालों में भगवान महावीर का नाम उल्लेखनीय है। भगवान महावीर स्वामी द्वारा सचालित "वीरसघ" में गृहत्यागी भी थे, गृहसगी भी थे। गृहत्यागियों के दो उपवर्ग-मुनि,आर्यिका-अपने सदाचरण से सघ में पावनता लाने में सफल थे जबकि गृहवासियों के दो उपवर्ग -श्रावक और श्राविका अपने व्यस्त जीवन में निरूपाय रहकर भी यथासाध्य धर्माचरण में रहने का प्रयत्न कर रहे थे साधना में जुटे रहते थे।

वीर सघ की स्थापना बडी कुशलतापूर्वक की गयी थी, जिसमें भक्त वृन्द की सख्या विशाल थी। मुनिशिष्यों की सख्या 14,000 थी जो सात गणों में शोभित थे व 11 गणधरों द्वारा सचालित थे।

इसके अलावा वीर सध में 36,000 आर्यिकाँए,1,00,000 श्रावक और 3,00,000 श्राविकाएँ शामिल थे।

भगवान महावीर स्वामी अपने वीर सघ के हर एक श्रद्धालू से जीवन में निहित भोगविलास की निस्सारता को बताते हुए प्रतिक्षण को आत्मोत्कर्ष का साधन बनाने का सदेश दिया करते थे-

कुसग्गे जह जसबिन्दुए थोव व चिट्ठ इ लख्खुमणाए एव मणुयाण जीविय समय गोमया मा पमाया ए।(घास की नोक पर पानी की बूद नुमा यह मानव की जिन्दगी क्षणिक व भगुर होनेवाली है अत गौतम ,क्षणमात्र भी प्रमाद मत किया करो।)

इस प्रकार भगवान महावीर स्वामी केवल अपनी साधना में तल्लीन न रहकर चतुविर्ध-सघ नायक बनकर जनमानस में अटल स्थान बना पाये, विश्ववन्द्य हो पाये।

ऐसें लोकोद्धारक महावीर स्वामीजी के चरणों में शतश नमन अर्पित करते है।

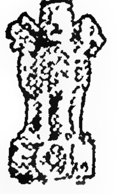
" भद्र भूयात् वर्धता जिनशासन"

भट्टारक चारुकीर्ति
श्री जैन मठ, मूढबद्री,
कर्नाटक



राष्ट्रपति के.आर. नारायणन्

सन्देश



भारत के राष्ट्रपति श्री के. आर. नारायणन् जी को यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि राजस्थान जैन सभा, जयपुर 6 अप्रैल, 2001 से 25 अप्रैल, 2002 तक भगवान महावीर का जन्म कल्याणक मना रही है तथा इस अवसर पर महावीर जयन्ती स्मारिका भी प्रकाशित कर रही है।

राष्ट्रपति जी इस आयोजन की सफलता के लिए अपनी शुभकामनाएं प्रेषित करते हैं।

आपका,

(प्रेम प्रकाश कौशिक)





अशुमान सिह
राज्यपाल
राजभवन, जयपुर

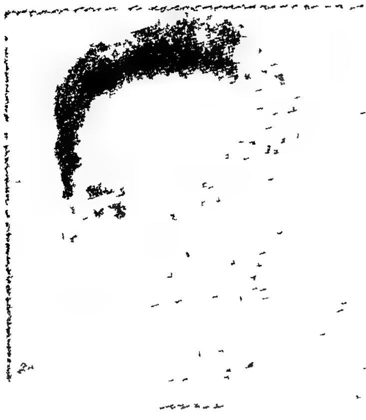
संदेश

मुझे प्रसन्नता है कि महावीर जयन्ती पर राजस्थान जैन सभा द्वारा भगवान महावीर स्वामी का जन्म कल्याणक मनाया जा रहा है और स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है।

भगवान महावीर स्वामी के सिद्धान्तो का अनुकरण किया जाना चाहिए। इससे समाज मे समरसता बढने के साथ ही स्वस्थ वातावरण का निर्माण हो सकेगा। भगवान महावीर ने समाज मे अहिसा, प्रेम, भाईचारा और सौहार्द का वातावरण बनाने का सदेश दिया। उनके सिद्धान्त आज भी प्रासगिक है। हमारा कर्तव्य है कि हम भगवान महावीर के सिद्धान्तों को जन-जन तक पहुचाए।

मै, महावीर जयन्ती पर आयोजित समारोह व प्रकाश्य स्मारिका की सफलता की कामना करता हूँ।

अंशुमान सिह





अशोक गहलोत

मुख्य मंत्री, राजस्थान

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि भगवान महावीर के 2600 वें जन्म कल्याणक वर्ष के 6 अप्रेल, 2001 को शुभारम्भ पर राजस्थान जैन सभा, जयपुर द्वारा स्मारिका का प्रकाशन किाय जा रहा है।

भगवान महावीर अहिंसा, प्रेम, शांति एवं सद्भाव की प्रतिमूर्ति थे। उनके बताए मार्ग पर चल कर संसार की अनेक समस्याओं का स्वतः ही समाधान किया जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि अहिंसा वर्ष के दौरान गठित राज्यस्तरीय समिति के तत्वावधान में होने वाले कार्यक्रमों के माध्यम से अध्यात्म, दर्शन एवं सामाजिक समरसता का व्यापक वातावरण तैयार किया जाय।

मुझे विश्वास है कि स्मारिका की सामग्री भगवान महावीर के जीवन दर्शन एवं आदर्शो को प्रकाशमान करने वाली होगी।

मैं भगवान महावीर को श्रद्धापूर्वक नमन करते हुए प्रकाशन की सफलता के लिए हार्दिक शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ।

(अशोक गहलोत)

संदेश

राजस्थान जैन सभा विगत लगभग छह दशकों से अनेक प्रकार की गतिविधियों व आयोजनों द्वारा समाज सेवा में लगी हुई है। भगवान महावीर जयन्ती के अवसर पर यह सभा कई प्रकार के कार्यक्रम प्रस्तुत करती है, जिनमें प्रमुख कार्यक्रम विशाल शोभा यात्रा व विराट जनसभा है, जिनके माध्यम से भगवान महावीर की वाणी जन-जन तक पहुँचाने में प्रयत्नशील है व भगवान महावीर का सन्देश 'जीओ और जीने दो' व 'अहिसा परमो धर्म ' को जनमानस के हृदय में अकुरित करने का प्रयास करती है।

इसी महान अवसर व पर्व पर यह सभा भगवान महावीर जयन्ती स्मारिका का प्रकाशन लगभग चार दशकों से करती आ रही है। इस वर्ष भी सभा ने स्मारिका के प्रकाशन का कार्य अपने हाथ में लिया है। सभा इस प्रकाशन के द्वारा जैन धर्म के शाश्वत सिद्धान्त 'अहिसा, अपरिग्रह व अनेकान्त' की व्याख्या, विवेचन पर आलेख प्रकाशित कर उनका प्रचार करती हैं इसके अतिरिक्त जैन वाङ्मय, जैन दर्शन, जैन साहित्य, जैन वास्तुकला, चित्रकला, मूर्तिकला, पुरा सम्पदा पर सारगर्भित लेखों का प्रकाशन कर सभी विषयों व पहलुओं पर ज्ञान का सकलन कर समाज का ज्ञानवर्द्धन करती है। भगवान महावीर के उपदेश विश्व में आज के परिपेक्ष्य में सर्वाधिक प्रासगिक एव सार्थक है, उनको आचरण व व्यवहार में लाने से ही विश्व में सुख व शाति की स्थापना हो सकती है।

मुझे स्मारिका के प्रकाशन पर अत्यन्त प्रसन्नता है। मै इसके सफल प्रकाशन की कामना करता हूँ और आशा करता हूँ कि ऐसी स्मारिकाएँ अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल होगी।

मिलाप चन्द जैन
लोकायुक्त राजस्थान

रमेश चन्द्र
कार्यकारी निदेशक

टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन-समूह
नई दिल्ली।

भगवान महावीर का दर्शन आत्म कल्याण तथा सामाजिक व्यवस्था दोनों ही मार्ग प्रशस्त करता है। उनके सिद्धान्त कालजयी हैं। आज भी संसार को अहिंसा, अनेकान्त दृष्टि, वैचारिक संहिष्णुता तथा अपरिग्रह की उतनी ही आवश्यकता है। 'मनुष्य जन्म से नहीं कर्म से महान होता है।' अतः महिलाओं को समान अधिकार देना स्वस्थ सामाजिक परम्परा का अंग है।

राजस्थान जैन सभा महावीर जयंती पर स्मारिका प्रकाशित कर रही है। उसके सफल सुन्दर प्रकाशन के लिए मेरी शुभ कामना प्रेषित है।

रमेश चन्द्र जैन

अध्यक्षीय

✍ रतन लाल जैन छाबड़ा

महावीर जयन्ती स्मारिका का यह 38 वा अक जिस समय पाठकों के हाथों में पहुँचेगा, विश्व उस समय भगवान महावीर का 2600 वा जन्मकल्याणक दिवस मना रहा होगा। हम और आप बड़े भाग्यशाली व पुण्यशाली है कि हमें अपने जीवनकाल में इस महान ऐतिहासिक एव गौरवशाली अवसर को आयोजित करने का सुअवसर प्राप्त हो रहा है। महावीर सबके है, सारे ससार के है फिर भी उनके अनुयायियों का यह दायित्व है कि वह महावीर के उपदेशों को जनजन में जागृत कर विश्व में सौहार्द एव प्रेम का वातावरण उत्पन्न करें।

इसी उद्देश्य की पूर्ति में वर्ष 1962 से परम् पूज्य आचार्य श्री विद्यानन्दजी मुनिराज की प्रेरणा व जैन दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान स्व पण्डित चैन सुखदासजी न्यायतीर्थ के सम्पादकत्व में महावीर जयन्ती के पावन अवसर पर राजस्थान जैन सभा ने 'महावीर जयन्ती स्मारिका' का प्रकाशन प्रारभ किया। अब तक प्रकाशित स्मारिकाओं की सभी विद्वानों समालोचकों, साधु सन्तों, आचार्यो ने मुक्त कठ से सराहना की है। इसका श्रेय हमारे विद्वान लेखकों को है, जिन्होंने अपनी मौलिक, सारगर्भित रचनाओं से इसे सग्रहणीय, पठनीय एव शोधार्थियों के लिए उपयोगी बनाया है। हम उनके बहुत बहुत आभारी हैं।

गत वर्षो की भाँति इस वर्ष भी स्मारिका का सम्पादन प्रसिद्ध विद्वान श्री ज्ञानचन्दजी बिल्टीवाला ने किया है। आपने अस्वस्थ होते हुए भी पूर्ण लग्न एव उत्साह से लेखों का सकलन, चयन एवं स्मारिका को सजाने, सवारने का पूर्ण उत्तरदायित्व वहन कर इसे समय पर प्रकाशित कराकर कार्य को पूर्ण किया है, उसके लिये हम उनका हृदय से आभार मानते है। साथ ही उनके सभी सहयोगियों का जिन्होंने इस कार्य में मदद की है, आभार प्रकट करते है।

स्मारिका का प्रकाशन विज्ञापनदाताओं के सहयोग से ही सभव हो पाता है। इसके लिए हम सभी विज्ञापनदाताओं के आभारी है। इस सामग्री को जुटाने के लिए इस वर्ष भाई श्री प्रेमचन्दजी छाबड़ा जो सभा के उपाध्यक्ष भी है और स्मारिका के प्रबन्ध सम्पादक है, ने काफी

स्मारिका के प्रबन्ध सम्पादक श्री प्रेमचन्द जी छाबड़ा ने स्मारिका के लिए विज्ञापन जुटाने में रातदिन एक कर लक्ष्य को प्राप्त किया। सभी को साथ में लेकर चलने तथा उनके विशद सम्पर्क के कारण इस वर्ष विपरीत परिस्थितियों के बावजूद विज्ञापन प्राप्त हुए। स्मारिका को संवारने व इतना सुन्दर रूप प्रदान करने में इनका योगदान स्मरणीय है। स्मारिका समिति के सदस्य सर्वश्री जय कुमार जी गोधा ने भी गतः दो माह से अपना पूर्ण समय स्मारिका के लिए प्रदान किया तथा विज्ञापन प्राप्त करने के लिएअकथनीय प्रयास किये। मैं इनके प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ।

श्री प्रकाश चन्द जी ठोलिया ने गत कई माह से अस्वस्थ होने के बावजूद भी प्रबन्ध सम्पादक के साथ कदम से कदम मिलाकर विज्ञापन प्राप्त करने में सहयोग प्रदान किया, मैं उनके प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। स्मारिका समिति के सदस्य श्री कैलाश चन्द जी गोधा व प्रबन्ध मण्डल के सदस्यों के प्रति भी अपना आभार प्रकट करता हूँ।

महावीर जयन्ती के विभिन्न कार्यक्रमों के लिए निम्न प्रकार से कमेटियों का गठन किया गया है - इनके संयोजकों व सदस्यों द्वारा प्रदत्त सहयोग के लिए सभा इनके लिए कृतज्ञता प्रकट करती है।

संयोजकगण

भक्ति संध्या

संयोजकगण

श्री अरूण कोडीवाल

श्री विजयकुमार सोगाणी

श्री जतन पटोलिया

श्रीमती चेतना शाह

श्रीमती शकुन्तला गोधा

विचार गोष्ठी

संयोजक

श्री कमल बाबू जैन

श्रीमती रेणू रांका

पाण्डाल व्यवस्था

संयोजकगण

श्री शांतिकुमार गोधा

होम्योपैथिक चिकित्सालय

संयोजक

श्री धनकुमार लुहाड़िया

शोभायात्रा

संयोजक

श्री कैलाशचन्द साह

श्री उत्तमचन्द बड़ेर

प्रचार-प्रसार

संयोजकगण

श्री अरूण सोनी

श्री राकेश छाबड़ा

सांस्कृतिक कार्यक्रम

संयोजक

श्री राकेश गोधा

श्री तिलकराज जैन

अर्थव्यवस्था समिति

संयोजक

श्री कैलाश चन्द सोगाणी

श्री राजेन्द्र कुमार लुहाड़िया



मन्त्री की कलम से .....

सम्पूर्ण विश्व में आज विश्ववदनीय 1008 तीर्थंकर भगवान महावीर की 2600वी पावन जयन्ती विभिन्न कार्यक्रमों के साथ मनाई जा रही है। जयन्ती समरोह 1 4 2001 से 30 4 2002 तक पूरे वर्ष विभिन्न कार्यक्रमों के साथ आयोजित होंगे। केन्द्र सरकार तथा विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा भी इस हेतु कमेटियों का गठन किया गया है। इस अवसर पर स्थाई महत्त्व के भी कार्य सम्पन्न होंगे।

भगवान के सिद्धान्तों व उपदेशों के प्रचार प्रसार के उद्देश्य से राजस्थान जैन सभा गत37 वर्षों से हमारे प्रेरक व मार्ग दर्शक प चैन सुखदास जी की न्यायतीर्थ भावना के अनुरूप इस बार स्मारिका का 38वाँ अक समाज के समक्ष प्रस्तुत कर हमें गौरवपूर्ण प्रसन्नता हो रही है।

इस वर्ष भी सभा की कार्यकारिणी द्वारा स्मारिका के सम्पादन का भार जयपुर के मूर्धन्य विद्वान श्री ज्ञानचद जी बिल्टी वालों को सौपा गया है। उन्होंने व्यक्तिगत व्यस्थता के बावजूद हमारे अनुरोध को स्वीकार कर इतने सुन्दर रूप से स्मारिका का सम्पादन किया, लेखों को प्राप्त किया तथा स्मारिका की गरिमा के अनुरूप स्मारिका में स्थान दिया इसके लिए राजस्थान जैन सभा इनकी अत्यन्त आभारी है। इनके सहयोगी सर्व श्री डॉ प्रेमचदजी रावका, बुद्धि प्रकाश जी भास्कर, श्री अमर चद जी एव श्री एम पी जैन द्वारा प्रदत्त सहयोग के लिए सभा आभार प्रदर्शित करती है।

स्मारिका में भगवान महावीर के जीवन दर्शन, इतिहास, पुरातत्व एव विभिन्न अन्य विषयों पर खोज पूर्ण लेख प्रकाशित होते हैं। स्मारिका की सदर्भ ग्रथ के रूप में मान्यता हुई है, यह लेखकों, विद्वानों, कवियों व साधुजनों की रचनाओं के कारण ही सभव हो पाया है। मै उनके प्रति सभा की ओर से आभार व्यक्त करता हूँ।

सभा के अध्यक्ष श्री रतनलाल जी छाबड़ा का प्रत्येक कार्यक्रम के अकथनीय सहयोग व मार्गदर्शन पूर्व मे हुई अस्वस्थता के बावजूद प्राप्त होता रहा है। उनके मार्ग दर्शन व सक्रिय सहयोग के फलस्वरूप ही सभा ने विभिन्न कार्यकर्मो को सफलता पूर्वक सम्पन्न किये है, तथा कई योजनायें अबाध गति से चल रही है। स्मारिका के प्रकाशन में भी इनका हर स्तर पर सहयोग व मार्गदर्शन प्राप्त हुआ जिसके कारण स्मारिका की इतना सुन्दर प्रकाशन सम्भव हो सका है। मै उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

स्मारिका के प्रबन्ध सम्पादक श्री प्रेमचन्द जी छाबड़ा ने स्मारिका के लिए विज्ञापन जुटाने में रातदिन एक कर लक्ष्य को प्राप्त किया। सभी को साथ में लेकर चलने तथा उनके विशद सम्पर्क के कारण इस वर्ष विपरीत परिस्थितियों के बावजूद विज्ञापन प्राप्त हुए। स्मारिका को संवारने व इतना सुन्दर रूप प्रदान करने में इनका योगदान स्मरणीय है। स्मारिका समिति के सदस्य सर्वश्री जय कुमार जी गोधा ने भी गतः दो माह से अपना पूर्ण समय स्मारिका के लिए प्रदान किया तथा विज्ञापन प्राप्त करने के लिएअकथनीय प्रयास किये। मैं इनके प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ।

श्री प्रकाश चन्द जी ठोलिया ने गत कई माह से अस्वस्थ होने के बावजूद भी प्रबन्ध सम्पादक के साथ कदम से कदम मिलाकर विज्ञापन प्राप्त करने में सहयोग प्रदान किया, मैं उनके प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। स्मारिका समिति के सदस्य श्री कैलाश चन्द जी गोधा व प्रबन्ध मण्डल के सदस्यों के प्रति भी अपना आभार प्रकट करता हूँ।

महावीर जयन्ती के विभिन्न कार्यक्रमों के लिए निम्न प्रकार से कमेटियों का गठन किया गया है - इनके संयोजकों व सदस्यों द्वारा प्रदत्त सहयोग के लिए सभा इनके लिए कृतज्ञता प्रकट करती है।

संयोजकगण

भक्ति संध्या

संयोजकगण

श्री अरूण कोडीवाल

श्री विजयकुमार सोगाणी

श्री जतन पटोलिया

श्रीमती चेतना शाह

श्रीमती शकुन्तला गोधा

विचार गोष्ठी

संयोजक

श्री कमल बाबू जैन

श्रीमती रेणू रांका

पाण्डाल व्यवस्था

संयोजकगण

श्री शांतिकुमार गोधा

हौम्योपैथिक चिकित्सालय

संयोजक

श्री धनकुमार लुहाड़िया

शोभायात्रा

संयोजक

श्री कैलाशचन्द साह

श्री उत्तमचन्द बड़ेर

प्रचार-प्रसार

संयोजकगण

श्री अरूण सोनी

श्री राकेश छाबड़ा

सांस्कृतिक कार्यक्रम

संयोजक

श्री राकेश गोधा

श्री तिलकराज जैन

अर्थव्यवस्था समिति

संयोजक

श्री कैलाश चन्द सौगाणी

श्री राजेन्द्र कुमार लुहाड़िया

प्रभात फेरी

सयोजक

श्री दिनेश गोदीका

श्री उजास जैन

श्री राजेन्द्र लुहाड़िया

श्री सुधीर बाकलीवाल

श्रीमती विमला देवी पापडीवाल

श्री विनोद छाबड़ा

रक्तदान

सयोजक

डॉ विनय सोनी

डॉ सुभाष काला

डॉ सुभाष गगवाल

डॉ जी सी सौगाणी

डॉ प्रभा लुहाड़िया

मिष्ठान वितरण समिति

सयोजक

श्री प्रेमचन्द हैदरी

सदस्यता अभियान समिति

सयोजक

श्री रमेश चन्द चाँदवाड़

सभा के सभी कार्यों में कार्यकारिणी के सदस्यों एव विशेष आमत्रित महानुभावों का सहयोग प्राप्त होता रहा है उन सभी के प्रति मै कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

इस स्मारिका के प्रकाशन के लिए मुद्रण सम्बन्धी सभी कार्य मैसर्स कुशल प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनर्स, ब्रह्मपुरी खुर्रा, जयपुर द्वारा की गई है। इसके सचालक श्री राजीव जी काला ने स्मारिका को बहुत ही सुन्दर रूप से समय पर प्रकाशित की। इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र है।

स्मारिका के प्रकाशन में जिन्होंने भी सहयोग प्रदान किया तथा जिनके नामों का उल्लेख नहीं हो पाया है, उन सभी के प्रति भी मै आभार प्रदर्शित करता हूँ।

स्मारिका के प्रकाशन में यदि कोई भी त्रुटि रह गई हो तो इसके लिए मै सहृदय पाठकों से क्षमा चाहता हूँ। आशा है पाठकगण इसे उदारता से क्षमा करते हुए त्रुटियों के बारे में बताते हुए अपने अमूल्य सुझावों से अवगत करायेंगे।

महेन्द्र कुमार जैन पाटनी
मत्री
राजस्थान जैन सभा, जयपुर





सम्पादकीय

भगवान महावीर की छब्बीसौवीं जन्म-जयन्ती के अवसर पर महावीर जयन्ती स्मारिका का यह 38 वाँ अंक विज्ञ पाठको के हाथों में समर्पित है। 1962 में स्वनामधन्य पं. चैनसुख दास जी न्यायतीर्थ के सम्पादकत्व में आरम्भ हुई स्मारिका का प्रतिवर्ष का ही अंक विद्वान लेखकों के अध्ययन मनन के नवनीत रूप रचनाओं से पठनीय, संग्रहणीय रहा है। इस जयन्ती के वैशिष्ट्य के अनुरूप सन्तोष का विषय है कि अंक की प्रत्येक ही रचना, (लेख, कविता) अपनी विशिष्टता लिए हुए है। प्रत्येक ही लेख, कविता हमे पूरी आशा है विज्ञ पाठकों को ज्ञान-नीर से तृप्त करेगे, तन का आरोग्य, मन की शांति बढाते हुए कर्म निर्जरा में कारण बनेंगे। स्वाध्याय को आचार्य परम तप स्वीकार करते हैं। हमें विश्वास है, आरंभ से अंत तक अंक में संजोयी गई सामग्री इसी स्तर की है, ज्ञान वर्धक, आनन्दवर्धक, आरोग्यवर्धक।

प्रतिवर्ष की भाँति इस बार भी सामग्री को पाँच खण्डों में बाँटा गया है: (1) भ.महावीर जीवन, सिद्धांत, चर्या (2) साहित्य चर्चा (3) इतिहास पुरातत्व (4) विविध (5)आंग्ल खंड। प्रत्येक खंड में पठनीय, मननीय सुरुचिपूर्ण सामग्री का संकलन हुआ है।

महावीर सबके हैं, सबके लिए हैं, हर युग के है, हर युग के लिए हैं। उनके समवसरण में दीन दुर्बल पशु को भी स्थान है, वह वहाँ सुरक्षा, शान्ति प्राप्त करता है, अपने स्तर का अपनी आत्मा के कल्याण का मार्ग प्राप्त करता है, तो वैभवशाली देव को भी स्थान है, वह भी महावीर के अनन्त आत्म वैभव के आगे श्रद्धा भक्ति में नाचता गाता है और एक दिन मनुष्य बनकर महावीर हो जाना चाहता है।

महावीर विपरीतता के विरोधी हैं। उनके समवसरण में सैकड़ों ही वादी मुनिराज हैं जो विपरीत मान्यताओं का युक्ति, तर्क से खण्डन कर मानव को सत्य का दर्शन कराते हैं। मिथ्यात्व को, असत् मान्यता को महावीर जीव का सबसे बड़ा शत्रु मानते हैं। मिथ्यात्वी मानव स्वयं तो अपना संसार चक्र दीर्घ करता ही है, दुःखों का जाल फैलाता ही है, अन्यों को भी भटकाता है, समाज में हिंसादि पापों का प्रचार प्रसार करता है।

मिथ्यात्व से महावीर का समझौता नहीं है। आगम, युक्ति, अनुभव से सत्य को समझो और स्वीकार करो। मार्ग पर चलने में 'जं सक्कई तं कीरई' वे कह देते हैं, जितना चल सको चलो। साधु के भी महावीर के मार्ग में उत्तम, मध्यम, जघन्य, असंख्य ही संयम स्थान हैं और ऐसे ही अणुव्रती श्रावक के। शुद्धोपयोग, शुद्ध आत्मानुभव को महावीर धर्म कहते हैं, पर जब न टिक सके तो शुभोपयोग को, शुभभावों को अपवाद रूप से स्वीकार कर लेते हैं। अशुभ की, पाप की घाम से बचकर शुभ के पेड़ की छाया अच्छी ही है, नरकादि में दुःख पाने से स्वर्ग की साता अच्छी ही है। मोक्ष के आत्यन्तिक

सुख के सामने दोनों ही समान रूप से विभाव है।

शुभ के हस्तावलम्बन से जब आत्मानुभव का रस बरस जाए, आत्मलीनता आ जाये तो शुभ 'नैष किंचित्' यह कुछ नही है कह कर महावीर छोड़ने योग्य कहते हैं। सिद्ध लोक में महावीर अपने सारे ससारी शुभ अशुभ रूप के प्रति, नरक-स्वर्ग तिर्यच-मनुष्य आदि सभी रूपों में हुए सारे कार्यकलापों के इतिहास के प्रति 'नैष किंचित् का भाव लिये ही तो आत्म मग्न है आनन्द मग्न है। हमारे आज के तूफान, भूकम्प, आतकवादी उपद्रव रोगों के विस्तार आदि सबको देखते हुए भी अभी महावीर 'नैष किंचित्' रूप से अनदेखा कर रहे है और मौन ही हमें कह रहे हैं, जब शुभ और शुभ के फल पुण्योदय से अस्पृष्ट रहने दूर रहने से आनन्द, समुद्र में प्रवेश मिलता है तो अशुभ भौतिकवादी लिप्साओं के मार्ग पर चलकर अर्जित किए पापकर्मों के उदय से क्यों चिपकते हो, इसकी कथा को भी 'नैष किंचित्' कह देहातीत अमूर्त आनन्द लोक में मग्न हो जाओं, पुद्गल की छिन्नता-भिन्नता से क्यों काँप कर भयभीत हो रहे हो, तुम पुद्गल हो क्या? आकाश तो नहीं काँपता, तुम्हें क्या हो गया है? पुद्गल के छिन्न-भिन्न होने में तुम्हारा ज्ञान कैसे छिन्न-भिन्न हो जाएगा, तुम्हारे आत्मप्रदेश कैसे छिन्न-भिन्न हो जायेंगे ? कुछ भी नहीं होगा, नैष किंचित्, भ्रम में मत रहो। देह की सुरक्षा हेतु पारिवारिक सामाजिक, राजकीय व्यवस्था को महावीर मना नहीं करते, अल्प कर्म लेप सही, आवश्यक हो जितना कर लो पर काँप कर, भयभीत रहकर बहुकर्म लेपी होने की मूर्खता महावीर को स्वीकार नहीं है।

महावीर की वाणी का प्रसार योजनों में होता था, सब जन अपनी अपनी भाषा में समझ लेते थे। देवता गण इसकी व्यवस्था करते थे कि महावीर के उपदेशामृत से कोई वचित न रह जाये। महावीर के बाद महावीर की वाणी को सुरक्षित रखने और जनजन तक उसे पहुँचाने हेतु सरस्वती आन्दोलन आरभ हुआ और आचार्यों, भट्टारकों, गृहस्थ विद्वानों ने विपुल साहित्य रचा और आज भी रच रहे हैं। आत्म कल्याण करते हुए जन कल्याण, युग निर्माण जितना कर सके महावीर के मार्ग में किया जाता है। (आद हिद कादव्व जई सक्कई परहिद वि कादव्व)। जैसे आत्म हित में पर की देखा देखी कर मूढ बनना थोथे क्रिया काण्ड की लीक पीटना वर्जित है जैसे बने सब कुछ बाह्य को 'नैष किंचित्' कह शुद्ध आनन्द में मग्नता उपादेयभूत है वैसे ही 'मलेच्छ को मलेच्छ की भाषा में समझाना' युगानुरूप साधन अपना कर जन-जन में अहिसा, अपरिग्रह, अनेकान्त-स्याद्वाद के महावीर के महान सिद्धातों का प्रचार-प्रसार करना उपादेयभूत है और प्रभाव खो चुके परम्परागत तौर-तरीकों का अन्धानुकरण करते जाना मूढ़ता है। इस सबध में भ महावीर की 2600 वीं जन्म-जयन्ती के अवसर पर 6 अप्रेल सन् 2001 से श्री त्रिलोक चन्द जी कोठ्यारी, कोटावालों द्वारा स्थापित त्रिलोक इस्टीट्यूट ऑफ हायर स्टडीज एण्ड रिसर्च जो वैब साइट पर भ महावीर के सिद्धातों का प्रचार तथा आधुनिक ढग से शोध खोज की योजना को आरम्भ कर रहा है, समाज की अमूढ दृष्टि का प्रभावना हेतु प्रकृष्ट भाव का प्रमाण है।

भूखे भजन न होई गोपाला लोक में प्रसिद्ध कहावत है। जहाँ भूख नहीं है वहाँ धर्म मोक्ष का पुरुषार्थ भी नहीं, यथा भोगभूमि और देवों में। जहाँ

अति भूख है और खाने को कुछ नहीं वहाँ भी धर्म-मोक्ष का पुरुषार्थ नहीं, यथा नरकों में। अतः आदि तीर्थंकर ऋषभदेव ने भी प्रथम जनता को असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प की शिक्षा दी, राज्य व्यवस्था की। अस्तु, समाज के नवयुवकों की युगानुरूप शिक्षा द्वारा आजीविका का, समाज के राजनैतिक उत्थान का प्रश्न भी विद्वानों द्वारा स्मारिका के इस अंक में चर्चित हुआ सामयिक है। सम्यग्दृष्टि महापुरुष अहिंसा की ध्वजा प्रदेश प्रदेश में फहराने, हिंसा के भयंकर मार्गों, मान्यताओं से छोटे-बड़े सभी प्राणियों को त्राण दिलाने हेतु छह खण्ड पृथ्वी विजय कर सुशासन स्थापित करते थे। वीतरागी तीर्थंकर के धर्म-शासन द्वारा जन कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो सके इस हेतु अहिंसक समाज का आर्थिक, राजनैतिक उत्कर्ष आवश्यक है। इस संबंध में की गई उपेक्षा, उदासीनता का ही परिणाम है कि आज भौतिकवादी आँधी ने चारों ओर आहार, औषधि में मांसाहार को गहरे फैला दिया है, जल थल सबको प्रदूषित कर दिया है। महावीर का अहिंसक शासन किसी सम्प्रदाय या देश विशेष की वस्तु नहीं है, प्राणी मात्र के कल्याण की वस्तु है, उसके उत्कर्ष में सबका भला है।

अन्त में अंक के सम्पादन का मुझे तथा सम्पादक साथी श्री एम. पी. जैन, श्री अमर चन्द जैन, डॉ. प्रेम चन्द रावंका और श्री बुद्धि प्रकाश भास्कर को सभा के अध्यक्ष, मंत्री एवं कार्यकारिणी के सदस्यों ने भ. महावीर की 2600 वीं जन्म जयन्ती के इस विशिष्ट वर्ष में अवसर दिया इसके लिये हम उनके बहुत आभारी हैं। आचार्यों, मुनियों से प्राप्त आशीर्वाद अंक के सफल प्रकाशन के मूल में है। वीतरागी गुरुओं के आशीर्वाद की शक्ति सर्व जन प्रसिद्ध है, तूफान शांत हो अनुकूल हवा बहने लगती है और जहाज अनायास ही किनारे लग जाता है। गुरुओं को गद्गद् होकर हमारा 'नमोस्तु' है कि उन्होंने अपने अध्ययन मनन के नवनीत रूप श्रुत सामग्री भी प्रकाशनार्थ हमें प्रेषित कर अंक को शास्त्र बना दिया है। गण मान्य विद्वान श्री महेन्द्र सागर प्रचण्डिया, डॉ. एस.सी. जैन, डॉ. शोभनाथ पाठक के हम आभारी हैं कि स्वास्थ्य के अनुकूल न रहते भी उन्होंने हमें अपनी रचनायें प्रेषित कर कृतार्थ किया है। वरिष्ठ विद्वान प्रो. एल.सी.जैन, श्री जगदीश प्रसाद जैन, 'साधक', डा. राजेन्द्र कुमार बंसल, डा. श्री रंजन सूरिदेव, श्री फूल चन्द प्रेमी, डॉ. शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी, डॉ. रमेश चन्द जैन, डॉ. त्रिलोक चन्द कोठ्यारी, जयपुर के मनीषी श्री ज्ञान चन्द खिन्दूका, वरिष्ठ पत्रकार श्री प्रवीण चन्द छाबड़ा आदि सभी श्रुतसेवियों के आभारी हैं, जिनकी रचनाओं से यह अंक पुनः पुनः पठनीय, मननीय, प्रेरणास्पद एवं ज्ञान वर्धक बना है। समय पर अच्छे मुद्रण के लिए कुशल प्रिन्टर्स के श्री राजीव काला एवं उनके साथी धन्य वाद के पात्र हैं। जिनकी रचनाएं स्थानाभाव से हम नहीं छाप सके, उनके हम क्षमाप्रार्थी हैं। अंक में सम्पादन में अशुद्धि हो तो सुधी पाठक शोध ले, हमें अल्पज्ञ जान क्षमा करें।

साथी सम्पादकों को धन्यवाद क्या दूँ, यह सारा श्रम वस्तुतः उन्हीं का है।

ज्ञान चन्द बिल्टीवाला
अजबघर के पीछे,
जयपुर-3
फोन : 313970

आभार



विश्व वद्य भगवान महावीर का 2600वा जन्म कल्याणक महोत्सव पूरे विश्व में बड़े उत्साह पूर्वक मनाया जा रहा है, इस शुभ अवसर पर स्मारिका का 38वा अक समाज के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। यह वर्ष हमारे लिये बहुत भाग्यशाली है कि हमें 2600वा जन्म कल्याणक मनाने का अवसर प्राप्त हुआ है।

गत 37वर्षों से भगवान महावीर के शाश्वत सिद्धान्तों, अहिसा स्यादवाद व अनेकान्त तथा अपरिग्रह की जानकारी जन जन तक पहुँचाने का विनम्र प्रयास स्मारिका द्वारा किया जा रहा है।

स्मारिका के 38वें अक में कला सस्कृति, इतिहास, पुरातत्व, मुख्य जैन सिद्धान्तों तथा राजस्थान जैन सभा की गतिविधिया एव कार्यक्रमों का उल्लेख किया गया है।

राजस्थान जैन सभा की कार्यकारिणी ने इस महत्वपूर्ण वर्ष में स्मारिका के प्रबन्ध सम्पादक के पद पर मनोनीत कर महत्वपूर्ण कार्य का दायित्व मुझे सौंपा है इसके लिये मैं सभा की कार्यकारिणी का आभारी हूँ।

राजस्थान जैन सभा एव विशेष रूप से स्मारिका के प्रधान सम्पादक श्री ज्ञानचन्द्र बिल्टीवाला व सम्पादक मण्डल के सदस्य डा प्रेम चन्द्र रावका, श्री बुद्धी प्रकाश भास्कर श्री अमर चन्द्र जैन एव श्री एम पी जैन ने स्मारिका के लिये लेखों का चयन व उनके सम्पादन करने का गुरुतर दायित्व वहन कर स्मारिका को वस्तुत सग्रहणीय बनाने हेतु जो योगदान किया है उसके लिये आभारी हैं। मैं विज्ञापन दाताओं के प्रति भी हृदय से आभार प्रकट करता हूँ जिनके सहयोग से स्मारिका का प्रकाशन सभव हो सका।

मै एव राजस्थान जैन सभा उन सभी लेखकों के प्रति विशेष रूप से आभारी है जिनके सारगर्भित एव विद्वता पूर्ण लेखों के कारण स्मारिका ने विशेष पहचान बना ली

है।

2 मैं सभा के अध्यक्ष श्री रतनलाल जी छाबड़ा का आभारी हूँ जिनका सहयोग एवं मार्गदर्शन सदैव मुझे प्राप्त होता रहा है।

मैं सभा के मंत्री श्री महेन्द्र कुमार जी पाटनी का आभारी हूँ जिन्होंने अपनी विशिष्ठ पहचान द्वारा विज्ञापन सुलभ करा दिये।

श्री जय कुमार जी गोधा ने स्वयं तो विज्ञापन जुटाये ही तथा मेरे साथ भी जाकर विज्ञापन प्राप्त करने में सहयोग दिया उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ।

विज्ञापन एकत्र करने में "प्रकाश चन्द जी ठोलिया" का सहयोग मेरे लिये बहुत महत्वपूर्ण रहा मैं उनका आभारी हूँ।

सर्वश्री विजय जी सोगाणी, कैलाश चन्द जी गोधा, श्री कैलाश चन्द्र जी सोगाणी, श्री रामपालजी, श्री कान्ती सेठी, श्री एकेन्द्र जी जैन, प्रेमचंद जी सोगाणी के सहयोग के प्रति आभार प्रकट किये बिना नहीं रह सकता।

सर्वश्री रमेश चन्द्र जी गंगवाल, शान्ति कुमार जी गोधा, धन कुमार जी लुहाड़िया, सुधीर जी बाकलीवाल, प्रकाश जी अजमेरा, सुरेन्द्र मोहन जी, अरूण जी कोडीवाल, राकेश जी छाबड़ा, रतनलाल जी गंगवाल, श्रीमती स्नेह लता जी शाह, श्रीमती विमला जी पापड़ीवाल, बसंत जी बाकलीवाल, भागचन्द जी छाबड़ा, श्री एल.के. अजमेरा; श्री एन.के. गोधा, श्री सुधीर कुमार जी बाकलीवाल, श्री रमेश चन्द जी चांदवाड़, श्री सुरेन्द्र कुमार जी पाटनी, श्री ए.के. शाह, संजय जी जैन, किस्तूर चन्द जी सोगाणी, राजेश जी शाह, अमर चन्द्र जी छाबड़ा, रवि कुमार जी जैन, सुरेश जी बज का मैं एवं राजस्थान जैन सभा आभारी है जिन्होंने विज्ञापन एकत्र करने में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग प्रदान किया है।

स्मारिका का मुद्रण कार्य कुशल प्रिन्टर्स एवं स्टेशनर्स के मालिक श्री राजीव जी काला का आभारी हूँ जिनके सहयोग से मुद्रण कार्य समय पर एवं सुन्दर हो सका।

स्मारिका का 38वां अंक आपके हाथों में है इसके सम्बन्ध में अपने विचारों से अवगत कराकर मुझे अनुग्रहित करेंगे।

जय महावीर।

प्रेमचन्द छावड़ा
प्रवन्ध सम्पादक

राजस्थान जैन सभा, जयपुर

कार्यकारिणी के पदाधिकारियों, सदस्यों एवं विशेष आमंत्रित सदस्यों की सूची

1	श्री रतनलालजी छाबड़ा	अध्यक्ष	510552 514062
	डी-5 योगी कोचिंग कॉलेज के पास		
	हरी मार्ग टोंक रोड, जयपुर		
2	श्री प्रेमचन्दजी छाबड़ा	उपाध्यक्ष	379546, 362010
	2 न्यू कॉलोनी, एम आई रोड जयपुर		
3	श्री कैलाशचन्दजी शाह	उपाध्यक्ष	13060 720173
	673 बोरडी का रास्ता जयपुर		311352
4	श्री महेन्द्रकुमारजी पाटनी	मंत्री	515831 512406
	डी-127 सावित्री पथ बापूनगर जयपुर		512390
5	श्री भागचन्दजी छाबड़ा	स. मंत्री	549618
	टी-52, कमला कुटीर महावीर नगर		
	सांघी फार्म, टोंक रोड जयपुर		
6	श्री शान्तिकुमारजी गोधा	स. मंत्री	561110
	589 गोधों का चौक		
	हल्दियों का रास्ता जयपुर		
7	श्री अरुणजी कोडीवाल	कोषाध्यक्ष	569425 570477
	कोडीवाल भवन दाई की गली		
	घी वालों का रास्ता जयपुर		
8	श्री अरुणजी सोनी	सदस्य	318282
9	श्री कमलबाबूजी जैन	सदस्य	611045 603942
10	श्री राकेशजी छाबड़ा	सदस्य	510552
11	श्री अरुणजी काला	सदस्य	520872
12	श्री धनकुमारजी सुहाड़िया	सदस्य	317083
13	श्री विजयजी सोगानी	सदस्य	653826
14	श्रीमती शकुन्तलाजी गोधा	सदस्या	565416
15	श्री जयकुमारजी गोधा	सदस्य	560931
16	श्री प्रकाशजी अजमेरा	सदस्य	592274
17	श्री प्रकाशचन्द जी ठोलिया	सदस्य	518430

18.	श्रीमती स्नेहलताजी साह	सदस्या	515674
19.	श्री सुधीरजी बाकलीवाल (लाली)	सदस्य	344575
20.	श्री राजेन्द्रकुमारजी हाड़ा	सदस्य	311858
21.	श्री भागचन्दजी बाकलीवाल	सदस्य	562660, 642681
22.	श्री रमेशचन्दजी गंगवाल (सुरेखा साड़ीज)	सदस्य	56100
23.	श्री गणेशकुमारजी राणा	सदस्य	374702, 363168
24.	श्री महेशचन्द्रजी चांदवाड़	सदस्य	595616, का. 511129
25.	श्री सुरेन्द्रमोहनजी जैन	सदस्य	313429
26.	श्री सोहनलालजी सेठी	वि.आ.सदस्य	371007, 223707 का. 365085
27.	श्री राजेन्द्र के. गोधा	वि.आ.सदस्य	510088
28.	श्री जी.सी.जैन	वि.आ.सदस्य	551265, 552527
29.	श्री कैलाशचन्दजी सौगानी	वि.आ.सदस्य	594514
30.	श्री रतनलालजी गंगवाल	वि.आ.सदस्य	305217, 305298 का. 211614
31.	श्री भगचन्दजी जैन	वि.आ.सदस्य	513597
32.	श्री महावीर कुमारजी बिन्दायक्या	वि.आ.सदस्य	560650
33.	श्री सुभाषजी गंगवाल	वि.आ.सदस्य	521491
34.	श्री रमेशचन्दजी चांदवाड़	वि.आ.सदस्य	524487, का. 510247
35.	श्री देवेन्द्रजी कासलीवाल	वि.आ.सदस्य	594158
36.	श्री सूर्य प्रकाशजी छाबड़ा	वि.आ.सदस्य	513248
37.	श्री कैलाश्चन्दजी गोधा	वि.आ.सदस्य	514989
38.	श्री बसन्तकुमारजी बाकलीवाल	वि.आ.सदस्य	324070, पी.पी. का. 201648
39.	श्री योगेशजी टोडरका	वि.आ.सदस्य	324537
40.	श्री महावीरप्रसादजी पहाड़िया	वि.आ.सदस्य	205764, 205772
41.	श्री पदमचन्दजी पाटनी	वि.आ.सदस्य	300960, 300836
42.	श्री मनीषजी वैद	वि.आ.सदस्य	517059
43.	श्री अमरचन्दजी जैन	वि.आ.सदस्य	520519
44.	श्री सुभाषजी चौधरी	वि.आ.सदस्य	780189
45.	श्रीमती कमलेशजी बूचरा	वि.आ.सदस्य	520089
46.	श्रीमती बिमलाजी पापड़ीवाल	वि.आ.सदस्या	561438

राजस्थान जैन सभा की गतिविधियाँ

राजस्थान जैन सभा की स्थापना वर्ष 1953 में हुई थी, तब से यह सगठन जैन समाज की सामाजिक धार्मिक उन्नति के लिए सगठित रूप से योजनाबद्ध तरीके से काम कर रहा है। सभा का पजीयन राजस्थान सोसाइटीज एक्ट के अन्तर्गत वर्ष 1970-71 में निम्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया गया।

1 दिगम्बर जैन धर्म आम्नाय के साहित्य व सस्कृति के प्रचार एव सास्कृतिक धरोहर यथा मदिर कला सस्कृति की रक्षा करना एव इससे सम्बन्धित कार्यों में सहयोग एव रुचि पैदा करने के लिए कार्यवाही करना।

2 जैन समाज के सर्वांगीण विकास के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम आयोजित करना एव सहयोग देना।

3 विभिन्न जैन सस्थाओं से सम्पर्क साधना और उन्हें समाज हित में सगठित कर एक सूत्र में बाँधना व कार्य करने के लिए प्रेरित करना।

4 जैन समाज के हर व्यक्ति को समाज हित में सगठित करना व सामाजिक एकता और सगठन शक्ति बढ़ाने के लिए प्रयत्न करना एव सम्बन्धित कार्यों में सहयोग देना।

5 समाज के मेधावी छात्रों को छात्रवृतियाँ तथा असहाय व्यक्तियों को आवश्यक सहयोग प्रदान करना एव उसकी व्यवस्था करना।

6 वर्तमान परिप्रेक्ष्य में फैली हुई सामाजिक कुरीतियों को समाज में जागृति पैदा कर समाज के सहयोग से उन्हें दूर करना।

7 समाज सेवा एव धार्मिक प्रवृत्तियों के प्रति लोगों का रुझान पैदा करना तथा प्रेरणार्थ समाज सेवियों को सम्मानित करना।

8 जैन मान्यताओं को ध्यान में रखते हुए राष्ट्र एव प्राणीमात्र की सेवा करना।

9 वे सभी कार्य करना, जो सभा के उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में आवश्यक तथा सहायक हों।

इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सभा ने गत एक वर्ष में निम्न महत्त्वपूर्ण कार्य किये। भगवान महावीर जयन्ती के चार दिवसीय कार्यक्रम दिनाक 13 4 2000 से 16 4 2000 तक आयोजित किये गये।

भक्ति सध्या– दिनाक 13 4 2000 को दिगम्बर जैन मदिर कालाडेरा महावीर स्वामी, गोपाल जी का रास्ता में भक्ति सध्या का आयोजन किया गया। इसकी मुख्य अतिथि श्रीमती विमला देवी जी सोनी धर्म पत्नी श्री सुमेर चन्द्र जी सोनी थी। इस कार्यक्रम के सयोजक श्री विजयकुमार जी , अशोक कुमार जी गगवाल, श्रीमती शकुन्तला जी गोधा एव श्रीमती विमला पापड़ीवाल थी। विभिन्न महिला मडलो व व्यक्तिगत कलाकारों ने बहुत ही भक्ति पूर्ण कार्यक्रम प्रस्तुत किये।

विचार गोष्ठी– दिनाक 14 4 2000 को रात्रि में राजस्थान चैम्बर भवन के मोहनलाल सुखाड़िया सभागार में विचार गोष्ठी का आयोजन हुआ। गोष्ठी

का विषय था **सामाजिक व्यवस्था में महावीर के सिद्धान्तों की प्रासंगिकता**। सभा की अध्यक्षता पूर्व मुख्य न्यायाधिपति श्री भगवत प्रसाद बेरी ने की, मुख्य अतिथि श्री राजेन्द्रकुमारजी बज थे। प्रमुखवक्ता श्री ज्ञानचंदजी खिन्दूका, डॉ. कमल चंद जी सौगाणी, एवं डा. कुसुम जी जैन थे।

इस कार्यक्रम के संयोजक श्री सुभाषचन्द चौधरी एवं श्री महेश चन्द चॉदवाड थे।

प्रभात फेरी– दिनांक 15.4.2000 को प्रातः 7 बजे महावीर पार्क से विशाल प्रभात फेरी निकाली गई। जो विभिन्न रास्तों से होती हुई चाकसू के चौक में पहुँची। वहाँ सभा के अध्यक्ष श्री रतनलाल छावडा द्वारा ध्वजारोहण किया गया तथा सामूहिक झंडा गायन हुआ। प्रभात फेरी के संयोजक स्व. श्री दिनेश गोदीका, श्री विनोद छाबड़ा, निर्मल गोधा, एन. के जैन, कमल संचेती, प्रदीप जैन राकेश तोतूका, सुभाष जैन थे।

शोभायात्रा– दिनांक 16.4.2000 को प्रातः विशाल शोभायात्रा महावीर पार्क से प्रारम्भ होकर विभिन्न बाजारों से होती हुई 10 बजे रामलीला मैदान पहुँची। रास्ते में जगह-जगह शोभायात्रा का स्वागत किया गया। शोभायात्रा हाथी, घोड़ें, ऊँट व बैंड से युक्त थी। स्कूलों के बालक बालिकाएं, महिला मंडल की सदस्यायें अपने अपने गणवेश में चले रहे थे। शोभायात्रा में 2 विशाल रथ भी चले रहे थे जिन पर भगवान श्री महावीर का चित्र व शास्त्र विराजमान थे। विभिन्न युवा मंडल शोभा यात्रा में भजन बोलते हुए चल रहे थे। शोभायात्रा में विभिन्न संस्थाओं की ओर से धार्मिक मान्यताओं, सामाजिक, शिक्षा प्रद विषयों पर झाँकिया निकाली गई। शोभायात्रा के जुलुस में सबसे आगे निशान का हाथी तथा जैनध्वज लिए घोडे को श्री अशोक कुमार जी जैन चला रहे थे।

धर्म-सभा– धर्म सभा का प्रारम्भ श्री त्रिलोकचन्द जी कोठ्यारी कोटा वालो द्वारा दीप प्रज्वलन से हुआ तथा श्री पूनमचन्दजी गंगवाल झरियावालो द्वारा झंडारोहण किया गया।

स्कूल की बालिकाओं ने झंडा गीत प्रस्तुत किया तथा वीर बालिका विद्यालय की छात्राओं ने बैंड वादन किया। धर्म सभा की अध्यक्षता माननीय न्यायाधिपति श्री मिलापचन्द जी जैन लोकायुक्त राजस्थान ने की, समारोह के मुख्य अतिथि राजस्थान के मुख्यमंत्री माननीय श्री अशोक गहलोत थे।

झाँकियों में निम्न संस्थाओं ने प्रथम द्वितीय तृतीय स्थान प्राप्त कियेः-

(1) श्री दिगम्बर जैन महावीर नवयुवक एवं महिला मंडल महावीर स्वामी का मंदिर (कालाडेरा) गोपालजी का रास्ता **प्रथम स्थान**
(2) जैन सोश्यल ग्रुप केपीटल **द्वितीय स्थान**
(3) वर्द्धमान सेवक मंडल, बापूनगर **द्वितीय स्थान**
(4) मुलतान जैन समाज **तृतीय स्थान**
(5) शास्त्री नगर जैन समाज **सांत्वना पुरस्कार**

निम्न भजन मंडलियों को प्रथम, द्वितीय स्थान प्राप्त हुआः-

(1) दिगम्बर जैन समाज बापूनगर. **प्रथम स्थान**
(2) मुलतान दिगम्बर जैन समाज **द्वितीय स्थान**

जयपुर शहर के विभिन्न विद्यालयों में से शोभायात्रा में अनुशासन हेतु निम्न विद्यालयों को अनुशासन के लिए पुरस्कार प्रदान कर सम्मानित किया गया।

छात्र –

(1)श्री महावीर दिगम्बर जैन उच्च माध्यमिक विद्यालय **प्रथम स्थान**

(2)दिगम्बर जैन आचार्य सस्कृत महाविद्यालय **द्वितीय स्थान**

छात्रा –

(1) पद्मावती बालिका विद्यालय **प्रथम स्थान**

(2) महावीर दिगम्बर जैन बालिका विद्यालय **द्वितीय स्थान**

(3) वीर बालिका विद्यालय **तृतीय स्थान**

रक्तदान शिविर –

दिनाक 16 4 2000 को रामलीला मैदान से सवाई मानसिह चिकित्सालय, सन्तोकबा दुर्लभजी अस्पताल एव स्वास्थ्य कल्याण केन्द्र जयपुर के सहयोग से महावीर जयन्ती के अवसर पर रक्तदान शिविर का आयोजन किया गया। शिविर का उद्घाटन श्रीमती पुष्पलताजी काला धर्म पत्नी स्व श्री विद्या विनोद जी काला द्वारा किया गया। इस अवसर पर 160 व्यक्तियों द्वारा रक्तदान किया गया। 300 व्यक्तियों ने स्वेच्छा से जरुरत के समय रक्त दान करने हेतु पजीकरण करवाया।

सभा द्वारा इस अवसर पर एक दिन में सर्वाधिक रक्तदान करने वाली सस्थान युवा रक्त वाहिनी जयपुर को एक दिन में 203 व्यक्तियों से रक्तदान करने के उपलक्ष में डॉ श्रीमती प्रभा जैन की स्मृति में चल वैजयन्ती माननीय मुख्य मत्री द्वारा प्रदान की गई। रक्त दान शिविर के सयोजक डा विनय सोनी एव डा सुभाष गगवाल थे। डॉ विनोद साह रक्तदान शिविर के सलाहाकार थे। इस कार्यक्रम में डॉ जी सी सौगानी, डॉ सुभाष काला एव डॉ प्रभा लुहाड़िया ने पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

महावीर जयन्ती स्मारिका का विमोचन–

महावीर जयन्ती की धर्म सभा में माननीय मुख्यमत्री श्री अशोक गहलोत ने महावीर जयन्ती स्मारिका के 37वें अक का विमोचन किया। श्री ज्ञानचद जी बिल्टीवाला स्मारिका के प्रधान सम्पादक थे। सभा के उपाध्यक्ष श्री प्रेमचन्द जी छाबड़ा प्रबन्ध सम्पादक थे। सम्पादक मडल में सर्व श्री बुद्धि प्रकाश जी भास्कर, श्री अमरचदजी जैन, डॉ प्रेम चद जी रावका व एम पी जैन थे। सर्व श्री प्रकाश चन्द ठोलिया, श्री जय कुमार जी गोधा, ताराचदजी गोधा, भागचदजी बस्सीवाले विजय जी सोगानी प्रेमचन्द जी सौगानी, कान्ती कुमार जी सेठी रामपाल जी जैन, महेशचन्द जी चाँदवाड़ व राकेश जी छाबड़ा का विशेष सहयोग रहा।

सास्कृतिक कार्यक्रम– महावीर जयन्ती की रात्रि को रामलीला मैदान में सास्कृतिक कार्यक्रम अभिनव 2000' का आयोजन हुआ। विभिन्न सस्थानों द्वारा बहुत ही रोचक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये। श्री राकेश जी गोधा कार्यक्रम के सयोजक थे। इस कार्यक्रम में श्री दिलीप जी जैन, श्री राजेन्द्र जी बिलाला श्री मनीष जी बैद, सुश्री श्वेता पाटनी श्रीमती पुष्पा जी सौगानी ने पूर्ण सहयोग प्रदान किया। श्रीमती ऊषा जी पापड़ीवाल मुख्य अतिथि थी तथा कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ शीला जी जैन ने की। श्रीमती मधुजी ठोलिया विशिष्ट अतिथि थी।

दशलक्षण पर्व– सभा की ओर से बड़े दीवानजी के मदिर में दशलक्षण पर्व समारोह का दिनाक 2-9-2000 को शुभारम्भ हुआ। श्री कोमल चन्द जी गोधा उद्घाटन समारोह के मुख्य अतिथि थे। 10

दिन तक प्रसिद्ध विद्वान आध्यात्मिक प्रवक्ता डॉ. हुकमचंद जी भारिल्ल ने दशधर्मो पर प्रतिदिन प्रवचन दिया तथा श्री सुनील कुमार जी जैन द्वारा पूरे एक माह तक सोलहकारण भावना पर प्रवचन दिया गया।

इस अवसर पर फाइनल परीक्षाओं में मेरिट में स्थान प्राप्तकर्ता निम्न छात्र/छात्राओं को सभा की ओर से अभिनन्दन कर सम्मानित किया गया–

1. कुमारी श्वेता पाटनी-बी.एफ.ए.म्यूजिक, राजस्थान विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान प्राप्त किया।
2. श्री प्रवीण कुमार जैन को शास्त्री परीक्षा में प्रथम श्रेणी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

दशलक्षण पर्व के उपलक्ष में निम्न संस्थाओं ने अपने कार्यक्रम किये :-

1. श्री वीर महिला संघ, जयपुर
2. श्री महावीर दिगम्बर जैन बालिका विद्यालय, जयपुर
3. श्री महिला जागृति संघ, जयपुर
4. श्री दिगम्र जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर
5. श्री महावीर दिगम्बर सी. मा. विद्यालय, जयपुर
6 श्री पद्मावती दिगम्बर जैन बालिका सी. मा. विद्यालय, जयपुर
7. वर्धमान सेवक मंडल, बापूनगर
8. नवरंग बाल विद्यालय नृत्य कला केन्द्र, जयपुर

क्षमावणी कार्यक्रम

दिनांक 15 सितम्बर को प्रातः 7.30 बजे रामलीला मैदान जयपुर मे सामूहिक क्षमा पर्व समरोह का आयोजन हुआ। समारोह के मुख्य अतिथि राजस्थान के पूर्व मुख्य मंत्री एवं प्रशासनिक सुधार विभाग के अध्यक्ष श्री शिवचरण जी माथुर थे तथा प्रसिद्ध विद्वान डा. हुकमचंदजी भारिल्ल ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की।

श्रेष्ठी श्री पूनमचन्द जी गंगवाल घातियों वालों ने दीप प्रज्वलित कर समारोह का शुभारम्भ किया। विशिष्ट अतिथि श्रेष्ठी श्री उत्तम कुमार जी पांडया खोरा वालो ने 31 दिन के उपवास करने वाली श्री घेवरी देवी झांझरी को शाल ओढाकर एवं स्मृति चिन्ह भेंट कर अभिनंदन किया। इसके अतिरिक्त 11 दिन व उससे अधिक के उपवास करने वाले 31 व्यक्तियों का भी उन्होने सम्मान किया।

इस अवसर पर माननीय न्यायाधीपति श्री मिलापचंद जी जैन लोकायुक्त राजस्थान का समस्त समाज की ओर से अभिनंदन किया गया। डॉ. रवीन्द्र कुमार जी टोंग्या का रायल कालेज ऑफ फीजिशियन्स द्वारा प्रदान की गई फैलोशिप के उपलक्ष्य में सार्वजनिक रूप से अभिनन्दन किया गया।

महावीर निर्वाण महोत्सव– सभा द्वारा भगवान महावीर का 25 27वाँ निर्वाण महोत्सव प्रातः 9 बजे भट्टारकजी की नसियां में आयोजित किया गया। सामूहिक पूजन के पश्चात् सामूहिक रूप से निर्वाण लाडू चढ़ाया गया। पं. श्री निर्मल कुमार जी शास्त्री ने पूजन सम्पन्न करवायी। इस अवसर पर बहुत बड़ी संख्या में स्त्री, पुरुष, बालक, बालिकाएं समारोह में उपस्थित थे। श्री शान्तिकुमार जी गोधा इसके संयोजक थे।

चित्रकला प्रतियोगिता– दिनांक 21.1.2001 को सभा द्वारा जयपुर के विभिन्न विद्यालय के छात्र-छात्राओं की श्री महावीर दिगम्बर जैन सीनियर उच्च माध्यमिक विद्यालय सी-स्कीम जयपुर में भगवान

महावीर व प्रकृति चित्रण विषय पर चित्रकला प्रतियोगिता का आयोजन स्व श्री प्रकाश चद जी गोधा की स्मृति में उनके परिवारजनों के सोजन्य से किया गया जिसके परिणाम निम्न प्रकार से रहे -

कक्षा 8 से 10

प्रथम – रविन्द्र सिह, अग्रवाल हा से स्कूल

द्वितीय – कु पूजाशर्मा, खडेलवाल बालिका विद्यालय

तृतीय – जावेद अली, अग्रवाल सी से स्कूल।

कक्षा 11 व 12

प्रथम – कुमारी मिताली जैन, सुबोध सी हा से स्कूल।

द्वितीय – कुमारी विजिता पटेल सुबोध बालिका उ मा विद्यालय

तृतीय – कुमारी नेहा अग्नीहोत्री, गाँधीनगर बालिका विद्यालय।

इस प्रतियोगिता का पारितोषिक वितरण दिनाक 20 2 2001 को श्री प्रदीप शिक्षण केन्द्र में रखा गया। श्रीमती डॉ कमला जी गर्ग प्रोफेसर राजस्थान विश्वविद्यालय मुख्य अतिथी। इस कार्यक्रम के सयोजक श्री सुभाष चद जी चौधरी थे।

आदिनाथ जयन्ती– भगवान आदिनाथ एव उनके पुत्र चक्रवर्ती सम्राट भरत की पावन जयन्ती पर सभा की ओर से दो दिवसीय कार्यक्रम रखे गये। जयन्ती के पूर्व दिन दिनाक 17 3 2001 को चाकसू के चौक से प्रात 7 बजे प्रभात फेरी निकाली गई जो विभिन्न मार्गों से होती हुई छोटे दीवानजी के मदिर में विसर्जित हुई। इसके सयोजक श्री धन कुमार जी लुहाड़िया, श्री मणि पापड़ीवाल श्रीमती कुसुमजी बज एव श्रीमती जयन्ती बैनाड़ा थी। दिनाक 17 3 2001 को ही रात्रि में 8 बजे पार्श्वनाथ भवन में भगवान ऋषभ देव पर विचार गोष्ठी का आयोजन हुआ। कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री डा शीतल चदजी जैन आचार्य दिगम्बर जैन प्राचार्य सस्कृत महाविद्यालय जयपुर ने की तथा मुख्य अतिथि श्रेष्ठी श्री उत्तम कुमारजी पाड्या खोरावाले थे। प्रमुख वक्ता के रूप में वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ जे डी जैन झुझूनू के सेठ मोती लाल कालेज के इतिहास विभाग के विभागाध्यक्ष श्री डा बाबूलाल जी सेठी, राजस्थान विश्वविद्यालय में समाज शास्त्र के एसोसिएट प्रोफेसर एव उपनिदेशक गाँधी अध्ययन केन्द्र, डॉ सुशीला जी जैन थे। कार्यक्रम सयोजक श्री सुभाष चन्द जी चौधरी एव श्री महेश चन्द जी चाँदवाड़ थे।

दिनाक 18 3 2001 को दोहपर में बड़े दीवानजी के मदिर में आदिनाथ दिगम्बर जैन महिला मडल बड़े दीवानजी के सहयोग से साजों पर भक्तामर जी विधान पूजन की गई। काफी सख्या में स्त्री, पुरुषों ने इस पूजन में भाग लिया। इस कार्यक्रम के सयोजक सर्व श्री राजेन्द्र कुमार जी लुहाड़िया सजय जी काला, श्री योगेश जी टोडरका श्रीमती शकुन्तालाल जी श्रीमती पुष्पाजी सौगाणी थे। श्री भाग चद जी छाबड़ा आदिनाथ जयन्ती कार्यक्रम के मुख्य सयोजक थे। श्री शान्तिकुमार जी गोधा ने सभी व्यवस्थाओं में सहयोग प्रदान किया। **वार्ड न 3 सी सवाई मान सिह चिकित्सालय** राजस्थान जैन सभा ने सवाई मानसिह चिकित्सालय जयपुर के वार्ड न 3 सी को गोद ले रखा है। सभा द्वारा वार्ड की आवश्यकतानुसार वस्तुओं की आपूर्ति की जाती है।

अखिल भारतीय निबध प्रतियोगिता–

के सी कटारिया चेरिटेबल ट्रस्ट के सहयोग से सभा ने दिनाक 17 12 2000 को अखिल भारतीय

निबंध प्रतियोगिता का आयोजन एस.एस. जैन सुबोध सी. उच्च माध्यमिक स्कूल, बापू बाजार में किया। जिसमें सैकडों की संख्या में छात्राओं ने भाग लिया। प्रतियोगिता का विषय था, त्याग का महत्त्व। छठी व सातवी अखिल भारतीय निबन्ध प्रतियोगिता का पुरस्कार वितरण समारोह दिनांक 16.3.2001 को रात्रि के 7 बजे टोडर मल स्मारक भवन में आयोजित किया गया। डॉ. हुकमचंद जी भारिल्ल समारोह अध्यक्ष थे तथा डॉ. कमल चंद जी सौगानी मुख्य अतिथि थे। श्री इन्दरचंद जी कटारिया न्यासी के.सी. कटारिया चेरिटेबल ट्रस्ट इस अवसर पर मौजूद थे। निम्न प्रकार से प्रथम व द्वितीय स्थान प्राप्त करने वालों का सम्मान किया गया :-

छठी प्रतियोगिता में

प्रथम श्री ज्ञायक जैन रु. 1,000 /-

द्वितीय श्री मनोज जैन रु. 500/-

द्वितीय कु रूचिशर्मा 500/-

सातवीं प्रतियोगिता में

प्रथम श्री सुनील कुमार रु.1000/-

द्वितीय कु प्रियंका अग्रवाल रु. 500/-

द्वितीय श्री राजेश कुमार जैन रु.500/-।

दोनों प्रतियोगिता में 20 छात्र /छात्राओं को प्रति छात्र 200/- प्रत्येक को प्रदान किये गये।

सातवीं प्रतियोगिता के संयोजकश्री जय कुमार जी गोधा थे।

महिलाओं एवं बालिकाओं के लिए उद्योग केन्द्र– दिगम्बर जैन मंदिर बड़ा तेरहपंथ व राजस्थान जैन सभा के संयुक्त तत्वावधान में बड़े मंदिर में सिलाई का 6 माह का प्रशिक्षण सत्र संचालित है। महिलाओं को प्रशिक्षण के पश्चात् सिलाई का कार्य दिलाने की व्यवस्था की जाती है।

महावीर जयन्ती के पावन अवसर पर इस केन्द्र में प्रशिक्षित प्रशिक्षार्थियों द्वारा तैयार किये गये विभिन्न वस्तुओं की प्रदर्शनी भी लगाई गई जिसका उद्घाटन श्रीमती सुमन जी अजमेरा धर्म पत्नी श्री सतीश जी अजमेरा द्वार किया गया।

ग्रीष्मकालीन प्रशिक्षण शिविर भी आयोजित किया गया जो 15.5.2000 से 14 6.2000 तक चला। इसमें करीब 400 महिलाओ एवं बालिकाओं ने प्रशिक्षण प्राप्त किया। इसमें हाथ की कढाई एवं पेचवर्क, मशीन की मरम्मत एवं सफाई, क्रोशिया, फेब्रिक पेंटिग, ग्लास पेंटिग, गिफ्ट पैंकिग, बैग बनाना, बन्धेज, सिन्धी कढ़ाई, फ्लावर एवं आरती थाली सजाना, पॉट पेन्टिग, मांडना एव सॉफ्ट ट्वाइज बनाने का प्रशिक्षण दिया गया।

महिलाओं को शर्बत, टमाटर सोस, सलाद, चाईनीज, शैम्पू, विमबार बनाने का भी विशेष प्रशिक्षण दिया गया।

ग्रीष्म कालीन शिविर के समापन समारोह की मुख्य अतिथि श्रीमती कुसुमजी जैन, संयुक्त सचिव ग्राम भारती सेवा समिति, विशिष्ट अतिथि श्रीमती मृदुला नारनोली एवं अध्यक्षा श्रीमती बी. डी पाटनी थी।

उद्योग केन्द्र की संयोजिका श्रीमती शकुन्तलाजी गोधा है इनकी सहयोगी श्रीमती विमला जी पापड़ीवाल हैं।

सदस्पता अभियान

राजस्थान जैनसभा द्वारा सघन रूप से सदस्यता अभियान शुरू किया गया। इस अभियान के दौरान 1000 नये आजीवन सदस्य बनें। इस कार्यक्रम के संयोजक श्री रमेश चन्द्र जी चांदवाड थे।

मेडिकल प्रकोष्ठ— सभा ने जरूरत मदों की सहायतार्थ मेडिकल प्रकोष्ठ की स्थापना की हुई है। आवश्यकता होने पर पर नि शुल्क दवाइयाँ उपलब्ध करवाई जाती है। तथा बाहर से आने वाले मरीजों एव दुर्घटनाग्रस्थ व्यक्तियों की सहायतार्थ त्वरित गति से कार्यवाही की जाती है।

जनगणना 2001— सभा ने फोल्डर-पोस्टर एव पम्पप्लेटों के माध्यम से राजस्थान के विभिन्न ग्रामों व शहरों में स्थित दिगम्बर जैन मदिरों के पदाधिकारियों को भेजकर जनगणना में जैन लिखाने हेतु व्यापाक प्रचार प्रसार किया। जहाँ भी आवश्यकता हुई सभा करके जानकारी प्रदान की गई।

शाकाहार— सभा ने राज्य सरकार को अकते के दिनों में मास की दुकानें नहीं खुले तथा मास मछली, अडे की बिक्री न हो इसे रोकने के लिए कड़ाई से कदम उठाने के लिए बार-बार अनुरोध किया। जयपुर नगर निगम को भी इस सबध में लिखा गया। धार्मिक आयतनों के पास से मास की दुकानों को हटवाने के लिए कार्यवाही की गई। राज्य सरकार की भगवान आदिनाथ जयन्ती के पावन पर्व पर पशु वध रोके जाने हेतु लिखा गया व्यक्तिगत रूप से भी सम्पर्क किया गया। यात्रिक पशु वध कारखानें नही खोलने के लिए भी राज्य सरकार व भारत सरकार को निवेदन किया गया। नील गायों की हत्या करने के विरोध में धरने में भी भाग लिया गया। शाकाहार के प्रचार प्रसार के लिए साहित्य का वितरण भी किया जाता है।

अल्प सख्यक घोषित करने की माँग—

सभा द्वारा राज्य सरकार को तथा केन्द्रीय सरकार को जैनियों को अल्पसख्यक घोषित करने हेतु बार माँग की जाती रही है। इस सम्बन्ध में राज्य सरकार से व्यक्तिगत रूप से भी निवेदन किया गया है।

जरूरत मदो की सहायता—

सभा द्वारा जरूरत मद छात्रो को पुस्तकें तथा छात्रवृत्ति दी जाती है। जिनके जीविका का कोई साधन नही है उनको भी उनका नाम किसी को भी बिना बताये अनाज आदि की सहायता प्रदान की जाती है। अपने अल्प साधनों में से सभा द्वारा रोजगार शुरू करवाने में आर्थिक सहायता भी उपलब्ध करवाई गई।

सामाजिक कुरीति निवारण—

सभा सामाजिक कुरीति निवारण हेतु भी वातावरण बनाकर उन्हे दूर करने के लिए प्रयत्न करती है। निकासी व फेरे तथा जीमण दिन में ही आयोजित करने की प्रेरणा देती है। व्रत व उपवास के उद्धयापन पर धार्मिक पुस्तकें, नारियल गोले के अतिरिक्त अन्य वस्तुयें वितरित नही करने के लिए वातावरण बनाया गया है। सामूहिक भोज में अधिक से अधिक 20 व्यजन ही बनाने का निर्णय लेकर समाज को इस हेतु प्रेरित करने का प्रयास किया जाता है।

महेन्द्र कुमार जैन पाटनी
मत्री
राजस्थान जैन सभा, जयपुर

राजस्थान जैन सभा जयपुर

पदाधिकारी गण



श्री रतन लाल छाबडा
अध्यक्ष



श्री प्रेमचन्द छाबडा
उपाध्यक्ष



श्री कैलाशचन्द साह
उपाध्यक्ष



श्री महेन्द्र कुमार पाटनी
मंत्री



श्री भागचन्द छाबडा
संयुक्त मंत्री



श्री शान्तिकुमार गोधा
संयुक्त मंत्री



श्री [illegible]
कोषाध्यक्ष

राजस्थान जैन सभा जयपुर

कार्यकारिणी सदस्य गण


श्री अरुण सोनी


श्री कमल बाबू जैन

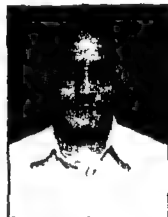

श्री राकेश छाबडा


श्री अरुण काला


श्री धन कुमार


श्री विजय कुमार सोगाणी


श्रीमती शकुन्तला गोधा


श्री जयकुमार गोधा


श्री प्रकाश अजमेरा


श्री प्रकाश चन्द ठोलिया


श्रीमती स्नेहलता शाह

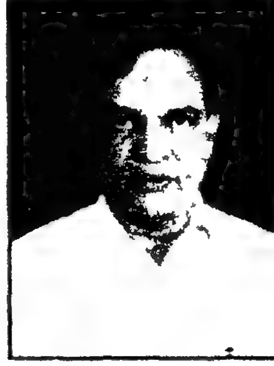

श्री सुधीर कुमार (लाली)

राजस्थान जैन सभा जयपुर

कार्यकारिणी सदस्य गण


श्री भागचन्द बाकलीवाल


श्री रमेश चन्द गंगवाल


श्री गणेश कुमार राणा


श्री महेशचन्द्र जैन चादवाड


श्री सुरेन्द्र मोहन जैन

विशेष आमंत्रित सदस्य गण


श्री सोहन लाल सेठी


श्री राजेन्द्र के. गोधा

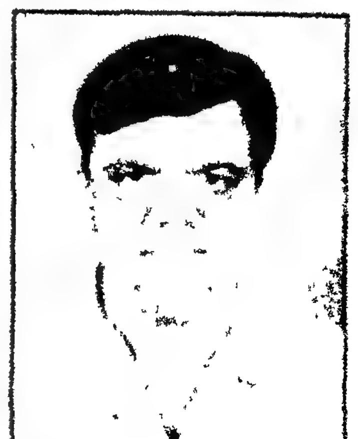

श्री जी सी. जैन


श्री कैलाश चन्द सांगाणी


[illegible]


श्री [illegible]


श्री [illegible]


डॉ. [illegible]

राजस्थान जैन सभा जयपुर

विशेष आमंत्रित सदस्य गण


श्री रमेशचन्द जैन


श्री कैलाशचन्द गोधा


श्री बसन्त कुमार जैन


श्री योगेश टोडरका


श्री महावीर प्रसाद पहाड़िया


श्री पदम चन्द पाटनी


श्री मनीष वैद


श्री अमरचन्द्र जैन


श्री सुभाष चौधरी


श्रीमती कमलेश बूचरा


श्रीमती विमला पापड़ीवाल



महावीर जयन्ती के अवसर पर आयोजित भक्ति संध्या का एक दृश्य





महावीर जयन्ती के अवसर
पर आयोजित भक्ति संध्या
की अध्यक्षता करती
श्रीमती विमला देवी सोनी
एवं भक्ति रस में
भाव विभोर होते भक्तगण



राजस्थान जेन सभा द्वारा आयोजित
वाद विवाद प्रतियोगिता मे विषय के विपक्ष
मे विचार प्रस्तुत करते हुये विद्यालय
की छात्रा–मच पर बेठे हुये सभा
के पदाधिकारीगण

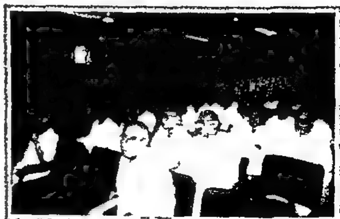
महावीर जयन्ती के अवसर पर आयोजित विचार
गोष्ठी क मच का एक दृश्य–बाये स दाये सभा के
मत्री श्री महन्द्र कुमार पाटनी मुख्य अतिथि
श्री राजेन्द्र कुमार वज सभा के अध्यक्ष श्री रतनलाल छाबडा
गोष्ठी के अध्यक्ष पुर्व मुख्य न्यायाधिपति
श्री भगवती प्रसाद बेरी मुख्य वक्ता डॉ कमलचन्द सोगाणी
श्री ज्ञानचन्द खिन्दुका डॉ कुसुम जेन
गोष्ठी सयोजक श्री महेश चन्द चादवाड





राजस्थान जेन सभा द्वारा आयाजित
वाद विवाद प्रतियोगिता
मे विभिन्न विद्यालयो से भाग लेने
आये प्रतियोगीगण

महावीर जयन्ती के
अवसर पर आयोजित
विचार गाष्ठी म उपस्थित
श्रोतागण





महावीर जयन्ती के अवसर पर आयोजित प्रभात फेरी के समापन पर सभा कार्यालय पर ध्वाजारोहण करते सभा के अध्यक्ष श्री रतनलाल छावडा (वाये) सभा के पूर्व अध्यक्ष श्री राजकुमार काला, उपाध्यक्ष श्री कैलाशचन्द साह (दाये) सभा के मंत्री श्री महेन्द्र कुमार पाटनी, उपाध्यक्ष श्री प्रेमचन्द छाबडा व सयुंक्त मंत्री श्री भागचन्द छावडा



महावीर जयन्ती के अवसर पर आयोजित प्रभात फेरी का एक दृश्य



महावीर जयन्ती स्मारिका
का वर्ष 2000
अक 37 का राज्य के माननीय
मुख्यमत्री श्री अशोक गहलोत
से विमोचन कराते प्रधान
सम्पादक श्री ज्ञानचन्द बिल्टीवाला
प्रवन्ध सम्पादक श्री प्रेमचन्द छावडा
अध्यक्ष श्री रतनलाल छावडा



महावीर जयन्ती पर
आयोजित धर्मसभा म
माननीय मुख्यमत्री
श्री अशाक गहलोत
बोलते हुए



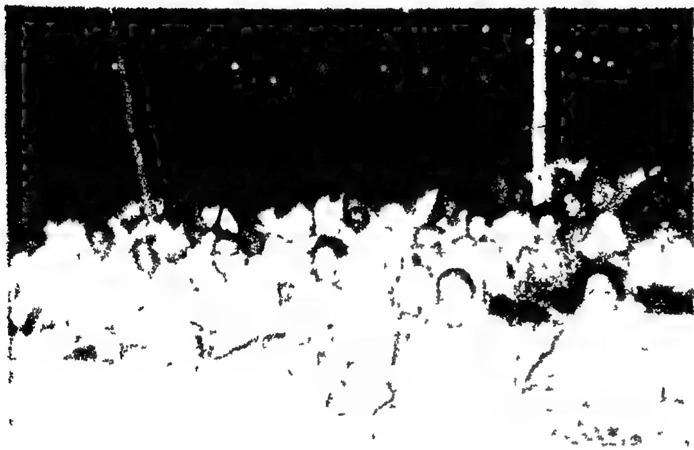
महावीर जयन्ती पर
आयोजित धर्मसभा मे
माननीय मुख्यमत्री श्री अशोक
गहलोत का शाल ओढाकर
सम्मान करते हुए न्यायाधिपति
माननीय श्री मिलापचन्द जेन
लोकायुक्त



महावीर जयन्ती पर आयोजित
सांस्कृतिक समारोह पर नृत्य करती हुई
बालिकाये



महावीर जयन्ती पर आयोजित
सास्कृतिक समारोह का एक दृश्य



सांस्कृतिक कार्यक्रम मे
उपस्थित जन
समुदाय



महावीर जयन्ती के अवसर पर
रामलीला मैदान पर आयोजित सास्कृतिक
संध्या में पुरस्कार वितरण करती हुई
श्रीमती उषा पापड़ीवाल साथ खड़ी हुई श्रीमती
मधु [illegible] श्रीमती (डॉ) शीला जैन
व सभा के मंत्री श्री महेन्द्र कुमार पाटनी



राजस्थान जेन सभा द्वारा आयोजित दशलक्षण पर्व समारोह मे प्रवचन करत
हुए प्रसिद्ध आध्यात्मिक प्रवक्ता डॉ हुकमचन्द भारिल्ल



राजस्थान जैन सभा द्वारा आयोजित दशलक्षण पर्व समारोह मे प्रवचन सुनते हुए श्रोतागण



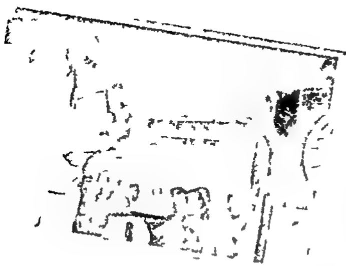
सामूहिक क्षमापन समारोह के मच पर
विराजित महानुभाव (बाये से दाये)
प्रसिद्ध चिकित्सक डॉ रविकुमार टोग्या,
श्रेष्ठी पूनमचन्द झरियावाले,
श्रेष्ठी उत्तम कुमार पाडया,
प्रसिद्ध विद्वान डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल,
पूर्व मुख्यमत्री श्री शिवचरण माथुर,
लोकायुक्त श्री मिलापचन्द जेन,
सभा के अध्यक्ष श्री रतनलाल छावडा
व मत्री श्री महेन्द्र कुमार पाटनी



क्षमापन पर्व समारोह मे विशिष्ठ
सेवाओ के लिये राज्य के लोकायुक्त
श्री मिलापचन्द जैन को
सम्मानित करते हुय राज्य
के पूर्व मुख्य मत्री माननीय
श्री शिवचरण माथुर



चिकित्सा क्षेत्र मे प्राप्त विशेष
उपलब्धिया एव की जा रही सेवाओ
के लिये प्रसिद्ध हृदय रोग चिकित्सक
डॉ रवि कुमार टोग्या को शाल
ओढाकर सम्मानित करते हुये
डॉ हुकमचन्द भारिल्ल



क्षमापन पर्व समारोह मे
भाद्रपद मास के 32 दिवसीय
उपवास करने वाली महिला
श्रीमती घवरदेवी झाझरी को
शाल प्रशस्ति भट कर अभिवादन
करते राज्य क पूर्व मुख्यमत्री
श्री शिवचरण माथुर पास खडे है सभा
क अध्यक्ष श्री रतन लाल छावडा

क्षमापन पर्व समाराह म
दशलक्षण पर्व क दस दिना
[illegible] उपवास करन वालो का सम्मानित
करत हुय प्रसद्धि व्यवसायी
श्री उत्तमकुमारजी
[illegible] पाख खड हैं सभा क
[illegible] क सदस्य श्री प्रकाश चन्द
[illegible] श्री वसन्तकुमार





क्षमापन पर्व समारोह मे
मुख्य अतिथि राजस्थान
के पूर्व मुख्यमत्री श्री शिवचरण माथुर
को प्रशस्ती भेट करते हुये सभा के
अध्यक्ष श्री रतनलाल छावडा

क्षमापन पर्व समारोह का
विहगम दृश्य

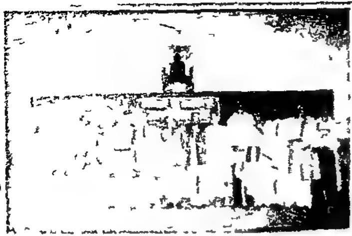




सामूहिक निर्वाणोत्सव पर लाडू चढाते हुए सभा के अध्यक्ष श्री रतनलाल छाबडा, श्री माणकचन्द, श्री सुरेन्द्र मोहन, श्री धर्मेन्द्र पाटनी व मत्री श्री महेन्द्र कुमार पाटनी

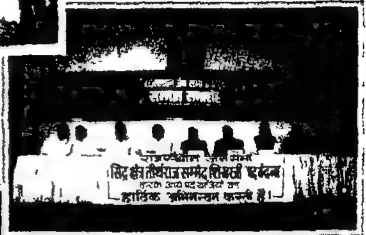


महावीर निर्वाणोत्राव-पर लाडू चढाते श्रृद्धालूजन



सम्मान समारोह मे समाज के
वरिष्ठजनो के साथ पेदल यात्रा सघ
के सरक्षक श्री ज्ञान प्रकाश बख्शी व अन्य
पदयात्रा सयोजकगण

सम्मान समाराह के मच का दृश्य वाय स दाय
सर्व श्री राजेन्द्र के गोधा पूनमचन्द झरियावाला
रतनलाल छाबडा साहनलाल सेठी लाकायुक्त
मिलापचन्द नन गणश राणा महेन्द्र कुमार पाटनी
व ... सयाजकगण अरूण काडीवाल व अरूण सोनी

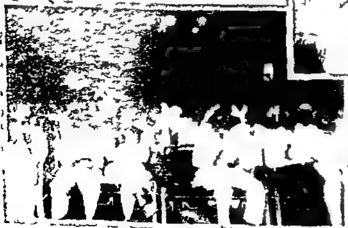




तोतूका भवन मे आयोजित
सम्मान समारोह म उपस्थित
भारी जनसमुदाय

सिद्ध क्षत्र तीर्थराज समोद शिखरजी
की पदवहना करके आय पद
यात्रिया का सम्मान व अभिनन्दन करते हुए
राजस्थान जन सभा के अध्यक्ष
श्री रतनलाल छाबडा

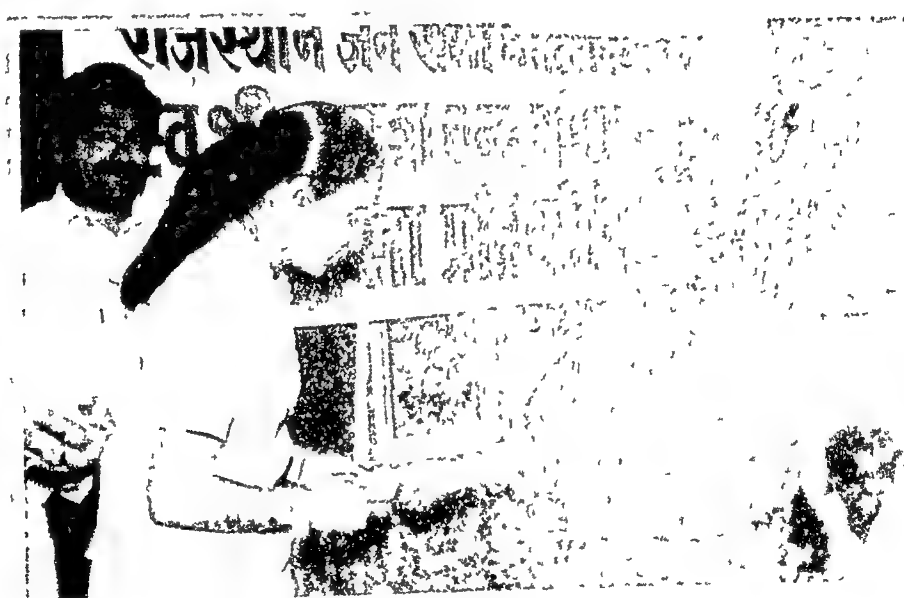




सम्मान समारोह म
उपस्थित श्रोतागण



राजस्थान जैन सभा द्वारा
आयोजित चित्रकला प्रतियोगिता
मे भाग लेते प्रतियोगीगण
अवलोकन करते सभा के
पदाधिकारीगण



राजस्थान जैन सभा द्वारा
आयोजित चित्रकला प्रतियोगिता
के प्रतियोगियो को पुरस्कार
देती हुई श्रीमती शकुन्तला जी
धा पास खडे है प्रदीप जी गोधा



चित्रकला प्रतियोगिता
मे पारितोपिक वितरण करते हुए



सातवी निबंध प्रतियोगिता के
पारितोषिक समारोह में मच पर बैठे हुए
सभा के उपाध्यक्ष श्री प्रमचन्द छाबडा
मत्री श्री महन्द्र कुमार पाटनी
मुख्य अतिथि डॉ कमलचन्द सौगानी
के सी कटारिया चॅरिटेबल ट्रस्ट के
न्यासी श्री इन्दरचन्द कटारिया सयाजक
श्री जय कुमार गाधा



राजस्थान जेन सभा एव के सी कटारिया
चेरिटेबल ट्रस्ट बापूनगर के साजन्य
से आयोजित सातवी अखिल भारतीय
निबध प्रतियागिता का एक दृश्य



निबध प्रतियागिता के पारितापिक वितरण
समाराह म पारितापिक प्राप्त कत्ता
अतिथि गण एव सभा के पदाधिकारीगण
एव कार्यकारिणी के सदस्य



निबध प्रतियागिता का पारितोषिक
वितरण करते हुये श्री इन्दरचन्द कटारिया
पास मे खडे हुये डॉ हुकमचन्द भारिल्ल
डॉ कमलचन्द सागानी सभा के
उपाध्यक्ष श्री प्रेमचन्द छाबडा एव
मत्री श्री महेन्द्र कुमार पाटनी



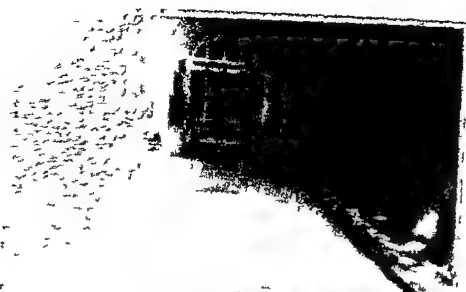
आदिनाथ जयन्ती पर आयोजित
विचार गोष्ठी का दीप प्रज्जवलित
करते हुए मुख्य अतिथि
श्री उत्तमकुमार जी पाण्डया
साथ मे खडे है सभा के अध्यक्ष
श्री रतनलाल छाबडा एव
मंत्री श्री महेन्द्र कुमार पाटनी

भगवान ऋषभदेव जयन्ती के उपलब्ध मे
आयोजित विचार गोष्ठी मे मच पर बैठे हुए
सर्व श्री महेशचन्द चांदवाड, सयोजक
वक्ता डॉ. जे डी जैन, डॉ सुशीला जैन,
डॉ बी एल सेठी,
मुख्य अतिथि डॉ उत्तमकुमार पाण्डया,
समारोह अध्यक्ष डॉ. शीतल चन्द जैन
सभा के अध्यक्ष श्री रतनलाल छाबडा
मत्री श्री महेन्द्र कुमार पाटनी,
सयोजक श्री सुभाषचन्द चौधरी



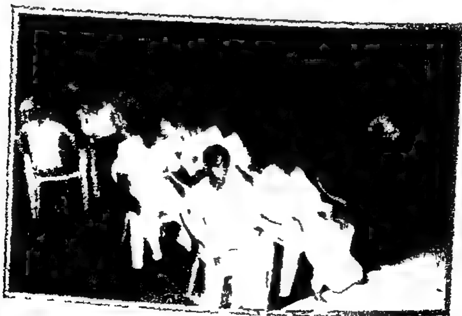


भगवान आदिनाथ जयन्ती
पर निकाली
गई प्रभात फेरी का दृश्य





आदिनाथ जयन्ती पर आयाजित दीवान जी के मन्दिर में सामुहिक पूजन का एक दृश्य



भगवान ऋषभदेव जयन्ती पर आयोजित विचार गोष्ठी पर उपस्थित श्रोतागण



श्री दि जैन मदिर तेरापन्थ (वडा) एवं राजस्थान जैन सभा के सयुक्त तत्वावधान मे आयोजित नि शुल्क ग्रीष्मकालीन प्रशिक्षण शिविर मे सिलाई मशीन को सुधारना सीखती हुई महिलाएं एव वालिकाये



ग्रीष्मकालीन प्रशिक्षण शिविर के समापन समारोह मे सभा की गतिविधियो की जानकारी देते तथा अतिथियो को बधाई देते सभा के अध्यक्ष श्री रतनलाल छावडा मच पर वैठे हुए श्रीमती शकुन्तला जैन, श्रीमती कुसुम जैन, श्रीमती मृदुला नारनोली, एव श्रीमती वी डी जैन



महिला उद्योग प्रशिक्षण शिविर के समापन समारोह मे उपस्थित जनसमुदाय



दि जैन मन्दिर एव राजस्थान जैन सभा
द्वारा सचालित महिला उद्याग शिक्षण केन्द्र के
उत्पादा की प्रदशनी का उद्घाटन करती हुयी
श्रीमती सुमन अजमरा धर्मपत्नि सतीश अजमरा



ग्रीष्मकालीन प्रशिक्षण शिविर म सीखी
गइ व तयार की गई कलात्मक वस्तुआ की
प्रदशनी का अवलोकन करती महिलाए



श्री दि जन मदिर तेरापन्थ (वडा) एव
राजस्थान जेन सभा के सयुक्त तत्वावधान
म आयोजित नि शुल्क ग्रीष्मकालीन
प्रशिक्षण शिविर म श्रीमती चन्द्रकान्ता से
बधेज सीखती हुई महिलाए एव बालिकाये

प्रथम खण्ड

भगवान महावीर : जीवन, सिद्धान्त एवम् चर्या

वैशाली के वर्द्धमान से सारे जग को मिले सहारा

✍ डॉ. शोभनाथ पाठक

छब्बीस सौवीं जन्म जयंती महावीर की मंगलमय हो।
अखिल विश्व में पांच व्रतों का स्वर्णिम सुन्दर सूर्योदय हो॥
उमड पड़े आलोक सत्य का अस्त असत्य स्वयं हो जाये,
अचल अहिंसा की आभा से, हिंसा का बिरवा मुरझाये।
अद्वितीय अस्तेय महाव्रत, तृष्णाओं का शमन कराये,
अपरिग्रह के प्रबल भाव से, संग्रह भाव विनत हो जाये।
ब्रह्मचर्य की वरीयता का सब जीवों में भाव उदय हो,
2600वीं जन्म जंयती महावीर की मंगलमय हो॥
त्रिविध ताप से तप्त हृदय को, है वरदान वीर की वाणी।
इससे धरती स्वर्ग बनेगी, सुखी रहेंगे सारे प्राणी॥
जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, मानव मन प्रतिपल कल्याणी।
विश्व बंधुता की वरीयता हेतु श्रेष्ठ प्रभुवर वरवाणी॥
रत्नत्रय के अतुल तेज से, जीवों का जीवन निर्भय हो
2600वीं जन्म जयंती महावीर की मंगल मय हो॥
भौतिकता में भटक गये जन हेतु सुनहरा अवसर-न्यारा।
महावीर के आदर्शों से है अत्यधिक लगाव हमारा॥
जन-हित में ही सौंप दिया हो, जिसने अपना जीवन सारा।
वैशाली के वर्द्धमान से सारे जग को मिले सहारा॥
सदियों बाद सुअवसर आया, हर वाणी से मुखरित जय हो,
2600वीं जन्म जयंती महावीर की मंगलमय हो॥
राजस्थानी जैन सभा का यह 38वॉं अंक समर्पित।
2600वीं जन्म जयंती पर प्रणाम प्रभुवर को अर्पित॥
ऐसा श्रेष्ठ सुअवसर पाकर, युग को कर सकते परिवर्तित।
पांच व्रतों से सृष्टि संवारें, यह संकल्प करें हम अर्पित॥
जैन धर्म हो धुरी धरा की, अखिल विश्व अति करुणामय हो।
छब्बीस सौवी जन्म जयंती महावीर की मंगलमय हो।

ग्राम पोस्ट-कनवानी
जिला-जौनपुर (उ.प्र)

संक्षिप्त वर्धमान चरित्र

✍ कवि विबुध श्रीधर रचित 'वढ्ढमाण चरिउ'
(अनु डॉ राजा राम जैन)से सकलित

राजकुमार नन्दन मुनिराज श्रुतसागर से नन्दन वन में प्रश्न करता है'यह जीव निर्वाण स्थल में किस प्रकार जाता है?

मुनिराज-" जब यह जीव 'यह मेरा है, यह मेरा है' इस प्रकार कहता है, तभी वह जरा, जन्म एव मृत्यु को प्राप्त होता है और यही जीव जब भव -भाव से विमुक्त तथा आत्म-भाव को प्राप्त कर लेता है तब वह मोक्ष स्थल को चला जाता है"। उन मुनिराज के इस प्रकार वचन सुनकर अन्य साथियों के साथ उस राजकुमार ने अपने मिथ्यात्वरूपी अन्धकार -समुह को नष्ट कर दिया तथा निर्मल मन से जिस क्षण तत्व को पहचाना, उसी क्षण उसका हृदय कमल विकसित हो उठा।

पिता राजा नन्दिवर्धन के दीक्षित हो मुनि हो जाने पर नन्दन राजा बना है। राजा नन्दन वन में मुनिराज प्रोष्ठिल के आगमन की वनपाल से सूचना प्राप्त होने पर दर्शनार्थ सदल-बल गया। मुनिराज से उसने अपनी पूर्व भवावलि पूछी। मुनिराज पूर्व के नौवें भव में जब वह सिह था, चारणमुनि अमित कीर्ति और अमृतप्रभ द्वारा उसे प्रबोधने का वर्णन करते है-

सिह गुफा द्वार पर विश्राम कर रहा था। उसे देखकर आकाश मार्ग से मुनिराज नीचे उतरे । एक सप्तपर्णी वृक्ष के नीचे शिला तल पर बैठकर मनोज्ञ कण्ठ से शास्त्र पढने लगे-

मदोन्मत गजराजों के मास का लालची वह सिह मुनिराज के शास्त्र पाठ को सुनकर प्रबुद्ध हो गया। क्रूर भाव को छोड़कर उसका प्राजलतरमन सौम्य-स्वरूप को प्राप्त हो गया। हाथियों के लिये भयानक मुखवाला वह मृगाधिप अत्यन्त प्रशम-भाव पूर्वक तथा प्रमाद -रहित होकर गुफाद्वार से बाहर निकला और पूँछ को स्थिर किये हुए नतमुख होकर मुनिराज के समीप बैठ गया।

उसे देखकर अमितगति मुनिराज उससे बोले-" हे सिह तूने देवों द्वारा प्रणत, त्रिभुवन का शासन करने वाले तथा भव्यजनों के मुखों को विकसित करने वाले जिनेन्द्र के शासन को प्राप्त नहीं किया, अत अतिगहन भवरूपी वन में नाना-प्रकार के शरीरों को धारण करते हुए अनेक विध दु ख सह रहा है।--- यह जीव स्वय (कर्मों का) कर्त्ता एव भोक्ता है। (तूने) ज्ञानमय बिम्ब (आत्मा) का (शरीर के साथ) भेद नहीं किया। (अब) रागादिक भावो के कारण सुन्दर लगनेवाली इस मिथ्यात्व -पाप रूपी कन्दरा को छोड़ तुरन्त ही धर्म का अनुसरण कर। यह जीव रागी होकर कर्मो का बन्ध करता है किन्तु अपने हित का विचार नहीं करता। अत गतराग होकर इस कार्य को छोड़। अपने प्रबल बल से अन्य कर्मों का सचय न कर । रागादिक दोषों एव रोषो को प्रकट करते रहने के कारण तू जो भवावलियों मे भटक रहा है, हे सिह धैर्यपूर्वक सावधान होकर तथा मन को स्थिर करके इस भ्रमण वर्णन को सुन-

विदेह स्थित पुष्कालावति देश में शूकर एव हिरणों के विदारण में शूर तथा अत्यन्त कुरूप पुरुरवा

शबर ने वन में सागरसेन मुनिराज को देखा। पूर्वोपार्जित पापों के कारण कलुषित मन वाला वह क्रूर पूरुरवा मुनि वचनों से प्रबुद्ध हो गया। अतः शबर ने उन मुनिन्द्र की भक्ति करके उनके पास प्रमाद रहित एवं समतासहित होकर श्रावक के व्रतों को ले लिया । विधि विधान पूर्वक श्रावक व्रतों का दीर्घकाल तक पालन कर तथा जीवों का अपने समान ही लालन करता हुआ वह पुरुरवा नामक शबर मरा, और प्रथम स्वर्ग में दो सागर की आयु से सुशोभित तथा अणिमादिक ऋद्धि समूह से महान सुरोरव नामक देव हुआ।

सुरोरव देव आदितीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र चक्रवर्ती भरत के मारीचि नाम का पुत्र हुआ। पितामह जिनेश्वर ऋषभ के साथ गुणों में निपुण मारीचि भी संयम धारी हो गया। दुःखकारी परिषहों से घबराकर वह मरीचि सहसा ही कुभाव को प्राप्त हो गया । जो जिन दीक्षा धारण करता है वह तो हृदय से महान होता है , वह भव भोगो से विरक्त रहता है। किन्तु भीरू जन इस दीक्षा को धारण नहीं कर सकते। अतः जिनेन्द्र द्वारा प्रेरित उस मरीचि ने पूर्वकृत पापों को क्षय करने वाले तप को छोड़ दिया।

एक दिन भरत चक्रवर्ती द्वारा तीर्थंकर ऋषभदेव से पूछने पर कि यहाँ आपकी मनोहारी शरण में (तप करने वाले) जीवों में भी कोई (तीर्थंकर) होने वाला है अथवा नहीं? तब ऋषभदेव ने पुनः उत्तर दिया- "तुम्हारा पुत्र मरीचि अभी तो धर्म से च्युत होकर मरेगा,जियेगा किन्तु आगे जाकर मिथ्यात्व से स्खलित होकर तथा भव को क्षय कर चौबीसवां तीर्थंकर होगा। कपिल आदि शिष्यों का वह गुरु बनेगा, जो उसकी अविधि 'कुपथ' का लोक में प्रचार करेंगे। जिनेन्द्र का कथन सुनकर मरीचि हर्षित होकर वहाँ से तत्काल निकला। जिनेन्द्र के कथन कभी मिथ्या नहीं होते, अपने मन में यह निश्चय कर उस मरीचि ने तत्काल ही नया तीर्थ (सांख्य मत) स्थापित किया। तप धारण करने में परिव्राजक उसने कुनयों का विस्तार करके सिर झुका-झुकाकर नमस्कार करने वाले कपिल आदि शिष्यों के साथ जड जनों को अनुयायी बनाकर सांख्यमत का प्रकाशन किया। कुमार्ग में जड जनों को विनिवेशित कर उन्हें पच्चीस तत्वों का उपदेश किया और चिरकाल तक परिव्राजक तप करके उस मरीचि ने प्राण छोडे । और पाँचवें कल्प मे सुधाशी देव हुआ। वह रूप सौन्दर्य मे अनुपम था । उसकी उपमा किससे दें ?

आयु के अन्त मे मरण को प्राप्त हो वह देव कोशलपुरी में कपिलभूदेव ब्राह्मण के यहाँ शास्त्रों एवं उनके अर्थो में विलक्षण विद्वान तथा सर्वांगीण शारीरिक लक्षणो से युक्त जटिल नाम का पुत्र हुआ । जो अग्निशिखा के समान दीप्त था तथा जो मिथ्या दृष्टियो के साथ ही वार्तालाप करता था । अन्त में वह भगवती दीक्षा ग्रहणकर तथा उसका पालन कर कष्टपूर्वक मरा और सोधर्म स्वर्ग में दो सागर की आयु वाला देव हुआ। आयु पूर्ण होने पर वह देव स्थूणागार नामक ग्राम मे पृथ्वी पर विख्यात तथा अपने कुल का भूषण भारद्वाज नामक विप्र एवं उसकी पत्नी पुष्पमित्रा था पुष्पमित्र नामक पुत्र हुआ । अपने निलय (भवन) मे आये हुये एक परिव्राजक के उपदेश से स्वर्ग सुख की अपने मन में कामना कर बालहठ के कारण उसने दीक्षा ग्रहण कर ली।

वह चिरकाल तक तप करता रहा । फिर मर कर 25 तत्वों की भावना भाकर ईशान स्वर्ग में दो सागर की आयु वाला देव हुआ तथा वहाँ से पतित होकर श्वेता नगरी में अग्निभूति द्विज की पत्नी गौतमी के अग्निशिख नामक पुत्र हुआ। वह अग्निशिख दुर्जनों के वचनों का खण्डन करने वाला था। वह चिरकाल तक परिव्राजक तप कर पचत्व को प्राप्त हुआ । और सानत्कुमार स्वर्ग में सात सागर की आयु वाला देव हुआ । आयु समाप्त कर वह देव मन्दिरपुर नामक नगर में द्विजश्रेष्ठ अग्निमित्र और उसकी पत्नी कोशिकी के शास्त्रों का रसिक अग्निमित्र नामक पुत्र हुआ । उसके पिता ने उससे कहा 'हे अग्निमित्र, लोक में अपना तेज प्रकाशित करो । स्वर्ग से च्युत होकर वह देव मिथ्यात्व की अग्नि ज्वाला से दग्ध होता हुआ स्थावर (एकेन्द्रिय) योनियों के मध्य निवास कर चिरकाल तक अनेक दु खों को सहकर बड़े कष्ट से, जिस किसी प्रकार, त्रस पर्याय पाकर विविध जीवसघातों को धारण कर जुआ-सेला (कीला) सयोग के समान दुर्लभ एव बल्लभ मनुष्य पर्याय पाकर प्रचण्ड एव अगम्य कर्मों के कारण क्या क्या नहीं करता रहा ? वह अग्निमित्र घर में निवास करते हुये भी रति-भावना का निवारण कर नारायण शासन के मत को धारणकर मन के प्रमाद को जीतकर तप ग्रहण कर शिखा जटा सहित त्रिदण्ड धारक परिव्राजक रूप से भ्रमणकर दीर्घकाल तक मिथ्यात्व में रमकर तथा मरकर माहेन्द्र स्वर्ग में सात सागर की आयु वाला सुन्दर कान्ति वाला देव हुआ।

अपनी आयु समाप्त कर वह देव शक्तिवन्तपुर में नारायण का मन में ध्यान करने वाले सकलायन विप्र के यहाँ उसकी पत्नी प्रिया के भारद्वाज नामका पुत्र हुआ। वह भारद्वाज पुन एक विख्यात परिव्राजक हुआ । चिरकाल तक तप करके मरकर पुन मणिमय विमान वाले मनोहर माहेन्द्र स्वर्ग में देव हुआ । (आयु समाप्ति के छ माह पूर्व) कल्पवृक्ष के विशाल रूप से काँपने पर , मदार पुष्पों की माला के म्लान होने पर, लोचनों में भ्रान्ति हो जाने पर , दु ख समूह के सगम के समान स्वर्ग से विनिर्गमन की सूचना हुई । तब वह देव करूणाजनक क्रदन करने लगा छाती पीटने लगा, अपना माथा धुनने लगा, विषादयुक्त होकर प्रणयिनियों का मुख देखता हुआ मुर्छित होने लगा तथा भाव विह्वल होकर घूमने लगा क्योंकि उसका पूर्वापार्जित पुण्य प्रदीप शान्त हो गया था । वह कहने लगा कि मनोरम हाय स्वर्ग तू निर्भ्रान्त प्राण छोडते हुये दु खी मन वाले मुझे बचाकर अवस्थान क्यों नहीं दे रहा है । कहो, आज मुझे कहाँ शरण है? मै कहाँ प्रवेश करूँ ? कहाँ जाउँ ? कहाँ बैठूँ? क्या करू? किस उपाय से जीवन को धारण करूँ। किस उपाय से मृत्यु को ठगकर उसका निवारण करूँ ?

अधोयानियों से निकल कर वह राजगृह के शण्डिल्यायन विप्र और उसकी पत्नि पारासरी के स्थावर नामक पुत्र हुआ। भागवत के कथनानुसार चिरकाल तक तप करके वह पुन मरा और ब्रह्मलोक स्वर्ग को प्राप्त हुआ। वहाँ वह दस-सागर प्रमाण आयु वाला तथा अभिनव पावस के समान अत्यन्त मनोहर देव हुआ।

यहाँ आकर महावीर की पूर्व भवगाथा में मोड़ आया और ब्रह्मलोक स्वर्ग से आकर वह देव राजगृह

के राजा विश्वभूति के विश्वनन्दि नामक राजपुत्र हुआ। विश्वनन्दि के जीवन से परिव्राजक एवं नारायण शासन के शास्त्राध्यन एवं तप के स्थान पर क्षात्र तेज/वीरता, साहस की गाथा आरंभ हुई।

चाचा विशाखभूति के पुत्र विशाखनन्दि द्वारा कपट से अपना प्रिय उद्यान हस्तगत करने पर कतिपय उद्भट भटो के साथ वह युवराज रूपी सिंह आमर्ष के वशीभूत होकर दुर्ग के अवलोकन के बहाने उसकी (उपवन की) ओर चला। जल परिखा से अलंकृत विशाल कोट को लांघकर सहसा ही अपने शत्रु के शूरवीरों का निपात कर देवों के मुख-रूपी कमलों को विकसित किया। तब नभस्तल कल-कल शब्द से परिपूर्ण हो उठा। उस शत्रु सैन्य से लड़ने के कारण उसकी खड्ग जब भग्न हो गयी, तब शिलामय स्तम्भ को हाथ से उखाड़ कर कृतान्त के समान विश्वनन्दि रूपी बैरी को आया हुआ जानकर .... वह विशाखनन्दि अशक्त होकर तथा थककर जब एक दृढतर कैथ-वृक्ष पर चढ गया, तब सभी में मनोहर उस युवराज ने उस महान गुरुतर कैथ के वृक्ष को भी उखाड़ डाला। तब लक्ष्मणा का पुत्र वह विशाखनन्दि काँपते हुए शरीर से युवराज के चरणों की शरण में आया। पर विश्वनन्दि को इस जीत से आत्म ग्लानि हुई. 'जीर्ण तृण के समान दूर से ही राज्य को त्यागकर लोकापवाद के भय से डरा हुआ चित्त वाला वह युवराज विश्वनन्दि तपस्या हेतु अपने घर से निकल गया। उसने सम्भूत मुनिराज के पास मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली। नरपति चाचा विशाखभूति ने भी विशाखनन्दि को राज्य देकर विश्वनन्दि के साथ मुनि दीक्षा ले ली। आगे—

मासोपवास-विधि से क्षीण गात्र वाले विश्वनन्दि मुनि भिक्षा के निमित्त उत्तुंग भवनों वाले मथुरा नामक नगर में प्रविष्ट हुए। प्रजाजनों ने मार्ग में नन्दिनी-गौ के सीगों द्वारा उनके शरीर को धुन-धुनकर घायल करते हुए देखा। वेश्या के सौधतल मे स्थित--विशाखनन्दि ने यह देखकर उपहास करते हुए कहा-"तेरा वह बल कहाँ चला गया, जिससे कि तूने हमारी सेना सहित उस दुर्ग को वेगपूर्वक जीत लिया था, जिस बल के द्वारा तूने शिलामय स्तम्भ को उखाड़ डाला था, तथा जिससे कि कैथ के पेड़ को गगन रूपी आंगन में फेंक दिया था।"--विश्वनन्दि ने-- क्षमा गुण का परित्याग कर (कहा)-- "यदि मेरे तप का कोई विशिष्ट फल हो, तो समरांगण को रचाकर निश्चय ही अनिष्टकारी इस वैरी को मारूगा" आयु समाप्ति पर विश्वनन्दि महाशुक्र स्वर्ग में सोलह सागर की आयु वाला देव हुआ।

और उधर, वह विशाखनन्दि भी जिनवर के तप का आचरण कर स्वरूपवान देव हुआ। देवायु समाप्त कर वह विद्याधर राजा मोरकण्ठ की पट्टरानी कनक माला के गर्भ में आया। तदनन्तर उस गर्भ के अनुभाव विशेष से वह रानी मनुष्य का वेश धारण कर आयुध क्रीड़ायें करती रहती थी, वह तीनों लोकों को तृण-के समान गिनती थी तथा दर्पण छोड़कर तलवार में अपना मुख देखती थी। इस प्रकार मनोरथों को पूर्ण कर महामणियों की खानि स्वरूपा उस रानी ने पुत्र प्रसव किया। खेचर राज मोरकण्ठ ने उसके शरीर में अर्धचक्री के स्पष्ट लक्षण देखकर तत्क्षण ही अभिराम उत्सव का आयोजन कर उसका नाम 'अश्वग्रीव' रखा।

उधर विशाखभूति मुनिराज का जीव आयु समाप्त कर स्वर्ग में देव हुआ और तत्पश्चात् पोदनपुर के राजा प्रजापति के जयावती रानी से विजय नामक पुत्र हुआ, तथा विश्वनन्दि मुनिराज का जीव महाशुक्र स्वर्ग में आयु समाप्त कर राजा प्रजापति की मृगावती रानी से त्रिपृष्ठ नामक पुत्र हुआ है।

त्रिपृष्ठ महान बलवान था। नरभक्षी घुरघुराते सिह की टाग को एक हाथ से खींचकर तथा दूसरा हाथ उसके मुह में डालकर उसने उसे धराशायी कर दिया। विद्याधर राजा ज्वलनजटी की पुत्री स्वय प्रभा से त्रिपृष्ठ का विवाह होने पर अर्द्धचक्री अश्वग्रीव अपना अपमान माना है, युद्ध हुआ। युद्ध में त्रिपृष्ठ अश्वग्रीव को मारकर अर्द्धचक्री बना और तीन खण्ड पृथ्वी विजय की है।

आयु के अन्त में त्रिपृष्ठ सातवें नारकी बना। भ्राता की मृत्यु से विजय को वैराग्य हो गया है। मुनि बनकर, तप कर उसने मोक्ष प्राप्त हो गया। त्रिपृष्ठ सातवें नरक से निकल कर सिह बना और मरण कर प्रथम नरक को नारकी बना। अमित तेज मुनिराज सिह को कहते हैं—"इस प्रकार हे हिरणाधिप, तेरी भवावाली कही। अब पुन चित्त स्थिर कर आगे की सुन-- हे मृगपति, तू शान्ति का निलय बन तथा विरत बन कर कषाय-दोषों का विलय कर कुमति-मिथ्यात्व के अनुबन्ध का शीघ्र ही त्याग कर, जिनवर के दुर्लभ मत की अपने मन में भावनाकर, अपने समान ही समस्त जीवों को गिन जिनमत का स्मरण कर वध से रति- विहीन हो। अरे जिसे इन्द्रियों का सुख कहा जाता है हे सिह उसे भी तू दुख ही जान। -- मन का विचारा हुआ (भौतिक) सुख हितकारी नहीं होता क्योंकि उससे कर्मक्षय नहीं होता। (इस प्रकार) उस सिह ने जिन वचन रूपी रसायन को अपने कर्णरूपी अजलि पुटों से पान किया।

अब मुनिराज के चले जाने पर उनके विरह में सिह का मन अनरत अर्थात् दुखी होगया। -- -किन्तु वह मृगपति मुनिवर के वियोग का दु ख अन्तर्बाह्य परिग्रह के साथ ही त्यागकर तथा अपना हित मानकर अनशन हेतु एक शिला पर बैठ गया। जब वह अपना शरीर स्थिर कर शिलातल पर पड़ गया तब दण्ड के समान स्थिर हो गया। यतिवर के गुण-गणों के प्रति अति पवित्र भावनाओं से वह सिह शुद्धलेश्या (शुद्ध परिणाम) वाला हो गया। मन को दुस्सह पीड़ा देने वाली पवन से आतप और शीत परीषहों की पीड़ा को भी वह कुछ न समझता था। दश-मशकों से डसा हुआ होने पर भी वह समभाव धारण किये रहा तथा एक क्षण को भी उसने धैर्य का परित्याग नहीं किया। क्षुधा ओर तृषा से वह एक क्षण को भी विवश न हुआ। इस प्रकार वह सिह जिनवर के गुणों में अनुरक्त रहकर ही मरा। शुभ धर्म ध्यान के फल स्वरूप पापों का क्षयकर वह सौधर्म स्वर्ग में-- प्रबल भुजाओं वाला हरिध्वज नाम का देव हुआ। अवधि ज्ञान से पिछले भव में मुनिराज का उपकार जान कर उनके चरणों में पहुँचा। स्वर्ण कमलों से उनके चरणों की पूजा की और कहा— 'पिछले जन्म में आपने अपने हितोपदेशरूपी बड़ी भारी रस्सी के द्वारा अच्छी तरह बाँधकर पापरूपी कुएँ में पड़े हुए जिस सिह का उद्धार किया था, वही सिह का जीव मैं हूँ जो गगन को उद्योतित करने वाले इन्द्र के समान देव हुआ हूँ।

आयु की समाप्ति पर हरिध्वज देव कनकपुर के विद्याधर नरेश कनक प्रभ के यहाँ कनक ध्वज नामक पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ है। पिता के मुनि-दीक्षा ले लेने पर वह राजा बना है। सुव्रत मुनिराज के उपदेश से संसार से विरक्त हो मुनि-दीक्षा ग्रहण कर उसने दुर्धर तप किया एवं मरणोपरान्त कापिष्ठ स्वर्ग में देव हुआ। आयु समाप्त कर वह देव उज्जयिनी के राजा वज्रसेन के सुशीला नामक पट्टरानी से हरिषेण नाम का पुत्र हुआ।

एक दिन राजा पुत्र को साथ में लेकर अन्तः पुर के परिजनों सहित श्रुतसागर मुनि के चरणों में प्रणाम कर तथा उनसे जिननाथ द्वारा कथित धर्म ग्रहणकर, विवेकशील बनकर वैराग्य से भर गया। उसने काम-भावना को जीत कर (तथा) पुत्र को राज्य सौंपकर उनके समीप दीक्षा ग्रहण कर ली। काम को जीत लेने वाले मुनि नाथ से श्रावक व्रतों को लेकर (तथा उन्हें) प्रणामकर सम्यग्दर्शन रूपी रत्न से विराजित हरिषेण भी अपने घर लौट आया। पाप-निमित्त राज्य श्री-शोभा में स्थित रहकर भी वह पापरूपी तम समूह से छुआ नही गया।-- नव यौवन को धारण करने पर भी उसने श्रेष्ठ उपशम-श्री को नहीं छोड़ा--शत्रुओं पर कभी उग्र नहीं हुआ-- वैरियों द्वारा अजेय उस हरिषेण ने अपनी तेजस्विता से मित्रों सहित समस्त शत्रुओं को वश में कर लिया। उसने अनेक जिन-भवनों (मन्दिर) का निर्माण कराया। श्रद्धाभक्ति एवं तुष्टि से युक्त निर्लोभादि गुणों में अनुरक्त वह मुनिवर वृन्दों को दान (आहार) देता था तथा श्रावक रूपी कमलों को विकसित किया करता था।--इस प्रकार राज्य लक्ष्मी का सुख-भोग करते हुए, बुधजनो का मनोरंजन करते हुए, सुखकारी श्रावक-वृत्ति का आचरण करते हुए उसके अनेक वर्ष व्यतीत हो गये। प्रमद-वन में पधारे सुप्रतिष्ठ मुनिराज से उसने मुनि दीक्षा लेकर कठोर तप किया, अन्तकाल में अपने हृदयकमल में जिनवर के गुणों को मन में बैठाकर सल्लेखना भाव से विधिपूर्वक प्राणों को छोड़ा। वह महाशुक स्वर्ग में प्रीतंकर नामक देव हुआ।

आयु समाप्त कर प्रीतंकर देव क्षेमापुरी के राजा धनंजय के प्रियदत्त नामक पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ है। पिता धनंजय के क्षेमकर मुनिराज के निकट मुनिदीक्षा ग्रहण कर लेने पर प्रियदत्त राजा बना। एक दिन उसकी आयुध शाला मे चक्ररत्न उत्पन्न बना है, अटूट वस्त्र, अन्न आदि देने वाली नव निधियां प्रकट हुई। कुछ ही दिनो में चक्ररत्न के द्वारा सरलता पूर्वक उसने छहखण्ड पृथ्वी को वश मे कर लिया।

एक दिन प्रियदत्त चक्रवर्ती को दर्पण में एक श्वेत केश देखकर संसार से वैराग्य हो गया है। वह जिनेन्द्र के समवसरण मे अपने अरिंजय नामक बहुश्रुत पुत्र को पृथ्वी सौंपकर सोलह सहस्त्र नरवरों के साथ सुरवरों के देखते देखते ही दिगम्बर मुनि हो गया। आयु के अन्त में सन्यासपूर्वक प्राण त्यागकर वह सहस्त्रार स्वर्ग में देव हुआ। वह सहस्रार स्वर्ग का देव ही राजा नन्दिवर्धन का पुत्र नन्दन बना।

उन मुनि के वचनों को सुनकर राजा नन्दन का मन प्रशान्त हो गया।--- उसने धर्मधर नामक पुत्र को राज्यलक्ष्मी एवं पर्वतों सहित विशाल पृथ्वी अर्पितकर एक सहस सुन्दर राजाओं के साथ प्रोष्ठिल मुनि को प्रणाम कर उनसे दीक्षा ग्रहण

कर ली। कठोर तपश्चरण कर, सोलह कारण भावनाओं का आराधना कर वह प्राणत स्वर्ग के इन्द्ररूप में उत्पन्न हुआ तथा वहाँ आयु समाप्त कर वह देव कुण्डलपुर में राजा सिद्धार्थ की रानी त्रिशला के 2600 वर्ष पूर्व चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को तीर्थंकर महावीर के रूप में जन्म है।

कुण्डलपुर में जिन धर्म से दैदीप्यान शत्रु समूह का नाश करने वाला, परद्रोह की इच्छा नहीं करने वाला, समुद्र के समान गभीर समस्त प्राणियों के लिये सुख का कारण, पुण्याश्रव का निर्नाशक, मन् में सन्यास को महान मानने वाला सिद्धार्थ नामक राजा राज्य करता था। उसके विशुद्ध शील धारण करने वाली, मात्सर्य भाव से दूर हरने वाली विशाल हृदय वाली मातृस्वरूपा, धरा के अवलोकन में आतुर समस्त जनों द्वारा वदित गुणावलि से विभूषित, पाप भावना से अदुषित प्रियकारिणी पटरानी थी।

जब प्राणत स्वर्ग के देव की आयु छह माह शेष रह गई तो सौधमेन्द्र ने दिक्कुमारियों को आदेश दिया "तुम लोग जाकर कमल की छाया को भी जीत लेने वाले भावी जिननाथ की माता के चरण-कमलों की सेवा करो।" उन्होंने आकर प्रियकारिणी को नेत्रों के तारे की तरह घेर लिया। कुबेर प्रति दिन साढे तीन करोड़ रत्नों की वर्षा छह मास तक गगन से करता रहा।

श्रावण शुक्ला षष्ठी को माता प्रियकारिणी ने रात्रि के अन्तिम प्रहर में निम्न सोलह स्वप्न देखे है तथा प्रात राजा सिद्धार्थ ने फल बताये है-

स्वप्न एव फल

(1) चन्द्राभ देह वाला ऐरावत-
पुत्र पाप धो डालने वाला होगा

(2) धीर धवल वृषभ-
शुभ कार्यों का अभ्यासी, सौम्य स्वभावी होगा,

(3) शूरवीर मृगपति-
महाविक्रमी होगा,

(4) लक्ष्मी-
समस्त प्राणियों का प्रिय होगा,

(5) महासुगधित पुष्प माला युगल-
यश का घर होगा

(6) पूर्णमासी चन्द्रमा-
मोक्षावली का स्वामी होगा,

(7) किरणों से दीप्त बालसूर्य-
भव्य कमलों का प्रकाशक होगा,

(8) निर्मनजल में क्रीड़ा करता मीन युगल-
चिन्ताओं को दूर करने वाला होगा,

(9) जल से परिपूर्ण कनक कलश युगल-
ससार भर में ज्ञान धारी होगा,

(10) विशाल सरोवर-
लोगों के हृदयों को आकर्षित करने वाला होगा,

(11) सुन्दर सागर-
गम्भीर धीर अतरग वाला होगा,

(12) रत्नजटित सिहपीठ-
मिथ्यात्व रहित होगा,

(13) मणियों से भासमान सुरपति विमान-
सभा में देव बनकर बैठेगा,

(14) फहराती ध्वजाओं सहित नाग भवन-
सुलक्ष्मी का भोग करने वाला होगा,

(15) किरणों से देदीप्यामान मणि समूह-

प्रशंसा का भागी होगा,
(16) अग्नि शिखर समूह दिशाओं को प्रकाशित करने वाला
कर्मबन को जला डालने वाला होगा।

उत्तराफालगुनीनक्षत्र के सम्पूर्ण होने पर इन्द्र ने अपने आसन के कम्कित होने से तीर्थकर महावीर के गर्भावतरण को जान लिया। उसने आकर अरहंत की माता का सम्मान किया। श्री, ह्रीं, धृति, लक्ष्मी, कीर्ति, मति आदि द्युति पूर्ण शरीर वाली देवियाँ आकर माता की सेवा करने लगी। गर्भ के नौ मास तक कुबेर रत्नवृष्टि करता रहा।

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को उत्तराफालगुनी नक्षत्र में तीर्थनाथ जिनेश के जन्म लेते ही अपने तेज से सूर्य को भी जीत लेने वाले सुरेश्वरों के तत्काल ही अंधकार को नाश करने वाले सिंहासन कॉप उठे और देवों के चित्त को विमर्दित कर देने वाले घंटे तीव्रता के साथ बज उठे।

देवों ने सुमेरु पर्वत पर क्षीर समुद्र के जल के 1008 कलशो से भगवान का अभिषेक कर जन्मोत्सव मनाया। भवरूपी भय को हरने वाले, शिव-सुख को देने वाले तथा अनन्त वीर्यवाले जिनेन्द्र ध्रुव हैं, इस प्रकार मन में विचार कर इन्द्र ने उस नवजात शिशु का नाम 'वीर' घोषित कर स्तुति की। पुनः, उस इन्द्र ने देवों के मन का हरण करने वाले तथा अन्धकार का नाश करने वाले आभूषणो द्वारा वीर की पूजा की और अप्सराओ के साथ मात्सर्य रहित होकर सुरनाथ-इन्द्र ने स्वयं ही नृत्य किया।

जिनेन्द्र के जन्मकाल से ही प्रतिदिन अपने कुल श्री को चन्द्र कला के समान शोभा समृद्ध एवं वृद्धिंगत देखकर मस्तक मुकुटों में जटित रत्नकिरणों से भास्वर सुरेन्द्रों के साथ राजा सिद्धार्थ ने दसवें दिन अपने उस पुत्र का नाम 'वर्धमान' रखा। --विजय एवं संजय नामक चारण मुनियों का उन जिनेश्वर के दर्शन मात्र से ही (तात्त्विक) संदेह दूर हो गया अतः उन्होंने अगले दिन ही उन त्रिजगदीश्वर जिनेश्वर का 'सन्मति' यह नामकरण कर दिया। अन्य किसी एक दिन वे सन्मति वर्धमान अन्य बालकों के साथ वृक्षारोहण का खेल खेल रहे थे। .. संगम देव ने उन्हें संत्रास करने हेतु भुजंग का वेष धारण कर उस वटमूल को घेर लिया। (जिस पर वर्धमान चढ़े हुए थे)। ..वर्धमान लीला पूर्वक ही उस फणिनाथ के सिर पर अपने पैर जमाकर निःशंक भाव से उस वट-वृक्ष से उतरे। तब उस संगम देव ने निर्भय जानकर हर्षित मन से ....स्वर्ण कलश के निर्मल जल से अभिषेक कर आभरणो से सम्मानित किया और उनका नाम 'महावीर' रख दिया।

आयु के जब तीस वर्ष निकल गये। तब किसी निमित्त को देखकर (उन्होंने) शरीर भोगो की क्षणभंगुरता को समझ लिया। नय-नीतिवान् उन जिनेन्द्र नाथ ने अवधिज्ञान से अपने पूर्व भवों तथा तत्सम्बन्धी विपत्तियों की परिपाटी का विचार किया। ... उसी समय .....लोकान्तिक देव वहाँ आ पहुँचे। ... उन देवों ने महावीर को (इस प्रकार) प्रतिबोधित किया..'... आप जगत्रय का विचार करने वाले तथा उत्कृष्ट लेश्याओं से प्रतिबुद्ध हैं। (हम) देव आपको क्या सम्बोध करें ? तपस्या कर (आप) कर्म प्रकृतियों का नाश कीजिए। और तत्क्षण ही केवलज्ञान उत्पन्न कीजिए।" .. (तभी) वहाँ हर्षित

मन वाला इन्द्र आ पहुँचा। उसने आनन्द से भरकर गुरुभक्ति पूर्वक वर्धमान को नमस्कार किया। उसके साथ विशुद्ध मन वाले चारों निकायों की देव भी थे। रत्नमय चन्द्रप्रभा नाम की पालकी में चढ़कर वे जिनेन्द्र देवों के मन को हरण करने वाले उस कुण्डपुर से चले। ऐसा प्रतीत होता था, मानो भव्यजनों से वेष्टित हुए भुवन का ऋण चुकाने ही जा रहे हों। नागखण्ड नामक वन को आया जानकर महावीर जिनेन्द्र शिविका से उतर पड़े और एक मणि-शिला पर बैठकर पूर्वाभिमुख होकर सिद्धों का स्मरण कर स्फुरायमान आभूषणों को त्याग कर, मित्र, शुत्र एव तृण-मणि में समभाव धारण कर अगहन मास की दसमी के दिन जबकि सूर्य अस्ताचल के शिखर पर पहुँच रहा था उसी समय वे षष्ठोपवास की प्रतिज्ञापूर्वक दीक्षित हो गये। सुरपति, नरपति एव नागपति हर्षित हो उठे। स्वर्णाभा को भी पराजित कर देनी वाली शरीर की कान्ति वाले उन जिनेन्द्र ने पचमुष्टि केश लुच किया।

वे सन्मति जिनेन्द्र भोजन के निमित्त कूलपुर से प्रविष्ट हुए। (राजा कूल) अणुव्रतों का पालक तत्त्वार्थों के प्रति सशय रहित था तथा पाठकों के पास पढ़ा था। विशुद्ध आहार ग्रहण करके वे वीर जिनेन्द्र उस राजा के भवन से पुन वापस लौट आये। उसी समय आकाश से युवा जनों के मन को हरने वाली ऋद्धि पूर्ण रत्नवृष्टि तथा पुष्प वृष्टि पड़ने लगी। गभीर निनाद करने वाले दुन्दुभिबाजे बजने लगें। मन्द सुगन्धिपूर्ण वायु बहने लगी। देवों ने साधु-साधु का जयघोष किया।

निरन्तर भ्रमण करते रमते हुए वे जिनेन्द्र एक महाभीषण अतिमुक्तक नामक श्मशान भूमि में रात्रि के समय प्रतिमा योग से स्थित हो गये। उसी समय भव नामक एक बलवान रुद्र ने उन पर महान उपसर्ग किया, किन्तु वह उन्हें जीत न सका। इसी कारण रुद्र ने उन जिनेन्द्र को धीर वीर समझ कर उनका महाअतिवीर नाम घोषित किया। जिनेन्द्र महावीर परिहार विशुद्धि सयम पूर्वक, महातप रूप लक्ष्मी में रत रहें और मन्मथ के बाण समूह का निवारण कर उन्होंने 12 वर्ष पूर्ण कर लिये। ऋजुकूला नदी के तटवर्ती महान् शाल वृक्ष के नीचे एक शिलातल पर बैठकर षष्ठोपवास पूर्वक एकाग्रमन से वैशाख शुक्ल पक्ष की दसमी के दिन ध्यान रूपी अग्निज्वाला से गहन घातिया कर्म रूपी ईंधन को जलाकर सिद्धार्थ नरेन्द्र के उस स्तनन्धय-पुत्र को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। इसी समय घातिया कर्मों के क्षय होने के कारण वे उत्तम दस अतिशयों को धारण कर सुशोभित हुए। केवलज्ञान के बल से उन्होंने शीघ्र ही समस्त लोकालोक को समझ लिया। सुरवरों ने भी गुरु भक्ति करके तथा माथे पर हाथ रखकर (उनकी) वन्दना की। इसी बीच में जब हरि-इन्द्र ने आदेश दिया तब यक्ष ने एक समवशरण की रचना की। वह 12 योजन प्रमाण विशाल था, जो गगन में नीला, नीला भासता था।

(समवसरण में गन्धकुठी में सिहासन पर विराज मान) वीरप्रभु के दायीं ओर गुण विराजित गणधर (और मुनि) स्थित थे। उनके बाद सुपुष्ट, कठोर मोटे एव ऊँचे उठे हुए स्तनों वाली कल्पवासिनी देवागनाएँ बैठी थी। उनके बाद अन्य महिलाओं के साथ आर्यिकाएँ, फिर (क्रमश)

ज्योतिषी, व्यन्तर एवं भवनवासी देवों की देवियाँ विराजमान थीं। (उनके बाद) भवनवासी, व्यंतर, एवं ज्योतिषी देव और कमनीय कल्पबासी देव। उनके बाद मनुष्य तथा पृथ्वी पर तिर्यंच स्थित थे। इस प्रकार (12 सभाओं में) 12 प्रकार के गण उपविष्ट थे।

भामण्डल की द्युति से सूर्य को भी जीत लेने वाले जिनेश्वर सिंहासन पर बैठे हुए सुशोभित हो रहे थे। उनके दोनों ओर चमर दुराये जा रहे थे। मनुष्य और देव समूह जय जयकार कर रहे थे। तीनों छत्रों में लगी किंकिणियों के शब्द मानो भव्यजनों के लिये महावीर के त्रिजगत संबंधी प्रभुपन को घोषित कर रहे थे। गम्भीर ध्वनिवाले दुन्दुभि बाजे बज रहे थे, ऐसा प्रतीत होता था मानो हर्ष से समुद्र ही गरज रहा हो। नभस्तलः से समस्त दिशा - मुखों को सुवासित करने वाली तथा भ्रमरों से सहित पुष्पवृष्टि हो रही थीं। शाखा-प्रशाखाओं से मण्डित तथा रक्ताभ गुच्छों की शोभा से सम्पन्न अशोक वृक्ष शोभामयमान था। (किन्तु) उस समय जिननाथ की मिथ्यात्व एवं मार (काम) नाशक दिव्य ध्वनि नहीं खिर रही थी। तब मुकुट मणियों से स्थुरायमय इन्द्र ने अपने अवधि ज्ञान से (उसका कारण) जाना और गणितानन-ब्राह्मण का वेष बनाकर वह तुरन्त ही गौतम के पास पहुँचा। सुरेन्द्र ने गौतम गौत्र रूपी नभाँगण के लिये चन्द्रमा के समान तथा गुण-समूह के निवास स्थल उस इन्द्रभूति गौतम को देखा तथा उसे वह स्वयं ही ले आया जहाँ कि स्वामी-जिन विराजमान थे। दूर से ही मानस्तम्भ देखकर उस (गौतम) का मान (अहंकार) उसी प्रकार नष्ट हो गया, जिस प्रकार सूर्य के सम्मुख अन्धकार समूह नष्ट हो जाता है। उस गौतम ने निरहंकार भाव से नतशिर होकर पृथ्वी मण्डल पर असाधारण उन परमेश्वर से जीव-स्थिति पर प्रश्न किया, जिसका उत्तर परमानन्द जिनेश्वर ने स्पष्ट किया। उस उत्पन्न दिव्य ध्वनि को, गौतम ने समझ लिया, उससे उसका समस्त सन्देह दूर हो गया। अपने द्विज-पुत्रों के साथ मिलकर उस गौतम विप्रने (तत्काल ही) सब कुछ त्याग कर जिन दीक्षा ले ली। पूर्वान्ह में दीक्षा लेने के साथ ही उसे 6 विख्यात लब्धियों (बुद्धि, क्रिया, विक्रिया, रस, तप, औषध एवं बल) उत्पन्न हो गयी तथा उसी दिन अपरान्ह में उस गौतम नामक ऋषि ने महावीर जिन के मुख से निर्गत अर्थो से अलंकृत सांगोपांग द्वादंशाग श्रुतपदों की रचना की।

मुकुट मणि-किरणों से गगन को भी भास्वर बना देने वाले तथा अपने क्षमा गुण से शुत्र को भी मित्र बना लेने वाले इन्द्र ने देव कृत अतिशयों द्वारा सम्मानित जिनेन्द्र की गुरु भक्ति पूर्वक स्तुति की। ... स्तुति करके त्रिदशनाथ इन्द्र ने महावीर जिनेन्द्र से सप्त तत्वों के भेद सम्बन्धी प्रश्न पूछा। उसे सुनकर जिनेश्वर ने ओष्ठ-स्फुरण के विना ही सप्त तत्त्वों पर प्रचवन किया। (उन्होंने जीवों के भेद, उनकी योनियाँ, कुल कोटियाँ, पर्याप्त-अपर्याप्त आयु स्थिति, उनके शरीर भेद बताये। स्थावर-विकलत्रय-पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का वर्णन किया। उनके निवास स्थान तथा शरीरों का प्रमाण बताया। विविधि द्वीपों, क्षेत्रों, पर्वतों, सरोवरों, नदियों, समुद्रों, नगरों की संख्या तथा उनके निवासियों का वर्णन किया। उन्होंने बताया कि किस कोटि का जीव मरकर कहाँ जन्म लेता है। उन्होंने नरक भूमियो, वहाँ के निवासी नारकी

जीवों की दिनचर्या जीवन एव उनके दु खों का वर्णन किया। उन्होंने उनके शरीर की ऊँचाई एव उत्कृष्ट तथा जघन्य आयु का प्रमाण बताया।

भगवान महावीर ने अपने प्रवचन में इसी प्रकार देवों के भेद उनके निवासों की सख्या, विमानों की सख्या बताई। देवों की शारीरिक स्थिति, उनका प्रवीचार ज्योतिषी तथा कल्पवासी देव देवियों की आयु उनके अवधिज्ञान का श्रेत्र उन्होंने बताया। उन्होंने जीवों के कर्माहार नोकर्माहार कवलाहार ओजाहार तथा देवों के चित्ताहार का वर्णन किया। उन्होंने गुणस्थानों एव गुणस्थानों पर आरोहण का क्रम बताया तथा सिद्ध जीवों का वर्णन किया। जीव के अतिरिक्त अजीव धर्म अधर्म, आकाश काल और पुद्गल के उन्होंने स्वरूप बताये तथा कर्मों के आश्रव बध, सवर, निर्जरा और मोक्षतत्त्व का वर्णन किया)

उन वीर प्रभु के (सघ में) ग्यारह सुप्रसिद्ध गणधर हुए। उन सब में इन्द्रभूति गौतम सर्व प्रथम धुरन्धर थे। हर्ष राग रहित तीन सौ पूर्वधर थे। नो हजार नो सौ शिक्षक थे, तेरह सौ अवधिज्ञानी मुनिवर तथा पाँच सौ मन पर्यय ज्ञानी मुनि थे। केवल ज्ञानी मुनि सात सौ थे। विक्रिया धारी मुनि नो सो तथा वादि गजेन्द्र मुनियों की सख्या चार सौ थी। इस प्रकार कुल चौदह सहस्त्र मुनि वीर प्रभु के सघ में थे।

हर्ष राग रहित चन्दना प्रमुख छत्तीस सहस आर्यिकाओं की सख्या थी। एक लाख श्रावक कहे गये हैं तथा तीन लाख श्राविकाओं की गणना थी। देव-देवागनाए असख्यात थीं। सुन्दर मन वाले (गाय, सिह आदि) तिर्यंच सख्यात थे। इन सभी के साथ जिनाधिय ने विहार किया तथा 30 वर्षों तक अपने उपदेशों से भव्यजनों के अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करते हुए वे वीर प्रभु अपने सात प्रकार के मुनियों सहित पावापुरी के श्रेष्ठ उद्यान में पहुँचे। पावापुरी के उस उद्यान में कायोत्सर्ग विधान से ठहरकर शेष अघातिया कर्मों को घातकर कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को रात्रि के चौथे पहर के अन्त में वे त्रिलोकाधिप परमेश्वर वीर-जिनेश्वर निर्वाण स्थल को पहुँचे।

महावीर क्या कर रहे है —

2578 वर्ष हो गये महावीर को सिद्ध बने। वे अब क्या कर रहे हैं? महावीर ने 12 वर्ष तपस्या की तब क्या किया? 30 वर्ष केवली रहे, तीर्थ का प्रणयन किया, देव, मनुष्य, त्रिर्यचों को उपदेश दिया। दोनों ही काल 2528 वर्ष के उनके अब तक के सिद्धकाल से छोटे है और आगे के अनन्त सिद्धकाल की तुलना में तो कुछ नहीं है। तपस्वी महावीर ने तपस्या का जो ढग बाह्य में एव अन्तरग में अपनाया वह उनका अपना था। सामान्य रूप से ही वह मोक्ष मार्ग है बाकी विशेषत तो उसके अनेक प्रकार हैं। सभी तपस्वी जन मोटे रूप से ही समान होते हैमजिल एक बाकी राहें अपनी अपनी होती है। एक-दूसरे की प्रतिलिपि नहीं होते। केवली महावीर बाह्य में अन्य केवलियों से समवसरण और गधकुटी का भेद रखते हो, पर केवल ज्ञान के वर्तन में शाति आदि गुणों के वर्तन में उनमें कोई भेद नहीं होता। अघातियॉ कर्मकृत आयु आदि का भेद उनमें होता है। सिद्ध होने पर यह भेद भी हट जाता है।

अत जहाँ परस्पर में सभी भेद निरस्त हो

जाते हैं वह सिद्ध अवस्था है, जहॉ उपयोग के स्तर पर भेद नहीं रहते वह अरहंत अवस्था है। दोनों ही परमात्मा दशा जैन धर्म में स्वीकार की गई है और छद्मस्थ साधु एवं श्रावक अपनी साधना की घड़ियो में कर्मजनित भेद को गौण कर उन समान उपयोग के अंतरंग स्तर में जीने का यत्न करते हैं। अतः मुमुक्षुजन के लिए यह प्रश्न महावीर अन्तमुर्हूर्त अन्तमुर्हुर्त अभी क्या कर रहे हैं, अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने प्रवचन सार की गाथा 198 में इस प्रश्न का उत्तर दिया है कि सिद्ध परमात्मा सुख का ध्यान कर रहे है। सुख की गंगा बह रही है और सिद्ध भगवान उसमे डूबे हुए हैं, नहा रहे है। महावीर के यह गंगा अनन्त विशाल रूप में बह रही है, हमारे क्षीण सही पर सभी छद्मस्थो के यह बह रही है। हम उस क्षीण धारा में अवगाहन करते हैं तो उसका पार पाना हमारे बस का नहीं है। क्षितिज की भॉति सहज ही उसका तट दूर रहता है। हम जितना उसका छोर पाने का यत्न करते है, उसे नापने का यत्न करते हैं वह अमाप, विशाल हुए जाती है। वस्तुतः वह हमारे स्तर पर भी अनन्त है। शास्त्रों में लब्धि अपर्याप्त निगोदिया के भी ज्ञान के अविभागी प्रतिच्छेदों को अनन्त प्रदेशी आकाश से अनंत गुण कहा गया है। आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने सामान्य कथन में आत्मा के सभी गुण वेभव के वेदन में सिद भगवान मग्न हैं, कह दिया है। वे अपने ज्ञान दर्शन नेत्रो से युगपत स्वयं को संपूर्ण चराचर जगत को जानते देखने में मग्न हैं, वे घृति, वीर्य, शान्ति आदि के गहन वेदन में मग्न हैं, निर्भय हैं, निश्चित हैं। महावीर यह कर रहे हैं। प्रदेश चंचलता जो सदेह स्तर तक महावीर के हो रही थी और उपदेश विहार आदि होते थे वे अब नही हैं। एक ही स्थान अनन्त काल स्थित रह महावीर यह विपस्सना/प्रेक्षा कर अपने सुख का ध्यान करते ही रहेंगे। अपने ज्ञान-आनन्द के उपयोग लोक मे मग्न रहेंगे, तपस्वी महावीर ने सिद्ध अवस्था के इस कार्य को असम्पूर्ण, एक भाग ही किया था। उसमें 12 वर्ष तक पुनःपुनः मग्न होकर उन्होंने उसे सम्पूर्ण विशाल कर लिया, घातिया कर्म से बने कृत्रिम भाग को समाप्त कर दिया। तपस्वी महावीर ने सिद्ध महावीर बनने के लिए अन्य सिद्धों द्वारा किए जा रहे कार्य के बारे में प्रश्न किया था- पार्श्वनाथ क्या कर रहे हैं? और नमः सिद्धेभ्यः कह कर वही कार्य आरंभ किया और उसे करते करते अपने सुख आदि गुणो पर आये कृत्रिम घातिया मैल काटते काटते 12 वर्ष में केवली हो गए, उपयोग स्तर पर 'सिद्ध पार्श्वनाथ' समान हो गए। यह महावीर का तीर्थकाल है और हर मुमुक्षु पुनः पुनः प्रश्न करे और समझें महावीर अभी क्या कर रहे है ? महावीर का गुण वैभव अनंत है। अतः नया नया उत्तर मिलेगा और उत्तर वह ही आये तो रोज ही वह कार्य उसे नया, रसभरा लगेगा क्योकि स्वभाव भूत कार्य कभी बासा, पुराना, उबाने वाला नहीं होता। अतः हम अपने से उत्तर प्राप्त करें महावीर अभी क्या कर रहे है, और लग जाये उसी कार्य के करने में जितनी देर कर सके। छद्मस्थिक दुर्बलता से हटें तो पुनः कमर कस कर बैठें महावीर जो अभी कर रहे है, वह ही करने में। महावीर कृतकृत्य है हम भी वह करते कृतकृत्यता के अन्तर्मुहूर्त जीएंगे और एक दिन सदा के लिए कृतकृत्य हो जाएंगे।

◆

तत्त्वस्वरूपी भगवान महावीर

✍ आ सन्मति सागर

स्वतत्व स्वतत्व, स्वोभावोऽसाधारणो धर्म । अर्थात् अपना तत्व स्वतत्व होता है, स्वभाव असाधारण धर्म को कहते है। वस्तु के असाधारण रूप स्वतत्व को तत्व कहते है। तत्त्व शब्द भाव सामान्यवाची है क्योंकि तत् शब्द सर्वनाम वाचक है और सर्वनाम सामान्य अर्थ में रहता है। अत पदार्थ का भाव तत्त्व कहलाया। यहाँ तत् पद से कोई भी पदार्थ लिया गया है अर्थात् जो पदार्थ जिस रूप से अवस्थित है, उस का उस रूप होना यही यहा तत्त्व शब्द का अर्थ है। तत्त्व, परमार्थ, द्रव्यस्वभाव, परम परम ध्येय और शुद्ध ये सब एकार्थ वाची शब्द है। तत्त्व का लक्षण सत् है अथवा सत् ही तत्त्व है जिस कारण से कि वह स्वभाव से ही सिद्ध है, इसलिए वह अनादि निधन है, वह स्वसहाय है और निर्विकल्प है।

अविपरीतार्थ विषय तत्वार्थमत्युच्येत। अविपरीत अर्थ के विषय को तत्त्व कहते है। तत् इस सर्वनाम से विधि की विवक्षा है, तत् का भाव तत्त्व है। श्रुतज्ञान को विधि की सज्ञा कैसे हैं? इस का समाधान यह है यह सब नयों के विषय के अस्तित्व का विधायक है, इसलिए श्रुत की विधि सज्ञा उचित ही है। तत्त्व श्रुतज्ञान है। इस प्रकार तत्त्व में विधि पाई जाती है। अर्थ शब्द का व्युत्पत्तिक अर्थ है- अर्यते निश्चीयते इत्यर्थ । जो निश्चय किया जाता है वह अर्थ है। यहाँ तत्त्व और अर्थ इन दोनों शब्दों के सयोग से तत्वार्थ शब्द बना है, जो तत्वेन अर्थ तत्वार्थ ऐसा समास करने पर प्राप्त होता है। अथवा, भाव द्वारा भाव वाले पदार्थ का कथन किया जाता है, क्योंकि भाव वाले पदार्थ से वह अलग नहीं पाया जाता है। ऐसी हालत में इसका समास होगा तत्वमेव अर्थ तत्वार्थ । तत्वानि बहिस्तत्वान्तस्तत्व परमात्मतत्त्व भेद भिन्नानि अथवा जीवाजीवास्र व सवर निर्जराबध मोक्षाणा भेदासप्तधा भवन्ति। अर्थात् तत्त्व बहिस्तत्व, और अत स्वतत्त्वरूप एव परमात्मा ऐसे भेदों वाले है। अथवा जीव, अजीव, आस्रव, सवर निर्जरा, बध और मोक्ष ऐसे भेदों के कारण सात प्रकार के है। इन्हीं में पुण्य और पाप मिला देने पर नौ पदार्थ कहलाते है।

तत्त्व शब्द भाववाची है, इसलिए इसका द्रव्यवाची जीवादि शब्दों के साथ समानाधिकरण कैसे हो सकता है ? इसका समाधान यह है कि एक तो भाव द्रव्य से अलग नहीं पाया जाता है, दूसरा भाव का अध्यारोप कर लिया जाता है इसलिए समानाधिकरण बन जाता है। जैसे- उपयोग ही आत्मा है, इस वचन में गुणवाची उपयोग के साथ द्रव्यवाची आत्मा शब्द का समानाधिकरण है। उसी प्रकार प्रकृत में जानना चाहिए। यदि ऐसा है, तो विशेष्य का जो लिग और सख्या है वही विशेषण

को भी प्राप्त होते हैं ? इसका समाधान यह है कि व्याकरण का ऐसा नियम है कि विशेषण विशेष्य संबंध के रहते हुए भी शब्द शक्ति की अपेक्षा जिसने जो लिंग ओर संख्या प्राप्त कर ली है, उस का उल्लंघन नहीं होता, अतः यहाँ विशेष्य और विशेषण के लिंग के पृथक् पृथक् रहने पर भी कोई दोष नहीं है। औपशमिकादिक पांच भावो के समानाधिकरण होने से तत्त्व शब्द के बहुवचन प्राप्त होता है ? इसका समाधान यह है कि सामान्य स्वतत्व की दृष्टि से यह एक वचन निर्देश है।

विकारी होने योग्य और विकार करने वाला दोनों पुण्य हैं तथा दोनो पाप हैं, आस्रव होने योग्य और करने वाला दोनो आस्रव हैं, संवर रूप होने योग्य और संवर करने वाला दोनों संवर हैं, निर्जरा करने वाला और निर्जरा होने योग्य दोनों निर्जरा हैं, बंधने योग्य और बंध करने वाला दोनों बंध हैं, और मोक्ष होने योग्य और मोक्ष करने वाला दोनों मोक्ष हैं। एक के ही अपने आप पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा बंध, मोक्ष की उत्पत्ति नही वनती। वे दोनों जीव और अजीव हैं। आस्रवादि शेष तत्त्वों में जीव का आधार है अर्थात् एक जीव के ही जीवादिक नौ पदार्थ रूप होकर के विराजमान हैं। और, नव पदार्थो की अवस्थायें भी यदि विशेष दशा की विवक्षा न की जावे तो केवल शुद्ध जीव ही अनुभव में आता हे। पचाध्यायीकार लिखते हैं कि

अर्थान्नवपदीभूय जीवेश्चैको विराजते।
तघत्वेऽपि परंशुद्धस्तद्विशिष्ट दशामृते॥115॥

जीव, अजीव के भेद रूप जो आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य तथा पाप ऐसे सात पदार्थ हैं। चैतन्य आस्रवादि तो जीव के अशुद्ध परिणाम है ओर जो अचेतन कर्म पुद्गलों की पर्याय हैं वे अजीव के हैं। आस्रव, बंध, पुण्य और पाप ये चार पदार्थ जीव पुद्गल के संयोग परिणामस्वरूप जो विभाव पर्याय हैं उनसे उत्पन्न होते हैं। और संवर, निर्जरा तथा मोक्ष ये तीन पदार्थ जीव और पुद्गल के संयोग रूप परिणाम के विनाश से उत्पन्न जो विवक्षित स्वभाव पर्याय हैं; उससे उत्पन्न होते हैं। यह निर्णीत है। परस्पर में संबंध को प्राप्त उन दोनों जीव और पुद्गलों के ही निमित्त नैमित्तिक संबंध से होने वाले भाव से नव पदार्थ हैं। पंचाध्यायीकार ने लिखा है कि—

किं तु संबंधयोरेव तद्द्वयोरितरेतरम्।
नैमित्तिकनिमित्ताभ्यां भावा नव पदा अमी॥155॥

नौ पदार्थो में पुण्य और पाप दो पदार्थो का सात पदार्थो से अभेद करने पर अथवा पुण्य और पाप पदार्थ का बंध पदार्थ में अंतर्भाव करनेपर सात तत्त्व कहे जाते हैं। सर्व फल जीव को मिलता है। अजीव जीव का उपकारी है, यह दिखलाने के लिए जीव के बाद अजीव का कथन है। आस्रव जीव और अजीव दोनों को विषय करता है। अतः इन दोनों के बाद आस्रव का ग्रहण है। बंध आस्रव पूर्वक होता है, इसलिए आस्रव के बाद बंध का कथन किया है। संवृत जीव के बंध नहीं होता, अतः संवर बंध का

उल्टा हुआ इस बात का ज्ञान कराने के लिए बध के बाद सवर का कथन किया है। सवर के बाद निर्जरा होती है इसलिये सवर के बाद निर्जरा कही है। मोक्ष अत में प्राप्त होता है, इसलिए उसका अत में कथन किया है। अथवा, क्योंकि यहाँ मोक्ष का प्रकरण है। इसलिए उस का कथन करना आवश्यक है। वह ससार पूर्वक होता है, और ससार के प्रधान कारण आसव बध हैं तथा मोक्ष के प्रधान कारण सवर और निर्जरा है अत प्रधान हेतु, हेतुवाले और उनके फल के दिखलाने के लिए अलग अलग उपदेश किया है।

इन नौ पदार्थों को सर्वथा हेय मानने पर उनके बिना शुद्धात्मा की उपलब्धि नहीं हो सकती है। सर्वथा हेय वस्तु में अभावात्मक वस्तु में वाच्यता सिद्ध नहीं होती है क्योंकि अधकार में प्रवेश नहीं करने वाले मनुष्य को कुछ भी प्रकाश का अनुभव नहीं होता है। नव पदार्थों से अतिरिक्त सर्वथा शुद्ध द्रव्य की सिद्धि नहीं हो सकती है क्योंकि साधन का अभाव होने से उस द्रव्य की उपलब्धि नहीं हो सकती। उन नौ तत्त्वों में जो यह स्वसवेदन प्रत्यक्ष का विषय चैतन्यात्मक और जीव सज्ञावाला है वह मैं उपादेय हूँ तथा मुझ से भिन्न पौद्गिलक रागादिक भाव त्याज्य है।

इन्द्रियों से उत्पन्न होने के कारण मतिज्ञान आदि को आत्मा नहीं कहा जा सकता ? इसका समाधान यह है कि यदि ज्ञान इन्द्रियों से पैदा होता है ऐसा मान लिया जाये तो इन्द्रिय व्यापार के पहले जीव के गुण स्वरूप ज्ञान का अभाव हो जाने से गुणी जीव के भी अभाव का प्रसग प्राप्त होता है। इन्द्रिय व्यापार के पहिले जीव में ज्ञान सामान्य रहता है, ज्ञान विशेष नहीं, अत जीव का अभाव नहीं प्राप्त होता है ? इसका समाधान यह है कि तद्भावलक्षण सामान्य से अर्थात् ज्ञान सामान्य से ज्ञान विशेष पृथग्भूत नहीं पाया जाता है। प्रमाण और नय का व्याखान उद्देश्य, लक्षण निर्देश तथा परीक्षा इन के द्वारा किया जाता है। क्योंकि विवेचनीय वस्तु का उद्देश्य नामोल्लेख किये बिना लक्षण कथन नहीं हो सकता और लक्षण कथन किये बिना परीक्षा नहीं हो सकती, तथा परीक्षा हुए बिना विवेचन अर्थात् निर्णयात्मक वर्णन नहीं हो सकता। लोक व्यवहार तथा शास्त्र में भी उक्त प्रकार से ही वस्तु का निर्णय प्रसिद्ध है। भद्रबाहुचरित में लिखा है कि-

पक्षपातो न में वीरो न द्वेष कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचन यस्य तस्य कार्य परिग्रह ॥

न तो मुझे वीर भगवान में कोई पक्षपात है और न कपिल आदि अन्यमत प्रवर्तकों से में कोई द्वेष है। जिस का वचन युक्तिपूर्ण है उसका ग्रहण करना ही मेरे लिए प्रयोजनीय हे। अर्थात्, भगवान महावीर स्वामी ने तत्त्व को श्रद्धानुज्ञान पूर्वक आत्मसात किया। बीसवीं सदी में आचार्य आदि सागर जी अकलीकर सर्वप्रथम इसकी अभेदरूप प्रवर्ती करते हुए रत्नत्रय को निर्दोष पालन कर हम सब के लिया प्रेरणास्रोत हुए। 

प्रकृष्ट भावना से होती है प्रभावना

✍ आचार्य कनकनन्दी

पृथ्वी को उदास अन्यमनस्क आदमियों से अधिक खतरा है। दुःख, पीड़ा, अशान्ति, विकृतियो की जड़ें तभी मजबूत होती है जब व्यक्ति के अन्तरंग में उदासीनता, हीनता, आलस्य की भावना पनपती है। अगर व्यक्ति सहज-सरल-निष्कपट भावों के साथ खुलकर हॅसना सीख ले या खुलकर अपने मन को प्रसन्न रखे तो 90% रोग, पाप कम हो जायेंगे। हम सभी हंसते तो हैं लेकिन किस प्रकार हॅसना चाहिए यह नहीं जानते। हम सभी हँस रहे हैं, पूरी जिन्दगी हॅसते हैं, लेकिन स्वयं पर नहीं दूसरों पर दूसरो का अपमान हुआ, दूसरों को दुख, कष्ट, संकट परेशानी हुई तो हमको हॅसना आता है, खुशी होती है। दूसरों को सुख आनंद में हमें हॅसना नहीं आता। हमारी हॅसी वास्तविक हॅसी नहीं है। वास्तविक हॅसी तो वह है जब हम अपने कर्मों का विचार करें, स्वयं की क्रियाओं पर विचार करें कि हमने कितने सत्कर्म किये, हमने कितनों की सेवा, वैय्यावृत्ति, परोपकार किया। अगर हमें अपने सत्कार्यो पर सन्तुष्टि का अहसास होता हे, मन प्रफुल्लित होता है तो समझना यह वास्तविक हॅसी है। लेकिन यह संसारी प्राणी इस वास्तविक हॅसी को हॅस नही पाता। इस वास्तविक हॅसी के अभाव में आज सम्पूर्ण विश्व कष्ट-संघर्ष, परेशानियों का सामना कर रहा है। जिसे संसार की असारता, संसारी प्राणियों की पीड़ा, दुःख, कष्टों का अहसास होता है उसे दूसरों पर हॅसी नही आती, बल्कि स्वयं पर हॅसी आती है कि देखों ! मेरी मूर्खता है कि मैं भी अभी तक अज्ञानियों की क्रियायें करता रहा। अब मेरा हॅसी का समय आ गया, मेरी अज्ञानता मुझे समझ मे आ गई, अब मैं अज्ञान का त्याग करके हॅसी-खुशी के साथ धर्म की प्रभावना करुंगा। जो स्वयं को आनंदित रखना जानता है वही दूसरों को आनंदित कर सकेगा। जो स्वयं मे आनंदित होगा वह पर को दुःखी नही बनायेगा।

"आदहिदं कादव्व जइ सक्कइ परहिदं कादव्वं" पहले आत्म कल्याण करना चाहिए, सम्भव हो तो पर का कल्याण भी करना चाहिए। महात्मा बुद्ध ने भी यही बात कही "आप दीवो भव, पर दीवो भव"। पहले आत्मा रूपी दीपक को प्रकाशित करो, फिर दूसरो को भी प्रकाश दो। स्वकल्याण होने के बाद ही परकल्याण संभव है। इसीलिए धर्म की प्रभावना तभी संभव है जब हम सर्वप्रथम रत्नत्रयरूपी आध्यात्मिक ज्योति से स्वयं को प्रकाशित करें।

प्रकृष्ट/उत्कृष्ट/उदार/निर्मल/पवित्र साम्यभाव को प्रभावना कहते है। प्रभावना पहले स्वयं में होती है, उसके अनन्तर उसका प्रचार-प्रसार विभिन्न माध्यमों से किया जाता है। प्रभावना के अनेक कारक/कारण/उपाय/आयाम/पहलू होते हैं। जैसे-दान, पूजा, उपवास, सांस्कृतिक कार्यक्रम, रथयात्रा, पंचकल्याणक, वेदीप्रतिष्ठा, तीर्थयात्रा, सत्साहित्य, धार्मिक पत्रिकायें आदि। परन्तु पवित्र, निर्मल, उदात्त, प्रकृष्ट भावना या महान् उदार उद्देश्य के बिना उपरोक्त कारक-कारण भी वस्तुतः प्रभावना के अंग/उपाय नहीं बन सकते है। जैसे- अंकुरोत्पत्ति की शक्ति से रहित बीज को पानी देने पर भी उस

बीज से अकुरोत्पत्ति नही हो सकती है। अन्तरग अच्छी भावनाओं से रहित बाह्य प्रभावना की शोभा उसी प्रकार है जिस प्रकार शवयात्रा की शोभा। नाम-बड़ाई, सम्मान के खातिर जो दानादि करके बाह्य प्रभावना करते है वह वास्तविक प्रभावना नहीं है। उदाहणार्थ कुछ व्यक्ति माता-पिता, भाई-बहिन आदि की सेवा सहायता में बेपरवाह रहते हैं। यहाँ तक कि अपने ग्राम नगर में आगत उत्तम पात्र स्वरूप मुनि आर्यिका आदि को दान मान-सम्मान नहीं देते, गॉव के मदिर में पूजा दर्शनादि नहीं करते, पर पचकलयाणक आदि में भीड़ देखकर लाखों रुपयों की बोली लेते है।

देवदर्शन, तीर्थयात्रा, पूजा, पचकल्याणकादि का मुख्य उद्देश्य स्वदर्शन, अन्तर्यात्रा, स्वकल्याण है। अभी अनेकों व्यक्ति धर्मकार्य को धनकार्य, परमार्थ को अर्थोपार्जनों पाय रूप में प्रयोग कर रहे हैं। अभी पचकल्याणक तो पचों के कल्याणक (कमेटी वालो की स्वार्थ सिद्धि) रूप में होता है। वहाँ धर्म के नाम पर धन की पूजा, धर्मी के नाम पर धनी की पूजा प्रभावना के नाम पर बाह्य आडम्बर (मनोरजन, बैन्ड बाजे, सगीत, पार्टी, नाटक), बोली, धनी व्यक्तियों का मान सम्मान, फूलमाला पहनाना आदि होता है। धार्मिक कार्यों के नाम पर पहले शोषण करते हैं, चदा इकट्ठा करते है। जो यात्री उस कार्यक्रम में आते है उनकी व्यवस्था नहीं करते, केवल धनी लोगों की व्यवस्था करते है। इसी प्रकार बड़े-बड़े तीर्थस्थानों की भी महिमा है।

जो व्यक्ति बोली में लाखों रुपया खर्च करते हैं वे भी सत्साहित्य प्रकाशन, बच्चों के धार्मिक सस्कार, धार्मिक विद्यालय शिविर आदि के लिए 10-20 रुपये भी दान में नहीं देंगे। मदिर, धर्मशाला, मूर्ति निर्माण, पच कल्याणक, जरूर करने चाहिए परन्तु इससे भी अधिक आवश्यक है ज्ञान-प्रचार, बच्चों में सस्कार, स्वय का निर्माण।

आज जैन लोग करोड़ों, अरबों रुपये निर्जीव मूर्ति को भगवान बनाने में खर्च करते हैं, परन्तु हजारों रुपये भी सजीव बच्चों को सस्कार से महामानव या भगवान बनाने में खर्च नहीं करते हैं। मै मदिर, मूर्ति, पचकल्याण का विरोधी नहीं हूँ, परन्तु व्यर्थ खर्च, बाह्य आडम्बर का अवश्य विरोधी हूँ। कुछ त्यागी-व्रती, आचार्य, उपाध्याय साधु-साध्वी और पडित, प्रतिष्ठाचार्य भी आडम्बर, बोली आदि आगम विरुद्ध कार्य को करवाते हैं। उनकी निन्दा पत्रिकाओं तक में बार-बार आती है। कुछ निहित स्वार्थी व्यक्ति भी अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए साधु का इस्तेमाल करते है एव स्वार्थ सिद्धि के बाद वे भी उन साधु आदि की निदादि करते है तथा साधु की सेवा व्यवस्था नहीं करते हैं।

धर्म की प्रभावना तथा सगठन/प्रेम के लिए सस्था/सभा/समिति मण्डल मिलनादि का जन्म होता है, परन्तु इनके माध्यम से भी समाज में फूट, वैमनस्य, द्वेष घृणा, ईर्ष्या, वैर अधिक बढ़ रहा है। वे अग्रेजों की नीति "फूट डालो राज करो' को पूर्ण चरितार्थ करते है। सगठन की शक्ति ऐसी शक्ति है जिससे कष्टसाध्य कार्य सुख-साध्य हो जाता है। इसलिए कहा है 'सघे शक्ति कलौयुगे' अर्थात् कलियुग में सघ/सगठन/एकता में शक्ति है, United we stand, divided we fall सगठन से हम उन्नति कर सकते है प्रभावना कर सकते हैं जीवित रह सकते है, एव विघटन से मर जाऐंगे, मिट जायेंगे।

इसलिए मेरी कृति संगठन के सूत्र में मैंने लिखा है–

संगठन है अमृतत्त्व, जीने और जिलाने का।

विघटन है तत्व, मरने और मारने का॥

मैंने जो भारत तथा विशेष करके जैन धर्मानुयायी के दुर्बल बिन्दुओं का अनुभव किया है वह है असंगठन/अप्रेमभाव/फूट/अन्तः कलह। इसलिए तो, कर्नाटक के अजैन बन्धु जैनियों को उलाहना देते हुऐ कहते हैं कि 'डोम्बरु कुड़दाग केट्टरु जैनरु कूड़िदाग केट्टरु' अर्थात्, डोम्ब यदि मिलेंगे नहीं तो खेल नहीं दिखा सकते हैं इसलिए नहीं मिलना, संगठित नहीं होना उनके लिए आपत्ति जनक है, परन्तु जैन मिलेंगे तो झगड़ा करेंगे, इसलिए जैनियों को एक साथ नहीं मिलना चाहिये। संगठन के लिये निम्नोक्त दोहा याद करें।

हम सबके, सब हमारे, यह ही एकता का नारा है।

आत्म भाव सर्व भूतेषु, यह मन्त्र सबसे प्यारा है॥

धर्म की प्रभावना के लिये अनेक जैन पत्रिकाऐ निकलती हैं, परन्तु उनमें विशेषतः स्व की प्रशंसा एवं दूसरों की निन्दा निकलती हैं। तथा, विज्ञापन की आड़ में धन प्रभावनार्थ व्यसन प्रभावना करते है और चुटकी, गुटका, शीतल पेय आदि से अलौकिक सुख व ताजगी दिलाना चाहते हैं। किसी की भूल सुधार करना अवश्य चाहिए परन्तु पत्रिका में नाम देकर निन्दात्मक लेख नहीं निकालना चाहिये। इससे स्वयं की, धर्म की अप्रभावना होती है। जैसे माता-पिता आदि के गुप्तांग में रोग होने पर उसकी योग्य चिकित्सा एकान्त में करना चाहिए, परन्तु सबके सम्मुख खोलकर उस अंग को नही दिखलाना चाहिये। सामान्य रूप से नाम दिये बिना गुण दोष की समीक्षा, समाधान पत्रिका में देना चाहिये इससे रचानात्मक, मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है, परन्तु नाम देने से विपरीत प्रभाव पड़ता है।

आत्म कल्याण के लिए व्रत नियम-दीक्षादि योग्य पात्र को अवश्य देना चाहिये परन्तु अपात्र को नहीं देना चाहिए, क्योकि जैनधर्म, जैन व्रत, जैन दीक्षा स्वेच्छाचार विरोधिनी है। जैसे आहारादि दान कुपात्र को देने से विपरीत फल मिलता है।, इस कार्य से उससे भी अधिक भयंकर फल इहलोक में परलोक मे गुरु शिष्य, समाज को मिलता है। लोभ से शिष्य बनाना भी सचित परिग्रह है। परिग्रह पाप का कारण है एवं पतन का कारण है। आचार्य-उपाध्याय-साधु-साध्वी-क्षुल्लकादि का मुख्य कर्त्तव्य है कि ध्यान-अध्ययनादि से आत्म कल्याण करना तथा समयानुसार परोपकार भी करना। परन्तु आत्म के कल्याण को छोड़कर, स्व आत्म सिद्धि को छोड़कर प्रसिद्धि के लिए संस्था, चंदा चिट्ठा में नहीं लगना चाहिए। इसमें परिग्रह-सचय संरक्षणादि होता है, राग द्वेष होता है, निन्दा, अप्रभावनादि होती है जो आत्म पतन के कारण हैं। इसी प्रकार परिग्रह, गाडी, चौका, नौकरादि नहीं रखना चाहिए। मंत्रादि का प्रयोग स्वार्थ के लिये नहीं करना चाहिये। धर्म की प्रभावनार्थ कर सकते है। धर्म प्रभावना के लिए चरित्र भ्रष्ट राज नेताओं को धार्मिक कार्यक्रम में निमन्त्रण देना वर्तमान में आधुनिकता, फैशन, गौरव, स्वार्थ सिद्धि, भीड़ इकट्ठा करने का साधन है। यदि कोई कार्यक्रम में नेता, अभिनेता, (संगीतकार, नाटककारादि) नहीं आते हैं तो उस कार्यक्रम को फीका मानने लगते है। उसके लिये भेड़ चाल की चलने वालों की भीड़ भी लगती है। सहज रूप से धर्म की भावना लेकर आते

है उन्हीं का स्वागत करो, न कि अपनी प्रदर्शनी/प्रसिद्धि/प्रभावना के लिए या अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये आते हैं उनका साधु आदि के पिच्छी, कमण्डल, केशलोंच, शास्त्रादि उपकरण की बोली न स्वय लगाएँ न लगवाएँ और न श्रावक को लगाने दें, बल्कि जो व्रतादि स्वीकार करे उसके हाथों से समर्पण करवाना चाहिये। साधु को अपनी प्रसिद्धि के लिए जन्म जयन्ति नहीं मनवाना चाहिये। साधु विश्व के सर्वश्रेष्ठ आदर्श पुरुष होते हैं उन्हें अपने को कलकित नहीं करना चाहिये। अन्य धर्मात्माओं को भी साधुओं को आदर्श रखना चाहिये एव ऐसो की ही सेवा करनी चाहिये। साधु व्रती के बाद पडित का स्थान महत्वपूर्ण है। परन्तु अनेक पडित जिनवाणी माता को बेचते रहते है एव पथवाद को उकसाते रहते हैं। 'विद्या ददाति विनय'' के विपरीत इनका मुख्य लक्षण अहकार है। उनका जीवन साधारण जन से भी पतित, निन्दनीय, अन्धकारपूर्ण रहता है। वे उपदेश देते है टन भर, सुनते हैं मन भर, ग्रहण करते है क्षणभर, चलते नहीं है कणभर।नीतिकार ने कहा भी है–

सुलभा धर्मवक्तारा यथा पुस्तक वाचका
ये कुर्वन्ति स्वय धर्म विरलास्ते महीतले ॥

विश्व में पुस्तक पढ़ने के समान धर्म का उपदेश करने वाले सुलभ हैं। जो स्वय धर्म का आचरण करते है वे दुर्लभ होते हैं। जैनधर्म एक सार्वभौम, स्वतत्र, वैज्ञानिक गणितीय, सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय त्रिकालाबाधित वस्तु-स्वभावप्रकाशक धर्म है। जैन धर्म में विश्व के समस्त ज्ञान-विज्ञान कला-विद्या के सूत्र भरे हुये हैं। परन्तु इस वैज्ञानिक, तार्किक, शोध-बोध के युग में भी जैन साधु-साध्वी, श्रावक-पडितादि कोई विशेष युगानूकूल वैज्ञानिक शोध करके धर्म का प्रचार नहीं कर रहे हैं। रटे-रटैया, घिसे पिटैया, लकीर के फकीर बनकर रूढ़िवादी बनते है। विज्ञान के पास प्राचीन विरासत नहीं होने पर भी विज्ञान तथा अन्य मत मतान्तरों से भी जैनियों की गति अति ही मन्द है। और जो इस शोधपूर्ण कार्य को कर रहे हैं उनको भी विशेष सहायता या सराहना नहीं मिल रही है। वर्तमान में लोग भीड़ को प्रभावना मानते हैं अच्छी बोली होने पर अच्छा पचकल्याणक मानते हैं शादी, विवाह प्रीतिभोज (पार्टी में) मद्यमान, धुम्रपान, वेश्यानाच, ब्लू फिल्म देखने को आधुनिकता मानते है, हिसात्मक प्रसाधन यथा नेलपालिस, लिपिस्टिक, सेम्पू, चमड़े की वस्तुओं का प्रयोग, होटल बाजार में खड़े होकर खाना, बफे सिस्टम, बाजार में लावारिस के समान घूमने को फैशन मानते है। आधुनिक जैनियों के आधुनिक षट् कर्तव्य निम्न प्रकार हो गये हैं –

पेट पूजा धनोपास्ति सिगरेट बूटपालिस।
होटल सिनेमाश्चेति षट्कर्माणि दिने-दिने ॥
सत्य अहिसा और प्रेम से बस इतना हमारा नाता है।
दीवारों पर लिखवा लेते हैं दिवाली पर पुतवा देते हैं॥

वर्तमान काल में अधिकाश व्यक्ति निम्न कारणों से धर्म करतेहैं–

भय दाक्षिण्य कीर्ति च लज्जाया आशा तथैव च।
पचमि पचमकाले जैनो धर्म प्रवर्तत ॥

पचमकाल में लोग जैन धर्म को (1) लोक भय से (2) अपनी योग्यता का प्रदर्शन के लिये (3) कीर्ति के लिये (4) लज्जा से (5) आशा से पालन करेंगे।

प्रभावना तो अन्तस् की उपलब्धि है। हमारा आचरण ही हमारी प्रभावना है। प्रभावना के पहले

अपने आचरण को देखें। हम महावीर के आचरण को जानते हैं, पर मानते नही। महावीर ने जनता को दिखाने वाला आचरण नहीं किया, बल्कि स्वयं के परमात्मा को जगाने वाला आचारण किया। उन्होंने आदर्शो का प्रदर्शन नहीं किया, बल्कि अन्तः दर्शन किया।

प्रातः आकाश में सूर्य निकलता है, घास पत्तो पर पड़ी ओंस की बूँदे विलीन हो जाती हैं। फिर उन बूँदो को खोजने के बाद भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। ओस का जीवन ठंड का वातावरण मिलकर बनता है, सूर्य-किरण उसके जीवन को विनष्ट कर देती है इसी प्रकार जब भी अन्तरंग मे आचरण रूपी सूर्य का उदय होता है तब कामवासना, लोभ, मोह, क्रोध कषाय रूपी ओस वाष्पीभूत होकर विलय को प्राप्त हो जाती है। आचरण रूपी सूर्य विकृति रूपी ओस को समाप्त कर देता है। आचरण का सूर्य उदय होते ही प्रकाश रूपी प्रभावना करनी नही पडती बल्कि स्वतः ही प्रकाश की महिमा/प्रभावना का ज्ञान दूसरों को हो जाता है। सम्यक् आचरण और विषय वासना दोनो एक साथ रह नहीं सकते। जहॉ अहिंसा, सत्य, प्रेम, वात्सल्य, दया, क्षमा, करुणा, आदि सदगुण होते है वहॉ काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, अहंकार आदि दुर्गुण नहीं हो सकते।

जो अपने सदाचारण प्रकाश से दुराचरण रूपी अंधकार का विनाश करता है वही धर्म की प्रभावना कर सकता है। 

भगवान महावीर की 2600 जन्मजयन्ती को मनाने का अधिकारी कौन?

✍ आ. कनकनंदी

महापुरुषों की जन्म जयन्ती आदि मनाना या उनकी पूजा प्रार्थनादि करने का मुख्य उद्देश्य है उनके गुणानुस्मरण के साथ-साथ गुणानुकरण करना। उनके चरण-स्मरण के साथ-साथ उनके आचरण का अनुकरण करना तथा दूसरो को भी प्रेरित करना। जैसा कि अनुकरण दीपक के सम्पर्क में बुझा हुआ दीपक प्रज्जवलित होकर दूसरे दीपक को भी प्रज्जवलित करता है, दूसरों को भी प्रकाशित करता है। वैसा ही भगवान महावीर की 2600 वी जन्मजयन्ती को सफल बनाने का एक उपाय हे भगवान महावीर के आदर्शों को स्वयं आतमसात, करके दूसरों को भी उन आदर्शों को अपनाने के लिए प्रेरित करें। जो ऐसा करता है वह ही भगवान की जन्मजयन्ती मनाने का अधिकारी है। इस अधिकार को प्राप्त करने के कुछ कर्त्तव्य निम्नोक्त है:-

1 अनेकान्त-

भगवान महावीर का सर्वोत्तम सिद्धान्त/आदर्श/धर्म है अनेकान्त। भावो के उदार, उदात्त, सहिष्णु, व्यापक, असंकीर्ण, सरल-सहज बनाना तथा सत्य का जिज्ञासु रहना अनेकान्त है। Right is mine मानना परन्तु Mine is Right नही मानना। तार्किक दृष्टिकोण रखते हुए भी पक्षपात, पुर्वाग्रह, हठग्राह, कठोरता, हृदय शून्यता नही होना। श्रद्धा रखते हुए भी विवेकशील, तर्कशील, कर्त्तव्यनिष्ठ होना चाहिए। अनन्त जीव है, उनके कर्म भी भिन्न है, इसीलिए प्रत्येक संसारी जीव के भाव, कर्म, कथन, भोजन वस्त्रादि का भिन्न-भिन्न होना स्वाभाविक है।

अत किसी से भी अनावश्यक अप्रयोजनभूत वाद-विवाद झगड़ा-कलह, वैमनस्य, राग द्वेष नही रखना चाहिए। प्रत्येक जीव के प्रति मित्रता, गुणियों के प्रति प्रमोद/वात्सल्य, दुखियों के प्रति कृपा/सेवा दयाभाव तथा दुष्ट क्रूर, विधर्मी के प्रति माध्यस्थ/समता भाव का व्यवहार करना। इससे भावों में पवित्रता, वचनों में मधुरता, व्यवहार में सरसता, समाज-राष्ट्र-विश्व में एकता का सचार होता है। इस परिप्रेक्ष्य में प्रत्येक धर्मावलम्बियों को तथा जैनियों को आत्म विशलेषण करना है कि क्या वे इस अनेकान्त को श्रद्धा, ज्ञान, आचरण, वचन में अपनाते है ? क्या वे पथ ग्रथ, सत को लेकर अनेकान्त की निर्मम हत्या करने से बचते है ? क्या वे साधर्मियों से भी उदारता, सहिष्णुता का व्यवहार करते हैं ? यदि उत्तर विधिपरक है तो वे सच्चे धार्मिक है और वे ही भगवान् महावीर की जन्म जयन्ती मनाने के अधिकारी है।

2 अहिसा– भगवान् महावीर का दूसरा एक महान् सिद्धान्त है अहिसा। कषाय भाव से रहित भावों की पवित्रता रूपी भाव अहिसा के साथ-साथ दूसरों को सर्वथा कष्ट न पहुचाकर सुख पहुँचाना, सेवा/सुरक्षा करना अहिसा है। इसके लिए मन वचन काय, कृत, कारित, अनुमोदना से पवित्र रहना, पवित्र बोलना, पवित्र व्यवहार करना, पवित्र खाना पवित्रता से धन कमाना, पवित्र वस्तुओं का प्रयोग करना आदि अपरिहार्य है। इसके बिना अहिसा मृगमरीचिका के समान है। अहिसा से प्रत्येक जीव की सुरक्षा, समृद्धि होती है, युद्ध, हत्या, आतक आदि नहीं होते हैं, पर्यावरण की सुरक्षा है। जीवों को क्षति नहीं पहुँचती। अतिवृष्टि, अनावृष्टि अकाल, भूकम्प आदि नहीं होते है।

धर्मात्माओं को आत्मविश्लेषण करना है कि क्या वे व्यापार, भोजन व्यवहार फैशन आदि में अहिसात्मक पद्धति से अहिसापरक वस्तुओं का प्रयोग करते हैं क्या वे स्वय तो हिसात्मक वस्तुओं का प्रयोग नहीं करते हैं वे व्यापार में भी हिसात्मक वस्तुओं (चर्म निर्मित वस्तु, बीड़ी, सिगरेट, पानपराग, नेलपॉलिश, लिपिस्टिक शैम्पू आदि) का प्रयोग/व्यवसाय नहीं करते है यदि व्यापार से लेकर व्यवहार में अहिसा है तो जन्म जयन्ती मनाने के लिए उत्तम पात्र है।

3 वीतरागता– भगवान् महावीर का एक और बड़ा सिद्धान्त है वीतरागता। समस्त अन्तरग बहिरग परिग्रह, बधन ग्रथि अनात्म-वस्तुओं से ममत्व आसक्ति/तृष्णा/राग को दूर करके स्वशुद्धात्म की साम्यावस्था में स्थिर होना ही वीतरागता है। स्व स्व भूमिका/अवस्था के अनुसार इसे प्राप्त करना प्रत्येक धर्मात्मा का कर्त्तव्य है। इसे ही मोक्षमार्ग/रत्नत्रय कहते है। जैन श्रावकों को धनार्जन में/भोग में/सयोग में वियोग में अनासक्त/वीतराग होना चाहिए। साधुओं को प्रसिद्धि में भी अनासक्त होना चाहिए। इस परिप्रेक्ष्य में आत्मविश्लेषण करना चाहिए कि क्या वे धनार्जन से लेकर धार्मिक क्षेत्र में वीतरागी की जगह में वित्तरागी/धनाकॉक्षी सिद्धि के बदले में प्रसिद्धिकाँक्षी तो नहीं है। यदि नहीं है तो जन्म जयन्ती मनाने के सच्चे अधिकारी है।

इसी प्रकार जो व्यक्ति दृढश्रद्धानी, विवेकी, कष्ट सहिष्णु दुरदृष्टि सम्पन्न जैन सिद्धान्तों का गहन वैज्ञानिक अध्येता वक्ता-विश्लेषक-लेखक स्वमत-परमतज्ञाता के साथ-साथ समन्वयक, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के अनुसार जानने-मानने-कहने एव चलने

वाला, पर अनिन्दक, गुणग्राही, कृतज्ञ, मिलनसार, नेतृत्व तथा संगठन गुण सम्पन्न,वाग्मी प्रतिपन्न, बुद्धिसम्पन्न आदि गुणों से युक्त हैं तो वे जन्म-जयन्ती मनाने के अधिक योग्य हैं।

जन्म जयन्ती मनाना तब सफल होगा जब महावीर को मानने वाले परस्पर में सहिष्णु होंगे, मांस शराब, बीडी, सिगरेट, तम्बाकू, हिंसात्मक प्रसाधन की वस्तुओं का सेवन, उत्पादन, निर्माण, विक्रय नहीं करेंगे , अन्यायपूर्ण धन का उपार्जन नहीं करेंगे , दिखावा, आडम्बर, विलासपूर्ण जीवन के लिए धन-समय-श्रम का दुरुपयोग न करके आत्मकल्याण, धार्मिककार्य, परसेवा में सदुपयोग करेंगे। ◆

भगवान् महावीर की महानता और व्यक्ति की क्षुद्रता

✍ आचार्य कनकनंदी

भगवान महावीर केवल एक व्यक्ति नहीं थे परन्तु एक महान् आदर्श व्यक्तितत्व के धनी, आत्मदृष्टा के साथ-साथ विश्वदृष्टा, आत्मानुशासक के साथ-साथ शास्ता/आप्त/धर्मप्रवर्तक/तीर्थंकर,आत्मज्ञ के साथ-साथ विश्वज्ञ/महावैज्ञानिक, आत्मकल्याणकर्ता के साथ-साथ समाज-राष्ट्र विश्वकल्याणकर्ता थे। निश्चित काल, क्षेत्र, वंश, जाति में जन्म लेने के पर भी उनके सिद्धान्त उस कालादि सीमा से परे सार्वभौम, वैश्विक, सार्वकालिक, "सर्वजीव हिताय-सर्वजीव सुखाय" थे। इसीलिए महावीर को कोई एक निश्चित काल, क्षेत्र, धर्म, सम्प्रदाय, जाति, वंश, यहाँ तक कि मनुष्य जाति की सीमा में भी नही बाँधा जा सकता है, जैसे आकाश को किसी भी सीमा/क्षेत्र में नहीं बाँधा जा सकता। वे पवित्रता, समृद्धि, सत्ता, विभूति, त्याग, ज्ञान, मुक्ति, शक्ति आदि की चरमोत्कृष्टतम सीमा के उदाहरण थे और अभी भी हैं। उनके द्वारा प्रतिपादित कुछ महानतम सिद्धान्तों के बारे में निम्न प्रकार चर्चा कर रहे है-

(1) अनेकान्त— भगवान महावीर ने जाना माना और कहा था कि प्रत्येक द्रव्य, पर्याय, घटना, गुण अनेकान्तात्मक/सापेक्ष होते हैं; इसीलिए इन्हें अनेकान्त की दृष्टि से ही जानना मानना एवं कहना चाहिए। इससे जीव में सत्याग्रहिता, व्यापकता, उदारता, सहष्णिुता, भाव-अहिंसा, मृदुता, जिज्ञासा, एकता आदि गुण प्रगट होंगे जिससे जीव धीरे-धीरे विकास करता हुआ जीव से जिनेन्द्र, बुद्धू से बुद्ध, खुद से खुदा, मानव से भगवान् बन जायेगा। परन्तु अधिकांश जीव यहाँ तक कि जो स्वयं को महावीर का सच्चा अनुयायी कहता फिरता है उसमें भी अनेकान्त के बदले में एकान्त, सत्यग्राहिता के परिवर्तन मे हठग्राहिता, व्यापकता के बदले मे कूपमण्डूकता, उदारता के बदले मे संकीर्णता, सहष्णिुता के बदले में असहिष्णुता, ईर्ष्याभाव, अहिंसाभाव के बदले में धूर्तता, कटुता, तृष्णा, धोखाधडी, मद आदि, मृदुता के बदले में कठोरता, जिज्ञासा के बदले में पूर्वाग्रह, एकता के बदले में फूट आदि दुर्गुण पाये जाते हैं।

2 अहिसा— आत्मा की शुद्ध सहज पवित्र, सरल उदार भावना ही यथार्थ से अहिसा है। इससे युक्त होकर दूसरों की रक्षा, सहायता, सेवा ही द्रव्य अहिसा है। सक्षिप्त पवित्र भावना से युक्त सद्व्यवहार ही अहिसा है। सामान्यत जीव, यहाँ तक कि महावीर के अनुयायी कहलाने वाले भी ऐसी अहिसा से दूर रहते है। कुछ धन के लिए तो कुछ तन के लिए, तो कुछ नाम के लिए तो कुछ मत के लिए दोनों प्रकार (द्रव्य हिसा+भावहिसा) की हिसा करते है और अहिसा का स्वाग रचाते है। ज्यादा से ज्यादा अहिसा देवालय, भोजनालय, वाचनालय में ही होती है परन्तु कार्यालय, न्यायालय, हृदयपटल में नहीं होती है। धर्मकार्य में आनुषगिक द्रव्यहिसा से बचने वाले भी जिससे धर्मकार्य में आनुषगिक द्रव्यहिसा हो जाती है, उससे घृणा द्वेष, हीन व्यवहार करके गर्हित महा भावहिसा करके स्वय को महाअहिसक सिद्ध करते हैं।

3 अपरिग्रह - स्वशुद्ध आत्मा को छोड़कर समस्त तृष्णा, घृणा, असहिष्णुता, द्वेष, अहकार आदि अन्तरग परिग्रह तथा धन सम्पत्ति बाह्य द्रव्य परिग्रह है। परिग्रह को भी भगवान् महावीर ने हिसा ही कहा है। स्वशक्ति के अनुसार उपर्युक्त परिग्रह का त्याग करना ही सुख शान्ति, मोक्ष का मार्ग है। परन्तु जीव दोनों प्रकार के परिग्रह में ही लगा रहता है। यहाँ तक कि भगवान् महावीर के अनुयायी कहलाने वाले भी इस अधी दौड़ में सम्मिलित हैं। परिग्रह के कारण दूसरों का शोषण मिलावट धोखाधड़ी फूट/कपट झूठ दगाबाजी करते है जिससे हिसा, चोरी परिग्रह आदि पापों का सचय करते है। कहाँ तक कहा जावे धार्मिक विधि विधान, पचकल्याणक चातुर्मास, मदिर-मूर्ति निर्माण केशलोंच, पिच्छीपरिवर्तन, समाधिमरण-सस्कार आदि में भी परिग्रह का ही बोलबाला है।

4 विश्वबन्धुत्व–

द्रव्य दृष्टि से प्रत्येक जीव समान होने से सर्वजीवों के प्रति साम्यभाव रखने के लिए भगवान् महावीर ने कहा था। इससे विश्व में शाति की स्थापना होती है। परन्तु जीव सत्ता, सम्पत्ति, यश-कीर्ति, धर्म के लिए हिसा, विषमता, युद्ध, तनाव, क्लेश, ईर्ष्या अधिक करता है। भगवान् महावीर के अनुयायी कहलाने वाले भी धन-मान-नाम-सम्मान के लिए या धर्म के नाम पर भगवान महावीर के अनुयायियों से भी घृणा द्वेष भेदभाव ईर्ष्या करते हैं और फूट डालते हैं।

अतएव जीव को शान्ति चाहिए तो भगवान महावीर के चरण वन्दन से उनका आचरण, भगवान् महावीर रूपी व्यक्ति से उनके व्यक्तित्व का अनुकरण मदिर में भगवान महावीर की मूर्ति स्थापना से मनमदिर में मूर्तिमान की स्थापना, मदिर आदि में द्रव्य अहिसा से व्यवहार में द्रव्य-भाव अहिसा का पालन केवल आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। आओ। हम सब मिलकर भगवान् महावीर की 2600वीं जन्मजयन्ती में उनके सिद्धान्तों को अपनाकर स्व-पर का कल्याण विश्व कल्याण करें।



'नय' एक अनुचिंतन

✍ आ. विरागसागर

ज्ञान आत्मा का गुण है जो कि त्रिकाल साथ रहता है। ज्ञान के बल से ही हम विश्व की चराचर वस्तु को जान सकते हैं। जैनागम में वस्तु को जाननें की दो विधि बतलाई है– प्रमाण और नय।

प्रमाण सकलार्थ ग्राही होता है जो कि वस्तु के सर्व पहलुओं को देखता है। (सकलादेशा प्रमाणाधीनः)। नय वस्तु का (विकलादेश) अर्थात् अपेक्षाकृत कथन करता है। जिनेन्द्र प्रभु ने सापेक्ष नय को सम्यक् और निरपेक्ष नय को मिथ्या कहा है। नय का अर्थ अपेक्षावाद भी है। जैसे ऋषभनाथ जी पिता है, तो वह मात्र अपने पुत्र व पुत्रियों की अपेक्षा से, न कि नाभिराय की अपेक्षा से। इसी तरह पुत्र है तो पिता जी अपेक्षा से, न कि भरत भी अपेक्षा से। अतः सिद्ध है कि जो नय सापेक्ष कथन करता है वही सम्यक् है, निरपेक्ष नहीं। साथ ही यह भी ध्यातव्य है कि अपेक्षा भी यथा योग्य अर्थात् सम्यक् होनी चाहिए, अन्यथा नही होनी चाहिए। जैसे कौआ काला है वह पंखादि की अपेक्षा से ही काला है, रक्तादि की अपेक्षा से नहीं, इत्यादि।

नयों का कथन सूक्ष्म, सम्यक् और सांगोपांग जितना जैनागम में मिलता है उतना कही नही मिलता है। इसके समझे बिना जिनागम सम्यक् समझ मे नहीं आ सकता है।

णत्थि णएहिं विहूणं सुत्त अत्थो व्व जिणवर मदम्हि।
तो णय-वादे णिउणा मुणिणो सिद्धंतिया होंति॥
तम्हा अहिगय-सुत्रेण अत्थसंपायणम्हि जइयव्वं।
अत्थ गई वि य णय-वाद-गहणलीणा दुरहियम्मा॥

ध. पु. 1/1, 1, 1/गा. 68-69

अर्थ– जिनेन्द्र भगवान् के मत मे नयवाद बिना सूत्र और अर्थ कुछ भी नहीं कहा गया है। इसलिए जो मुनि नय वाद में निपुण होते हैं वे सच्चे सिद्धान्त के ज्ञाता समझने चाहिए। अतः जिसने सूत्र अर्थात् परमागम को भले प्रकार जान लिया है, उसे ही अर्थ संपादन मे अर्थात् नय और प्रमाण के द्वारा पदार्थ का परिज्ञान करने में प्रयत्न करना चाहिए, क्योकि पदार्थो का परिज्ञान नयवाद रूपी जंगल में अन्तर्निहित है, अतएव दुरधिगम्य है।[1]

जम्हाणयेण ण विणा होइ णरस्स सियवाय पडिवत्ती।
तम्हा सो णायव्वो एयन्तं हंतुकामेण॥
झाणस्स भावणा वि य ण हु सो आराहओ हवे णियमा।
जो ण विजाणइ वत्थुं पमाण णय णिच्छयं किच्चा।
णिक्खेव णयपमाणं णादूणं भावयंति ते तच्चं।
ते तत्थतच्चमग्गेलिहंति लग्गा हु तत्थयं तच्चं॥

अर्थ– क्योंकि नय ज्ञान के बिना स्याद्वाद की प्रतीति नहीं होती इसलिए एकान्त बुद्धि का विनाश कने की इच्छा रखने वालों को नय सिद्धान्त अवश्य जानना चाहिए। जो प्रमाण व नय द्वारा निश्चय करके वस्तु को नहीं जानता, वह ध्यान की भावना से भी आराधक कदापि नहीं हो सकता। जो निक्षेप, नय और प्रमाण को जानकर तत्त्व को भाते है वे तत्त्वमार्ग में तत्थ तत्त्व अर्थात् शुद्धात्मतत्त्व को प्राप्त करते हैं।[2]

वे नय भी मुख्यत दो भाषाओं में विभक्त है–आगम भाषा और अध्यात्म भाषा। इसे ही सर्व प्रथम सही सझने का प्रयास करें।

आगम और अध्यात्म भाषा– वीतराग सर्वज्ञ देव के द्वारा द्रव्य व सप्त तत्त्व आदि का सम्यक् श्रद्धान व ज्ञान तथा व्रतादि के अनुष्ठान रूप चारित्र इस प्रकार भेद रत्नत्रय का स्वरूप जिसमें प्रतिपादित किया गया है उसको आगम/शास्त्र कहते है।[30] ऐसे आगम की भाषा को आगम भाषा कहते है। अर्थात् जो रत्नत्रय का भेद पूर्वक कथन करती है वह आगम भाषा है। इसी प्रकार अभेद रूप रत्नत्रय के प्रतिपादक अर्थ और पदों के अनुकूल जहॉ व्याख्यान किया जाता है उसे अध्यात्म शास्त्र कहते है।[31] ऐसे अध्यात्मशास्त्रों की भाषा को अध्यात्म भाषा कहते है। अर्थात्, जो अभेद रत्नत्रय की मुख्यता से कथन करे वह अध्यात्म भाषा है। इसी कारण से पूज्य जयसेनाचार्य[32] ब्रह्मदेवसूरि[33] व पद्मप्रभमलधारी देव[34] आदि को आगम और अध्यात्म शैली या भाषा को पृथक पृथक कहना पड़ा। ऐसा किए बिना न तो आगम को ही समझाया जा सकता था और न ही अध्यात्म को। यदि समझाने का वे प्रयास नहीं करते तो कभी विषय को पूर्णतया स्पष्ट नहीं कर सकते थे और अस्पष्ट विषय में निश्चित ही मत भेद हो जाते। अत उन सबका बड़ा उपकार रहा कि जिन्होंने दो भाषाओं (शैलियों) का प्रयोग कर अपने विषय को सुगम एव सुबोध बनाया है। आज उन्हीं दो शैलियों से ही हम अध्यात्म के गूढ़ एव जटिल भावों की गहराई में उतर सके और यदि कोई कदाचित भटके हुए है तो वे उन्हीं शैलियों को नहीं अपनाने से ही भटक रहे हैं। ये दोनों शैलियाँ उक्त आचार्यो की टीकाओं में जगह-जगह मिलती है । यद्यपि दोनों भाषायें जैन दर्शन की ही है, फिर भी वे भाषाएँ या शैलियॉ या पद्धतिया एक नहीं हैं। दोनों अपनी अपनी प्रतिपाद्यता की स्वतत्रता लिए हुए है। यही कारण है कि दोनों शैलिया अपनी अपनी दृष्टि से ही वस्तु का कथन करती है और उनका यह कथन सत्य है। वे दोनों असत्य नहीं है। अपितु स्याद्वाद अथवा नय विशेष के पक्ष को लेकर अपने अपने में सत्य ही है। हॉ, यदि उन्हें समझे बिना या स्याद्वाद की विवक्षा लिए बिना एक दूसरे के प्रतिपादक विषय को एक दूसरे में लगा दिया जाए तो निश्चय ही वे असत्य हो जावेंगे। वे अपनी अपनी मर्यादा में रहते हुए ही विषय का निरूपण करती है।

नय और उसके भेद– प्रमाण के अवयव नय हैं।[35] अथवा प्रमाण के द्वारा सम्यक् प्रकार से ग्रहण की गई वस्तु के एक धर्म अर्थात् अश को ग्रहण करने वाले ज्ञान को नय कहते हैं। अथवा, श्रुत ज्ञान के विकल्प को नय कहते है ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहते है। अथवा, जो नाना स्वभावों से हटाकर किसी एक

स्वभाव में वस्तु को प्राप्त कराता है वह नय है[36] अनेकान्तत्मक वस्तु में विरोध के बिना हेतु की मुख्यता से साध्य विशेष की यथार्थता को प्राप्त कराने में समर्थ प्रयोग को नय कहते हैं।[37]

उपरोक्त शैलियों या भाषा की तरह नय विवक्षा भी पृथक पृथक हैं। इन्हे शास्त्रों में आगमिक और आध्यात्मिक रूप में दो विभागों में बॉटा गया है। श्री देवसेनाचार्य ने अध्यात्मनयों का वर्णन करते हुए स्पष्ट कहा है कि अब अध्यात्म भाषा में नयो का कथन करते हैं।[38] इसका तात्पर्य यही है कि आगम और अध्यात्म भाषा में प्रतिपादित नय एक नहीं है किन्तु अलग अलग हैं।

आगमिक नय– आगमिक नय के मुख्यतः दो भेद हैं – (1) द्रव्यार्थिक नय और (2) पर्यायार्थिक नय।[39]

द्रव्यार्थिक नय– द्रव्य जिस का प्रयोजन है वह द्रव्यार्थिक नय है।[40] द्रव्य का अर्थ सामान्य, उत्सर्ग, और अनुवृत्ति, इसको विषय करने वाला नय द्रव्याधिक नय हैं।[41] जो उन उन पर्यायों को प्राप्त होता है, प्राप्त होगा अथवा प्राप्त हुआ था वह द्रव्य है। द्रव्य ही जिसका प्रयोजन है वह द्रव्यार्थिक नय है।[42] द्रव्यार्थिव्क नय के दश भेद हैं –[43]

(1) कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्ध द्रव्याधिक नय, यथा-संसारी जीव सिद्ध समान शुद्धात्मा है।[44]

(2) उत्पाद- व्यय को गौण करके सत्ता (ध्रौव्य) को ग्रहण करने वाला शुद्ध द्रव्यार्थिक नय जैसे-द्रव्य नित्य है।[45]

(3) कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय, जैसे-कर्म जनित क्रोधादि भाव रूप आत्मा है।[46]

(4) उत्पादव्ययसापेक्ष अशुद्धद्रव्यर्थिक नय, जैसे-एक ही समय मे उत्पाद व्यय ध्रोव्यात्मक द्रव्य है।[50]

(5) भेदकल्पना सापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिक नय, जैसे- आत्मा के ज्ञान दर्शनादि गुण हैं वे द्रव्य से अभिन्न है। अथवा गुण गुणी में भेद होने पर भी जो नय द्रव्य में गुण गुणी का संबंध करता हैं वह भेद कल्पना सहित अशुद्ध नय जानना चाहिये।[52]

(6) भेद कल्पनानिरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय, जैसे-निज गुण से, निज पर्याय से और निज स्वभाव से द्रव्य अभिन्न है।[53]

(7) अन्वय सापेक्ष द्रव्यार्थिक नय, जैसे- सम्पूर्ण गुण, पर्याय और स्वभाव मे द्रव्य को अन्वय रूप से ग्रहण करना।[54] अथवा, जो नय सम्पूर्ण स्वभावो को 'यह द्रव्य है', ऐसे अन्वय रूप से द्रव्य की स्थापना करता है, वह अन्वय द्रव्याथिक नय है।[55] अथवा, जो सम्पूर्ण गुणों और पर्यायों में प्रत्येक को द्रव्य बतलाता है, वह अन्वय द्रव्याथिक नय है। जैसे कड़े आदि पर्यायों मे तथा पीतत्त्व आदि गुणों मे अन्वय रूप हो रहने वाला स्वर्ण। अथवा, मनुष्य देव आदि नाना पर्यायों में यह जीव है, ऐसा अन्वय द्रव्यार्थिक नय का विषय है।[56]

(8) स्वद्रव्यादि ग्राहक द्रव्यार्थिक नय, जैसे- स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, और स्वभाव की अपेक्षा द्रव्य को अस्ति रूप से ग्रहण करने वाला नय।[57]

(9) पर द्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय, जैसे- पर द्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, और पर स्वभाव की अपेक्षा द्रव्य

नास्ति रूप है।[58]

(10) परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक नय जैसे- जीव ज्ञान स्वरूप है क्योंकि इसमें जीव के अनेक स्वभावों में से ज्ञान नामक परमभाव का ही ग्रहण किया गया है।[59] अथवा, आत्मा कर्म से उत्पन्न नहीं होता और न कर्मक्षय से उत्पन्न होता है। द्रव्य के ऐसे भाव को बतलाने वाला परम भाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय है।[60] अथवा, शुद्ध और अशुद्ध के उपचार से रहित जो नय द्रव्य के स्वभाव को ग्रहण करता है वह परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक नय है।[61]

अन्य ग्रथों में द्रव्यार्थिक नय के नैगम, सग्रह, और व्यवहार ऐसे तीन भी भेद कहे गये है।[62] इस प्रकार से द्रव्यार्थिक नय को सक्षेप से समझना चाहिए। विस्तार हेतु आगम को देखना चाहिए।

पर्यायार्थिक नय– पर्याय ही जिस नय का प्रयोजन है वह पर्यायार्थिक नय है।[63] पर्याय का अर्थ विशेष, अपवाद और व्यावृत है, इसको विषय करने वाला पर्यायार्थिक नय है।[64] अथवा 'परि' जो भेद को प्राप्त होता है उसे पर्याय कहते है। वह पर्याय जिस नय का प्रयोजन है वह पर्यायार्थिक नय है।[65] अथवा तीर्थंकरों के वचनों के सामान्य प्रस्तार का मूल व्याख्यान करने वाला द्रव्यार्थिक नय है और उन्हीं वचनों के विशेष प्रस्तार का मूल व्याख्याता पर्यायार्थिक नय है। शेष सभी नय इन दोनों नयों के विकल्प अर्थात् भेद हैं।[66]

आचार्य देवसेन ने पर्यायार्थिक नय के मुख्य छ भेदों का कथन करते हुए कहा है कि अब पर्यायार्थिक नय के छ भेदों का कथन करते हैं [67]

(1) अनादिनित्य पर्यायाथिक नय, जैसे-जैसे मेरु आदि पुद्गलकी पर्याय नित्य है।[68] इस नय को स्पष्ट करते हुए आचार्य श्री वीरसेन धवला में कहते है कि-'अभव्य जीव की व्यजन पर्याय भले ही हो किन्तु सभी व्यजनपर्याय का नाश अवश्य होना चाहिए ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने से एकान्तवाद का प्रसग आ जावेगा। तथा ऐसा ही नहीं है कि जो वस्तु विनष्ट नहीं होती वह द्रव्य ही होनी चाहिए, क्योंकि जिसमें उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य पाये जाते हैं उसे द्रव्य रूप से स्वीकार किया गया है।[69]

(2) सादि नित्यपर्यायार्थिक नय, जैसे-पर्याय नित्य है।[70] क्षायिक भावों की अपेक्षा जीव भी सादि अनिधन है।[71] शुद्धनिश्चय की विवक्षा न कर सम्पूर्ण कर्मों के निरवशेषतया क्षय के द्वारा उत्पन्न हुई चरम शरीर के आकार वाली परिणति रूप शुद्ध सिद्ध पर्याय को जो नय ग्रहण करता है वह सादि नित्य पर्यायार्थिक नय है।[72] अथवा कर्मों के क्षय से उत्न्न होने वाले भाव अविनाशी है क्योंकि कर्मोदय रूप बन्धक कारण का अभाव है। इन क्षायिक भावों को विषय करने वाला सादि-नित्य पर्यायार्थिक नय है।[73]

(3) ध्रौव्य को गौण करके उत्पाद-व्यय को ग्रहण करने वाला नय अनित्य शुद्धपर्यायार्थिक नय है जैसे- प्रति समय पर्याय विनष्ट होती है।[74]

(4) ध्रौव्य को अपेक्षा सहित ग्रहण करने वाला नय नित्य-अशुद्ध पर्यायार्थिक नय है जैसे- एक समय में पर्याय उत्पाद-व्यय ध्रौव्यात्मक है।[75] एक ही काल में ध्रौव्य-उत्पाद-व्यय को जो नय ग्रहण करता है वह अनित्य-अशुद्ध पर्यायार्थिक नय कहा जाता है।[76] इस नय का विषय ध्रौव्य भी होने से इस नय को अशुद्ध

पर्यायार्थिक कहा गया है, क्योंकि शुद्धपर्यायार्थिक नय का विषय ध्रौव्य नही होता है।[77]

(5) कर्मोपाधिनिरपेक्ष स्वभाव को ग्रहण करने वाला नय नित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय है। जैसे संसारी जीवों की पर्याय (अरहंत पर्याय) सिद्ध समान शुद्ध है।[78] संसारी जीवों की पर्यायों को जो नय सिद्ध समान शुद्ध कहता है वह अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय है।[79] चराचर पर्याय परिणत संसारी जीव धारियों के समूह में शुद्ध सिद्ध पर्याय की विवक्षा से कर्मोपाधि से निरपेक्ष स्वभाव ग्राहक नित्य-शुद्ध पर्यायार्थिक नय है। यहाँ पर संसार रूप विभाव में यह नय नित्य शुद्ध पर्याय को जानने की विवक्षा रखता है।[80]

(6) कर्मोपाधि सापेक्षस्वभाव अनित्य अशुद्धपर्यायार्थिक नय। जैसे- संसारी जीवों का जन्म तथा मरण होता है।[81] शुद्ध पर्याय की विवक्षा न कर, कर्म जनित नरकादि विभाव पर्यायों को जीवस्वरूप बतलाने वालो नय अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय है।[82] जो नय संसारी जीवों की चतुर्गति संबंधी अनित्य तथा अशुद्ध पर्यायों को ग्रहण करता है वह विभाव-अनित्य-अशुद्ध पर्यायार्थिक नय है।[83]

इस प्रकार पर्यायार्थिक नय के छः भेद कहे गये हैं। ग्रंथान्तरों में पर्यायार्थिक नय के ऋजुसूत्र, शब्द समभिरूढ एवं एवंभूत इस प्रकार चार भेद कहे गये हैं।[84] अथवा अर्थनय और व्यंजननय के भेद से भी पर्यायार्थिक नय के दो भेद कहे गये हैं।[85]

इस प्रकार आगमिक ग्रंथों से संक्षेप में द्रव्याथिक नय और पर्यायार्थिक नय को जानना चाहिए। सविस्तार जानने वालो को आगम से जानना चाहिए।

आध्यात्मिक नय– आगमिक नयों की तरह आध्यात्मिक नयों का भी स्वतंत्र स्थान है। क्योंकि आचार्य श्री देवसेन आलाप पद्धति मे स्पष्ट करते हुए कहते हैं "आध्यात्मिक भाषा से नयों का कथन करते हैं।[86] इसका तात्पर्य है कि आध्यात्मिक नय स्वतंत्र हैं। आध्यात्मिक नय के मूल दो भेद है (1) निश्चय नय (2) व्यवहार नय।[87]

(1) निश्चयनय– निश्चय नय का विषय अभेद है।[88] अर्थात् निश्चय नय वस्तु को अभेद रूप से ग्रहण करता है। अथवा जो नय अभेद व अनुपचार से वस्तु का निश्चय करता है वह निश्चय नय है। यह निश्चय नय आत्मा के आश्रित है।[90] निश्चय नय मे कर्ता कर्म आदि भाव एक दूसरे से भिन्न नहीं होते है।[91] निश्चय नय द्रव्य के आश्रित होने से केवल एक जीव के स्वाभाविक भाव को अवलम्बन कर प्रवृत्त होता है, वह सब परभावों को पर का बताकर उनका निषेध करता है। निश्चय नय दो प्रकार है। (1) शुद्ध निश्चय (2) अशुद्ध निश्चय नय।[93]

(1) शुद्ध निश्चयनय– जो नय कर्मोपाधि रहित गुण और गुणी को अभेद रूप से ग्रहण करता है वह शुद्ध निश्चयनय है। जैसे केवल ज्ञान आदि स्वरूप जीव है।[94] यह नय संसारी छद्मस्थ जीवों में केवलज्ञानादि गुणों को शक्ति रूप मे मानता है और मुक्त जीवों मे व्यक्त रूप से मानता है। जैसे निर्मल ज्ञानमय व्यक्त रूप शुद्धात्म सिद्ध अवस्था में रहता है उसी प्रकार शुद्ध निश्चय नय से शक्ति रूप से शरीर मे भी रहता है।[95] जैसे व्यक्ति रूप परमात्मा मुक्त अवस्था मे रहता है वैसे ही शुद्ध निश्चय से शक्ति रूप से शरीर

में भी रहता है।[96] ससारी जीव निश्चय नय से शक्ति रूप से रागादि विभाव से शून्य होता है किन्तु मुक्तात्मा व्यक्त रूप से रागादि से शून्य होता है।[97]

निश्चय शब्द से अभ्यास करने वाले प्राथमिक जघन्य पुरुष की अपेक्षा तो व्यवहार रत्नत्रय के अनुकूल निश्चय ग्रहण करना चाहिए। निष्पन्न योग में निश्चल पुरुष की अपेक्षा अर्थात् मध्यम धर्म ध्यान की अपेक्षा व्यवहार रत्नत्रय के अनुकूल निश्चय करना चाहिए। निष्पन्न योग अर्थात् उत्कृष्ट धर्मध्यानी पुरुष की अपेक्षा शुद्धोपयोग रूप विकसित एकदेश शुद्धनिश्चय ग्रहण करना चाहिए। विशेष अर्थात् शुद्ध निश्चयनय आगे कहते है - मन वचन काय से कुछ भी व्यापार न करो आत्मा में रत हो जाओ।[98] यह कथन शुक्लध्यानी का अपेक्षा समझना।

इस प्रकार शक्ति और व्यक्ति दोनों अवस्थाओं में अन्तर जानना चाहिए दोनों को एक नहीं समझना चाहिए।

(2) अशुद्ध निश्चय नय– जो नय कर्मोपाधि है सहित गुण और गुणी को अभेद रूप से ग्रहण करता है वह अशुद्ध निश्चय नय है। जैसे-मतिज्ञान आदि स्वरूप जीव है।[99] क्योंकि मतिज्ञान जीव में ही होता है जीव को छोड़कर किसी अन्य द्रव्य में नहीं पाया जाता है, इस कारण यह नय जीव को मतिज्ञान आदि रूप कहता है। यद्यपि मतिज्ञान क्षायोपशमिक भाव है, जीव का मूल स्वभाव नहीं है फिर भी अशुद्ध दशा में जीव में पाया जाता है, इसी कारण से नय की "अशुद्ध निश्चय नय" यह सज्ञा है। कर्मोपाधि से उत्पन्न होने से अशुद्ध कहलाता है, और अपने काल में (अर्थात् रागादि के काल में जीव उनके साथ) अग्नि में तपे हुए लोहे के गोले के समान तन्मय होने से निश्चय कहा जाता हे। इस रीति से अशुद्ध और निश्चय इन दोनों को मिलाकर अशुद्ध निश्चय कहा जाता है।[100]

व्यवहार नय– जो नय भेद रूप से वस्तु को विषय करता है वह व्यवहार नय है।[101] एक अभेद वस्तु में जो धर्मों का अर्थात् गुण पर्यायों का भेद रूप उपचार करता है वह व्यवहार नय कहा जाता है।[102] व्यवहार नय भिन्न कर्ता कर्मादि विषयक है।[103] प्रमाण नय व निक्षेपात्मक वस्तु को जो भेद द्वारा भेद या उपचार द्वारा भेद या अभेद रूप करता है वह व्यवहार है।[104] व्यवहार नय के मुख्य दो भेद है। (1) सद्भूत व्यवहार नय (2) असद्भूत व्यवहार नय।[105]

(1) सद्भूत व्यवहार नय– जो एक ही वस्तु के अवयव को भेद रूप से ग्रहण करता है वह सद्भूत व्यवहार है।[106] विवक्षित उस वस्तु के गुणों का नाम सद्भूत है और उन गुणों की उस वस्तु में भेदरूप प्रवृत्ति मात्र का नाम व्यवहार है। क्योंकि गुण गुणी में अथवा पर्याय द्रव्य में कर्ता, कर्म, करण व सम्बन्ध आदि कारकों का कथचित् सद्भाव होता है। उसे जानकर जो द्रव्यों में भेद करता है वह सद्भुत व्यवहार नय है।[107] सद्भुत व्यवहार नय के मुख्य दो भेद हैं। (1) शुद्ध सद्भूत व्यवहार (2) अशुद्ध सद्भूत व्यवहार।[108]

(1) शुद्धसद्भूत व्यवहार– यह नय शुद्ध गुण और शुद्ध गुणी, शुद्ध पर्याय और शुद्ध पर्यायी में भेद करता है।[110] अथवा निरूपाधि गुण व गुणी में भेद को विषय करने वाला अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय है।

है। जैसे–केवलज्ञानादि जीव के गुण है।[111] यहॉ जीव का लक्षण कहते समय केवलज्ञान व केवलदर्शन के प्रति शुद्ध सद्भूत शब्द के वाच्य अनुपचरित सद्भूत व्यवहार है।[112] अर्थात् केवलज्ञान व केवलदर्शन जीव के गुण होते हुए भी उनको लक्ष्य बनाकर जीव का लक्षण कहना अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय है।

(2) अशुद्धसद्भूत व्यवहार नय– अशुद्धगुण व अशुद्धगुणी में अथवा अशुद्ध पर्याय व अशुद्धपर्यायी मे भेद का कथन करने करने का वाला अशुद्ध सद्भूत व्यवहार है।[113] उपाधि सहित गुण व गुणी में भेद को विषय करने वाला उपचरित सद्भूत व्यवहार नय है। जैसे-मति ज्ञानादि जीव के गुण है।[114] अशुद्धसद्भूत व्यवहार से मति ज्ञानादि विभाव गुणों का आधार होने के कारण, अशुद्ध जीव है।[115] छद्मस्थ जीव के ज्ञानदर्शन की अपेक्षा से अशुद्धसद्भूत शब्द से वाच्य उपचरित सद्भुत व्यवहार है।[116] यह अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नय ही उपचरित सद्भुत व्यवहार नय है। ये दोनो एकार्थवाची है।

असद्भूत व्यवहार नय– भिन्न वस्तु को विषय करने वाला असद्भूत व्यवहार नय है।[117] अन्य द्रव्य के अन्य गुण कहना असद्भूत व्यवहार नय है।[118] मन, वचन, काय, इन्द्रिय, आनप्राण और आयु ये जो दश प्रकार के प्राण जीव के हैं, ऐसा असद्भुत व्यवहार नय कहता है। ज्ञेय को ज्ञान कहना, श्रद्धेय को दर्शन कहना, जैसे-देव शास्त्र गुरु की श्रद्धा सम्यग्दर्शन है, आचरण करने योग्य को चारित्र कहते है जैसे-हिसा आदि का त्याग चारित्र है यह सब कथन असद्भुतव्यवहार नय से जानना चाहिए।[119] असद्भुत व्यवहार से कर्म व नोकर्म भी चेतन स्वभावी है, जीव का भी मूर्त स्वभाव है और पुद्गल का स्वभाव अमूर्त उपचरित है।[120] जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार हो, ऐसा वचनात्मक द्रव्य नमस्कार भी असद्भूत व्यवहार नय से होता है।[121]

असद्भूत व्यवहार नय के मुख्य दो भेद है (1) उपचरित (2) अनुपचरित।

उपचिरत असद्भूत व्यवहार नय– संश्लेष रहित वस्तुओं के संबंध को विषय करने वाला उपचरित असद्भूत व्यवहार नय है। जैसे-देवदत्त का धन ऐसा कहना।[123] यद्यपि असद्भूत व्यवहार ही उपचार है और ऐसे उपचार का भी जो उपचार करता है वह उपचरित-असद्भुत व्यवहार नय है।[124] इस नय से आत्मा घर पट, रथ आदि पर पदार्थो का कर्ता कहा जाता है।[125] जीव इष्टानिष्ट पंचेन्द्रिय के विषयो से प्राप्त सुख दुःख का भोक्ता है।[127] अथवा बाह्य पंचेन्द्रिय विषयो का त्याग करता है एवं ऐसा कथन भी उपचरित असद्भुत व्यवहार नय है।[128] उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से बुद्धिपूर्वक होने वाले क्रोधादि विभाव भाव भी जीव के कहे जाते हैं।[128]

अनुपचिरत असद्भूत व्यवहार नय– संश्लेष सहित वस्तुओं के संबंध को विषय करने वाला अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय है। जैसे–जीव का शरीर ऐसा कहना।[130] जीव मूर्त्त है।[131] जीव द्रव्य कर्म व नोकर्म से रहित है।[132] द्रव्य कर्मो का दहन करने वाला है।[133] देह से अभिन्न है।[134] आत्मा निकटवर्ती द्रव्य कर्मो का कर्ता और उनके फल-सुख दुख का भोक्ता है तथा नोकर्म अर्थात शरीर आदि का भी कर्ता है।[135] इस प्रकार संक्षेप से नयो को कहा विस्तार से आगम से जानना चाहिए। इस तरह हम स्पष्ट समझते है कि आगम और अध्यात्म भाषा मे कथित नय अलग अलग ही है, किन्तु सभी सापेक्ष है।[136] इसलिए, वे सभी सम्यक

है सच्चे है। असत्य कोई नहीं है। क्योंकि वे सभी नय जिनेन्द्र देव द्वारा उपदिष्ट हैं और जिनेन्द्र देव कभी असत्य उपदेश नहीं देते हैं।[136]

इस प्रकार हम नयों को सक्षेपत अच्छी तरह से समझ चुके है फिर भी ध्यान रहे कि जिसे हमनें अगम और अध्यात्म नयों के पृथक-पृथक समझा है उन्हीं नयों को कहीं कहीं जैनाचार्यों ने परस्पर एक रूप से भी समझाते हुए कहा है कि आगम और अध्यात्मिक नय अलग अलग होने पर भी वे अत्यत भिन्न नहीं है। वे एक दूसरे के पूरक है, उनमें परस्पर साध्य साधक भाव है।[137]

शुद्ध निश्चय नय और अशुद्ध निश्चय नय अध्यात्मिक नय के भेद होते हुए भी पचाध्यायीकार ने उन्हें द्रव्यार्थिक नय के भेद कहा है। यही बात आलाप पद्धति में भी कही हैं। समयसार तात्पर्यवृत्ति में शुद्ध द्रव्यार्थिक नय को निश्चय में गर्भित किया है। श्लोकवार्तिक में व्यवहार नय को अशुद्ध द्रव्याथिक नय कहा है।[140] धवला जी में भी यही बात कही गयी है।[141] सग्रह नय शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।[142] तथा पर्यायार्थिक नय से भी कथचित् व्यवहार नय में गिनाया गया है। गोमम्ट सार जीवकाण्ड में व्यवहारभेद विकल्प भेद व पर्याय को एकार्थवाची कहा गया है।[143] पचाध्यायीकार ने भी यही कहा है कि पर्यायार्थिक और व्यवहार ये दोनों एकार्थवाची हैं, क्योंकि सब ही व्यवहार केवल उपचार रूप होता है।[144]

इसी तरह से आगम भाषा में कथित-क्षायोपशमिक भाव (अध्यात्म भाषा में) नय है।[145] रागादि विभाव परिणामों का उपादान अशुद्ध निश्चय नय है।[146] अशुद्ध निश्चय नय व्यवहार नय ही है जैसे कि समय सार की तात्पर्य वृत्ति में कहा है कि द्रव्यकर्म बन्ध की अपेक्षा से जो यह सद्भूत व्यवहार कहा जाता है उसकी अपेक्षा तारतम्यता दर्शाने के लिए ही रागादिकों को अशुद्ध निश्चय नय का विषय बनाया गया है। वस्तुत तो शुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा अशुद्ध निश्चयनय भी व्यहार ही है।[147] अथवा द्रव्य कर्मो की अपेक्षा रागादि आभ्यतर है और इसलिए चेतनात्मक हैं ऐसा मानकर भले उन्हें निश्चय सज्ञा दे गयी हो परन्तु शुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा तो वह व्यवहार नय ही है।[148] परम्परा से शुद्धात्मा का साधक होने के कारण यह अशुद्नभ उपचार से शुद्ध नय कहा गया है, परन्तु उसे (शुद्ध) निश्चय नही कहा गया है।[149] व्यवहार नय से परमार्थ का ज्ञान होता जाना जाता है।[150] व्यवहार के बिना परमार्थ (निश्चय) का उपदेश अशक्य है।[151] व्यवहार नय अभूतार्थ है।[152] अथवा व्यवहार नय अभूतार्थ और भूतार्थ भी है ऐसा कहा है, तथा मात्र व्यवहार ही नहीं किन्तु शुद्ध निश्चय नय भी भूतार्थ भी है और अभूतार्थ भी है[153] तात्पर्य यह है कि अज्ञानी जनों के समझाने के लिए ही मुनिजन अभूतार्थ जो व्यवहार नय है उसका उपदेश देते है। जो केवल व्यवहार को ही सत्य मानते है उनके लिए उपदेश नहीं है।[154] इसका तात्पर्य यह नहीं कि व्यवहार सर्वथा असत्य ही है जैसा कि समयसार में सर्वज्ञसिद्धि के प्रकरण में आचार्य जयसेन स्वामी कहते है -

प्रश्न– सौगत (बौद्ध) मत वाले भी सर्वज्ञपना व्यवहार से मानते है तो आप उन्हें दूषण क्यों देते हो (क्योंकि जैन मत में भी परपदार्थों को जानना व्यवहार से कहा गया है।) ?

उत्तर– इसका परिहार करते हैं, सौगत आदि मतों में जिस प्रकार निश्चय की अपेक्षा व्यवहार झूठ है, उसी

प्रकार व्यवहार रूप से भी वह सत्य नहीं है। परन्तु जैन मत में (व्यवहार नय यद्यपि) निश्चय की अपेक्षा व्यवहार मृषा (झूठ) है, तथापि व्यवहार रूप से वह सत्य है। यदि लोक व्यवहार रूप से भी उसे सत्य नहीं माना जाये तो सभी लोक व्यवहार मिथ्या हो जायेगा और ऐसा होने पर अतिप्रसंग दोष आयेगा। इसलिए आत्मा व्यवहार से पर द्रव्य को जानता देखता है, पर निश्चयनय से केवल आत्मा को ही जानता देखता है।[155]

सांराश यह है कि निश्चय और व्यवहार नय दोनों ही सर्वज्ञ तीर्थकरों द्वारा उपदिष्ट होने से सत्य हैं, सम्यक् है और प्रमाणित है। यह बात अलग है कि दोनों नयों की विषय विवक्षा अलग अलग हैं। वे एक ही वस्तु के दो धर्मो को अलग अलग रूप से कथन करते हैं। दो प्रकार से कथन होने पर भी वस्तु भेद नहीं है।

जिनागम में यदि हम दोनों नयों को सूक्ष्म दृष्टि से देखते है तो दोनो नयों का विषय वर्णन दो प्रकार से मिलता है जिसे हम यूं समझ सकते हैं- (1) कथन.प्रणालीपरक नय वस्तु को जानने की दृष्टि से एक समय में हम एक ही नय से जान सकते हैं। एक साथ दोनों नयो से नही। अतः जिस समय हम वस्तु को जिस नय से जान रहे हैं, या कथन कर रहे हैं, उस समय वह नय अर्पित, मुख्य है और इतर दूसरा अनर्पित, गौण है।[156] जैसे जिस समय हम निश्चय नय से वस्तु को जान रहे है या उसका कथन कर रहे हैं उस समय निश्चय नय मुख्य है और व्यवहार नय गौण है। तथा जिस समय हम व्यवहार नय से वस्तु को जान रहे हैं या कथन कर रहे हैं उस समय व्यवहार नय मुख्य है और निश्चय गौण है। अतः इस दृष्टि से निश्चय नय कभी मुख्य भी हो सकता है और गौण भी। इसी तरह से व्यवहार नय भी कभी मुख्य हो सकता है कभी गौण भी। हम सर्वथा किसी एक नय को मुख्य या गौण नहीं कह सकते हैं। इस रहस्य को जाने वगैर वस्तु का सम्यक् कथन ही नहीं किया जा सकता है। अतः इस दृष्टि को भी जानना आवश्यक है।

३०. वीतराग सर्वज्ञ प्रणीतषड् द्रव्यादि सम्यक्श्रद्धान ज्ञान व्रताद्यनुष्ठान भेदरत्नत्रय स्वरूपं यत्र प्रतिपाद्यते तदागम शास्त्र भण्यते।

–चं. का/ता. वृ १७३/२५५

३१ अर्थपदानामभेद रत्नत्रय प्रतिपादकानामानुकूल यत्र व्याख्यान क्रियते तदध्यात्मशास्त्र भण्यते।

च का /ता वृ/परि /पृ २५५/१०

३२ य कोऽपि शुद्धात्मानमुपादेयं कृत्वा आगम भाषयामोक्षं या व्रततपश्चरणादिकं करोति।

–पं का/ता वृ/१७१/२४४/१५

३३ अध्यात्मं भाषया पुन. सहज शुद्ध परमचैतन्य शालिनि निर्भरानन्द मालिनि भगवती निजात्मनुपादेय बुद्धिं कृत्वा पश्चादनन्त ज्ञानोऽहमनन्तसुखोऽहमित्यादि भावना रूपमभ्यन्तर धर्मध्यानमुच्यते. . । इदानीं तस्यैव ध्यानस्य तावदागमभाषया विचित्र भेदाः कथ्यन्ते।

– पु द्र स टी ३/४१पृ १५८, १६१

३४ ध्यानशब्देन आगमापेक्षया वीतराग निर्विकल्प शुक्ल ध्यानम् अध्यात्मापेक्षया वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञानम्।

–प प्र टी १/१

३६ तदवयवा नया । आ प सू ३९

३६ प्रमाणेन वस्तुसगृहीतार्थैकाशो नय श्रुतविकल्पो वा ज्ञातुरभिप्रायो वा नय नाना स्वभावेभ्यो व्यावृत्य एकस्मिन्स्वभावे वस्तु नयति प्राप्नोतीति वा नय । आ प सू १८१

३७ तावद्वस्तुन्यनेकान्तात्मन्यविरोधेन हेत्वर्पणात्साध्यविशेषस्ययाथात्म्य प्रापणप्रवण प्रयोगो नय । स सि टी सू १/३३

३८ पुनरप्यध्यात्मभाषया नया उच्यन्ते। अ प सू २१४

३९ स एव विधो नयो द्विविध द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिकश्चेति। ध पु ९४१ ४५

४० द्रव्यमेवार्थ प्रयोजनमहयेति द्रव्यार्थिक । आ प सू १८४

४१ द्रव्य समान्यमुत्सर्ग अनुवृत्तिरित्यर्थ । तद्विषयो द्रव्यार्थिक । स सि टी सू१/३३

४२ ध पु१पृ ८३

४३ द्रव्यार्थिकस्य दश भेदा । –आ स स ४६

४४ कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्धद्रव्यार्थिक यथा ससारी जीव सिद्धसदृशशुद्धात्मा। –आ प सू ४७

४८ उत्पादव्ययगौणत्वे सत्ताग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिको यथा द्रव्य नित्यम्। – आ प सू ४८।

४९ कर्मोपाधि सापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिको यथा क्रोधादि कर्मजभाव आत्मा। –आ प सू ५०।

५० उत्पादव्ययसापेक्षोऽशुद्धद्रव्याथिको यथैकस्मिन् समये द्रव्यमुत्पाद व्ययध्रौव्यात्मकम्। –आ प सू ५१

५१ भेदकल्पना सापेक्षादशुद्धो द्रव्यार्थिको यथात्मनो दर्शनज्ञानादयोगुणा । द्रव्यमभिन्नम् –आ प सू ५२

५२ गुणगुणिआइ चउक्के अत्थे जो णो करेइ खलु भेय।
सुद्धो सा दव्वत्थो भेद वियप्पेण णिरवेक्खो॥ –प्रा न च गा २०।

५३ भेदकल्पनारिपरेक्ष शुद्धो द्रव्यार्थिको यथा निजगुणपर्याय स्वभावाद् द्रव्यमभिन्न। आ प सू ४९

५४ अन्वयसापेक्षोद्रव्यार्थिको यथागुणपर्याय स्वभाव द्रव्यम्। –आ प सू५३।

५५ णिस्सेस सहावाण अण्णयरूवेण दव्वदव्वेदि।
दव्वठवणो हि जो सो अण्णय दव्वत्थिओ भणि दे॥ –प्रा न च गा २४

५६ नि शेष गुण पर्यायान् प्रत्येक द्रव्यमब्रवीत्।
सोऽन्वयो निश्चयो हेम यथा सत्कटकादिषु॥
य पर्यायादिकान् द्रव्य ब्रूते त्वन्वयरूपत ।
द्रव्यार्थिक सोऽन्वयाख्य प्रोच्यते नयवेदिभि ॥ –स न च १ २ पृ ४१

५७ स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिको यथा द्रव्यादि चतुष्टयापेक्षयाद्रव्यमस्ति। –आ प सू ५४

५८ पर द्रव्यादिग्रहाकद्रव्यार्थिको यथा पर द्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया द्रव्य नास्ति। – आ प सू ५५

५९ परमभावग्राहक द्रव्यर्थिको यथा ज्ञान स्वरूप आत्मा अत्रानेक स्वभावना मध्ये ज्ञानाख्य चरमस्वभावो गृहीत । –आ प सू ५६

६० कर्मभिर्जनितो नैव नोत्पन्नस्तत् क्षयेन् च।
नय परमभावस्य ग्राहको निश्चयो भवेत्॥ –स न च श्लो १० पृ ५

६१ गिह्णइ दव्वसहाव असुद्धसुद्धोपचार परिचत्त।
सो परमभावगाही णायव्वो सिद्धि कामेण॥ – प्रा न च गा २६

६२ तत्र योऽसौद्रव्यार्थिक नय स त्रिविधो नैगमसग्रहव्यवहार भेदेन। – ध पु ९/४ १ ४५

६३. पर्यायोऽर्थः प्रयोजनमस्येत्यसौ पर्यायार्थिकः। –स. सि. १/६

६४. पर्यायोविशेषोऽपवादो व्यावृत्तिरित्यर्थः। तद्विषयः पर्यायार्थिकः। –स सि. १/३३

६५. ध पु १ पृ ८४

६६. तित्थयर वयण संगह विसेस्- पत्थार-मूल-वायरणी।
दव्वट्ठिओ य पज्जय णयो य सेसा वियप्पा सिं –ध.पु. १पृ १२

६७. अय पर्यायार्थिकस्य षड् भेदाः। –आ प सू. ५६

६८. अनादिनित्यपर्यायाधिको यथा पुद्गल पर्यायो नित्यो मेर्वादिः।
–आ प सू. ५८

६९. होदु वियंजणपज्जाओ, ण च वियंजणपज्जायस्स सव्वस्स विणासेण होदव्वमिदि णियमो अत्थि, एयंतवादप्पसंगादो। ण विणस्सदि त्रि दव्वं होदि, उप्पाय-ट्ठिदि- भंगसंगयस्स दव्वयभावब्भुवगमादो।' –ध.पु.७ पृ. १७८

७०. सादिनित्य पर्यायार्थिको यथा सिद्धपर्यायो नित्यः। –आ.प सू ५९

७१ जीवा एव क्षायिक भावेन साद्यनिधनाः। पं.का.आ ख्या,गा.५३

७२. शुद्धनिश्चयनय विवक्षामकृत्वा सकलकर्मक्षयोद्भूत चरम शरीराकार पर्यायपरिणति रूप शुद्ध सिद्ध पर्यायः सादिनित्य पर्यायार्थिक नयः। सं. न. च.टी. श्लो. २ पृ.७

७३. कम्मखयादुप्पण्णो, अविणासी जो हु कारणाभावे।
इदमेवमुच्चरंतो भण्णइ सो साइणिच्च णओ। – प्रा. न. च. गा. २०१

७४. सत्तागौणत्वेनोत्पाद व्ययग्राहक स्वभावोऽनित्य शुद्ध पर्यायार्थिको यथा समयं समयं प्रति पर्याया विनाशिनः।
– आ.पू.सू. ६०

७५. सत्ता सापेक्षस्वभावो नित्याशुद्ध पर्यायार्थिको यथा एकस्मिन् समये त्रयात्मकः पर्यायः।
– अ.प.सू. ६१

७६. ध्रौव्योत्पाद व्ययग्राही कालेनैकेन यो नयः। स्वभावानित्य पर्यायग्राहकोऽशुद्ध उच्यते॥ –सं.न.च.श्लो.१० पृ. ४२

७७. आ प.सू. ६१ विशेषार्थ।

७८. कर्मोपाधिनिरपेक्षस्वभावो नित्यशुद्ध पर्यायार्थिको यथा सिद्धपर्याय सदृशाः शुद्धाः संसारिणां पर्यायाः।
–आ.प.सू. ६२

७९. देहीणं पज्जाया सुद्धा सिद्धाणं भणइ सारित्था।
जो सो अणिच्चसुद्धो पज्जयगाही हवे सो णओ॥ –प्रा.न.च गा २०४ पृ. ७५

८०. चराचर पर्याय परिणत समस्त संसारी जीवनिकायेपु शुद्धसिद्ध पर्याय विवक्षाभावेन कर्मोपाधिनिरपेक्ष स्वभावनित्य पर्यायार्थिक नयः। –सं न.च. टी.श्लो.५ पृ.८

८१. कर्मोपाधि सापेक्ष स्वभावोऽनित्याशुद्धपर्यायार्थिको यथा संसारिणामुत्पत्तिमरणेस्तः। –अ.प सू. ६३

८२. शुद्ध पर्यायविवक्षाऽभावेन कर्मोपाधिसंजनित नारकादि विभाव पर्यायाः जीवस्वरूपमिति कर्मोपाधिसापेक्ष विभावानित्याशुद्ध पर्यायार्थिक नयः। –सं न च टी श्लो ७२ पृ८

८३. भणइ अणिच्चासुद्धा चउगइजीवाण पज्जया जो हु।
होइ विभावअणिच्चो असुद्धओ पज्जयत्थिणओ॥ –प्रा न च गा २०५

८४ पर्यायार्थिकोनयश्चतुर्विध. ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढैवंभूतभेदेन –ध पु ९/४.१.४५

८५ पर्यायार्थिको द्विविध अर्थनयोव्यञ्जननयश्चेति। –ध पु

८६ वही देखें टिप्पण न ३८

८७ तावन्मूलनयौ द्वौ निश्चयो व्यवहारश्च। –आ प सू २१५

८८ तत्र निश्चयनयोऽभेद विषयो । आ प सू २११

८९ अभेदानुपचारतया वस्तुनिश्चीयत इति निश्चय । आ प सू २०४

९० आत्माश्रितो निश्चयनय । स सा /आ ख्या टी /गा २८२

९१ अभिन्नकर्तृकर्मादि विषयो निश्चयो नय । त अनु /श्लो ५८

९२ निश्चयनयस्तु द्रव्याश्रितत्वात्केवलस्य जीवस्यस्वाभाविक भावमवलम्ब्योत्प्लवमान परभाव परस्य सर्वमेव प्रतिषेधयति। –स सा/आ ख्या /गा ५६

९३ तत्र निश्चयो द्विविध शुद्धनिश्चनयोऽशुद्धनिश्चयश्च। –आ प सू २१७

९४ तत्र निरूपाधिकगुणगुण्यभेद विषयक शुद्धनिश्चयो यथा केवलज्ञानादयो जीव इति। –आ प सू २१८

९५ यथा निर्मलो ज्ञानमयो व्यक्तिरूप शुद्धात्मा सिद्धौतिष्ठति तथाभूत शुद्ध निश्चयेन शक्ति रूपेण देहेऽपि तिष्ठतीति। –प प्र /चूलिका/१/४९

९६ याद्दशोव्यक्तिरूप परमात्मामुक्तौ तिष्ठतितादृश शुद्धनिश्चयनयेन शक्ति रूपेनदेहेपिय तिष्ठतीति। –प प्र /टी १/२६पृ ३०

९७ ससारिणा निश्चयनयेन शक्तिरूपेण रागादि विभावशून्य च भवति। मुक्तात्मा तु व्यक्ति रूपेण। –प.प्र /टी १/५५पृ ५३

९८ निश्चयशब्देन तु प्राथमिकापेक्षया व्यवहारत्नत्रयानुकूलनिश्चयोग्राह्य। निष्पन्नयोगनिश्चल पुरुषापेक्षया व्यवाहाररत्नत्रयानुकूल निश्चयो ग्राह्य । निष्पन्नयोगपुरुषापेक्षया तु शुद्धोपयोगलक्षणविवक्षितैकदेश शुद्ध निश्चयो ग्राह्य । विशेष निश्चय पुनरग्रेवक्ष्यमाणस्तिष्ठतीति सूत्रार्थ । मा चिट्ठेह मा जपह । –वृ द्र स टी गा ५५

९९ सोपाधिक विषयोऽशुद्ध निश्चयो यथा मतिज्ञानादयो जीव इति। –अ प सू २१९

१०० अशुद्धनिश्चयस्यार्थ कथ्यते-कर्मोपाधिसमुत्पन्नत्वादशुद्ध तत्काले तप्ताय पिण्डवत्तन्मयत्वाच्च निश्चय । इत्युभयमेलापकेनाशुद्ध निश्चयो भण्यते। –वृ द्र स टी गा ८

१०१ व्यवहारनयो भिन्न कर्तृकर्मादिगोचर । –त अ २९

१०२ जो सियभेदुवयार धम्माण कुणइ एगवत्थुस्स।
सो व्यवहारो भणियो । –न च वृ २६२

१०३ व्यवहानयो भिन्नकर्तृकर्मादिगोचर । –त अ २९

१०४ प्रमाणनयनिक्षेपात्मक भेदोपचाराभ्या वस्तु व्यवहारतीति व्यवहार । –स न च पृ २९

१०५ व्यवहारो द्विविध सद्भूतव्यवहारो असद्भूतव्यवहारश्च। –न च पृ २५

१०६ एकवस्तुविषयसद्भूतव्यवहार । आ प सू १०

१०७ सद्भुतस्तद्गुणइति व्यवहारस्ततप्रवृत्तिमात्र त्वात्। –प ध २ ५२५

१०८ गुणगुणिपज्जयदव्वेकारकसब्भावदो य दव्वेसु।
तो णाऊण भेय कुणय सबभूय सद्धियरो॥ –प्रा न च गा २२०

१०९ सद्भूत व्यवहारो द्विधा शुद्धसद्भूत व्यवहारो अशुद्धसद्भूतव्यवहारो। – आ प सू ८१

११० शुद्धसद्भूत व्यवहारो यथा-शुद्ध गुण गुणिनो शुद्धपर्याय शुद्ध पर्यायिणोर्भेदकथनम् –आ प सू ८२

१११. निरूपाधिगुणगुणिनो र्भेदविषयोऽनुपचरित सद्भूत व्यवहारो यथा-जीवष्यकेवलज्ञानादयो गुणाः।

–आ.प.सू २१८

११२. केवलज्ञानदर्शनं प्रति शुद्धसद्भूत शब्द वाच्योऽनुपचरितसद्भूतव्यवहारः। वृ.द्र स.टी गा.६

११३ अशुद्ध सद्भूत व्यवहारो, यथा अशुद्धगुणाऽअशुद्धगुणिनोऽशुद्धपर्यायाशुद्धपर्यायिणोर्भेद कथनम्। –आ प.सू ८३

११४ तत्र सोपाधि गुणगुणिनोर्भेद विषयः उपचरितसद्भूत व्यवहारो, यथा जीवस्य मतिज्ञानादयोगुणाः।–आ प सू.. २२४

११५. अशुद्धसद्भूत व्यवहारेण मतिज्ञानादि विभावगुणानाधारभूतत्वादशुद्धजीवः। –नि.सा /ता वृ/गा.९

११६ छद्मस्थ ज्ञान दर्शनापरिपूर्णपिक्षया नरशुद्धसद्भूत शब्द वाच्य उपचरितासद्भूत व्यवहारः।

–वृ.द्र सं टी.१/६/पृ १५

११७ भिन्नवस्तुविषयोऽसद्भूत व्यवहारः। –आ प.सू. २२२

११८. अण्णेसिं अण्णगुणो भणइ असब्भूद तिविह ते दोवि।
सज्जाइ इयर मिस्सो णायव्वो तिविह भेय जुदो॥ –प्रा.न.च गा ३२०

११९ मण वयण काय इंदिय आणप्पाणाउंग च जं जीवे।
तमसब्भूओ भणदि हु ववहारो लोयमज्झम्मि॥
णेयं खु जत्थणाणं सद्धेयं जं दंसण भणिय।
चरियं खलु चारित्तं णायव्वं तं असब्भूव॥ –प्रा न.च.गा. ११३,३२०

१२० असद्भूत व्यवहारेण कर्मनोकर्मणोरविचेतन स्वभाव .. जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेणमूर्तस्वभाव ..असद्भुत व्यवहारेणाप्युपचारेणामूर्तत्व.... असद्भुत व्यवहारेण उपचरित स्वभावः। –आ.प.सू. १६०,१६२

१२१. नमो जिनेभ्यः इतिवचनात्मक द्रव्यनमस्कार्येऽप्यसद्भुत व्यवहारः पं.का ता वृ गा-१

१२२. असद्भूत व्यवहारो द्विविधः उपचरितानुपचरित भेदात्। – आ.प सू.२२६

१२३. तत्र संश्लेषरहित वस्तु संबंधविषय उपचरितासद्भूत व्यवहारो यथा देवत्तस्यधनमिति। –आ प सू२२७

१२४. असद्भूत व्यवहारेः एवोपचारः उपचारादप्युपचरयः करोति स उपचरितासद्भूत व्यवहारः। –आ प सू २०८

१२५ उपचरितासद्व्यवहारेण घट पट शकरादीनां कर्ता... । –नि सा/ता.वृ १/१८

१२६. तथाप्युपचरितासद् भूत व्यवहारेण मोक्षशिलायां तिष्ठन्तीति (सिद्धाः) भण्यते इत्युक्तोऽस्ति।

–वृ द्र.स टी १।१९

१२७ उपचरितासद्भूत व्यवहारेणेष्टानिष्ट पंचेन्द्रिय विषय जनित सुख दुख भुञ्क्ते। वृ.द्र स. टी१/१९

१२८ योऽसौ बहिर्विषये पंचेन्द्रिय विषयादि परित्यागः स उपचरितासद्भूत व्यवहारेण। –वृ द्र.स टी३/४५

१२९ उपचरितोऽसद्भूतो व्यवहाराख्यो नय. स भवति यथा क्रोधाद्या. औदयिकाश्चेदबुद्धिजा विवक्ष्याःसु.।

–प ध मू/५४९

१३०. संश्लेष सहितवस्तुसंबंध विषयाऽनुपचरितासद्भूत व्यवहारो, यथा जीवस्य शरीरमिति।

–अ.पूर २२८

१३१. अनुपचरितासद्भूत व्यवहारान्मूर्तो। –वृ द्र स टी१/८ पृ १६

१३२. अनुपचरितासद्भूत व्यवहार संबंधः द्रव्यकर्मनोकर्म रहितं। – प.प्र/ता.वृ /१/७

१३३ द्रव्यकर्मदहनमनुपचरितासद्भूत व्यवहारनयेनभावकर्मदहन पुनरशुद्ध निश्चयेन. .। प प्र /ता वृ १/१ पृ ६

१३४ अनुपचरितासद्भूत व्यवहारनयेन देहादभिन्नं प्र प्र /ता वृ १/१४

१३५ [illegible] अनुपचरितासद्भूत

व्यवहारेण नोकर्मणा कर्ता। नि सा/ता वृ १/१८

१३६ निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत्। –आ मी श्लो १०८

१३७ नान्यथावादिनो जिना । – आ मी श्लो ५

१३८ निश्चय व्यवहार नय साध्यसाधकभावेन मन्यते। –वृ द्र स टीगा १३/३३/८

१३९ शुद्धाशुद्ध निश्चयौ द्रव्यार्थिकस्यभेदौ। –आ प सू.

१४० शुद्ध द्रव्यार्थिक निश्चयनयेन विद्यन्ते । स सा ता वृ गा ७

१४१ व्यवहारनयोऽशुद्ध द्रव्यार्थिक । श्लो वा २/१७/२८/५८५/१

१४२ पर्यायकलङ्कितया अशुद्ध द्रव्यार्थिक व्यवहारनय । छ पु स पू १-५५/१७१

१४३ व्यवहारो य वियप्पो भेदो तह पज्जओति एयट्ठो। –जो जी /मू /गा २७२/१०१६

१४४ पर्यायाधिकनय इति यदि वा व्यवहार एव नामेति।
एकाथोयस्मादिह सर्वोप्युपचारमात्र स्यात्।। –प ध पू श्लो ५२१

१४५ ते चेवभावरूवा जीवेभूदा खओवुसुमगदो।
ते होन्ति भावपाणा अशुद्धणिच्छयणयेणणायव्वा ॥ प्रा न च ग ११४।

१४६ अशुद्धात्मातु रागादिना अशुद्धनिश्चयेनाशुद्धोपादान कारण भवति। –प्र सा /ता वृ /८/१०/१३

१४७ द्रव्यकर्मबंधापेक्षया योऽसौ असद्भूत व्यवहारस्तदपेक्षया तारतम्यज्ञापनार्थं रागादीनामशुद्ध निश्चयो भण्यते वस्तु तस्तु शुद्ध निश्चयापेक्षया पुनरशुद्ध निश्चयोऽपि व्यवहार एवेति भावार्थ । स सा/ता वृ ५७/९७/१३

१४८ अशुद्धनिश्चयस्तु वस्तुतो यद्यपि द्रव्य कर्मापेक्षयाभ्यन्तररागादयश्चेतना इतिमत्वा निश्चय संज्ञा लभते तथापि शुद्ध निश्चयापेक्षया व्यवहार एव। –स सा/ता वृ ६२/१०८/११

१४९ व्यवहारेण परमार्थो ज्ञायते। – स सा/ता वृ /९/२०/१४

१५० परम्परयाशुद्धात्मसाधकत्वादयमशुद्धनयोऽप्युपुचारेण शुद्धनयोभण्यते निश्चयनयोत भण्यते ॥–प्र सा/ता वृ १८९/ २५४/११

१५१ व्यहारेण विणा परमत्थुवएसणमसक्क। –स सा/मू /८

१५२ व्यवहारोऽभूदत्थो । स सा गा ११

१५३ द्वितीय व्याख्यानेन पुन व्यवहारो अभूदत्थो व्यवहारोऽभूतार्थो भूदत्थो भूतार्थश्च देसिदो देसित कथित न केवल व्यवहारो देशित सुद्धणओ शुद्धनिश्चय नयोऽपि। –स सा /ता वृ गा ११

१५४ अबुधस्य बोधनार्थं मुनीश्वरा देशयत्यभूतार्थम्।
व्यवहारमेव केवलमवैति यस्तस्य देशना नास्ति ॥ – पु सि उ श्लो ६

१५५ ननु सौगतोऽपिब्रूते व्यहारेण सर्वज्ञ तस्य किमिति दूषण दीयते भवद्भिरिति। तत्र परिहारमाह-सौगतादिमते यथा निश्चयापेक्षया व्यवहारोमृषा तथा व्यवहाररूपेणापि व्यवहार न सत्य इति जैन मते पुनर्व्यवहानयो यद्यपि निश्चयपेक्षया मृषा तथापि व्यवहार रूपेण सत्य इति। यदि पुनर्लोक व्यवहार रूपेणापि सत्यो न भवति तर्हि सर्वोऽपि लोकव्यवहारो मिथ्या भवति तथा सत्यति प्रसङ्ग। एवमात्मा व्यवहारेण पर द्रव्य जानाति पश्यति निश्चयेन पुन स्वद्रव्यमेवेति।
–स सा/ता वृ ३५६-३६५

१५६ अर्पितानर्पितसिद्ध । त सू अ ५ सू ३२

◆

मांसाहार हेय है, त्याज्य है

✍ आर्यिका शीतलमति

अज्ञान सभी दुखों का मूल है। अज्ञान के कारण ही मानव सद् चिन्तन से अलग हो अपना भुला-बुरा सोचने में असमर्थ है तथा मन एवं इन्द्रियों का गुलाम बन लक्ष्यहीन जीवन जी रहा है। विज्ञान की दुहाई देने वाले सत्य को जानते एवं मानते हुए भी नकार रहे हैं। उनका जीवन प्रदर्शन, विज्ञापन एवम् शीघ्रातिशीघ्र लाभ पाने की भावना से दीर्घकालीन दुष्प्रभावों को समझने में असमर्थ होता जा रहा है। आज का मानव विवेकशून्य बन ऑखे होते हुए भी ठोकरें खा रहा है तथा अमूल्य मानव जीवन को विषय कषायों की तृप्ति के क्षणिक आनन्द में व्यर्थ गवॉ सच्चे सुख से वंचित हो रहा है और दीर्घकाल तक स्वस्थ रहने की कला भूल रहा है। स्वस्थ रहने के लिये शारीरिक, मानिसक एवम् आध्यात्मिक संतुलन आवश्यक है। परन्तु संतुलित आहार की प्रेरणा देने वालों का चिन्तन क्षणिक शारीरिक स्वास्थ्य-लाभ तक सीमित हो रहा है। वे जानते है कि मानसिक स्थिति का मनुष्य की स्वस्थता से बहुत वड़ा योगदान है, फिर भी वे उसको नकार रहे हैं। जो आहार हमारी मानसिकता को बिगाड़ता है वह कैसे संतुलित आहार माना जा सकता है ? यह सभी बुद्धिमान व्यक्तियों के लिये चिन्तन का प्रश्न है। अतः मेरा सभी व्यक्तियों से विनम्र अनरोध कि वे निम्न विन्दुओं पर चिन्तन कर अपने आहार के बारे में सही फैसला करें कि कहीं वे गलत धारणाओं के शिकार तो बने हुए नही है-

(1) क्या जिन जानवरों का वध किया जाता है, उन पशुओं के स्वास्थ्य का परीक्षण होता है ? कहीं वे असाध्य रोगों से पीड़ित तो नहीं ? कहीं मांस के साथ जानवरों के रोग एवं मवाद तो उनके शरीर में प्रवेश नहीं करते ? जहर उबालने से अमृत नहीं बन जाता।

(2) क्या जानवर हॅसते हॅसते अपने इच्छा से मरता है? जिस निर्दयता-क्रूरता, बेरहमी से उनको मारा जाता है,उस वातावरण सेउत्पन्न तनाव, भय, घबराहट, छटपटाहट आदि पशुओं के मांस को विषैला बना देते हैं, जो मांसाहार के साथ मांसाहारियों के शरीर में प्रवेश कर भविष्य में अनेक असाध्य रोगों का कारण बनते हैं, उनकी मानसिकता को विकृत बनाने में सहायक होते हैं। इसलिए तो कहा है "जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन"।

(3) चैतनशील जीवों में मृत्यु के पश्चात् हानिकारक कीटाणुओं की उत्पत्ति अधिक एवं शीघ्र होती है। इसी कारण मृत्यु होने के पश्चात् मृतक को जल्दी से जल्दी जलाया अथवा दफनाया जाना है। शव यात्रा में भाग लेने वाले अपने शरीर की शुद्धि हेतु स्नान करते हैं। क्या पशुओं का वध करते ही मास का भक्षण का लिया जाता है? अगर नहीं तो कब तक उसमें हानिकारक कीटाणु उत्पन्न हो आसपास के वातावरण को दूषित नहीं करते ? क्या मांसाहारियों का पेट मृत जानवरों का कब्रिस्तान है?

(4) रोगी को जब रक्त की आवश्यकता होती है तब डाक्टर उस रोगी के ग्रुप का ही रक्त क्यों देने

है ? क्या मासाहारी ऐसा दावा करेंगे कि साथ जो खून का अश पेट में जावेगा वह इनके ग्रुप का ही है? क्या विपरीत गुण वाला रक्त एव मास शरीर में हानि नहीं पहुँचावेगा ?

(5) क्या कोई व्यक्ति लम्बे समय तक के लिए मासाहार पर निर्भर रह सकता है? उसको शाहाकार तो करना ही पड़ता है? अत स्पष्ट है मनुष्य की शारीरिक रचना शाकाहार के लिए उपयुक्त है, मासाहार के लिऐ नहीं।

(6) आज तरगों के महत्त्व से कौन परिचित नहीं? टी वी रेडियों स्टेशनों से प्रसारित रग रूप शब्द एव दृश्यों की तरगे क्षण मात्र से सारे विश्व में प्रसारित हो जाती है। उन दृश्यों को हजारों मील दूर बैठा व्यक्ति उसी क्षण देख सकता है। दूरस्थ चिकित्सा अथवा डाउजिग करने वाले हजारों मील दूर बैठे व्यक्ति के शरीर के छोटे से छोटे अवयव, जैसे रक्त की बून्द नाखून बाल, थूक आदि के माध्यम से रोग का निदान एव उपचार करते है। तब क्या मासाहार के साथ शरीर में प्रवेश करने वाली मरे हुऐ जानवरों की बद्दुआओं की तरगे मानव के आचार-विचार, रहन सहन, चिन्तन मनन को प्रभावित नहीं करेगी ? सभी धर्मप्रवर्तक शाकाहारी थे एव उन्होंने मासाहार का निषेध किया। परन्तु उन्हीं के अनुयायी आज पशु बलि के नाम पर अपनी स्वाद-लोलुप स्वार्थी प्रवृत्ति के कारण हिसा में लिप्त हो मासाहार की प्रेरणा करें, कितना विसगत है ? यह उनका अज्ञान नहीं तो क्या है ?

(7) यदि आपके बच्चे को कोई मार डाले, उस पर क्रूरता करे, अत्याचार करें तो क्या आप उस व्यक्ति पर प्रसन्न होंगे ? कभी नहीं। यथा शक्ति आप उसको दण्ड देंगे। अत अपनी सुरक्षा एव प्रसन्नता चाहने वालों को दूसरों की सुरक्षा एव खुशी प्रदान करना सीखना चाहिये। प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से जीवों पर होने वाली क्रूरता में सहभागी नहीं बनना चाहिये। अन्यथा, प्रकृति का दण्ड देने का अपना अलग ही विधान है। "जैसा करोगे वैसा भरोगे, जिसको मारोगे उसके हाथों मारे जाओगे,' वहाँ देर हो सकती है अधेर नहीं है। जो प्रकृत्ति के इस अटूट सिद्धान्त को नकारता है, उसको पछताना पड़ता है। अपराध के प्रथम प्रयास में दण्ड से बच जाने वाला यदि अपनी सफलता पर गर्व करे तो यह उसकी मूर्खता ही समझनी चाहिये।

आज हमारा दुर्भाग्य है कि हमारा स्वास्थ्य मत्रालय असजगता, अनैतिकता, अदूरदर्शिता, पूर्वाग्रह एव अज्ञान के कारण चापलुसों से प्रभावित हो उपर्युक्त तथ्यों पर ईमानदारी पूर्वक चिन्तन नहीं कर रहा है, अपितु मासाहार को प्रोत्साहन देकर जनता के स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ कर रहा है, जिसके परिणामस्वरूप रोग एव रोगियों की सख्या में तीव्रगति से वृद्धि हो रही है। स्वास्थ्य के नाम पर होने वाला अरबों रुपयों का खर्च स्वास्थ्य सुधारने के बजाय बिगाड़ने में सहायक बन रहा है।

बुराई को जानते, मानते हुए भी जो न स्वीकारे उस व्यक्ति, समाज, सरकार को कैसे बुद्धिमान समझा जावे ? प्रत्येक चिन्तनशील प्राणी के लिये यह चिन्तन का प्रश्न है। उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि मासाहार हानिकारक है, दुखदायी है रोगों से 'प्रेम कराने वाला है, पाशविक वृत्तियाँ बढ़ाने वाला

है, व्यक्ति को क्रूर, निर्दय, हृदयहीन असंवेदनशील, असंयमी, पापी बनाने वाला है, स्वास्थ्य की दृष्टि से मांसाहार से लाभ कम हानियां ज्यादा है। मांसाहार घाटे का सौदा है। अतः जो मांसाहार की प्रेरणा देने वाले हैं वे उसके दुष्प्रभावों की अनदेखी कर जनसाधारण को गुमराह कर रहे हैं, सत्य की अपने अनुकूल व्याख्यायें कर असत्य पोषण कर रहे हैं। जो प्राण हम दे नहीं सकते उसको लेने का हमें कोई अधिकार नहीं। यह अपनी नीचता, स्वार्थ एवत् ताकत का दुरुपयोग है, कायरता है, प्रकृति के नियमो का उल्लंघन है तथा अन्याय अत्याचार का प्रतीक हैं जिसका परिणाम मांसाहारियों को भविष्य मे निश्चित रूप से भुगतना ही पड़ेगा। "सुख दिया सुख होता है, दुख दिया दुख होता है," हमें वही मिलता है जो हम दुसरों को देते हैं। यह जगत् क्रिया-प्रतिक्रिया ध्वनि-प्रतिध्वनि से युक्त है। घृणा या प्रेम जो भी हम देंगे वही हम पर लौटकर आने वाला है। जैसा बीज बोओगे वैसा ही फल मिलेगा। अतः अपेक्षित जैसा हम दुसरों से चाहते हैं, वैसा ही व्यवहार अन्य जीवों के प्रति करें। इसलिये सभी धर्मो में अहिंसा, करुणा, दया, प्रेम, सहानुभूति, परोपकार को धर्म माना गया है तथा दूसरो को दुःख देने को महापाप बतलाया गया है। अतः मांसाहार को बुरा न मानने वाली अज्ञानी हैं, अनैतिक है, अधर्मी है, अपनी इन्द्रियों के गुलाम, स्वाद लोलूप, पराधीन परावलम्बी है, उदासीन हैं, भम्रित हैं। वे स्वयम् के प्रति भी ईमानदार नहीं फिर उन्हें कैसे बुद्धिमान कहा जावे?

◆

तर्ज..... नाम तिहारा तारण हारा..............

संत शिरोमणि विद्यासागर, मुक्ति बंधु के दुलारा हैं।
महावीर सम इस युग में ये, सच्चे संत सितारा हैं॥
श्रद्धा से जो ऐसे गुरु को, हरपल शीश झुकाता है।
और भक्ति से इन गुरूवर की, गौरव गाथा गाता है॥
वह तो निश्चित पा जाता है, भव सागर का किनारा है॥
संत शिरोमणि विद्यासागर............

देख साधना गुरू की भैया, देवलोक थर्राते है।
मानव ही क्या दानव भी सब, इनसे सतपथ पाते है॥
जंगल में भी मंगल करते, देखो गजब नजारा है।
संत शिरोमणि विद्यासागर............

सुशील आदिक महाव्रतो को, पाल रहे है दृढता से।
और स्वपर को बचा रहे है, जग की झूठी ममता से॥
इसीलिये तो फैला जंग मे, गुरू का सुयश उजाला है।
संत शिरोमणि विद्यासागर..........

अनाथ बनकर भव जंगल मे, भटक रहे है जो प्राणी।
उन्हे प्यार से पास बुलाकर, बना रहे है निजज्ञानी॥
अब तो उत्तम आश्रय केवल, ये गुरू चरण सहारा है।
संत शिरोमणि विद्यासागर.........

भगवान महावीर की 2600वीं जन्म जयन्ती मनाकर उनकी विरासत पाने का अधिकारी कौन ?

✍ आर्यिका ऋद्धि श्री (संघस्थ आ. कनकनंदी जी)

विशाल समुद्र में से हमने कुछ सीपिया उठा ली और यह मान बैठे कि हम महावीर द्वारा दी गई विराट विरासत के मालिक है । लेकिन मेरे अनुसार यह एक बड़ी भ्राति है, भूल है । महावीर अपने आप में निस्परिग्रही थे उन्होने न पथ बनाया, न सम्प्रदाय, न ग्रन्थ रचे, न परम्पराऐं चलायी, न कोई मठ -मन्दिर बनाया। उनके शरीर पर एक लगोटी मात्र भी वस्त्र तो था नहीं, फिर हम उनकी विराट विरासत के मालिक कैसे बन सकते हैं ?

महावीर ने सिर्फ जीवन जीया। अदर का सारा कूड़ा करकट बाहर फैंका और अदर के खाली स्थान में सारी सृष्टि को आत्मसात् किया। अपनी अन्तरग की गहरी अनुभूतियों के सहारे भाषा और ग्रथ के बिना सभी को सबोधित किया- यही उनकी वास्तविक विराट विरासत है जो न पूजने से हाथ लगेगी, न घटा बजाकर, न आरती कीर्तन करने पर मिलेगी, न नारे बाजी लगाकर, न शानदार जुलूस निकालकर, जन्म जयन्ती मनाकर महावीर को खुश करके मिलेगी । महावीर ने जिस प्रकार का आचरण किया उसी प्रकार का आचरण हम क्रियान्वित करें तभी यह विरासत मिलने वाली है ।

महावीर बाह्य आडम्बर को त्याग करके भीतर गये और हम भीतर को त्याग करके बाह्य आडम्बर में जी रहे है। भीतर तो हमारे पैर रखने के लिए दो इच भी जगह नहीं है । बाह्य प्रदर्शन हमारे पास अपार है। एक से एक सुदर वेदियों में वीतरागी भगवान् की मूर्तियाँ हमारे पास है सुदर-सुदर जिल्दों में सजे शास्त्र भण्डार हमारे पास हैं, ऊँचे विशाल पर्वत-जगलों वाले तीर्थस्थान हमारे पास है, भक्ति-साधना, व्रत-उपवास, तप-त्याग, ध्यान-योग की बड़ी-बड़ी गहन चर्चायें हमारे नित्यप्रति के जीवन में रटन्त हैं। पर यह सब दूसरों को दिखाने तक ही है, स्वय के लिए नहीं है । महावीर करनी के थे हम कथनी के, महावीर निर्लिप्त थे हम लिप्त, महावीर वीतरागी थे, हम वित्तरागी, महावीर अन्तरग के उपासक थे, हम बाह्य दिखावे के, महावीर का धर्म समग्रता का धर्म था, हमारा धर्म मदिर का अलग, व्यापार का अलग, घर का अलग, समाज का अलग, राष्ट्र का अलग। महावीर ने सभी को सगठन एकता के सूत्र में बाँधा, हम सभी को विभाजन करने में लग गये। महावीर ने अपरिग्रह की बात कही, उन्होंने वस्तुओं के सग्रह का निषेध किया लेकिन हम अधिक से अधिक सग्रह करने का प्रयास कर रहे हैं। चारों तरफ से जोड़ने में लगे हुए है। जो नहीं जोड़ पा रहा है वह चिन्ता में लगा है कि कब पुण्य उदय हो और वह अरबपति-खरबपति बने। हम वर्तमान को छोड़कर भूत-भविष्यत् में जीना अधिक पसद करते हैं। इसीलिए वर्द्धमान की बजाय हीयमान बन रहे हैं। आज उपदेश देने वालों की कमी नहीं हैं, उपदेश सुनकर आचरण में लाने वालों की कमी है। मानव दूसरों के द्वारा नहीं स्वय के द्वारा हार रहा है। उसकी आशायें-तृष्णायें, स्वार्थ, घमण्ड, सकीर्णता, अनुदारता आदि दुर्गुण ही उसे हरा रहे हैं। मनुष्य बाहर से तो बहुत पराक्रमी, बलवान बन गया। जल-थल-नभ सभी को नाप लिया, भौतिक विकास कर लिया, लेकिन फिर भी अपनेआप में मात खा रहा है। दु ख अशान्ति, तनाव, सघर्ष का अनुभव कर रहा है। इसलीए महावीर ने आज से 2600 वर्ष पूर्व उपदेश

दिया था कि जीवन बाहर नहीं भीतर है, बाह्य को त्याग करके अन्तरंग में प्रवेश करो। अपना निरीक्षण-परीक्षण अन्वेषण-गवेषणा करना ही सच्चे सुख-शान्ति का मार्ग है । अपने वैर-विरोध, तृष्णा, अहंकार, प्रमाद आदि से मुक्त हुए बिना बाहर के अधिकार,यश, कीर्ति से सुख शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती। मनुष्य बाहर से प्राप्त करने में इतना व्यस्त है कि अन्तरंग का निरीक्षण-परीक्षण करने का उसके पास समय ही नहीं है। बाहर के विस्तार ने मानव विवेक को कैद कर लिया है। उसके जीवन की तर्ज अहिंसा है, पर हिंसा उसके जीवन मे चारो तरफ से घास-फूस की तरह से उग रही है। वह सत्यप्रिय है, लेकिन हर साँस के साथ झूठ बोल रहा है। करूणा की साकार मूर्ति है, लेकिन अन्याय प्रतिक्षण कर रहा है। आखिर यह दोहरी नीति क्यों? क्योंकि कन्ट्रोलरूम का मालिक अब अपने नियन्त्रण में नहीं है। अन्तरंग में हलचल चल रही है और बाहर विश्वविजय का झंडा फहरा रहा है। ऐसे विश्वविजयी मनुष्य के हाथ में आत्मजयी महावीर ने विवेक दिया। हमेंशा विवेक से चलो, विवेक पूर्वक खड़े होओ, विवेकपूर्वक उठो, विवेक से सोओ, विवेक से खाओ, विवेक से बोलो तो मानव बनने में कोई कमी नहीं रहेगी। क्रोध को अक्रोध से जीतो, वैर को अवैर से हटाओ, घृणा को प्रेम से पिघलाओ, मोह को संयम से जीतो, तृष्णा का मुकावला समता से करो,लोभ पर अंकुश साधना से लगाओ तभी महावीर की जन्म जयन्ती मनाने की सार्थकता सिद्ध होगी।

आज हम सभी महावीर की जन्म जयन्ती मनाने में इतने आत्मविभोर हैं कि उनकी जय-जयकार कर रहें हैं मगर उनकी बात नहीं सुन रहें हैं। महावीर मनुष्य को मनुष्य बनने की शिक्षा दे रहें हैं। उनकी शिक्षायें पूजा-पाठ, मंदिर-मूर्ति, बाहरी ढोंग दिखावा-प्रदर्शन की नहीं हैं। लेकिन हम मंदिरों में जाकर उन दरवाजों पर दस्तक दे रहें हैं जो बंद है। हमने महावीर को मंदिर की चारदीवारी में बिठा दिया कि हे भगवान्! हमने आपके विराजमान होने के लिए शानदार ग्रेनाइट पत्थर की वेदी बनवा दी है आप सुख पूर्वक यहीं इस पर विराजिये, हम यही आकर आपको पूजेंगे,भजेंगे, आरती उतारेंगे, कलश करेंगे, आपकी वाणी सुनेंगे, पढेंगे, व्रत रखेगे। इस बाहरी दुनियाँ में कुछ नहीं है इसीलिए आज हमारे बड़े-बड़े शिखरबद्ध मंदिरों में ताले लगे हुए हैं। आज उन तालों को खोलकर महावीर को मुक्त करने के लिए साधक मनुष्यों को अपने पूजाघर से, संतों को गेरूऐं एवं पिच्छी कमण्डलु से बाहर निकलना होगा और अड़िग चट्टान की भाँति उन मिथ्या, रूढिगत अंध परम्पराओ से झूझना होगा जो मानव की मावनीयता निगल रही हैं, उस बैर से निपटना होगा जो इंसान की इंसानियत नष्ट कर रहा है, उस अहंकार से लोहा लेना होगा जो मानव को दानव बना रहा है। वह कौनसा स्वर्णिम समय होगा जब हम अपने जाने माने रास्ते को छोड़कर और महावीर के बताये मार्ग का अनुसरण करेंगे।

क्या हम इन्ही प्रश्नों के आधार पर महावीर की विरासत के उत्तराधिकारी माने जाते रहेंगे कि हम रात में नहीं खाते जैन हैं ? या हमारे आचरण में यह उतरेगा कि महावीर का भक्त झूँठ नहीं बोलेगा, क्रोध, कपट, मापाचारी, धोखाधड़ी, बेईमानी, अन्याय, अत्याचार, शोषण नहीं करेगा, हिंसामय प्रवृति नही अपनायेगा, परिग्रह से अलिप्त रहेगा, दया, क्षमा, करूणा, प्रेम, वात्सल्य, संवेदना, सहिष्णुता, परोपकारिता, आदि गुणों को अपने जीवन में क्रियान्वित करेगा। अवगुणों को त्यागना व गुणों को ग्रहण करना ही महावीर की विराट विरासत का मालिक बनना है एवं उनकी जन्म जयन्ती मनाने की सफल श्रेष्ठता को हासिल करना है। ◆

महाश्रमण भ महावीर के पॉच संकल्प और उनकी प्रासगिकता

✍ विद्यावारिध डॉ महेन्द्र सागर प्रचडिया

चौबन-पचपन की बात रही होगी जब मै राजामडी आगरा में रहता था। एम ए, साहित्यालकार उत्तीर्ण कर मै पी-एच डी उपाधि के लिए शोध-कार्य में प्रवृत्त था। श्री दि जैन मदिर, राजामडी में मै देवदर्शनार्थ जाया करता था। वहॉ दर्शनार्थियों की सख्या अँगुलियों पर गिनी जा सकती थी। इतनी बड़ी बस्ती, इतना बड़ा जैनियों का सकुल और इतने कम देवदर्शनार्थी। इस ज्वलन्त समस्या पर मैने तब विचार किया। दो चार साथियों को लेकर मैने एक सगठन खड़ा कर दिया। नाम रखा गया–'श्रमण सास्कृतिक सघ'।

लोगों में एकरूपता और सगठन के सस्कार जाग्रत हों, इस उद्देश्य से एक साथ प्रार्थना-पाठ करने की आवश्यकता अनुभव की गई। मैने तत्कालीन जैन समाज के कई कवियों से एक कविता रचने का आग्रह किया। आगत प्रार्थनाओं में कविरत्न श्री सुरेन्द्र सागर प्रचडिया द्वारा प्रणीत 'श्रमण सघ प्रार्थना' सब ने स्वीकार की और प्रात कालीन सघ समारोह में सघ प्रार्थना नियमित गाई और दुहरायी जाने लगी।

सघ के साथी प्रात जिन मदिर परिसर में समय पर उपस्थित होते, समवेत स्वर प्रार्थना का अनुपाठ होता, देव दर्शन की महत्ता पर मेरा प्रवचन होता। प्रत्येक सदस्य अपने अपने क्षेत्र से कम से कम एक सदस्य को देव दर्शनार्थ अपने साथ लाने का सकल्प लेता। यह क्रम नित्य और निरन्तर चलता रहा। इस प्रकार देव दर्शनार्थियों की सख्या दिन-दूनी, रात चौगुनी बढ़ने लगी। मदिर में रौनक बढ़ने लगी। धीरे-धीरे आरती और शास्त्र-सभा का आयोजन रखा गया। शास्त्र-वाचन मेरे द्वारा होता।

सघ ने दूसरा कारगर कदम उठाया निशि-भोजन पर रोक लगाना। उस समय घर-घर बच्चों में विशेष रूप से निशि-भोजन करने की बाढ सी आ गई थी। उसे बद करने के लिये सघ ने एक योजना बनायी। तत्कालीन आगरा जैन समाज के लोकप्रिय अध्यक्ष राय साहब सेठ मटरुमल जी वैनाड़ा (अब दिवगत) सघ सरक्षक श्री बाबूलाल जी बड़जात्या, श्री प्रभूदयाल जैन तथा सेठ श्री चम्पालाल जी जैन (अब सभी दिवगत) तथा मैं बारी-बारी से सायकाल किसी एक घर में दस्तक देते। जहॉ खाना बनता और जहॉं जीमण होता, हम लोगों की टोली मौन मुद्रा में खड़ी हो जाती। लोग आगत का स्वागत करने का आग्रह करते। बिना कुछ कहे सुने हम लौट आते। इससे पूरे मुहल्ले और बस्ती में आतक छा गया कि पता नहीं कब प्रचडिया जी दलबबल के साथ आ धमके इस भय से छुटकारा पाने के लिये शाम का भोजन प्राय दिन में पूर्ण होने लगा।

आगरा जनपद के अतिरिक्त श्रमण सास्कृतिक सघ की शाखाऍ धौलपुर, अलीगढ आदि में खोली गईं। सघ प्रार्थना-पाठ ने लोकप्रियता अर्जित की। ऐसी उपयोगी सघ प्रार्थना पर यहॉं सक्षेप में अध्ययन तथा अनुशीलन करना वस्तुत मेरा मूल अभिप्रेत है।

"हे श्रमण तुम्हारी वाणी के अमृत रस का

हम पान करें

विष दूर विषमता का होवे, समरस जीवन निर्माण करें॥"

यह पॉच छन्दों मे गठित श्रमणसंघ प्रार्थना का मुखड़ा है, जिसे प्रत्येक छन्द के पश्चात् दुहराया जाता है। प्रार्थना का प्रथम छन्द अहिंसा संकल्प से सम्पृक्त है। कवि की भक्त्यात्मक आत्मा अहंकार रूपी गज से उतर कर कोमल धरणीपर विचरण करती है। अस्तु हमारे हृदय में पर-पीड़न पहुँचाने की भावना का सर्वान्त हो जाती है। जग-जीवों की विराधना करने का प्रश्न ही नहीं उठता। प्रमाद हिंसात्मक प्रवृत्तियों का पोषण करता है, अस्तु हमारे जीवन से प्रमाद का पूर्णतः पलायन हो जाय ताकि हम नित्य और निरन्तर उत्थान करने की मंगल कामना करने लगते हैं। यथा – "हम अंहकार-गज से उतरें, कोमल धरती के अचंल में।

क्रोधानल खोये निज सत्ता, समता के शीतल मृदुजल में॥

पर-पीड़ न दें न किसी को हम, पर प्राण हरण संकल्प न हो।

हिंसामय परणति बनें नहीं, छूटे प्रमाद, उत्थान करें॥1॥

श्रमण म. महावीर अहिंसा का मूलाधार व्यक्ति की भावना पर मानते हैं। भाव और द्रव्य हिंसा का भेद करके स्पष्ट किया गया है कि द्रव्य हिंसा का संचालन मूलतः भाव हिंसा द्वारा ही होता है। सच्चा अहिंसक किसी प्राणी का भावात्मक दृष्टि से भी अहित नहीं चाहता। आज आदमी द्रव्य हिंसा करने में भी नहीं हिचकता, फिर भला उसके लिए भाव हिंसा के लिये क्या सकोच ?

हिंसा वस्तुतः घृणा का घर है। इससे पूरे समुदाय और समाज में अशान्ति और आकुलता का वातावरण पैदा हो जाता है। हिंसक को देखकर पशु-पक्षी ही नहीं, पेड़-पौधे भी सहम उठते है। भ. महावीर सुख और समृद्ध जीवन जीने के लिये अहिंसा प्रधान चर्या की प्रासंगिकता पर आम चर्चा तथा संस्तुति करते है।

श्रमण प्रार्थना का दूसरा छन्द सत्य-संकल्प से प्रारम्भ होता है। हमारे जीवन से मृषा अर्थात् झूठ-वृत्ति का विसर्जन हो जाए तो हममें युगपत् सब कुछ जानने की शक्ति का संचार हो उठता है। सत्यप्रियता से हमारी जीवन चर्या आडम्बर और प्रदर्शन मुखी प्रवृत्तियो से छुटकारा पा सकती है। जैसे ही हमारा मन-मानस, से अनृत अर्थात् झूंठापन धुल जाता है, वैसे ही हमारे भीतर सत्, चित और आनन्द का संचार होने लगता है। फलस्वरूप हम पारस्परिक हित, मित और प्रिय
वाणी का प्रयोग उपयोग करने लगते है। यथा-

"हम युगपत सब कुछ जान सकें, संचार मृषा का करें नहीं।

सत् दर्शन का नित चाव जगे, आडम्बर तन, मन भरे नही॥

सत् चिदानन्द प्रकटे हम में, सब अनृत हमारा धुल जावे।

हित, मित प्रिय वाणी बोल उठें, समवेत सत्य गुणगान करें॥

हमारे जीवन को कलुषित करने वाले विकारों में झूठ का प्रमुख हाथ है। झूठ से हमारे विचार और व्यवहार की प्रामाणिकता प्रायः भंग हो जाती है। प्रामाणिक जीवन जीने के लिए सत्यप्रियता एक अनिवार्य आत्म स्वभाव है। आज का जीवन

असत्यप्रियता से इतना ओत-प्रोत हो गया है कि हमारे खान-पान तथा जीवन जीने से सबधित सभी पदार्थों में झूठेपन का प्राधान्य मुखर हो उठा है। यहाँ तक रोग विनाशक औषधियों में भी मिलावट प्राय अनिवार्य हो गया है। यही कारण है, हमारा जीवन अनाहूत आपदाओं से आक्रान्त है, फिर भी हमारा मन-मानस झूठ से पिण्ड नहीं छुड़ा पाता। एक झूठ छिपाने के लिये व्यक्ति को सौ झूठों का प्रश्रय लेना होता है। फलत हमारे जीवन का प्रत्येक क्षण भयाक्रान्त है। निर्भय जीवन सदा सत्यमय होता है। सत्यवादिता की इससे बढ़कर और क्या प्रासगिकता हो सकती है ?

महाश्रमण का तीसरा शुभ सकल्प है– अचौर्य। प्रार्थना में भक्त शासन का अतिक्रम और विधि के व्यतिक्रम से सर्वथा अलग रहता है। राष्ट्र विरोधी प्रेरणा से भक्त सदा दूर रहता है। कवि कहता है कि हमारे द्वारा किसी का अपहरण करना तो दूर, बिना आज्ञा तथा अनुमति प्राप्त किये हम पर-पदार्थ को स्पर्श तक नहीं करते। हमारे जीवन का मूलाधार अस्तेयमुखी है। हम विधिपूर्वक अपने जीवन को सदा गतिमान करें। यथा–

" हम करें न अतिक्रम शासन का, व्यतिक्रम विधि का भी करें नहीं।
हम राष्ट्र विरोधी जन-मन में, प्रेरणा कभी भी भरे नहीं॥
अपहरण किसी का धन न करें, आदेश बिना कुछ छुए नहीं।
अस्तेय हमारा धर्म बने, विधिवत जीवन गति मान करें॥"

जन-जीवन को रसातल की ओर ले जाने वाले दुर्गुणों में चोरी करना एक प्रमुख पाप-कर्म है। चोरी जैसी मैली मनोवृत्ति का उदय और उत्थान जीवन चर्या से श्रम के सस्कारों के समापन पर निर्भर करता है। चोरी वस्तुत बुराइयों का कुआ है जिसमें झाँकने मात्र से विनाश लीलाएँ प्रारम्भ होने लगती हैं। चोरी के कुसस्कार घर और बाहर विघटनकारी वातावरण तैयार कर देते है। आज का जन-जीवन इतना पतित हो गया है कि शुभ और शुद्ध कार्यों में भी चोरी की कुप्रवृत्ति घर कर गयी है। विद्योपार्जन तथा प्रभु की वदना में चोरी ने प्रवेश कर लिया है। देवालय चोरी के कार्यालय बन गए है। ऐसी गिरावट और पतनमुखी वातावरण में अचौर्य की प्रासगिकता पर भला कोन प्रश्न चिन्ह लगा सकता है।

सघ की प्रार्थना का चतुर्थ छन्द ब्रह्मचर्य पर आधारित है। भक्त कामना करता है कि हमारे जीवन से उच्छृखलता सदा दूर रहे, उस पर सयम का अकुश लगा रहना श्रेयस्कार है। हमारे मन-मानस में ब्रह्मचर्य जैसा शुभ भाव सदा गूँजता रहे ताकि काम के अभिनिवेश से सर्वथा पृथक रहा जा सके। हम काम में अधे न होने पावें। हम अपने ब्रह्म को पहिचाने तथा निरन्तर सत्य शिव और सुन्दर का आह्वान करते रहें। यथा-

" उच्छृखल जीवन बने नहीं, सयम का अकुश लगा रहे।
प्रभु। ब्रह्मचर्य का नितमन में, शुभ भाव सदा ही बना रहे॥
हो नहीं काम का अभिनिवेश, अति तीव्र न अधे हो जावें।
पहिचाने अपना ब्रह्म, सत्य, शिव, सुन्दर का आह्वान करें॥4॥

जहाँ जीवन में हिंसा होगी, झूठ होगा और चोरी जैसी मैली मनोवृत्ति कर प्राधान्य होगा, वहाँ

शील-सुगंध की भला क्या बिसात ? दुर्गंध में जीने वाला प्राणी, सुगंध कैसे स्वीकार कर सकता है ? सदाचारी घ्राण इन्द्रिय का सदा सदुपयोग करता है। 'संयम : खलु जीवनं' अर्थात् संयम ही जीवन है। संयमी और सदाचारी सदा शील का सत्कार करता है।

जब जीवन मे संयम, समता और सौहार्द के संस्कार जाग्रत हो जाते हैं, तभी उसमे शील की सुंगध का उजागरण होने लगता है। शीलवान प्रत्येक आत्मा में अपने आत्म-स्वरूप के दर्शन करता है। ऐसी स्थिति में भोग-भावना का उद्भव भला कैसे संभव है ? शीलवान अपनी ऊर्जा का आत्म और पर-हित में, उपयोग करता है। उसे 'मातृवत् सर्व भूतेषु' प्रतीत हो उठता है। आज के प्रदूषित वातावरण में शील की सुगन्ध साक्षात् ऑक्सीजन है, जो निष्प्राणों और में प्राणो की प्रतिष्ठापना करती है। ऐसी संजीवनी-शील-सत्ता की प्रासंगिकता के लिए भला किसकी संस्तुति आवश्यक होगी ?

श्रमण संघ प्रार्थना का अंतिम और पांचवां शुभ संकल्प अपरिग्रहवाद पर आधारित है। भक्त इस प्रार्थना मे चिंतवन करता है कि हमें अपने परिग्रह को नित्य और निरन्तर बढ़ा-बढ़ाकर दूसरे के अधिकार को कभी न छीनना चाहिए। मर्यादा बॉध कर हमें संतोष पूर्वक जीवन जीना श्रेयस्कर है। हमें जीवन के सारे विग्रहों को अपरिग्रह के माध्यम से जीत कर सभी जीवों को जीने के हक सुलभ करना चाहिये तथा स्वयं भी जीना चाहिये। हमारी दृष्टि मे समूची वसुधा एक कुटुम्ब का रूप धारण करे और इस प्रकार हम-सब मैत्री का भव्य विधान प्रस्तुत करें। यथा–

"अपना परिग्रह हम बढ़ा-बढ़ा, छीनते न पर अधिकार रहे।
मर्यादा अपनी बाँध चलें, मन में संतोष विचार करें॥
अपरिग्रह से तज विग्रह को, जीवन दें सब को स्वयं जिये।
वसुधा को एक कुटुम्ब बना मैत्री का भव्य विधान करें॥"

लोभ और मोह सब अनर्थो का मेरुदण्ड है। इससे चय, उपचय और संचय की भावना तीव्रतर होती है। संग्रह मे सॅड़ाद-दुर्गंध पैदा होती है। कहा गया है–'चयरित्त करं चारित्तं। जब सारा परिग्रह छूट जाता है, तब चारित्र्य का अभ्युदय होता है। दर्शन और ज्ञान की समूची सम्पदा जब चारित्र मे चरितार्थ होती है, तब मुक्ति-मार्ग का प्रवर्तन होता है। शरीर और धन के क्षय होने पर पुनः संचय किया जा सकता है, पर यदि चारित्र का क्षय हो जाता है तो सदा के लिए सर्वनाश के द्वारा खुल जाते हैं। विचार करें किसी राष्ट्र का सम्राट अपनी राष्ट्रीय परिधि में पूजा जाता है। राज्यपाल अपने राज्य मे पूजा जाता है, परन्तु चरित्रवान पूरे भूमण्डल मे पूजा जाता है। देवता को सब पूजते हैं, परन्तु देवतागण भी चरित्रवान की पूजा करते हैं। ऐसे सर्वपूज्य की प्रासंगिकता को भला कौन रोक और टोक सकता है ?

काव्य-कला और शास्त्रीय सद्गुणों में समलंकृत यह विवेच्य 'श्रमण सघ प्रार्थना' अपनी सार्थकता और उपयोगिता के लिए किसी स्तुति और संस्तुति की अपेक्षा नहीं रखती है। कवि ने इसकी रचना जिस रूप में, जिस मुहावरे में प्रस्तुत की है, वह अपने में सम्पूर्ण है। उस पर किसी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं ।

मंगल कलश, 394, सर्वोदय नगर,
आगरा रोड, अलीगढ़-202001

वर्द्धमान महावीर जीवन एव दर्शन

✍ डॉ प्रेमचन्द रावका

भारतवर्ष की आध्यात्मिक एव सास्कृतिक परम्परामें भाद्रपद के समान चैत्र मास का भी विशेष महत्त्व है। इस मास के प्रारम्भ में सर्वप्रथम चैत्र कृष्णा चतुर्थी को 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का ज्ञान कल्याणक, चैत्र कृ नौमी को आद्य तीर्थंकर आदिनाथ का जन्म व तपकल्याणक, चैत्र शुक्ला प्रतिपदा नव विक्रम सम्वत् का प्रारम्भ और नवरात्र-अध्यात्म-साधना पर्व चेत्र शु नवमी को मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री राम का जन्मोत्सव, चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को इस युग के अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर का जन्मोत्सव आदि प्राणी मात्र को सुख-शान्ति का सन्देश प्रदान करते है। इस प्रकार न केवल राष्ट्र के अपितु मानव के आध्यात्मिक एव सास्कृतिक उन्नयन में प्रारम्भ से ही श्रमण एव वैदिक धाराओं का महान् योग रहा है। ये दोनों ही धाराए मानव के इहलोक के अभ्युदय और पारलौकिक नि श्रेयस की आधार शिलाएँ हैं।

आत्मोन्नयन के मार्ग में जिसने श्रम अर्थात् सयम, तप-त्याग और ज्ञान-ध्यान बल दिया वह श्रमण धारा कहलायी। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव इस श्रमण धारा के सूत्रधार थे। ऋषभदेव ने भोगमूलक सस्कृति के स्थान पर कर्ममूलक सस्कृति की प्रतिष्ठा की। इन्हीं के पुत्र भरत के नाम पर इस देश का नाम 'भारत हुआ। देववाद के स्थान पर पुरुषार्थवाद का पाठ ऋषभदेव ने ही पढ़ाया। इन्हीं ऋषभदेव की धर्म सभा में दिव्य ध्वनि सुनने देव, मनुष्य व तिर्यञ्च उपस्थित हुये। चक्रवर्ती सम्राट भरत भी दिव्य देशनार्थ पहुँचे।

भरत ने जिनासु हो निवेदन किया-भगवान। क्या इस धर्म सभा में इस समय कोई और भी ऐसी भव्य आत्मा है जो कालान्तर में तीर्थंकर पद प्राप्त करेगी उत्तर में-अनन्त ज्ञान के धनी त्रिकालदर्शी भगवान ने सम्बोधित किया। ' सामने प्रवेश द्वार पर जो साधु खड़ा हैं और भव्यजीवों को प्रेरित कर इस धर्म सभा को भेज रहा है, वह तुम्हारा पुत्र मरीचि- इस भरत क्षेत्र में और इसी अब सर्पिणी काल का 'महावीर' नाम वाला अन्तिम तीर्थंकर होगा। वह इससे पूर्व प्रथम नारायण और चक्रवर्ती भी बनेगा।"

आत्मज के लिये यह सुनकर भरत बहुत आनन्दित हुये। वे हर्षातिरेक में तुरन्त यह शुभ समाचार देने साधु मरीचि के पास गये और गद्गद् उत्कण्ठा से बोले-"मरीचि। तुम धन्य हो, तुम धन्य हो । तुम इस भरत क्षेत्र में अन्तिम तीर्थंकर बनोगे। यह शुभ सवाद स्वय भगवान ने दिया है।' सुनकर मरीचि खुशी के आवेग में उन्मत्त हो उछल पड़ा और लगा झूम-झूम चिल्लाने-' मैं प्रथम नारायण चक्रवर्ती और फिर अन्तिम तीर्थंकर बनूगा। इससे मरीचि में मद/अहकार जाग उठा। साधुचर्या का कठिन मार्ग तो वह पहले ही छोड़ चुका था। अब उसने परिव्राजक का वेष धारण कर भ ऋषभेदव के समानान्तर स्वतत्र मत स्थापित कर लिया। परिणाम स्वरूप चारो गतियों में जन्म-मरण करना हुआ तीर्थंकरत्व से 9 भव पूर्व

सिंह बन मृग का भक्षण कर रहा था कि दो ऋद्धिधारियों के उपदेश से उसे आत्म-बोध हुआ। कालान्तर में दो भव पूर्व नन्दन मुनि की पर्याय में तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया।

अगले भव में 16वें स्वर्ग में देवगति से चयकर वैशाली गणराज्य क्षत्रिय कुण्डग्राम में महाराजा सिद्धार्थ की महारानी त्रिशला की कोख से चैत्र शु. 23 को जन्म लिया। उनके इस जन्म से सर्वत्र सुख शान्ति हो गई। राजकीय वैभव में पले अनेक चमत्कृत करने वाली घटनाओं के बीच वे वर्द्धमान हुये। वे जलकमलवत भिन्न रहकर आत्मलीन रहते। 30 वर्ष की युवावस्था में माता-पिता के विवाहादि आग्रह को अस्वीकार कर राज्य वैभव के सुख को तृणवत् त्याग कर दिगम्बर हो गये और वैराग्य पथ पर चल पड़े। 12 वर्ष की अखण्ड मौन साधना से पूर्व कर्मो की निर्जरा कर कैवल्य को प्राप्त किया। वे अतीन्द्रिय ज्ञान के धनी लोकालोक के ज्ञाता दृष्टा हो महावीरत्व को प्राप्त हुये।

दिव्य ज्ञान होने पर भी, ज्ञान के योग्य संवाहक के अभाव में 65 दिन तक, महावीर की वाणी मुखरित नही हुई। इन्द्र इस रहस्य को समझा। अपने वाक-चातुर्य से युक्ति पूर्वक स्वाभिमानी वैदिक विद्वान इन्द्रभूमि गौतम धर्म सभा मे लाया। उतुंग मानस्तम्भ पर वर्द्धमान महावीर के सौम्य वीतरागी व्यक्तिव को देखते ही गौतम को आत्मानुभूति हुई। उनके अज्ञान और अहं की निशा का अन्तिम प्रहर समाप्त हो गया और वे महावीर के परम भक्त बन गये। विचारो की निर्मलता और परिणामों की शुद्धता से उन्हे मनः पर्ययज्ञान प्राप्त हो गया। गौतम जैसे योग्य शिष्य के उपस्थित होते ही महावीर का दिव्य-सन्देश ॐकारमयी निरक्षरी भाषा में प्रारम्भ हुआ, जिसे गौतम ने ग्रहण कर प्राणी मात्र की भाषा में जन-जन तक पहुँचाया। यह क्रम 30 वर्ष तक चलता रहा। संवाद सम्प्रेषण की इससे बड़ी तकनीक क्या हो सकती है ?

वीतरागी सर्वज्ञ बनने के बाद महावीर 30 वर्ष तक मुक्ति अर्थात् परम सुख का मार्ग जगत् के जीवों को बताते रहे। अपनी दिव्य देशना की त्रि-रत्नों की त्रिवेणी में जन-जन को आप्लावित किया। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' समस्त जीवों में आत्मवत् दृष्टि रखने वाले महावीर ने निरपेक्ष भाव से समस्त लोक को अपनाया। उनके साम्यभाव मै आर्य-अनार्य, साधु-साध्वी, देव-देवांगनायें, स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी सब समान रूप से शरण पाते थे। सभी जीव परस्पर प्रेमानुभव करते और समान आत्मा का अनुभव करते।

इसी मध्य, गौतम के अनुज वायुभूमि, जो महावीर के गणधर थे, को मुक्ति मिली। इस घटना के गौतम के मन को उद्वेलित कर दिया। उन्होंने महावीर से प्रश्न किया-मुझ में और क्या कमी है, जो मेरी मुक्ति मे बाधक है ? महावीर का उत्तर था तुम्हारे अन्तर्मन मे मेरे व्यक्तित्व के प्रति अति सूक्ष्म राग विद्यमान है। राग तो आग है जिसमे जगत के जीव अनादिकाल से झुलस रहे हैं। राग का अंश बुरा है। जब तक राग की आग नहीं बुझती, तब तक वीतरागता कैसे प्रकट हो और मुक्ति कैसे मिले।" गौतम को उत्तर मिल गया, किन्तु उनका अन्तर्मन शान्त नहीं हुआ। उनके मन में मुक्त होने का तीव्र भाव तो विद्यमान था। महावीर ने कहा-गौतम !

व्यग्रता से काम नहीं चलता। प्रारब्ध को तो भोगना ही होगा। गौतम ने सुना कि महावीर के निर्वाण के बाद जब उनकी पार्थिव देह विलुप्त हो जावेगी, गौतम के अन्तर्मन के राग के तन्तु टूटेंगे और हुआ भी यही कि अमावस्या को प्रात महावीर निर्वाण को साय गौतम की कैवल्य को प्राप्ति।

आचार में अहिसा, विचारों में अनेकान्त, वाणी में स्याद्वाद और समाज में अपरिग्रह-इन्हीं चार मणि स्तम्भों पर महावीर का जीवन दर्शन रूपी सर्वोदयी प्रसाद अवस्थित है। भगवान महावीर ने अहिसा स्याद्वाद, कर्मवाद, साम्यवाद अपरिग्रह की जिस पावनधारा में तुमुल वेग प्रवाहित किया उसमें निमज्जित होकर मानव युग-युग तक स्थायी शान्ति और अमरत्व को प्राप्त करता रहा है। अहिसा, अनेकान्त अपरिग्रह महावीर के जीवन-दर्शन की मुख्य रीढ हैं। आज हमारे परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व के मानव-मन में जो तनाव, हिसा, कलह, सघर्ष का ताण्डव नृत्य हो रहा है, वह महावीर के जीवन-दर्शन को समझने और तदनुसार आचारण से समाप्त हो सकता है। इसीलिये आ समन्तभद्र ने महावीर के जीवन-दर्शन को समस्त प्रकार की आपदाओं का शमन करने वाला सर्वोदय तीर्थ कहा है–

''सर्वापदामन्तकर समस्त सर्वोदयतीर्थमिद तवैव।'

महावीर के अनुसार किसी के प्राणों का वियोग करना ही हिसा नहीं, अपितु दिल दुखाना भी हिसा है। सकल्पी हिसा कभी वैध नहीं। जो अपने प्रतिकूल है उसे दूसरे के लिये भी न करो। द्रव्य और भाव हिसा से तीव्र कषायें पैदा होती है। महावीर 'अपने समय में धर्म के नाम पर होने वाली हिसा का विरोध किया। महावीर की अहिसा में विरोधी प्रकृति के जीव भी एक स्थान पर विचरते थे।

महावीर ने एकान्तवाद का विरोध किया। उनके अनुसार वस्तु अनेक धर्मरूपा है। उनकी कथन शैली है स्याद्वाद/स्याद्वाद हमें समता भाव और सहिष्णुता देता है। आग्रह से मुक्ति मिलती है। विचारों में विषमता समाप्त होती है। समता ही जीवन है।

महावीर ने 'बह्वातारम्भ परिग्रहत्व नारकस्यायुष्य परिग्रह को पाप का पुञ्ज बताया। अनावश्यक सग्रह सघर्षों की जड़ है। सामाजिक विषमताओं का कारण परिग्रह है। अतएव त्याग और सयम पर बल दिया।

महावीर का कर्मवाद प्राणी मात्र को पूर्ण स्वतत्रता देता है। प्रत्येक प्राणी अपने सुख-दु ख, जीवन-मरण, उत्थान-पतन, शुभाशुभ कर्मों का कर्ता-भोक्ता स्वय है। क्रोधादि कषायें आत्म-प्रदेशों के साथ मिलकर आत्म स्वभाव को मलिन कर देती है। कर्म बन्धन से मुक्ति के लिये कषायों पर विजय पाना आवश्यक है। 'कषाय मुक्ति किल मुक्तिरेव । महावीर का जीवन दर्शन पावन मन्दाकिनी सदृष है, जिसमें अवगाहन और स्नान से तन और मन दोनों पवित्र हो जाते हैं। उनका दर्शन अहिसा, सयम और तप के उत्कृष्ट रूपधर्म को धारण करता है जिस धर्म को देवता भी प्रणाम करते हैं। वह धर्म उत्कृष्ट मगल स्वरूप है।

◆

मौन-साधना और भगवान महावीर

✍ श्रीमती कामिनी जैन "चैतन्य"

भारतीय संस्कृति महापुरुषों के संदेश और ध्येय को स्मरण रखने में जितनी सचेत रही है उतनी सचेत उनके जीवन के सामान्य घटनाओं के बारे मे नहीं रही। यही स्थिति भगवान महावीर के बारे में है। उनका जन्म, विवाह एवं निर्वाण प्राप्ति आदि के बारे में अलग-अलग कथन हैं। उनकी जीवनी के बारे में अनेक किंवदंतियाँ हैं जो ऐतिहासिक प्रमाण का विषय नहीं, किन्तु अन्य महापुरुषों की तरह श्रद्धा का विषय है।

भगवान महावीर जैसे महापुरुष ने जब इस धरा पर जन्म लिया, उस समय भारत में एक महान् वैचारिक क्रान्ति हो रही थी। वैदिक युग के प्रवृत्ति मार्ग तथा यज्ञ सम्प्रदाय का लोप होने लगा था। जन सामान्य ऐहिक सुख-भोगों को गौण एवं आध्यात्मिक प्राप्ति को अधिक महत्त्व देने लगे थे।

भगवान महावीर ने आध्यात्मिक ध्येय की प्राप्ति हेतु बारह वर्ष तक आत्म-चिन्तन एवं ध्यान किया। इस प्रकार की आत्मिक क्रिया निरन्तर जारी रही, अन्त में उन्हें केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई और वे सर्वज्ञ बनें।

मति, श्रुत और अवधि ज्ञान जिनके जन्म की धरोहर बनकर आये थे, ऐसा बालक वर्द्धमान, एक विशिष्ट साधना को अपने व्यक्तिव में समेटे माँ त्रिशला रानी की गोद में मौन होकर ही आये थे। प्रेम की बोलती भाषा मौन ही होती है। वे अन्य साधारण बालकों की भाँति रोये नही थे। एक हजार आठ विशालकाय कलशों से उनका अभिषेक हुआ और वे मौन रहे। यह उनकी असीम सहनशीलता और जीवन की विविधताओं की स्वीकृति का द्योतक था। 30 वर्ष की तरुण वय तक मौन रहकर जिन्होंने अपनी सहजता का अभ्यास किया और जीवन को मात्र ज्ञाता-दृष्टा बनकर अनासक्ति भाव से देखा। जब संसार के दुख उनके सामने से गुजरे तो उनके मौन ने उनकी आँखों को महाकरुणा से भर दिया था। करुणा बहती आँखें जब बोलती है तो उनसे मौन का ही उद्घाटन होता है।

मौन रहकर वे राजसी जीवन जिए, और शान्ति क्रान्ति का सिंहनाद जब उनके हृदय में स्वरित हुआ तो मौन रहकर ही सब उनसे छूट गया। बारह वर्ष मौन रहकर वचनातीत स्वानुभव का उन्होंने अनुभवन किया। जीवन की परिपूर्णता के अन्वेषण में मौन रहकर उन्होने केवलज्ञान प्राप्त किया। उपदेश भी निशब्द (ओंकार ध्वनि) में प्रसारित हुआ। बोली थी, पर ओंठ तक स्पन्दित नही हुए। यह उनके मौनका सजग प्रयोग था। सारी व्यवहारिक भाषायें उनकी वाणी में समाभूत हो चुकी थी और जब अन्त में शुक्ल ध्यान की निश्चल अवस्था में आए, जब कुछ कहने को ही नहीं रह गया, तब मौन ही उनके कहने को रह गया था।

इस प्रकार महावीर की सम्पूर्ण जीवन गाथा "एक मौन की साधना" रही। सुख-दुख की अनेकताओं को जिन्होंने मौन होकर देखा, उस मौन में एक रहस्य है। यह निखिल वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिस पर एक बड़े अन्वेषण की अपेक्षा है और महावीर के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को गहरे से समझने के लिये इसमें निहित तथ्यों को जानने की आवश्यकता है। भगवान महावीर का ध्यान चित्त का परिपूर्ण मौन हो जाना था। उनके ध्यान की भाषा न कही जा सकती

जैसे गुणों का निवास होता हैं। भगवान् महावीर ने कहा-"मित्ती में सब्ब भूएसु", अर्थात् मेरी सभी प्राणियों से मैत्री है। उनकी शिक्षा है-सभी प्राणियों को समान समझना चाहिये, इसी में अहिसा और समता निहित है।

समया सव्व भुएसु सत्तु मित्तेसु वा जगे।
पाणाइवाय विरइ जावज्जीवाए दुक्कर॥

भगवान महावीर ने अनेकान्त का आदर्श लेकर मानवतावाद की जड़ मजबूत की हैं। विचारों की टकराहट से ही विभिन्न धर्मों में परस्पर द्वेष किया जाता रहा है, जिससे इतिहास में अनेकों लड़ाईयों लड़ी गई और निर्दोष, निर्बलों तथा अनेकानेक प्राणियों को उसका शिकार होना पड़ा। भगवान महावीर ने अनेकान्त दृष्टिकोण द्वारा इसका समाधान किया। उन्होंने कहा-"मैं जो जानता हू वही सत्य है, अर्थात् सर्वश्रेष्ठ है '-ऐसी भावना अहकार को जन्म देती है, जो स्व के लिए तथा मानव समाज के लिए भी घातक है। महावीर ने कहा सत्य एक है, परन्तु उसके पहलू अनके हैं। एक बार में एक ही पहलू को जाना जा सकता अथवा देखा जा सकता है जो पूर्ण सत्य न होकर सत्य का एक अश होता है। अत सभी की दृष्टि में अलग-अलग सत्याश की अनुभूति होती है, इसलिए अपना मत (पक्ष) दूसरो पर थोपना नहीं चाहिये, बल्कि परस्पर एक दूसरे को समझने का प्रयास करना ही अनेकान्त है, इससे समन्वय और समता को बल मिलता है।

सामाजिक समानता के साथ आर्थिक समानता के लिए महावीर ने अपरिग्रह सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। महावीर ने कहा–

वित्तेण ताण न लभे पमत्ते, इमम्मि लोहे अदुवा परत्था।
दीवप्पणट्ठेव अणत मोहे, न माड्य दद्ढ मद्धुमेव॥

अर्थात् ' व्यवहार में जीवन चलाने के लिए धन आवश्यक है, उसके बिना जीवन नहीं चलता। मैं उसके उपार्जन को बुरा नहीं मानता, किन्तु आवश्यकता से अधिक सचय वास्तव में विष है-अन्याय है।"

भगवान् महावीर ने इन सभी समानताओं के साथ-साथ नारी समानता अर्थात् नारी के अधिकारों के प्रति भी आवाज उठाई। महावीर के समय में मानव समाज में नारी को पुरुष से हीन समझा जाता था उसे सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक सभी स्तरों पर पुरुष के अधीन समझा जाता था। उन्होंने उपेक्षित नारी चन्दनवाला को दीक्षा देकर नारी जाति के गौरव को फलीभूत किया।

महावीर ने मानवीय एकता की व्याख्या की उसमें साम्प्रदायिक दुराग्रह को कोई स्थान नहीं दिया। उनके अनुसार कौन व्यक्ति, किस सम्प्रदाय में दीक्षित है ? यह महत्त्वपूर्ण नहीं है, बल्कि महत्त्वपूर्ण यह है कि उसका आचार-विचार कितना पवित्र है ? सम्प्रदाय तो सीमित और सकुचित होता है जबकि समता का सन्देश सबके लिए होता है। इसमें सभी का विकास एव कल्याण सुनिश्चित है। जहाँ समता होगी वहाँ शान्ति-सुख और प्रेम का साम्राज्य होगा।

आज भारतीय समाज जो विश्व के श्रेष्ठतम मूल्यों वाला माना जाता है, वह अपनी मान्यताओं, मर्यादाओं की पूजी को खोता जा रहा है, जिससे

राष्ट्रीयता, कर्त्तव्य, प्रेम, समर्पण का ढांचा ही गिर रहा है और साम्प्रदायिकता की आग दिनोंदिन भयंकर रूप लेती जा रही है। आज इस विषम स्थिति मे भगवान महावीर का समता सिद्धान्त सबसे अधिक आवश्यक हो गया है। समता, समन्वय, समर्पण, सहयोग, सहिष्णुता, सहअस्तित्व से ही साम्प्रदायिकता पर विजय पाई जा सकती है और सामाजिक समरसता की ओर अग्रसर हो सकते हैं।

महावीर ने इस समता के सिद्धानत को साम्प्रदायिक सद्भाव अर्थात् मानव समाज के साथ ही मनुष्य के अनन्य सहयोगी पशु-पक्षियों के लिए भी बताया। उनके समोसरण में सभी को समान रूप से ''शरण'' प्राप्त थी। श्रावक श्राविकाएं, विद्वानों, साधुओं, साध्वियों के साथ-साथ पशु-पक्षियों को भी ''समोसरण'' में समान स्थान प्राप्त हुआ था। महावीर ने सभी प्राणियों की आत्मा को समान कहा है। सभी आत्माएं, परम-पद की ओर अग्रसर हो सकती हैं, कोई छोटा-बड़ा नहीं है।

इस तरह उन्होंने सामाजिक समरसता रूप प्रकाश-स्तंभ से विश्व को रोशनी प्रदान करते हुए विश्व बधुंत्व की भावना का प्रसार किया। उन्होंने कहा कि इस समरसता रूप सामाजिक समता द्वारा ही मानव के मन से राग-द्वेश अहंकार, हठाग्रह, जैसी दुष्प्रवृत्तियों का अंत होगा और मैत्री, प्रेम, करुणा, सहयोग, सह अस्तित्व समर्पण, समन्वय, सर्वधर्मसमभाव जैसे गुणो का विकास होगा और फिर निश्चित ही सम्पूर्ण विश्व में सुख-शान्ति का प्रसार हो सकेगा। ◆

तर्ज :- अब सौंप दिया जीवन का भार तुम्हारे हाथों में...........

है अर्पण जीवन का हर पल, गुरुदेव तुम्हारे चरणों में।
जो मर्जी तुम्हारी पार करो, या छोड़ो भव मझधारों में।।

यदि पार मुझे लगावोगे, तो हाय लगेगी तेरी तुम्हें।
अधिकार सभी मै दे ही चुका, गुरुदेव तुम्हारे हाथों में।।
जो मर्जी तुम्हारी .. ..।

यदि छोड़ोगे भव सागर में, बदनाम आप ही होवोगे।
भव तारण हारा नाम तेरा, विख्यात हुवा है भक्तों में।।
जो मर्जी तुम्हारी..........।

यदि मुझसे गुरु तुम रूठोगे, तेरे वीतराग मय दोष लगे।
मेरे दुर्गुण को तुम क्षमा करो, जो बैठे तेरे नयनों में।।
जो मर्जी तुम्हारी .. . ..।

जैसा भी हूँ, क्या करना अब तुम जानो।
यदि मुझे सतावो तो तेरी, अपयश ही होगी लोगों में।।
जो मर्जी तुम्हारी... . ....।

यदि पापी समझ कर छोड़ोगे, तो वीर नहीं कहलावोगे।
तुम उत्तम सुख के दाता हो, क्यों स्थान न दोगे चरणों में।।
जो मर्जी तुम्हारी. ....।

कृतिकार
मुनि उत्तम सागर जी महाराज
(आचार्य विरागसागर जी महाराज संघस्थ)

वर्तमान को वर्धमान की आवश्यकता है

✍मजूलता छाबड़ा,

प्रत्येक द्रव्य में विभिन्न प्रकार के परिणमन हुआ करते है क्योंकि उनमें ऐसी अनन्त शक्तिया होती है। उन शक्तियों को जेसे अन्तरग और बहिरग निमित्त कारण मिलते हैं, उस तरह के परिणमन उस द्रव्य में हुआ करते है। जैसे रूई को यदि तेल और दीपक का निमित्त मिले तो वह रूई बत्ती के रूप में जलकर प्रकाश करती है, कातने वाले का निमित्त मिले तो सूत बन जाती है और अग्नि का निमित्त मिले तो वही रूई जलकर अग्नि बन जाती है।

ऐसी ही बात ससारी जीव की भी है। जीव में सज्जन, सदाचारी बनने की, ज्ञानी बनने की भी शक्ति है और दुर्जन, दुराचारी और अज्ञानी बनने की भी शक्ति है। परन्तु यह निर्भर है उसके अतरग और बहिरग निमित्त पर। यदि उसे किसी सज्जन, सदाचारी का समागम मिलता है तो वह उसके प्रभाव से सच्चरित्र बन जाता है, ज्ञानी बन जाता है, और मूर्ख, दुष्ट, दुराचारी का समागम मिले तो मूर्ख, दुराचारी बन जाता है।

ऐसा ही प्रसग है भगवान महावीर का भी है। भगवान आदिनाथ के पौत्र, भरत चक्रवर्ती के पुत्र मारीचि कुमार को कुल के अभिमान कषाय का अन्तरग कारण मिला तथा उस अभिमान को प्रज्वलित करने वाले बहिरग कारण मिले। जिससे मारीचि कुमार तीर्थंकर का पोता होता हुआ भी अशुभ कर्मो के निमित्त से विविध योनियों में भ्रमण करता रहा। सिह की पर्याय में जब उसको चारण ऋद्धि धारक मुनि युगल का सम्पर्क मिला तो उनके सदुपदेश के निमित्त से उसके हृदय में सत्श्रद्धा जागृत हुई। तब वही मारीचि का जीव आत्म-उन्नति करता गया और नौवे भव में तद्भव मोक्षगामी अतिम तीर्थंकर वर्द्धमान हुआ।

वह दिन चैत्र शुक्ला त्रयोदशी का शुभ दिवस था, जिसे आज भी भगवान महावीर की जन्म-जयन्ति के उपलक्ष में पूरे देश में हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है, जब ज्ञातृवशीय क्षत्रिय राजा सिद्धार्थ के राज-भवन में माता त्रिशला ने अतिम तीर्थंकर को जन्म दिया। उस महान् पुत्र के जन्म के कारण राजा सिद्धार्थ का वैभव, बल, पराक्रम, सुख, यश, सम्पत्ति में अतुल वृद्धि हुई, इस कारण निमित्त ज्ञानियों की सम्मति अनुसार उस महान बालक का सार्थक नाथ "वद्धर्मान" रखा गया। उस पुत्र का जन्म महोत्सव राज परिवार तथा देव परिवार ने बहुत-धूम-धाम से मनाया। उनका लालन-पालन देवों द्वारा भी बहुत ठाठ-बाठ से हुआ।

वर्द्धमान जन्म से ही मति, श्रुत और अवधि ज्ञान, महान शारीरिक बल, सत्श्रुद्धा स्वरूपाचारण चारित्र आदि महान आत्म वैभव के धनी थे। अत वे जन्म से ही धन्य थे। जनसाधारण की तुलना में वे प्रत्येक आत्म गुण के विकास में अग्रसर थे। अतएव बाल्य अवस्था से उनके अनुपम ज्ञान और बल पराक्रम का अतिशय जनता ने देखा। उसी के अनुरूप उनके वीर, अतिवीर सन्मति और महावीर के चार नाम भी प्रख्यात हुए। जनता ने उनके नाम अमर बनाने के लिए बिहार, बगाल प्रान्त के अनेक नगरो के नाम

उनके नाम के अनुरूप रखे। जैसे-वर्द्धमान, सिहंभूमि, वीरभूमि आदि जो अब तक प्रसिद्ध हैं।

भगवान महावीर ने पूर्वभव में जगत जीवों का उद्धार करने की उत्कृष्ट भावना के साथ सबसे अधिक अतिशयशालिनी तीर्थकर प्रकृति का बंध बांधा। अतः प्रारम्भ से ही उनकी उग्र कामना थी कि "सांसारिक जनता दुःख संकट से बचकर तथा उसके कारण भूत कर्म-बंधन से छूटकर स्वतन्त्र सुख सम्पन्न बने"। ऐसी उच्च भावना के स्वामी वर्द्धमान कुमार स्वयं गृहस्थी में नहीं फंसे और आजन्म अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत को अपनाया।

भगवान महावीर के समय में भारत वर्ष की धार्मिक स्थिति ठीक नहीं थी। गाय, बकरी, हिरण आदि जीवित पशुओं को मन्त्रों के साथ अग्नि कुण्ड मे हवन करने का बहुत प्रचार था। स्वर्ग और राज्य पाने की इच्छा में यह यज्ञ यजमान पुरोहितों द्वारा कराये जाते थे और इसी को लोगो ने धर्म मान लिया था। निर्दय पशु हत्या ने धर्म का आवरण पहन रखा था। मूक निरपराध पशुओ की रक्षा करने वाला न तो कोई प्रभावशाली राजा था और न कोई धर्मगुरु और न ही कोई साधारण जनता में हिंसा विधान के विरुद्ध आवाज उठाने वाला था। इस तरह पवित्र भारत भूमि हिंसा के प्रचार से अपवित्र हो रही थी।

हिंसा को धर्म मानने रूप अज्ञान को निर्मूल करने तथा जनता को धर्म का वास्तविक स्वरूप अवगत कराने के लिए भगवान महावीर ने अपना समय राज-भवन में व्यतीत करना उपयुक्त नही समझा और 30 वर्ष के उभरते हुए यौवन में राजकीय, पारिवारिक, सांसारिक तथा शारीरिक मोह ममता का परित्याग करके राजभवन से निकल पड़े तथा स्वाधीन सिंह-वृत्ति अपनाकर दिगम्बर वेश में स्वयं साधु दीक्षा ली। तत्पश्चात्, आत्मशुद्धि द्वारा परमात्म पद प्राप्त करने के लिए एकान्त शान्त वन प्रदेश में कठोर तपश्चर्या करने लगे।

लगातार 12 वर्ष तक मौन प्रशान्त भाव से आत्म-साधना करते रहे। आत्मशुद्धि करके उन्होंने परमात्म पद प्राप्त किया जिससे वे सर्वज्ञ-वीतरागी और हितोपदेशी बन गये।

तदनन्तर, उन्होंने समस्त देशो में विहार करके जनता को सत्य-धर्म का पथ-प्रदर्शन किया, जनता का धार्मिक अज्ञान दूर किया, हिंसा और अहिंसा का सरल भाषा मे बोध कराया। इसका प्रभाव शाली फल यह हुआ कि जो मनुष्य धर्म के नाम पर पशुओं का वध करके हवन करते थे, उन्होंने वह हिंसा कृत्य छोड़ दिया। वे हिंसक से स्वयं ही अहिंसक बन गये। इस तरह भगवान महावीर ने लगातार 30 वर्ष तक अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, स्याद्वाद और अनेकान्त का प्रचार किया। भगवान महावीर ने इस धर्म प्रचार से भारत के भाल से हिंसा का कलंक हटाया था। कार्तिक कृष्णा अमावस्या के दिन पावापुरी से भव भम्रण की परम्परा को निर्मूल करके उन्होंने अजर-अमर मुक्ति प्राप्त की।

आज एक बार फिर वर्तमान को वर्द्धमान की आवश्यकता है। क्योंकि आज फिर वही हिंसा का ताण्डव नृत्य भारत भूमि पर कहर ढा रहा है, जहाँ दूध की नदियाँ बहती थी वहाँ खून की नदियाँ बह रही है। राजकीय शासकों एवं जनता को इस पर ध्यान देने की अत्यनत आवश्यकता है।

10, एवरेस्ट कॉलोनी,
लाल कोठी, जयपुर

आचेलक्य का मोक्ष मार्ग मे महत्त्व

✍ डॉ भानमल जैन कोटा

चेल वस्त्र का कहते है। वस्त्र का ग्रहण परिग्रह का उपलक्षण है। अत समस्त परिग्रह के त्याग का आचेलक्य चरम रूप है , यह कोई वेश नही है। दिगम्बरत्व इस वात की घोषणा है कि मोक्ष की साधना ही मेरे जीवन का लक्ष्य है। लौकिक कार्यो से पूर्ण निर्वृत्ति की उद्घोषणा है। वस्त्र मात्र का त्याग करने पर भी यदि अन्य परिग्रहों से मनुष्य युक्त है तो इसको सयत मुनि नहीं कहना चाहिये। अत वस्त्र के साथ सम्पूर्ण परिग्रह त्याग जिसने किया है वही अचेलक माना जाता है। (भगवती आराधना गाथा 423)

जैन दर्शन में पर द्रव्य में ममत्व बुद्धि को परिग्रह माना गया है(मूर्च्छा परिग्रह) । अचेलक वस्त्र त्याग के साथ 24 प्रकार के परिग्रह में ममत्व बुद्धि का त्याग करता है। एक मिथ्यात्व, चार कषाय (क्रोध ,मान, माया, लोभ) और नौ नोकषाय (हास्य,रति, अरति शोक, भय,जुगुप्सा,स्त्रीवेद,पुरुष वेद और नपुसक वेद) अन्तरग परिग्रह हैं और क्षेत्र (भूमि), मकान, चॉदी, सोना धन,धान्य,दासी दास कपड़े और बर्तन बाह्य परिग्रह हैं। इन सबसे ममत्व बुद्धि (यह मेरा है) का त्यागी वस्त्र त्यागी भी हो जाता है।

सम्पूर्ण परिग्रह त्याग मोक्ष की साधना (कर्मो का सवर और निर्जरा) हेतु वाछनीय धरातल है। इस धरातल पर खड़े होकर ही कर्मो के क्षय योग्य तप से कर्मो की निर्जरा होती हैऔर इच्छा का निरोध ही तप है। इच्छा निरोध की पूर्ण साधना में निष्परिग्रही अवस्था आवश्यक है।

मोक्षमार्ग का साधक हिसा भूठ, चोरी कुशील परिग्रह आदि पापों का सर्व देश त्याग करता ही है। अचेलकत्व (दिगम्बरत्व) के बिना पापों का सर्वदेश त्याग नहीं हो सकता । पसीना, धूलि और मैल से लिप्त वस्त्र में उसी योनि वाले और उसके आश्रम में रहने वाले त्रस जीव तथा सूक्ष्म और स्थूल जीव उत्पन्न होते है,जीवों से ससक्त वस्त्र को फाड़ने काटने, बॉधने, वेष्टिक करने, धोने कूटने और धूप में डालने पर जीवों को बाधा होने से महान असयम (हिसा)होता है ।पाच इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति का अत्यन्ताभाव अचेल कोही होसकता है। परिग्रह मुक्त होने पर ही शीत, उष्ण,डास , मच्छर आदि 22 परिषहों से उसके ज्ञान-ध्यान -तप में बाधा नहीं पड़ती । परिग्रह में अनुरक्त जीव परिषहों को सहन नहीं कर सकता - उसके क्षोभ अथवा दु ख पैदा हुए बिना नहीं रहते । जिसके परिषह में क्षोभ पैदा हो जाता है वह ज्ञान -ध्यान-तप में रत नहीं रह पाता ।घोर तप करने वालें को वस्त्र त्यागी होना आवश्यक है।

तप के लिए निर्भयता आवश्यक है। सचेल को चोर आदि का भय रहता ही है। अचेल को किसी पर शका नहीं होती क्याकि कोई भी हो उसका वह क्या लेगा।

अनगार धर्मामृत में प आशाधर लिखते हैं- मृद्यन्त्रकेशा तुष इव दलिता लिङ्गग्रहेण गार्हस्थ्ये। मृशलेन कणो कुण्ड्क इव नरि शोध्यो व्रतेन हि कषाय ॥9॥ जैसे मिट्टी के बने यन्त्र विशेष से जब धान के ऊपर का छिलका दूर किया जाता है तब उसके भीतर की पतली झिल्ली को मूसल से छेदकर दूर

किया जाता है। उसी तरह व्रत को प्रगट करने वाले बाह्य चिन्हों को स्वीकार कर जब गार्हस्थ अवस्था को दूर किया जाता है तब व्रतो का धारण करने से कषाय को दूर किया जाता है।

ग्रहस्थ (परिग्रही) अस्स्था में महाव्रत का धारण नहीं हो सकता और महाव्रत धारण किये बिना कषाय क्षय के योग्य स्वरुप लीनता का पुरुषार्थ नहीं हो सकता। इसलिए मोंक्ष प्राप्ति की उत्कृष्ट साधना करने वाला अचेलकही हो सकता है। किन्तु नगनत्व व मुनि की बाह्य क्रिया का पालन करने मात्र से न महाव्रत पलते है और न ही कषाय के क्षय योग्य तप किया जा सकता है। आचार्य कुन्द-कुन्द भाव पाहुड़ में लिखते है-

भावो हि पढमलिंग च जाण परमत्थं।
भावो कारणभूदो गुणदोसणां जिणा विन्ति ॥2॥

अर्थ : भाव प्रथम लिग है। हे भव्य! तू द्रव्य लिंग है उसको परमार्थ रूप मत जान, क्योकि गुण और दोषों का कारणभूत भाव ही है, इस प्रकार जिन भगवान कहते है।बाह्य परिग्रह का त्याग भावों की विशुद्धि के लिए किया जाता है, परन्तु अभ्यन्तर परिग्रह से युक्त के बाह्य परिग्रह का त्याग निष्फल है। आचार्य कुन्द-कुन्द लिखते है-

भावेण होइ णग्गो बाहिरलिंगेण किं च णग्गेण।
कम्मपडीय णियरं णासइ भावेण दव्वेण॥

-भाव पाहुड,गाथा .54

भाव से नग्न होता है, बाह्य नग्नलिंग से कार्य होता है? अर्थात् नही होता है, क्योंकि भावसहित द्रव्यलिंग से कर्म प्रकृति के समूह का नाश होता है।

भावलिंगी साधु देहादि परिग्रहों से रहित होता है तथा मान कषाय का सकल परित्याग करता है और आत्मा में लीन होता है। वह सर्व पर द्रव्यों का अवलम्बन छोड़कर आत्म स्वरुप में स्थित होता है। भाव शुद्धि के बिना द्रव्य लिंग बिगड़ जाता है।

जो दिगम्बर श्रमण लिंग धारण करके अयोग्य क्रिया करते है उन्हें लिंग पाहुड़ मे आचार्य कुन्द-कुन्द ने एक प्रशासक गुरू के रूप में खूब फटकारा है। जो लिंग धारण करके नृत्य करता है, गाता है वादित्र बजाता है वह पाप से मोहित बुद्धि वाला है। जो लिंग धारण कर परिग्रह संग्रह रूप करता है, परिग्रह की रक्षा का यत्न करता है उसके लिए आर्त्त ध्यान करता है वह पाप से मोहित बुद्धिवाला है। जो लिंगी बहुत मान कषाय से गर्ववान हुआ कलह करता है वह पापी नरक को प्राप्त होता है(गाथा 4-6)! जो बिना दिया तो दान लेता है और परोक्ष पर के दूषणों से पर की निन्दा करता है वह जिन लिंग धारण करता हुआ भी चोर के समान श्रमण है (गाथा - 14)। जो दीक्षा रहित ग्रहस्थो पर और शिष्यों में बहुत स्नेह रखता है वह अज्ञानी है (गाथा18)! जब तक यह जीव विषयों के वश रहता है तब तक ज्ञान को नही जानता है और ज्ञान को जाने बिना विषयों से विरक्ति मात्र ही से पहिले बांधे हुए कर्मो का क्षय नहीं होता। जो श्रमण ज्ञान प्राप्त करके विषय कषाय छोड़कर ज्ञान की भावना करे, मूलगूण उत्तरगुण ग्रहण करके तप करे वह संसार का अभाव करके मुक्तिरूप निर्मल दशा को प्राप्त होता है-इसमें संदेह नहीं है।

जो पुण विषय विरत्ता णाणं णाऊण भावणा सहिदा।
छिंदंति चादुरगादि तवगुणजुत्ता ण सदेहो॥

आचार्य कुन्द -कुन्द
व्याख्याता, राजकीय महाविद्यालय,
कोटा (राजस्थान)

तीर्थकर वर्द्धमान महावीर की कर्म क्राति

(विश्व की चार विशालतम क्रान्तियों के परिप्रेक्ष्य में)

✍ ब्र सजय जैन ✍ प्रोफेसर लक्ष्मी चद्र जैन

आज से प्राय 2600 वर्ष पूर्व का विश्व चैत्रशुक्ल त्रयोदशी को बिहार के एक वैशाली नामक गणतत्र में किसी हार्दिक क्राति की आशा में जगमगा उठा होगा। विश्व की प्राचीन सभ्यताए जो विशाल नदियों के किनारे सुप्त होती जा रही थीं, उनमें एक अद्भुत रवानी आई। थेलीज और पियेगोरस यूनान में, तीर्थंकर महावीर और गौतम बुद्ध भारत में तथा लाओत्से और कान्फ्युशस चीन में हृदय परिर्वन के ऐसे नये दौर को ले चले कि विद्वद्वर्ग से लेकर जन साधारण तक क्रूरता के दायरों को तोड़कर अहिसा और गणित, जो समस्त विज्ञानों की महारानी अथवा मुकुट मणि कहलाती है, लौकिक सीमाओं का उल्लघन करते हुए लोकोत्तर, अदृष्ट और असीम में प्रवेश कर गयी। चर्चाए धर्म की थीं, केवल ज्ञान की थीं। कुठाओं और कुहाओं के अध में जो बोध की सीमाए सिकुड़ती चली जा रही थीं अब उनमें फैलाव आने लगा था। यूनान का रेखागणित भारत का बीजगणित और चीन का अक मिश्रित गणित सभी मिलकर अनादि और अनन्त के रहस्य को जानने का प्रयास प्रारभ करने में सलग्न हो गये थे। मूलभूत प्रकृत सिद्धातों के नये अभिप्राय और निर्वचन खोजना प्रारभ हो चले थे। भ्रम और विलास के दलदलों में फसे वर्ग ने भी इस ज्वार की अपार शक्ति के उमड़ाव को देखकर अपने कदम पीछे हटाना प्रारभ कर दिये थे। अत एक नवीन जीवत शैली की ओर विश्व मुड़ चला था जहा न केवल अबला एव दास-दलित वर्ग को समान अधिकार घोषित कर दिये जाने लगे थे, वरन् प्रत्येक प्राणी को समान रूप में जीने का अधिकार मिलने लग गया था। विलासी समाज की कुचेष्टाओं की जजीरों में जकड़ी अबलाए अपने अधिकारों को अपने हाथ में लेकर विश्व में क्राति की चिगारियाँ सुलगाने लग गयी थीं । उनका नेतृत्व राजकुमारी चदनबाला ने किया था, जिन्हें महावीर ने तलघर में छिपाई हुई एव जजीर में जकड़ी हुई दासी दशा से उभारकर सर्वोच्च गणिनी आर्यिका के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया था। वर्ण व्यवस्थाए जाति और पथ के भेदों को पार कर लौकिक स्वतत्रता की ओर तेजी से अग्रसर होने लगी थीं। पारलौकिक परिदृश्य में पारमार्थिक भावनाओं से ओतप्रोत यह विश्व की प्रथम ऐतिहासिक क्राति थी जिसने हृदय की क्रूरता को हर स्तर पर, हर विधा पर और हर आयाम पर परास्त करना प्रारभ कर दिया था।

इस क्राति का नेतृत्व तीर्थकर महावीर ने किया था जो पिता महाराज सिद्धार्थ एव मातेश्वरी त्रिशला के राज्यभवन में अवतरित हुए थे। यह राज्यवश नात (ज्ञातृ) वश के रूप में विख्यात था। वर्द्धमान के जन्म लेने से पूर्व उनकी मातेश्वरी प्रियकारिणी को सोलह स्वप्न दिखे थे जिनसे उनके तीर्थंकर के रूप में अवतरित होने की भविष्य वाणी हुई थी। ये स्वप्न क्रमश निम्न लिखित थे मद में

झूमता हाथी, गर्जना करता सिहं, ऊंचे कंधों वाला शुभ बैल, कमल के सिंहासन पर बैठी लक्ष्मी, दो सुगंधित मालाएं, नक्षत्रों की सभा में बैठा चन्द्र, उदयाचल पर सूर्य, कमल पत्र से आच्छादित दो स्वर्ण कलश, जलाशय में क्रीड़ारत मछलियां, निर्मल जल से भरपूर जलाशय, गम्भीर घोष करता समुद्र, मणि जटित सिंहासन, रत्नों से प्रकाशित देव विमान, धरणेन्द्र का विशाल भवन, रत्नों की विशाल राशि और निर्धूम अग्नि। वर्द्धमान ने बाल्यकाल में ही इस असार संसार के अत्यंत वीभत्स रूप को देखकर एक अभूतपूर्व क्रांति के ज्वार को उमड़ाने का संकल्प कर लिया होगा जिसमें विश्व के उच्च्तम मस्तिष्को ने भारत में एक बार पुनःज्ञान के उस वैभव को देखने, समझने का प्रयास किया होगा जो कभी जगद्‌गुरु के रूप में देखा गया था। प्रायः तीस वर्ष तक ब्रह्मचारी रहकर उन्होंने यशोदा नामक राजकुमारी से विवाह का प्रस्ताव ठुकराकर वनवासी हो दुर्द्धर तप को धारण किया। प्रायः बारह वर्ष की अतिशय तपस्या के पश्चात् उन्होंने 66 दिनों का मौन अपनाया। उन्हें वह केवल ज्ञान प्राप्त हुआ था जिसका एकांश रूप उनके दिगम्बर जैन समाज के संदृष्टिमय गणितीय कर्म सिद्धान्त ग्रंथों मे मिलता है।

केवल ज्ञान वस्तुतः एक अतिशय था जिसे समझाने वाला आवश्यक होने के कारण प्रभु की तब तक दिव्य ध्वनि नहीं खिरी जब तक इन्द्रभूति गौतम नामक गौतम (काश्यप) गोत्री ब्राह्मण उनके गणधर नहीं बने। इंद्रभूति गौतम के पांच सौ शिष्य थे जो एक से एक वेद वेदागों मे पूर्णतः पारंगत थे। जब इस जगत विख्यात् ब्राह्मण श्रेष्ठ के पास जाकर इन्द्र ने निम्नलिखित श्लोक का अर्थ बतलाने को कहा तो वे मौन हो गये और उन्होने कहा कि चलो तुम्हारे गुरु महावीर से ही चर्चा करेंगे।

'त्रैकाल्यं द्रव्यषटंक नवपदसहितं जीवषट्‌काय लेश्याः।
पंचान्येचास्तिकाया व्रत समिति गतिज्ञानचारित्रभेदाः ॥
इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवनमहितैः प्रोक्तमर्हद्‌भिरीशेः।
प्रत्येति श्रद्दधाति स्पृशति च मतिमान् यः स वै शुद्धदृष्टिः ॥

उच्चतम ज्ञान क्रांति का यह एक संकेतमात्र था जिसे अखिल विश्व को स्वीकार करना पड़ा था। यह कि संसार के दुखो से मुक्ति तभी संभव हो सकती है जब कि प्राणिमात्र में वही ईश्वरीय अंश समता की दृष्टि लाकर देखा जाये जिसका पूर्ण विकास करने में किसी भी जीव को बाधा देने से उत्तरोत्तर परहेज बढ़ाते हुए जीवन को जिया जाये और अन्य जीव को भी समान स्वतंत्र रूप से जीने का अधिकार दिया जाये। यह मात्र उपदेश, प्रवचन, या कहे जाने वाले धर्मो का स्वरूप नही था, वरन् जीवन मे किये जाने वाले सूक्ष्मतम कर्म के फल प्राप्त होने की विधि का गणितीय वैज्ञानिक रूप से विवेचन था जिसे मन, वचन, काया के सूक्ष्मतम स्पन्दनों तथा पुद्‌गलो से निर्मित कर्मो के निमित्तों (Material fields) से जीव में उदयभूत कषायों के मंदतम और तीव्रतम रूपों के द्वारा प्ररूपित, प्रदर्शित एवं तपादि के द्वारा प्रयोग की कसौटियों पर कसा गया था।

प्रायः उक्त क्रांति से 600 वर्ष होते होते, बोध का प्रकाश धीमा पड़ने लगा था। फिर से विश्व

के हृदय स्थल जेरूसलम में एक सूर्य का उदय होना था। आडम्बर और परिग्रह की लोलुपता वश हृदय के करुण स्रोतों को सुखा दिया गया था। पीड़ितों और गरीब तथा नारियों के उद्धार करने की ओर कोई भी अग्रसर होने में घबरा रहा था। विलास के दायरे बढ़ाने, शोषित वर्ग और भी शोषण चक्र में फसकर अपने शात और मुक्त जीवन जीने के लिये कराह उठा था। इन सभी दुर्दशाओं से प्राणिमात्र का उद्धार करने एक मसीहा-क्राइस्ट अथवा ईसा ने चुनौती स्वीकार की थी।

ईसा मसीह ने विश्व को नये दौर में लाकर, विगत के शब्दों में नये प्राण फूक कर, पुन एक ऐसी क्राति को अवतरित कर दिया जहा सेवा पूर्ण, आडम्बर रहित, परिग्रह रहित, जीव दया से ओतप्रोत जीवन शैली का, जीवन का प्रकाश फैलता चला गया। अहिसा का नवीन स्वरूप अपनी चुनौती को लिये सामने आया। पुन कट्टरता से ब्याजों को वसूल करने वाले दास प्रथा को पनपाने वाले तथा अबला वर्ग को यातनाए तथा पीड़ा देने वाले जो न थे वैसा रूप दिखाने वाले (hypocrites) उनकी बढ़ती लोकप्रियता से ईर्ष्या वश जल उठे। ईसा मसीह ने प्राणदण्ड स्वीकार किया किन्तु स्वय की आहुति देकर वे विश्व की द्वितीय विशाल क्रांति के जन्मदाता के रूप में अमर हो गये।

ईसामसीह के प्राय 600 वर्ष पश्चात् अरब देश में पुन घोर अज्ञान का अध उमड़ता चल रहा था। विलास और परिग्रह के लिये कबीलों के बीच युद्ध अशाति और भ्रम सदेह के काले बादल उमड़ने लगे थे। ये पुन आडम्बरों के जाल में फस जनता को यातनाओं से पीड़ित करते जा रहे थे। इस समय हजरत मोहम्मद पैगम्बर ने दुर्दशा के बीच राहत का मार्ग ढूढने का अद्वितीय पराक्रम किया। उन्हें ईश्वरीय सदेश प्राप्त होने लगा और जब लोगों के सामने लाया जाने लगा तो एक अद्भुत क्राति का जन्म होने लगा। लोगों ने जटिलता का मार्ग छोड़कर सरलता का मार्ग अपनाया और उसी के प्रति अपने आपको पूर्णत समर्पित करने का आजीवन सकल्प धारण किया। दिव्य सदेशों के प्रेरणा स्त्रोत को "अल्लाह' को एक ही सर्व शक्तिमान के रूप में स्वीकार कर नयी जीवन शैली में जनता उतरती चली गयी और विरोधी अपने आडम्बर तथा अपनी क्रूरता एव कट्टरता को छोड़ते हुए परास्त होते चले गये। मोहम्मद पैगम्बर ने आजीवन इस बोध हेतु सग्राम किया। उन्होंने जीवों पर रहम का ईश्वरीय सदेश दिये। जीवन के अन्तिम क्षणों में भी अपने पड़ौसियों को अपना सर्व कुछ न्यौछावर करते हुए वे विश्व की तृतीय विशाल क्रान्ति को जन्म देकर कृतकृत्य हुए।

हजरत मोहम्मद के प्राय 600 वर्ष पश्चात् अखिल विश्व में भारत में कायाकल्प पारस पत्थर, अमर काया जैसी रहस्यों भरी कहानिया मडराने लगीं। भारत के अनेक सस्कृत प्राकृत आदि भाषाओं रचित गणित, विज्ञान ज्योतिष विद्याओं से भरे ग्रथ अरब देशों में न मालूम किन विधियों से पहुँचने लगे और उनके अरबी, फारसी अनुवाद यूरोप तक इन्हीं विधियों के सहारे पहुँचकर विभिन्न भाषाओं में अनुवादित होने लगे। ये ही अनुवादित ग्रथ यूरोपीय विद्वानों के हाथ लगे और महावीर के कर्म ग्रथों में

निहित गणितीय सामग्री उनको राशि सिद्धान्त (set theory) तक खींच कर ले गई। यही से दर्शन शास्त्रों की विद्या में एक नया मोड़ आया और यथार्थ अनन्तों के आयामो में विज्ञान ने प्रवेश पा लिया। रहस्यमय ग्रंथों के अध्ययन न केवल सिद्धांतों के निर्माण में प्रयुक्त होने लगे वरन् उनके प्रयोग भी उनके नवीन सिद्धातो को परिष्कृत करते चले गये। एक वैज्ञानिक क्रांति जो प्रायः 2500 वर्ष पूर्व विश्व को आलोकित कर बुझने लगी थी, उसमें पुनः दीपक जल उठे। सीसे से स्वर्ण बनाने, पारद को मारकर कायाकल्प की औषधि का निर्माण करने, नवीन विधाओं वाले अनेक प्रकार के गणितों के दरवाजे खुलते चले गये। नवीन गणित ने बूलीय न्याय द्वारा मस्तिष्क में आने वाले विचारों को गणितीय क्षेत्र में उतार दिया जिसका उपयोग कम्प्युटर में कृत्रिम बुद्धि भरने में तथा स्मृति को समझने के क्षेत्र तक विस्तृत होता चला गया।

वैज्ञानिक सिद्धांत को गणितीय प्रमाणों के द्वारा, प्रमाण को विभिन्न इकाइयों द्वारा, इकाइयों को विभिन राशियों द्वारा और उपराशियों के विभिन्न प्रकार के ग्रुपों द्वारा अकाट्य बनाया जाने लगा, क्योंकि प्रमाण के सहारे प्रयोग भी सिद्धांत को परिष्कृत और पुष्ट करते चले जाने लगे। गणित भौतिकी का निर्माण न्यूटन (सोलहवीं सदी) से लेकर आइंस्टाइन (बीसवी सदी) तक उन ऊँचाइयो को छू गया जिनसे अणु नाभिका विभाजन कर, नाभिकीय शक्ति को प्राप्त कर मानव चन्द्रमा तक भ्रमण कर लौटने लगा। इधर कृत्रिम बुद्धि का कम्प्युटर प्रणाली में उपयोग निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हुआ। जीवन, शिक्षा, अध्ययन, उद्योग, औषधि, शल्य, जीन यांत्रिकी और क्लोनतंत्रादि (genetic engineering and biotechnology) के क्षेत्रों मे प्रवेश करता हुआ जन जन को वैज्ञानिक पद्धति में आने की ओर आकर्षित करता चला गया। अन्धविश्वासों की दुनियां को आघात पहुँचा। प्रकृति के अनेक रहस्य उद्घाटित होने लगे और भौतिक विज्ञान के आविष्कार जीव विज्ञान, कला विज्ञान आदि को भी ऊंचाईयो और गहराइयों में ले जाने लगे। सिद्धांत और प्रयोग के सहारे जन्मी यह विश्व की चौथी विशाल क्रांति थी जिसने काल और आकाश के आयामो में जीव और पुद्गल संबंधी घटनाओं को समीकरणो के जाल में बुन दिया। यहां गणित अनेक प्रकारो की विधाओ मे बंटकर, विशुद्ध और प्रयुक्त रूपों में विस्तृत होता चला गया। इन सभी विधाओ का एक साथ उपयोग कर उच्चतम मस्तिष्कों ने एक सूची क्षेत्र सिद्धांत (unified field theory) की ओर अपने कदम बढ़ाना प्रारंभ कर दिया, जो प्रकृति में होने वाली प्रत्येक घटना को समझाने वाला सिद्धान्त (theory of every thing) का रूप ले सके, भविष्य में होने वाली घटनाओं की सम्भावना या निश्चिति बतला सके। किन्तु अभी तक उसमें उन्हें पूर्ण सफलता न मिलकर आंशिक सफलता मिल सकी है। दूसरी ओर, श्रृंखलाबद्ध प्रक्रिया द्वारा अणुबम तैयार कर निरीह बालकों का शोषण, भुखमरी, एच. आई. वी., एड्स एवं कैंसर जैसी बीमारियां, इन 600 वर्षों में पनपती चली आई हैं और आज हम पुनः अपार अशांति, अगम्य दुर्दान्तता, तथा अनन्त आतंकवाद के चक्रव्यूह रूपी जाल में फंसे हैं। एक ओर अगम्य लालसाएं तो दूसरी ओर

पूर्ण अभाव ने क्रूरतम वृत्तियों की ओर दोनों प्रकार की विसगतियों की खाइयों को बिना पार की गहराईयों तक उतार दिया है।

अत , पुन निकट भविष्य में हम पाचवी विशाल विश्व क्राति की कल्पना कर सकते है। इसे विलक्षण कर्म क्राति कहा जा सकता है। अखिल विश्व नारायण श्री कृष्ण के द्वारा महाभारत युद्ध के समय अर्जुन को निष्काम कर्म योग का उपदेश, गीता के माध्यम से जानता है। इसकी गहराईयों में छुपे प्राचीन भारत के कर्म सिद्धोत के गहनतम रहस्यों को गणितीय सदृष्टियों वाले समीकरण के रूप में होते हुए भी बिरले ही उनके प्रकाश को छूने में समर्थ हुए है। वर्द्धमान महावीर की दिगम्बर परम्परा में यह सामग्री प्राय 2000 वर्षों तक असीम एव अगम्य अनन्तात्मक गणित एव पुरालिपि भाषा सकेत आदि से ओतप्रोत अभी भी पडित वर्ग की क्षमता के बाहर रही आई है। इसके रहस्यों को उद्घाटित करने हेतु अतरानुशासी अध्ययन (ınterdıscıMgınary studıes) मात्र अनुवाद या इतिहास के द्वारा सभव नहीं है। अनन्तात्मक, असख्यात्मक, सख्यात्मक तथा उपमा प्रमाणात्मक राशियों में गुथी यह सामग्री इडियन नेशनल साइस अकादमी, नई दिल्ली की विज्ञान इतिहास शाखा द्वारा कुछ प्रोजेक्टों में अध्ययन की वस्तु बन सकी है (देखिए एल सी जैन, 1984-1995) अनेक अज्ञात अदृष्ट प्रणालियों से ओतप्रोत यह सामग्री पूर्वो की सामग्री कहलाती है तथा श्रमण परम्परा के गणधर गौतम ब्राह्मण तथा उनके इनके शिष्यों के अभिभूत होने पर भी वर्द्धमान महावीर द्वारा दिव्यध्वनि में प्रकाशित हुई कही जाती रही है। उनके समवशरण में आने के पहले तक वर्द्धमान महावीर का मौन रहना और 42वें वर्ष से लेकर 72वें वर्ष तक विद्वानों की इस आकाशगगा के साथ प्रसारित करते चल जाना, अपने आप में रहस्यमय सकेत है। अशोक मौर्य के पूर्व ब्राह्मीलिपि के शिलालेखों का न होना, तथा मेगास्थिनीज राजदूत का अभिलेख भारत में श्रुत, स्मृति परम्परा का होना पुष्ट करता है तथा लिपियों का ब्राह्मी, सुन्दरी रूप में प्रकट होकर कर्म सिद्धात के लिये आविष्कृत होना कोई रहस्यम घटना ही कही जा सकती है। ब्राह्मी या धनाक्षरी को भाषा की लिपि के रूप में तथा सुन्दरी या हीनाक्षरी को गणित की लिपि के रूप में किवदन्तियों के रूप में पाया गया है। मौर्य सम्राट चद्रगुप्त को दिगम्बर परम्परा में श्रुत केवली आचार्य भद्रबाहु द्वारा दीक्षित किये जाकर उनके 12000 शिष्यों के साथ दक्षिण की ओर प्रवास करना शिलालेखों के पाया गया है। यह बारह वर्षीय अकाल को दृष्टि में रखने पर यथार्थ प्रतीत होता है। पुन , उनके 12000 शिष्यों का आगे बढ जाना तथा आचार्य भद्रबाहु के साथ दीक्षित मौर्य सम्राट का श्रवणबेलगोल मे चद्रगिरि पर उनकी बारह वर्षीय समाधि के लिये रुक जाना, एक गम्भीर प्रयास का द्योतक है। यही काल विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न इन दो विभूतियों द्वारा सदृष्टिमय गणितीय कर्म सिद्धान्त के लेखन हेतु ब्राह्मी एव सुन्दरी नामक दो लिपियों के आविष्कार उनके द्वारा किये जाने की पूर्ण सम्भावना व्यक्त करती है। इस पर तथा अलौकिक प्रज्ञा सम्पन्न कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा सिद्धान्त लेखन हेतु विश्व प्रसिद्ध दसाही प्रणाली के आविष्कार

की सम्भावना पर कठोर साधनायुक्त रिसर्च करवाना अत्यन्त आवश्यक हो गया है। कारणयह है कि अभी तक इन दोनों के आविष्कारकों के नामों को विश्व नहीं जान सका है।

कर्म की कसौटी, कर्म का विज्ञान है। यदि कर्म को एक्शन (action) कहा जाये तो न्यूटन का एक सूत्र था कि प्रत्येक एक्शन के लिये समान और विरोधी प्रतिएक्शन होता है, किन्तु वे यह निर्धारित न कर सके कि यह किस विधान से। उनके पश्चात् गणितीय रूप से कर्म (action) को परिभाषित करने के अनेक प्रयास होते रहे हैं ताकि उसके द्वारा विचरणशील नियमों आदि (variational principles) का प्रयोग कर निमित्त नैमित्तिक क्षेत्र समीकरणों (field equations) को प्राप्त किया जा सके। हैमिल्टन एवं जैकाबी ने इन नियमों पर गहरा अध्ययन किया था। मुमुक्षुओं को सर्वप्रथम आइन्सटाइन द्वारा प्रयुक्त किये गये कर्म (action) के रूप को समझकर गोम्मटसारादि में दिये गये भारतीय कर्म के गणितीय रूप को लेकर विचरणशील नियमों का प्रयोग कर, क्षेत्र समीकरण निकालकर आगे के स्वाध्याय में लगना कल्याणप्रद होगा।

विश्व पूछता है, "क्या कर्म का लेखा पढा जा सका है ? क्या कर्म का भी लेखा जोखा किया जा सकता है ? क्या आने और जाने वाले और विशेष अवधि तक निषेकों के रूप में ठहर जाने वाले कर्म की क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का गणित हो सकता है ? क्या जड़ पुद्गल परमाणुओं तथा जीव से जुड़े कर्म परमाणुओं के खेल में जीव की भूमिका लिखा सकता है-और यदि हाँ तो किस तरह ?"

विश्व यह भी पूछता है, "कर्म क्या है ? धर्म क्या है ? क्या कर्म करते धर्म होता है या धर्म करते कर्म है ? भयंकर दुःखो, यातनाओं की आग मे जलने से बचने बचाने मे कर्म की या धर्म की क्या भूमिकाएं है ? यदि उससे कर्म बचा सकता है तो धर्म की क्या आवश्यकता है ? यदि धर्म बचा सकता है कर्म की क्या जरूरत है ?"

विश्व जानना चाहता है, "कर्म, धर्म और आधुनिक विज्ञान में क्या अंतर है ? क्या ये एक-दूसरे के परिपूरक है या परस्पर विरोधी ? क्या ये जीवन जीने हेतु सभी आवश्यक है, या मात्र एक ही ? क्या मात्र विज्ञान ही सत्य के प्रयोगो की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता है ? " बाल विश्व तो यह भी जानना चाहता है, "क्या शुभ और अशुभ कर्म को पहिचाना जा सकता है? उनकी स्पष्ट सीमाएं क्या दिखाई देती भी हैं ? क्या शुभ कार्य करते हुए भी जीव दुःखी नहीं देखा जाता है, और क्या अशुभ कर्म करते हुए भी सुखी नहीं देखा गया है ? "

भारतीय दर्शनो में अथवा विश्व के साहित्यों में कर्म शब्द उसी रूप में अथवा भिन्न रूप में कम या अधिक सामग्री सहित विवेचित किया गया है, किन्तु गणितीय प्रयोग सहित यह विज्ञान जैसा रूप लेता हुआ वर्द्धमान महावीर की परम्परा में षट्खण्डागम एवं कषायप्राभृत जैसे ग्रंथों, उनकी टीकाओं तथा साररूप ग्रंथों एवं उन्ही की टीकाओं में गणितमय रूप में उपलब्ध हुआ है। किन्तु यह सामग्री अभी तक तक संस्थागत रूप से अध्ययन, अध्यापन या शोध का रूप इन 200 वर्षों मे नहीं ले सकी है।

भारतीय पुरा साहित्य की यह निधि क्या जगजीवन में नवीन क्राति की चिगारी सुलगा सकेगी ? इस सामग्री के गणितीय इतिहास पक्ष विभूतिभूषण दत्त, अवधेशनारायण सिह, एच एल कापड़िया, यूनेस्कों की शाखाओं के प्रतिनिध,आर सी गुप्ता, तकाओ हयाशी, यूकिमों ओहाशी, अलेक्जेण्डर वरलोदस्की, कृपा शकर शुक्ल, मुकुट बिहारी अग्रवाल प्रभृति अनेक विद्वान कार्य करते रहे है, किन्तु इसके वैज्ञानिक पक्ष पर अभी भी कोई कार्य नहीं हो सका है। कर्म के वैज्ञानिक पक्ष के अध्ययन में सिस्टम थ्योरी, साइबरनेटिक्स तथा उनके आधारभूत गणित की विशिष्ट शाखाओ को अध्ययन आव्यूहों के मडलों के परिप्रेक्ष्य में आवश्यक है।

विगत का हमारा सचित कर्म या कर्म सत्व एक ब्लेक बाक्स की भाति रहता है। उसमें क्या आकर किस रूप में मिल रहा है, और वह अनेक रूप में फल देता हुआ निर्धारित होता है। यह सक्षेप में कर्म परमाणुओं की भूमिका है जो कर्म की गतिशील प्रकृति, गतिशील प्रदेश (पुद्गल परमाणु पुज), उनकी स्थिति या लाइफ-टाइम तथा उनकी शक्ति (अनुभाग) या इनर्जी, इन चार प्रमाणों को लिये मात्रा, शक्ति आदि के डाटा बेस को लिये हुए अनेक प्रकार की घटनाओं को जीव और पुद्गल के मेल होने पर दृष्ट रूप में आती है। इस प्रकार कर्म विज्ञान में बध, सत्व उदय, उत्कर्षण,अपकर्षण निधति, निकाचित, सक्रमण सवर और निर्जरा आदि अनेक पक्ष गणितीय अध्ययन की वस्तु बनते है। वस्तुओं (चाहे वे भावात्मक हों अथवा द्रव्यात्मक) की राशियों पर आधारित कर्मों का कलन सभी प्रकार के जीवों की विभिन्न प्रवृत्तियों को बतलाता हुआ, उत्कृष्टतम लाभ और जघन्यतत हानि की सीमाओं का दिग्दर्शन कराता चलता है। क्रोध, मान, माया और लोभ रूप भावों की योगात्मक एव मोहात्मक इकाइयों से अर्जित कर्म परमाणु राशि का बटन और उसका अनेक विध क्षरण का गहनतम अध्ययन भारत में होता रहा तथा इन के विपरीत, क्षमा मार्दव आर्जव और शौच से प्राप्त परिणामों की विशुद्धि से उनके ऊपर पड़ने वाले प्रामाणि प्रभाव के अध्ययन को कम्प्यूटर कितना आगे ले जा सकेगा अभी कहा नहीं जा सकता है।

अब समय आ गया है कि भारतीय पाठ्य पुस्तकों में, इडियन जर्नल ऑफ हिस्टरी ऑफ साइस या गणित भारती जैसों अतर्राष्ट्रीय पत्रिकाओ से प्राचीन भारत की खोजों को (सप्रमाण) छात्रों के हित में प्रकाशित कराना प्रारभ करें। हमारी सभ्यता तथा साहित्य का इतिहास विशेषकर प्राचीन विज्ञानों का, अभी तक पुनर्निर्मित नहीं हो सका है अथवा जो कुछ हुआ है वह अत्यल्पाश मात्र है। विश्व में वही इतिहास मान्य होता है जिसका निर्माण निष्पक्ष रूप से शोधित होकर हुआ हो। शोध के मार्ग में अध श्रद्धा या पूर्वाग्रह बाधक न बन जाये यही कर्म विज्ञान की कसौटी है। शुभ कर्म मार्ग और अशुभ कर्म मार्ग के बीच की सधि में विशुद्धि का मार्ग हुआ करता है जो चाहता है कि अतत शुभ और अशुभ दोनों से परहेज किया जाये। इसका गणितीय दिग्दर्शन वर्द्धमान महावीर के परम्परागत कर्म साहित्य में एक विलक्षण स्रोत की ओर ले जा सकेगा।

◆

तीर्थङ्कर महावीर और उनकी देशना

✍ ज्ञानचन्द खिन्दूका

हमारे जीवन का यह अत्यंत गौरवमय, पुण्यशाली पक्ष है कि जगत-वन्दित, पतितोद्धारक, तीर्थकर वर्द्धमान स्वामी की पावन जयंती के प्रकरण में हमे उनके गुणानुवाद के माध्यम द्वारा लब्धि में पड़े हुये अपनी आत्मा के गुणों से साक्षात्कार करने का एक और सौभाग्यशाली अवसर प्राप्त हो रहा है।

अब से 2600 वर्ष पूर्व इस धरा पर एक ऐसी आत्मा ने वर्द्धमान के रूप में, जन्मधारण किया जिसने तप, त्याग और संयम की साधना के फलस्वरूप मनुष्य जीवन के चर्मोत्कर्ष को प्राप्त कर राजकुमार वर्धमान से तीर्थकर महावीर बनने का सार्थक पुरुषार्थ किया और ऋषभ देव व अन्य तीर्थकरों द्वारा मानव से भगवान बनने के मार्ग को, दर्शन को पुनः आलोकित किया, प्रतिष्ठापित किया।

आचार्य हस्तीमलजी महाराज के मार्गदर्शन में रचित जैन धर्म के मौलिक इतिहास-तृतीय भाग में देवेन्द्रमुनि लिखते हैं कि "महावीर का दर्शन विश्व का महान् वैज्ञानिक दर्शन है। यह आत्मा के परम व चरम विकास मे आस्था रखने वाला धर्म है जो साध्य और साधन दोनों की पवित्रता में विश्वास करता है। इसमें आचार और विचार की समान शुद्धि पर बल दिया गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह विश्व का प्राचीनतम धर्म है। इसे मनुष्य लोक की अपेक्षा अनादि और अनन्त कहा जावे तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। यह एक स्वतंत्र धर्म है। यह न वैदिक धर्म की शाखा है न बौद्ध धर्म की। पुरातत्व, भाषा, शिल्प और साहित्य आदि से यह स्पष्ट हो गया है कि वैदिक काल से भी पूर्व भारत में एक बहुत ही समृद्ध संस्कृति थी जो समय समय पर विभिन्न नामों से जानी पहचानी जाती रही और वही संस्कृति आज जैन-संस्कृति के नाम से लोक-विश्रुत है।"

महावीर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तो का परिपालन व आचरण करने से लौकिक ऐश्वर्य और सामाजिक जन-कल्याण ही नहीं अपितु आत्म-साधना कर परमात्म-पद की प्राप्ति भी की जा सकती है। निश्चित ही इस हेतु साधनामय तपस्वी जीवन और अनवरत पुरुषार्थ की अनिवार्यता है। पर जाति, पाति अथवा देश, कुल इसमे कोई व्यवधान नही बन सकते। इस अर्थ में महावीर प्राण-तन्त्र के हामी है। जहॉ तहॉ भी सास धड़कता है वहां वहां वह गुण-शक्ति अस्तित्व मे है, वह चैतन्य चिनगारी दबी हुई है जो त्याग और तपस्या की हवा देने पर लौ बन सकती है, प्रकाश बन सकती है।

महावीर कहते है 'धम्मो मंगलमुक्किट्ठम अहिंसा संजवो तवो"। अहिंसा, संयम और तप रूप धर्म उत्कृष्ट मंगल है, सर्व श्रेष्ठ मंगल है। उनने अहिंसा को सबसे अधिक प्रमुखता दी, अहिंसा को धर्म की आत्मा कहा।

प्रश्न उठता है कि हिंसा पैदा क्यों होती है? इसका मूलाधार क्या है, कहाँ है? हिंसा वास्तव में जन्म के साथ जुड़ी हुई है। हिंसा जीवन के पर्त पर्त पर फैली हुई है। जिसे हम जीवन कहते है वह हिंसा का ही विस्तार है। पर ऐसा क्यों है? अपरिहार्य बात है दैनंदिन [illegible], जीने की आकांक्षा, जीने

की उत्कृष्ट अभिलाषा। सब जीने को आतुर है। जीने का लक्ष्य हो या न हो, जीने का उपयोग हो या न हो। जीने से कुछ लाभ फलित होता हो या न हो, पर फिर भी सब जीना चाहते है। तो यह जीने की लालसा है, तमन्नाए हयात, lust for life। इसका विस्तार ही हिसा की जननी है। हिसा जनित क्रियाओं का जन्म यहीं से होता है। जीने का एक पागलपन, एक विक्षिप्त भाव मनुष्य के मन में रहता है। एक शायर ने इसे यू वयक्त किया है–

खत्म कर देगी किसी दिन यह तमन्नाए हयात
रात दिन कोशीश में जीने की मरा जाता हूँ मैं।

कभी-कभी यह जीने की तमन्ना इतनी बलवती हो जाती है कि मनुष्य दूसरे के जीवन के मूल्य पर भी जीना चाहने लगता है। यदि कभी ऐसा विकल्प उपस्थित हो जावे कि सारे जगत को मिटाकर तुझे बचने की यानि जीने की सुविधा प्राप्त हो सकती है, तो सम्भवतया इसे भी स्वीकार करने में मनुष्य नहीं हिचकिचायेगा। जीवेषणा की इस विक्षिप्तता के विस्तार में हिसा के नाना रूप जन्म लेते हैं। जीने की अतृप्त कामना ने राग द्वेष को जन्म दिया। क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायों की प्रवृत्ति बढ़ी। इच्छाऐं बढ़ी, वासनाए बढ़ी। जीवन की अनिश्चितता और मृत्यु की सुनिश्चितता इन दो पाटों के बीच में ढेर सारी समस्याओं के निराकरण के फल में परतन्त्रता बढ़ी, सग्रह की वृत्ति बढ़ी।

"इच्छा हु आगास समा अणतिया"

इच्छाए असीम हैं। आकाश के समान अनन्त हैं। ससार के साधन इन इच्छाओं की पूर्ति के मुकाबले अपर्याप्त है, सीमित हैं। इसलिए टकराव होने लगा। द्वन्द्व होने लगा। सघर्ष होने लगा। मेरा तेरा होने लगा। समान इच्छाओं वालों के गुट बन गये। व्यक्ति व्यक्ति में यह टकराव बढ़ते बढ़ते ग्राम नगर, प्रान्त और राष्ट्रों में होने लगा। आज जो युद्ध की विभीषिका दीख पड़ती है, वह सब आकाक्षाओं, लालसाओं के विस्तार की विक्षिप्तता ही तो है। महावीर की वाणी याद दिलाती है कि जो व्यक्ति जितनी जीवेषणा छोड़ देता है, उतना ही अहिसक बनता जाता है। जब उसे जीने का आग्रह नहीं है तो वह किसी को कष्ट देने या नष्ट करने को तैयार ही नहीं होगा।

महावीर ने सूत्र दिया "जीवो और जीने दो।" इस प्रकार जीवो कि औरों के जीने में कम से कम बाधा हो, कम से कम दखल हो। उसके अस्तित्व के विस्तार में, उसकी स्वतत्रता में बाधक न हों। महावीर शारीरिक बाधा तक ही सीमित नहीं रहे। बुरी भावना करना भी महावीर को स्वीकार नहीं था। चाहे वो दूसरे के लिए हो चाहे वो अपने स्वय के लिए हो, चाहे उससे प्राणात हो या न हो। महत्ता भावना की है, उसके परिणाम की नहीं। जो काटे हम दूसरों को चुभाना चाहते हैं उन्हें पहिले अपनी भावना में जन्माना होता है। जो पीड़ाएँ हम दूसरों को देना चाहते हैं उन्हें जन्म देने की प्रसवपीड़ा बहुत पहिले स्वय की आत्मा को झेलनी पड़ती है। जो अधकार हम दूसरे के घर में या जीवन में पहुँचाना चाहते है वह अपने अन्तर के दीये को बुझाये बिना पहुँचाना सम्भव नहीं है। आप दूसरे पर अग्नि फेंकने की कोशिश करें, वह जलेगा या नहीं पर फेंकने वाले आप के हाथ तो जल ही जावेंगे फेंकने वाले का अहित हो ही गया। कहा है–

आप तुले पयासु मत्ति भूए सुकघए।
सव्व पाणा न हीलियव्वा न निदियव्वा॥

सब प्राणियों को अपने समान समझो, सभी जीवधारियों से मैत्री करो किसी की अवहेलना न करो, किसी की निन्दा न करो क्योंकि,

जह ते ण पियं दुक्खं, तहेव तेसि पिं जाण जीवाणं।
दोषा प्रयान्तु नाशं, अप्पोव मिओ जीवेसु होहिसदो ॥

जिस प्रकार हम दुःख नहीं चाहते उसी प्रकार अन्य प्राणी भी दुख नहीं चाहते, यह जानकर दूसरों के प्रति ऐसा ही बर्ताव करो जैसा दूसरों से अपने लिए चाहते हो।

"सब जीना चाहते है" महावीर की इस विचार धारा से कुछ विद्वान सहमत नहीं हैं। फ्रायड़ कहता है कि जब जीवन को इच्छा रुग्ण हो जातीहै तो मृत्यु की इच्छा में बदल जाती है। जैसे आत्म-हत्या की इच्छा। लेकिन महावीर का दर्शन कहता है कि निष्कर्ष सही नहीं है। आत्म-हत्या की भावना मे भी जीवेषणा गुप्त रूप से छिपी हुई है। आत्म-हत्या करने वाला कहता है, मै मेरे प्रेमी के साथ जीना चाहता हूँ, अथवा परीक्षा में उत्तीर्ण होकर जीना चाहता हूँ, अथवा अमुक पद पाकर, या धन पाकर या प्रतिष्ठा पाकर जीना चाहता हूँ। उसका प्रबल आग्रह है कि मैं इस ढंग से ही जीऊंगा। तो आत्म-हत्या की भावना में भी जीवेषणा का बीज मौजूद है अत्यधिक सशक्त रूप में।

इस प्रकार महावीर के दर्शन में जीवन को अत्यधिक महत्त्व पूर्ण सम्मान दिया गया। सब जीवों की समान, पर स्वतंत्र आत्मा के सिद्धान्त की पुष्टि की। जीव-दया को सर्वोपरिता प्रदान की और जीवन में मौलिकता के साथ जीव-दया का समन्वय बैठाया। आचार्य सोमदेव सूरी ने उपासकाध्ययन में जीव-दया के माहात्म्य का इस प्रकार गुणगान किया–

एका जीवदयैकत्र परत्र सकलाक्रियाः
परं फलं तु पूर्वत्र कृषेश्चिन्तामणेरिव ॥361 ॥
आयुष्मान सुभगः श्रीमान्सुरूपः कीर्तिमान्नरः
अहिंसा व्रत महात्म्यादेकस्मादेव जायते ॥362॥

अकेली दीव-दया एक ओर है और बाकी की सब क्रियायें दूसरी ओर हैं। यानि सब क्रियाओं से जीव-दया श्रेष्ठ है। अन्य सब क्रियाओं का फल खेती की तरह है और जीव-दया का फल चिन्तामणि रत्न की तरह है (जो चाहे सो मिलता है)। अहिंसा-व्रत के प्रताप से मनुष्य आयुष्मान, चिरंजीवी, सोभाग्यशाली, ऐश्वर्यवान, सुन्दर और यशस्वी होता है।

महावीर के दर्शन में कर्म-सिद्धान्त को वही स्थान प्राप्त है जो अन्य अस्तिक दर्शनों में ईश्वर को हे। ईश्वर को कर्ता की कल्पना महावीर को स्वीकार नही। यदि जगत् को ईश्वर ने बनया तो फिर ईश्वर को किसने बनाया, क्यों बनाया, किस इच्छा या वासना के वशीभूत होकर बनाया ? यह प्रश्न एक ऐसे बिन्दु पर आकर ठहर जाता है तो अन्त में अनुत्तरित रह जाता है। सारा जगत परमात्मा को पहिले रखता है पर महावीर कारण नही मानते अपितु अंतिम परिणाम मानते हैं। जीवों की संसारी पर्यायों की सृष्टि, संरक्षण और विनाश में कर्म की भूमिका ईश्वर के समान है।

प्रत्येक जीव का परिणमन स्वतन्त्र है, पर कर्माधीन है। भैया भगवतीदासजी ने जीवों के कार्यकलापों की स्वंत्रता को निम्न पद में इस प्रकार व्यक्त किया है–

को का को दुख देते है, देत करम झकझोर।
उरझै, सुरझै आपही, ध्वजा पवन के जोर॥

इसी भाव को भगवज्जिनसेनाचार्य ने महापुराण में

इस प्रकार दर्शाया है —

विधि सृष्टा विधाता च दैव कर्म पुराकृतम्।
ईश्वरश्चेति पर्याया विज्ञेया कर्म वेधस ॥

जो लोग जगत् का निर्माता किसी विधाता या सृष्टा को बताते है, महावीर के दर्शन के अनुसार वह "नाम कर्म" के सिवाय और कोई दूसरी सत्ता नहीं है।

महावीर के दर्शन में ऊच-नीच जाति पाति स्वर्ण अवर्ण आदि जन्मजाता विकल्पों को कोई स्थान नहीं है। उनका दर्शन मानवीय गरिमा को सम्मानित करता है। ऐसी कोई भी व्यवस्था जो मानवीय प्रतिष्ठा को नकारती हो, ठुकाराती हो महावीर को स्वीकार्य नहीं है। मानव अपवित्र या अछूत नही है। ऊँच नीच की कसौटी उसके जीवन में नैतिकता या अनैतिकता है, सदाचार या दुराचार है। जन्म से उसका क्या सम्बन्ध ?

कम्मुणा वमणो होई कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होइ सुद्दो हवई कम्मुणा।

मनुष्य कर्म करने से ही ब्राह्मण होता है, कर्म से ही क्षपित्र होता है कर्म से ही वैश्य और कर्म से ही शूद्र होता है।

आचार्य सोमदेव सूरी अपने प्रसिद्ध ग्रथ यशस्तिलक चम्पू में कहते है-

दीक्षायोग्यास्त्रयो वर्णर चतुर्थश्च विधोचित ।
मनोवाक्काय धर्मायमता सर्वेऽपि जन्तव ॥
उच्चावचजन प्राय समयोऽय जिनेशिना।
नैकस्मिन पुरुषे तिष्ठेदेकस्तम्भ इवालय ।

अर्थात्- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य में तीनों वर्ण (आमतौर से) मुनिदीक्षा के योग्य हैं और चौथा शुद्र वर्ण उचित विधि के द्वारा दीक्षा के योग्य है। मन वचन काय से किये जाने वाले धर्म का अनुष्ठान करने के लिए सभी जीव अधिकारी है। जिनेन्द्र का यह धर्म प्राय ऊँच और नीच दोनों ही प्रकार के मनुष्यों के आश्रित है। एक स्तम्भ के आधार पर जैसे मकान नहीं ठहरता उसी प्रकार ऊँच नीच में से किसी एक ही प्रकार के मनुष्य समूह के आधार पर धर्म ठहरा हुवा नहीं है।

आचार्य रविषेण ने पद्यचरित में इसे यू स्पष्ट किया है–

न जातिर्गर्हिता काचिद् गुणा कल्याण कारणाम्।
व्रतस्थमपि चाण्डाल, ते देवा ब्राह्मण विदु ॥

कोई जाति गर्हित नहीं, वास्तव में गुण ही कल्याणकारी है। एक चाण्डाल को भी व्रतयुक्त होने पर ब्राह्मण और देव माना गया है।

श्रावक धर्म दोहा की गाथा पठनीय है–

ए हु धम्मु जो आयारह वभणु सुदद्दु वि कोइ।
सो सावउ कि सावयह अण्णु कि सिरी मणि होई॥

अर्थात- ब्राह्मण हो या चाहे शूद्र हो जो कोई इस धर्म का आचरण करता है, वही श्रावक है, और क्या श्रावक के सिर पर कोई मणि रहता है। आचार्य पूज्यपाद समाधितन्त्र में यहाँ तक लिखे गये है कि

जातिर्देहाश्रिता दृष्टा देह एव आत्मनोभव ।
न मुच्यन्ते भवात्तस्मात्ते ये जातिकृताग्रहा ।
जातिलिग विकल्पेन येषा च समयाग्रह
तेऽपि न प्राप्नुवन्त्य परमपदमात्मन ॥

अर्थात्-जाति देह के आश्रय से देखी जाती है और आत्मा का ससार एक मात्र यह देह है। जो जातिकृत आग्रह से युक्त है वे ससार से मुक्त नहीं होते। जाति और लिग के विकल्प का जिनको धर्म में आग्रह है वे भी आत्मा के परम पद को प्राप्त नही होते।

आचार्यो ने उपरोक्त श्लोकों और गाथाओं में महावीर के दर्शन को गूंथकर यह सिद्ध कर दिया कि महावीर के दर्शन मे जाति वर्ण, ऊँच नीच आदि को कोई स्थान नहीं है। वहाॅ आचरण और व्रतो पर सर्वाधिक जोर दिया गया है, ऊँच नीच की भेद रेखा का यही आधार है।

श्रमण व श्रावक, प्रत्येक वर्ग की महावीर ने सीमाएं देखी और उसकी मर्यादा उसी के अनुसार निर्धारित की। उन्हें महाव्रत और अणुव्रत के रूप में परिभाषित किया। शासनाध्यक्षों को उनने लोकशासन के सूत्रो में मर्यादित किया जिससे प्रजाजनों की रक्षा तो हो, उनका संरक्षण हो, पर किसी का शोषण न हो और न्याय की प्रतिष्ठा हो। कृषकों, व्यापारियो को जीविकोपार्जन मे प्रामाणिक रहकर किसी के अधिकार को हनन न करने पर बल दिया। नारी समाज दास-प्रथा को समाप्त कर अपनी शक्ति पहचानने की प्ररेणा दी। उनने तत्व और धर्म के वास्तविक स्वरूप की व्याख्या कर आत्म कल्याण का मार्ग सभी के लिये प्रशस्त किया। उनकी वाणी ने बौद्धिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आदि जीवन के सभी पक्षों को समग्ररूप से प्रभावित किया। उससे वैचारिक क्रांति का सूत्रपात भी हुआ और जीवन का आचार पक्ष भी सुदृढ हुआ।

महावीर का दर्शन आत्मसाधना और सामाजिक उत्तरदायित्व को परस्पर सहयोगी मानता है। जो लोग महावीर को केवल आत्मानुभूति का पैगम्बर समझते है वे महावीर को समझे ही नहीं। उनका सामाजिक मन कह उठा कि अहिंसा की प्रतिष्ठा मनुष्य मनुष्य मे व्याप्त भेद को अस्वीकृत करने से है। यह जाति पांति के भेद हिंसा में गर्भित है। उन्होंने सदा जनवाणी का, लोक भाषा का प्रयोग किया। यह उनकी राष्ट्रीयता को प्रकट करती है जो उनकी जनतांत्रिक दृष्टि का परिचाय था।

महावीर ने अनुभव किया कि आर्थिक असमानता और आवश्यक वस्तुओं का अनुचित संग्रह सामाजिक सौहार्द को अस्त-व्यस्त करने वाला है। यह लोभ अनेक अपराधों की जननी है इसलिये उन्होंने अपरिग्रह को धर्म के लक्षणों में मान्यता दी, प्रमुखता दी। परिग्रह के अमर्यादित साधन जीवन मे कटुता, घृणा और शोषण को बढ़ावा देते हैं। अतएव उनने भोगोपभोग परिमाण व्रत के नियमों का विधान दिया। अपने पास इतना ही संचय करो जितना अत्यन्त आवश्यक हो। शेष को समाज को अर्पित कर दो, त्याग कर दो, दान कर दो। आर्थिक समाजिक असमानता को दूर करने का यही अमोघ उपाय है। गांधी का ट्रस्टीशिप सिद्धान्त इसी में से प्रस्फुटित हुआ है। उन्होने इसके क्रियान्वयन हेतु अपनी आवश्यकताओ को न्यूनतम करने पर वल दिया। इस बिना चित्त में शान्ति भी नहीं उपज सकती।

सम्पत्ति की असमानता दूर करने के लिये, और उसे सामाजिक बनाने के लिये पश्चिम का समाजवाद राज्य तन्त्र का असफल सहारा ले रहा है। महावीर कहते है मनुष्य के स्वभाव को सामाजिक बनाओ, अहिंसक बनाओ, अपरिग्रही बनाओ। इस त्रास से परित्राण करने का यही एक मात्र मार्ग है।

महावीर के जीवन दर्शन में 'ब्रह्मचर्य' को बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसे दस धर्मों मे गिना गया है। ब्रह्मचर्य व्रत के अभाव में संयमपूर्ण जीवन की परिकल्पना ही नहीं की जा सकती है। लेकिन गृहस्थ श्रावक के लिए आजीवन पूर्ण-[illegible] ब्रह्मचर्य

का पालन तथा मैथुन-विरमण सभव नहीं है, इसलिए काम के विस्तार, स्वच्छन्दता व उच्श्रृखला को रोककर उसे स्वपत्नी/स्व पति तक सकुचित करने व नियमपूर्वक मर्यादित कर ब्रह्मचर्य का एक देश पालन करने की गृहस्थ श्रावक को शिक्षा दी गई है, जिससे सुखी-गृहस्थ जीवन हेतु विवाह की पवित्रता को भी अक्षुण्ण रखा जा सके। चौदहवीं सदी के अपभ्रश के सुप्रसिद्ध कवि धनपाल के शब्दों में–

पुरिसि पुरिसव्वउ पल्लिवउ, परधणु परकलन्तु णाउ लिव्वउ।

अर्थात् पुरुष का पुरुषत्व इसी में है कि वह पर-धन व पर स्त्री का पालन तो करे, उसे ग्रहण नहीं करें।

महावीर ने वैचारिक सह अस्तित्त्व को भी प्रतिपादित किया। उन्होंने कहा मतभेद को विकास का द्योतक बनाओ, सघर्ष का कारण नहीं। मतभेद दृष्टिभेद से हो सकता है, इसे मनभेद तक मत बढ़ने दो। इसलिये उन्होंने अनेकान्त को महत्व दिया। सब के मत, सब की बात सुनो। किसी अपेक्षा से वह भी ठीक हो सकता है। अनेकान्त समाज का गत्यात्मक सिद्धान्त है वह जीवन में वैचारिक गति प्रदान करने का हेतु बने।

महावीर ने हमें एक जीवन-दर्शन दिया। शान्ति से जीने की पद्धति सिखलाई। वे दीपक बनें और हमें एक ज्योति दी, प्रकाश दिया। उस ज्योति के आलोक में जो कुछ मार्ग दीख पड़ सकता है हमारी दृष्टि उस पर से हट गई है बल्कि उस दीपक पर केन्द्रित हो रही है, हमारी दृष्टि उस दीपक की मूल्य राशि पर है, रूई पर है, बत्ती पर है तेल, स्थान, उसकी लम्बाई चौड़ाई आकार और आयतन में उलझ गई है। फलस्वरूप दार्शनिक जैनधर्म में और आचरण गत जैन धर्म में बहुत अधिक अन्तर होता चला जा रहा है, खाई बढ़ती जा रही है। यह किसी प्रकार भी शुभ सकेत नहीं हैं। यह लक्षण कभी कभी महावीर के अनुयाइयों के लिये लज्जा के कारण भी बन जाते है। हमें सास्कृतिकता, मानवता, आध्यात्मिकता के आसन पर इन पर्वों को प्रतिष्ठातिप करना होगा। महावीर किसी पथ, जाति, *समुदाय, अथवा राष्ट्र विशेष के नहीं होकर रह सकते।* जिस प्रकार सूर्य और प्राण वायु सब के लिये है उसी प्रकार महावीर का दर्शन, उनके उपदेश, उनके सिद्धान्त सब के लिए सुलभ होने चाहिये- उनकी उपादेयता सर्वकालिक है, सार्वभौमिक है। ऐसी विश्व-विभूति पर अपने समाज का Hall Mark लगाकर उन्हें सकीर्णता के नद में डुबाने के अपराध से हमें बचना होगा। महावीर तो विश्व वद्य है पतितोद्धारक हैं, सर्वोदयी हैं। Global History of Philosophy के विद्वान लेखक *PLOTT* का Mahavira stands like a spiritual giant by comparison with most of the old testament prophets and his example and way of Victory over things that bind us to the finite may yet be fruitful in all the world and he left a light that will never be extinguished

जैनधर्म जन धर्म बने

✍ डॉ. रमेशचन्द जैन

देवाधिदेव भगवान महावीर की 2600वीं जन्म जयन्ती आ रही है। इसे विविध रूप में मनाए जाने की अनेक योजनायें बन रही हैं। इस हेतु सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर पर करोड़ो रुपए व्यय किए जायेंगे। भगवान महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव पर भी अनेकों कार्य सम्पन्न हुए थे, अनेक योजनायें बनी थीं। हमारे उत्सवों को देखकर पता लगता है कि हम बहुत जागरूक हैं। किन्तु ऐसा होने पर भी अभी तक इस बात पर गम्भीरता पूर्वक विचार नहीं हुआ कि जनसंख्या वृद्धि के इस जमाने में जबकि देश की जनसंख्या एक अरब तक पहुँच गई है, जैनो की संख्या क्यों निरन्तर कम होती जा रही है, जव कि हम यह कहते नहीं थकते कि भगवान महावीर का धर्म सर्वोदय तीर्थ है, उनके समवसरण में इन्द्रादिक देवों से लेकर पशु पक्षी तक समान रूप से धर्मोपदेश श्रवण करते थे। भगवान ने किसी जैनी को अपना गणधर नहीं बनाया, किन्तु उस जमाने में जो उनके कट्टर विरोधी वेद वेदांग के जानकार ब्राह्मण विद्वान थे, वे भगवान का उपदेश श्रवण कर जिनधर्मानुयायी बन गए। भगवान की सभा के सबसे प्रधान श्रोता राजा श्रेणिक बौद्धधर्म छोड़कर क्षायिक सम्यक्त्वी जैन बने थे। चन्दना, जिसे सरे आम बाजार में नीलाम किया गया था और जो विविध प्रकार की सामाजिक प्रताड़नाओं की पात्र बनी थी, वह उनके संघ की प्रधान गणिनी आर्यिका बनी। उनके शासन में महाराज जीवन्धर ने जिस कुत्ते को णमोकार मंत्र दिया गया था, वह देव बन गया। राजा श्रेणिक के हाथी से भक्तिभाव से ओतप्रोत जो मेंढक पाँव तले दब गया था, वह देव हो गया। जिस वारिषेण को चोर समझकर शूली पर चढ़ाया जा रहा था, वह शूली उसके लिए सिंहासन बन गयी। सेठ सुदर्शन, जिसे तालाब में मगरमच्छों को खाने के लिए फेंक दिया गया था, सिंहानाधिष्ठित होकर देवपूजित हुआ। इस प्रकार एक नहीं अनेक ऐसे दृष्टान्त हैं, जो जैनधर्म की सार्वजनीनता और सार्वभौमिक्ता को पुष्ट करते हैं।

एक विदेशी विद्वान ने इस बात पर विचार किया कि किसी जमाने में लोकप्रिय रहा जैनधर्म आज जनसंख्या की दृष्टि से ह्रासमान क्यों है ? उसने निष्कर्ष निकाला कि इसका कारण यह है कि इस धर्म में निष्कासन तो है किन्तु आगमन या स्वीकरण नहीं है। हम दूसरों को हीन करार देकर पुराने जैनों को बाहर तो कर देते हैं या पुराने जैन बाहर हो जाते हैं, किन्तु नए जैन नहीं बनते।

कुछ समय पूर्व दिशाबोध पत्रिका में यह समाचार छपा था कि मतंग जाति के लाखों लोग जैनधर्म अपनाना चाहते है किन्तु किसी भी जैन ने उनसे सम्पर्क स्थापित कर उनको अपने में मिलाने का प्रयास नहीं किया। डॉ अम्बेडकर हजारों लोगों के साथ बौद्ध बन गए, किन्तु जैनों ने उन्हें और उनके अनुयायियों को अपनाने के लिए कोई सार्थक पहल नहीं की। भिक्षु धर्मानन्द कौशाम्बी बौद्ध बनने से पूर्व जैनधर्म की ओर आकर्षित थे किन्तु जैनों ने

उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। आज भी अनेकों ऐसी जातियाँ है, जिनके आचार विचार भी जैनों से मिलते है और जो जैनधर्म अपना भी सकते है, किन्तु पञ्चकल्याणकोंन्मुखी समाज को किसी के कल्याण की कोई चिन्ता नही।

आदिवासी क्षेत्र में आज ईसाई धर्म तेजी से फैल रहा है, किन्तु उनकी तर्ज पर हमने उन आदिवासियों को अपनाने, उन्हें अहिसक बनाने और उनके स्तर में वाञ्छित सुधार लाने का कोई प्रयास नही किया। एक ओर हमारे उदार आचार्य थे, जिन्होंने अनेक जातियों को अपने धर्म में दीक्षित किया। इसका प्रमाण यह है कि उत्तरभारत की किसी भी जैन जाति का इतिहास एक हजार वर्ष से पुराना नहीं मिलता है। उत्तर के क्षत्रिय जैनों ने जाकर दक्षिण में अपना साम्राज्य स्थापित किया और वहाँ इतनी अधिक सख्या में लोगों ने जैनधर्म अपनाया कि जैनधर्म किसी समय दक्षिण भारत का राष्ट्रधर्म बन गया। गाँधीजी ने स्वय अपनी आत्मकथा में लिखा है कि उनके यहाँ जैनसाधु यदा कदा आया करते थे। वैदिकी हिसा में विश्वास करने वाले लोगों पर जैनधर्म का ऐसा विलक्षण प्रभाव हुआ कि वैष्णवीकरण के नाम पर सब अहिसक हो गए। दक्षिण में जैनधर्म के कट्टर विरोधियों ने उनकी प्रमुख विशेषताओं को अपना लिया। जो वैदिक धर्म गृहस्थ धर्म को सर्वोपरि मानता था, उसके यहाँ सन्यासियों की सख्या बढ़ गई। शकराचार्य के गीता और उपनिषदों के भाष्य में अनेक ऐसे तत्त्व है, जो जैन सन्यास परम्पराओं और तत्त्वज्ञान से प्रभावित है। पौराणिक और महाभारतीय हिन्दूधर्म पर जैन अहिसा और अपरिग्रह का जबर्दस्त प्रभाव है।

पूज्य आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने इतिहास के पन्ने पुस्तक में शूद्र मुक्ति पा सकता है क्या ? इस शीर्षक के अन्तर्गत शूद्रों की स्थिति का सुन्दर विवेचन सप्रमाण किया है। वे कहते है रविषेणाचार्य ने अपने पद्मपुराण में लिखा है–'व्रतस्थमपि चाण्डाल त देवा ब्राह्मण विदु ।' व्रत धारण करने से चाण्डाल भी ब्राह्मण हो जाता है, अर्थात् क्षत्रिय वर्ग का आदमी घर में रहते हुए यदि व्रत धारण करता है तो वह अपने असिकर्म को करते हुए, वैश्य कृषि कर्म को करते हुए और शूद्र अपने अनुकूल शिल्पकर्म करते हुए अपने योग्य व्रतों का पालन करता है एव व्रत विशिष्ट होने से वह तत्कर्म करते हुए रहकर भी ब्राह्मण कहलाता है।

हर कोई व्रत धारण कर ब्राह्मण बन सकता है और तो क्या बल्कि जो वर्णाश्रम के नियमों की भी अवहेलना करता है, उससे भी बहिर्भूत है, अत अन्त्यज कहलाता है तथा घोर सकल्पी हिसा में निरत हो रहा है वह भी उस कुकर्म को त्याग कर व्रत धारण कर ले तो ब्राह्मण हो जाता है । यह पद्मपुराणकार का कहना है जो कि बिल्कुल सही है और तब फिर कुन्दकुन्द स्वामी का कहना उचित ही है कि क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इस प्रकार तीनो ही वर्ण का मनुष्य यदि उसका शरीर मुनिव्रत के पालन करने की योग्य सामर्थ्य रखता है, तो वह मुनि बन सकता है।

शूद्र मुनि ही हो सकता है इतना ही नहीं

बल्कि उसी भव से मुक्ति भी पा सकता है। सुदृष्टि सुनार अपनी व्यभिचारिणी स्त्री से सम्पर्क करते समय जार के द्वारा मारा जाकर फिर उसी के गर्भ से उपजकर जातिस्मरण को प्राप्त कर मुनि हुआ तथा कर्म काट कर मुक्त हो लिया, यह कथा हमारे यहॉ अविसंवाद रूप से प्रसिद्ध है। सुदिष्ट सुनार स्वामी कुन्दकुन्द से पूर्व चतुर्थकाल मे हुआ है। फिर भला कुन्दकुन्द उसे कैसे भुला सकत थे। अतः 'तीसु वि वण्णेसु' का अर्थ-क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णो मे पैदा हुआ मनुष्य करना ही ठीक है तथा वहॉ पर आए हुए अपि शब्द से वर्णाश्रम व्यवस्था शून्य म्लेच्छों आदि को भी ले लिया गया है।

मतलब यह है कि कर्मभूमिज मनुष्य जो कि अपनी आयु के आठ वर्ष पूरा कर चुका है उसके अन्तरङ्ग में यदि आत्मकल्याण की भावना जाग उठी है तो वह संयम पालन करने के लिए तत्काल मुनि बन सकता है और संसार अतिनिकट आ गया है तो वह अन्तर्मुहूर्त मात्र में केवल ज्ञान को प्राप्त कर मोक्ष का स्पष्ट अधिकारी बन जाता है। उसके ऐसा होने मे उसकी जाति या वर्ण कुछ भी अड़चन नही डालता। आगम में सम्मूर्च्छन सैनी तिर्यञ्च को जन्म के अन्तर्मुहूर्त बाद ही सम्यग्दर्शन और देश संयम का पात्र मान लिया गया है और मनुष्य को आठ वर्ष का हो लेने पर उसके योग्य बताया गया है। इन्द्र और शची में शची का जीव पहले मुक्त हो जाता है, क्योंकि इन्द्र का उसके बहुत बाद में। जो जहाँ जैसा हो सकता है, उसे वहाँ वैसा बताया है। स्त्री अपनी शारीरिक मृदुता के कारण ही महान् संयम को प्राप्त करने मे असमर्थ होती है। अतः उसकी वस्तु स्थिति को देखकर ही कथन किया गया है। इस पर महिलाओं को हताश नहीं होना चाहिए, सोचना चाहिए कि आजकल तो यहॉ का पुरुष भी मुक्ति नही पा सकता। मिथ्यात्व, अन्याय और अभक्ष्यादि से दूर रहकर धर्मधारण करें फिर तो देव होकर यहां से विदेह में नर शरीर पाकर संयम पालन द्वारा मुक्ति प्राप्त कर पाता है। जिसका संसार अति निकट है ऐसा कोई विरला भद्र परिणामी मनुष्य यहॉ से सीधा विदेह मे मानव जन्म पाकर ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यवर्ण का मनुष्य बन सकता है।

पञ्चेन्द्रिय ही क्या, एकेन्द्रिय चेतनावान भी जीवत्व शक्तियुक्त होने से मुक्ति के योग्य माना गया है। वह भी अपनी अशुद्ध परिणति को छोड़कर शुद्ध परिणमन के योग्य होता हुआ यदि उसके सम्मुख होता है तो सीधा उस 'एकेन्द्रिय पर्याय में से निकलकर मनुष्य जन्म प्राप्त कर सकता है और वहॉ आठ वर्ष का होने के अनन्तर ही सम्यक्त्व का लाभ करते हुए महाव्रती संयम बन कर तत्काल अन्तर्मुहूर्त मात्र में केवलज्ञान होकर मुक्त हो सकता है। परन्तु नैमित्तिक कर्म कालिमा जो इस आत्मा के साथ मे अनादिकाल से लगी हुई है, वह निमित्त विशेष के बिना दूर नहीं हो सकती है। उसके दूर होने पर अन्तरङ्ग कारण तो रत्नत्रय की पूर्णता है, किन्तु बाह्य कारण सैनीपन, पञ्चेन्द्रियों की परिपूर्णता, नर शरीर की प्राप्ति तथा उत्तम संहनन का होना है। इन सबमें से एक भी न होने पर रत्नत्रय की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं हो सकती है।'

इस प्रकार आगम में एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तक में धर्मधारण की योग्यता बतलाई है। धर्म किसी एक व्यक्तिविशेष जाति विशेष, या वर्ण विशेष की बपौती नहीं है। आचार्य पूज्यपाद ने ठीक ही कहा है-

जातिलिङ्गविकल्पेन येषा च समयाग्रह
तेऽपि न प्राप्नुवन्त्येव परम पदमात्मन ॥

ऐसी स्थिति में यदि कोई जैनधर्म अपनाना चाहता है तो उसे उचित अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। जैन साधुओं और विद्वानों के उपदेश अजैन,जनता के मध्य भी हों। ऐसे स्कूल खोले जाय जहाँ विद्यार्थी जैन सस्कारों में रहकर सस्कारित हों। श्रावक सस्कार शिविर जैन श्रावकों में तो लगे ही, अजैनों में भी ऐसे शिविरों का आयोजन हो। हमें अपने पूर्वजों की शिक्षा के अनुरूप जैनधर्म जन-धर्म को उदार बनाना चाहिए तभी हम जैनधर्म को विस्तृत आयाम दे सकते हैं। जैनधर्म कैसे बनें इस पर हर जगह स्वतन्त्र चिन्तन होकर समागत विचारों को मूर्त रूप देना चाहिए।

धर्मधारण करने का सबको समान अधिकार है, इस विषय में विशेष जानकारी प्राप्त करना हो तो आचार्य ज्ञानसागर महाराज द्वारा रचित वीरोदय महाकाव्य का सप्तदश सर्ग अवश्य पढ़ना चाहिए। इस भूतल पर जो भी उत्पन्न हुआ है, वह चोर मूर्ख हो या विद्वान राजा हो या दास, गज हो या अज, इस पृथ्वी पर जितना आपका अधिकार है, उतना ही दूसरों का भी अधिकार है।[3] जो विद्युच्चर अपने जीवन के पूर्व समय में चोर रूप से अति निद्य था वही पीछे जगत् का वन्दनीय महापुरुष बन गया। जो महापुरुषों का शिरोमणि चारूदत्त सेठ अपनी विवाहिता कुलस्त्री के सेवन की भी इच्छा नहीं करता था, वही पीछे वेश्यासेवी हो गया, कैसी विचित्रता है? पाप को छोड़कर ही मनुष्य पवित्र कहला सकता है। कीट, कालिमा से विमुक्त होने पर ही सुवर्ण सम्मानीय होता है। इसलिए पाप से घृणा करना चाहिए, किन्तु पापियों से नहीं मनुष्यता स्वभाव से ही यह सन्देश देती है।[4] जाति का या कुल का गर्व करना कैसा ? सभी मनुष्य अपनी जाति में अपने को बड़ा मानते है। मास को खाने वाला ब्राह्मण निन्द्य है और सदाचारी होने से शूद्र भी वद्य है। वेश्या की लड़की अपने सगे भाई के द्वारा विवाही गई और अन्त में वह आर्यिका बनी। यह ससार ऐसा ही निन्दनीय है, जहॉ पर कि लोगों के परस्पर में बड़े विचित्र सबध होते रहते है। इसलिए ससार से विरक्ति ही सारभूत है।[5] पिता के पक्ष को कुल कहते हैं और माता के पक्ष को जाति कहते है। यदि माता और पिता के प्रसङ्ग से ही जाति और कुल की व्यवस्था मानी जाय तो हे विवेकवान् पुरुषों। इस विषय में विचार करों कि माता-पिता इन दोनो की क्रिया क्या सर्वथा एक रूप रहती है ? यदि कहा जाय कि मूषक शूर वीरता की प्रवृत्ति करने पर भी सिह के समान कभी भी समानता के मूल्य को प्राप्त नहीं हो सकता इसी प्रकार शूद्र मनुष्य भी कितना ही उच्च आचरण करें किन्तु वह कभी ब्राह्मणादि उच्च वर्ण वालों की समता नहीं पा सकता, सों यह कहना भी व्यर्थ है, क्योंकि मूषक और सिह में तो मूलत ही प्राकृतिक भेद है

किन्तु ऐसा प्राकृतिक भेद शूद्र और ब्राह्मण मनुष्य में दृष्टिगोचर नही होता। अतएव जातिवाद को तूल देकर व्यर्थ खेद करने से क्या लाभ है ?

प्रद्युम्नचरित में कहा गया है कि कुन्ती और चाण्डाल ने मुनिराज से श्रावकों के अणुव्रतादि बारह व्रत ग्रहण किए और उनका भली भांति पालन कर सद्‌गति प्राप्त की।[10] जन्म के समय सब ही शूद्र उत्पन्न होते हैं। विद्वान पुरुष का लड़का भी अज्ञ देखा जाता है और अज्ञानी पुरुष का लड़का विद्वान देखा जाता है। श्रीकृष्ण जी की माता देवकी ने अपने पूर्वजन्म में धीवरी के भव में क्षुल्लिका के व्रत ग्रहण किए थे और (आदिपुराण में वर्णित अग्निभूति और वायुभूति की कथा में) दीन पामर किसान ने मुनिदीक्षा ग्रहण की थी।[12] हरिषेण रचित बृहत्कथाकोश में एक कथानक है कि अहिसाव्रत को पालन करने के उपलक्ष्य में यमपाल चाण्डाल को राजा ने आधा राज्य देकर अपनी लड़की उसे विवाह दी और उसकी पूजा की।[13] समस्त कथन का सार यह है कि धर्मधारण करने में या आत्मविकास करने मे किसी एक व्यक्ति या जाति का अधिकार नहीं है। जो कोई धर्म के अनुष्ठान के लिए यत्न करता है, वह उदार मनुष्य संसार में सबका आदरणीय बन जाता है।[14] अतः धर्मधारण का सभी को अधिकार मिलना चाहिए।

जैन मंदिर के पास,
बिजनौर (उत्तर प्रदेश)

---

1. आचार्य ज्ञानसागर : इतिहास के पन्ने पृ. 19-20
2. इतिहास के पन्ने पृ. 21-22
3. वीरोदय 17/1
4. वीरोदय
5. वही - 11/7
6. वही - 11/17
7. वही - 11/19
8. वही - 11/26
9. वही - 11/30
10. वही - 11/32
11. वही - 11/35
12. वही - 11/36
13. वही - 11/39
14. वही - 11/40

जैन धर्म जन धर्म कैसे बने

✍ सुभाष चौधरी

जैनधर्म अनादिनिधन धर्म है वस्तु का धर्म है विश्व की व्यवस्था है, स्वयमेव है जीवन की शैली है विश्व धर्म है, पथ नहीं पथ है। फिर बार बार यह प्रश्न उभर कर क्यों हमारे सामने आता है कि कैसे यह जन जन का धर्म बने। इसके उत्तर के लिये निश्चित ही हमको पीछे मुड़ कर देखना होगा। यदि हम इतिहास पर दृष्टिपात करें तो पायेंगे कि यह अनादिनिधन जन जन का धर्म कालान्तर में ' जैन धर्म" शब्द सम्प्रदाप विशेष का द्योतक बन गया । हम जन्मना जैन बनकर रह गये। जिसने जैन कुल मे जन्म लिया वही जैन, इसके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों से चाहे उसका दूर दूर तक कोई सम्बन्ध ही नही हो। वह उनका पालन करे अथवा न करें।

इस विषय पर समाज द्वारा गहन विचार करना वर्तमान की आवश्यकता बन गया है। विषय पर विचार करने से पूर्व इसके प्रमुख सिद्धान्तों को हमको पुन समझना होगा उनका अवलोकन करना होगा। उन पर आस्था व श्रद्धा करनी होगी, उनको चरित्र में उतारना होगा। मुख्य रूप से जैन धर्म ने तीन सिद्धान्त प्रतिपादित किये। यदि व्यक्ति के आचार में 'अहिसा है विचारों में अनेकान्त है तथा जीवन में ' अपरिग्रह' उतर गया है तो वह निश्चित रूप से जैन है।

जैन धर्म ने विश्व को अहिसा का सन्देश दिया। इसकी व्याख्या है– लोक में प्राणीमात्र को न केवल मारना वरन् उसका विचार करना भी हिसा है। इतना उत्कृष्ट सिद्धान्त। सब को अभय, सब को 'जीवो और जीने दो' का क्रान्तिकारी सन्देश। एक उदाहरण माँ त्रिशला ने अपने केशों में फूल खोंस कर जब अपने पुत्र से अपनी सुन्दरता के बारे में पूछा तो महावीर का उत्तर था माँ क्षमा करें आप बहुत कुरुप लग रही है। माँ स्तब्ध, हतप्रभ। महावीर ने प्रतिप्रश्न किया यदि मेरे सिर को काटकर, गमले मे सजा का आपसे पूछे बगिया कितनी सुन्दर लग रही है तो आपका क्या उत्तर होगा ? माँ क्रन्दन करने लगी, पुत्र तुम कैसा प्रश्न कर रहे हो ? क्या मै यह सहन कर पाऊँगी। महावीर का उत्तर था माँ, आपने फूल को पौधे से अलग कर यही कृत्य किया हैं। क्या अन्यत्र अहिसा का इतना उत्कृष्ट उदाहरण मिल सकता है ?

यह सत्य है कि जैनधर्म द्वारा प्रतिपादित त्रैकालिक सिद्धान्तों से कोई समझौता नहीं किया जा सकता लेकिन तात्कालिक परिस्थितियों के अनुरूप उनको समझना, आवश्यक है।

'अपरिग्रह' जीवन की शैली बने जीने के लिये जितना आवश्यक है उतना ही न्याय सगत तरीको से अर्जन आज की सामाजिक आवश्यकता है। आवश्यकता से अधिक अर्जन, उसका सचय शोषण को जन्म देता है। शोषित समाज में अशाँति को जन्म मिलेगा दो वर्ग बनेंगे, आपस में बँटेंगे। समाज खण्डित होगा।

स्थूल रूप से यदि उक्त सिद्धान्त जीवन में परीलक्षित होने लगें तो निश्चित ही हमारे जीवन से अन्यों को प्रेरणा मिलेगी। अहिसा, करूणा दया, समता भाव एक दूसरे के प्रति जागेंगें एवँ शनै शनै स्वयमेव ही जैनधर्म जन-जन का धर्म बन जावेगा।

105/13, अहिसा मार्ग,
अग्रवाल फार्म जयपुर

स्वयं को ही भोगना होता है अपने कर्मों का फल

✍ प्रवीण चन्द्र छाबड़ा

"सब्ब मये जिए जियम्" स्वयं को जीतने पर सब जीत लिये जाते हैं। भगवान महावीर की इस अभिनव दृष्टि ने आचरण के क्षेत्र मे मौलिक क्रांति कर दी। हर जीवन अपने चलते बन्धन में है और अपने ही प्रयत्नों से स्वतंत्र होने व रहने की क्षमता रखता है। हर कर्म और उससे उपार्जित पाप पुण्य के जीवन स्वयं जिम्मेदार है, जिसे किसी अन्य पर टालने का कोई उपाय नहीं है। हर कृत्य परिणाम लेकर वापस लौटता हैं। वापसी मे देर सबेर हो सकती है। कर्मो के वर्तुल छोटे और बड़े होते रहते है, जिन्हे समझना और इनसे निकलना साधना चाहता है। दुख देते हैं तो दुख आता है। जो देते है या करते है, वही लौटता है। दुख को मिटाने का यही उपाय है कि दुख को बांटो मत। अपने दुख को स्वयं को भोगना ही कर्मो का संवर है, इसी मे दुख से त्राण हैं। कर्मो की निर्जरा ही मुक्ति है, निज मे लौटना है।

जैन अवधारणां में कर्म पौद्गलिक हैं। पुद्गल वह है, जो प्रक्रिया मे है। (पूरयन्ति गलन्ति च) जहॉ प्रक्रिया है, वहॉ दुख है, बैचेनी है। आत्मा प्रक्रियातीत है। योग व कषाय के कारण पुद्गल के इलेक्ट्रोन, प्रोटोन व न्यूट्रोन है। इसका प्राथमिक अंश परमाणु है। परमाणुओ का स्कंध ही देह है, इसी से संसार है। कर्म की गति इतनी महीन और गहन है कि जरासी असावधानी कषाय बन जाती है। कषाय आत्मा मे उपलेप्य होकर विकृति पैदा कर देती है। महावीर हर कर्म के साथ उसका परिणाम देखते है। गीता मे श्रीकृष्ण कर्म के लिए मनुष्य को निमित्त मानते है और फल की आशा की अनुमति नही देते है। मनुष्य को कर्म का अधिकार है, फल का नही है। "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्" इसी के साथ गीता मे यह भी कहा हैं "चेतसा सर्व कर्माणि मम सन्यस्य", सब कर्मो को मुझे अर्पण करके व्यवहार कर। गीता में ही श्रीकृष्ण कहते हैं "अह त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि शुचः" मै तुझे सब पापों से मुक्त कर दूंगा, तू सोच मत कर।

जैन दर्शन मे हर कर्म परिणाम लिए होता है। जीव अनादिकाल से संसारी है, वह स्वयं रागद्वेष आदि विकारों भावो को पैदा करता है। इन्द्रियो द्वारा विषयों को ग्रहण करता है। इससे पौद्गलिक कर्मो का आकर्षण होता है। कर्म और जीवात्मा का संबंध अनादि हैं। जिन भावो से पुद्गल आकर्षित होकर आत्मा से जुड़ते हैं, वह भाव कर्म है। आत्मा मे विकृति उत्पन्न करने वाले पुद्गल पिड द्रव्य कर्म है। यह आत्म शक्ति को प्रभावित व कुंठित करने वाला तत्व है।

आत्मा अनन्त चतुष्टयी गुणधर्मी है। जीवन शरीर भी है और शरीर से भिन्न भी है। आत्मा और देह के बीच एकत्व और भिन्नत्व को स्वीकार करके ही कर्म फल की विवेचना संभव है। जैन अवधारणा मे ज्ञान को आत्मा का स्वभाव माना है। ज्ञानोपयोग का पांच भागो मे वर्गीकरण किया है- मति, श्रुत अवधि मन पर्यय: तथा केवल ज्ञान पर, आत्मा पर आवरण डालने वाले, विकार पैदा करने वाले आठ कर्मों मे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय व

अन्तराय घातिया कर्म है तथा वेदनीय, आयु, नाम व गोत्र अघातिया कर्म है। ज्ञान और कर्मों के आवरण का यह विवेचन जैन दर्शन का अनूठा है, वैज्ञानिक है। अपने कथन पर आग्रह रखना, सहज ज्ञान प्राप्ति में बाधक बनना निन्दा व अपलाप करना, ज्ञान के साधनों को नष्ट करना, ज्ञानियों का अविनय आदि ज्ञानावरणीय के, मिथ्यात्व का प्रतिपादन, छिद्रान्वेषण, अकृतज्ञता मिथ्याग्रह आदि दर्शन, महोनीय के, सुख दु ख देना, चिन्तित रहना व करना, रुलाना, प्रताड़ित करना आदि वेदनीय के, मायाचार, क्रोध, अहकार, कपट, लोभ, आदि चारित्र मोहनीय के, अभिष्ट में बाधा पहुँचाना अन्तराय के, यश पद आदि की कामना नाम, आकृति, कुल आदि के प्रति मोह गोत्र कर्म के बन्ध के कारण हैं। इनमें घातियाँ कर्म आत्मा के ज्ञान, दर्शन, सुख और शक्ति गुण का आवरण करते हैं। अघातिया कर्म देह इन्द्रियाँ की अनुकूलता, प्रतिकूलता रचते है।

जैन अवधारणा में एक बार कर्म का आरभ हो जाने के बाद उसका व्यापार बढ़ता ही जाता है। कर्म वर्णणाओं का विस्तारआत्मा को ढापता जाता हैं। अनादिकाल से कर्म शरीर जीवन के साथ रहता है और उसी में नये कर्म जुड़ते व फल देकर खिरते जाते है। बाँधा कर्म छोड़ता नहीं है। "गहना कर्मणोर्गति " कर्मकी पकड़ अतीव गहरी है। जीव पैदा ही परतत्र होता है, लेकिन उसमें स्वतत्र होने की क्षमता है। बादल सूर्य को ढाप सकते है लेकिन प्रकाश को विलुप्त नहीं कर सकते। कर्म में आत्मा के गुण को समाप्त करने की योग्यता नहीं है। आत्मा ही सुख दुख या बधन की सृष्टा है और वही मुक्त होने, विसर्जन करने वाली शक्ति है। गीता में यही माना है। आत्मा स्वय अपना मित्र और शत्रु हैं। कर्मों के फल के भोगने के लिए भगवान महावीर व अन्य धर्म प्रणेताओं तथा दार्शनिकों ने पुनर्जन्म की अवधारणा को मान्य किया है। मृत्यु जीवन का अत नहीं है। आत्मा की अमरता को स्वीकार करके ही कर्म फल की सम्यक् विवेचना सभव है।

जैन विचार पुरुषार्थ का समर्थक होने के साथ मानता है मनुष्य के सकल्प विकल्प और उसकी कोई भी क्रिया अकारण नहीं होती है, उसके पीछे अवश्य ही पूर्ववर्ती कर्म रहते है। गीता में ईश्वर को जिस रूप में नियामक माना है वह कर्म नियम के रूप में ही नियामक है। जैन दर्शन की तरह गीता में श्री कृष्ण मानते हैं कि नियतिवाद अतीत को समझाने की दृष्टि है तो पुरुषार्थ भविष्य को समझने की दृष्टि हैं। मनुष्य जीवन परवशता और पुरुषार्थ का मिश्रण है। वह स्वय वासनाओं व आसक्तियों की दीवार खड़ी करता है वही उसे तोड़कर स्वतत्र होता है।

महावीर जानते हैं कि कर्मों को गति बड़ी जटिल और कुटिल है। वे बारह वर्ष तक मौन रहकर प्रकृति और उसके कर्मों को देखते है। वे अपनी प्रज्ञा यात्रा में देखते है कि जीव जैसी कामना करता है उसी के अनुसार पुद्‌गलों का आश्रव होता है।

अज्ञान की स्थिति में किया गया कर्म कषाय उत्पन्न करता है। कषाय चित्त की प्रवृत्ति है, जो आत्मा के लिए कल्मष है। चूकि पुद्‌गल का आत्मा को ढाप लेना बधन है, उसी तरह पुद्‌गल का आत्मा से अलग होना मोक्ष है। पुद्‌गल का अपनी वासना में पूरी शक्ति के साथ आत्मा की ओर बढ़ना आश्रव है और उन्हें बढ़ने से रोकना और ज्ञानमय होना सवर

है। जैन दृष्टि में संवर का महत्व है, यह मुक्ति पथ की ओर बढ़ने का प्रयास है। जब आत्मा में पुद्गल स्कंधों का जुटना स्थगित हो जाता हैं तो आत्मा के जुड़े पुद्गलों के हटने की स्थिति बनती है और कर्मो की निर्जरा होने लगती है।

जैन दृष्टि से जीवन के शुभाशुभ कर्मो का फल उसे ही भोगना होता है। कोई भी शक्ति परिणाम भोगने में हस्तक्षेप नहीं कर सकती। भावों में शुचिता से पाप कर्मो का अनुभाग/शक्ति कम हो जाती है।

जैन विचारणा मे कर्मफल के संविभाग को अस्वीकार किया है। गीता कर्म-फल संविभाग को मान्य करती है। गीता में श्राद्ध तर्पण आदि क्रियाओं के अभाव में तथा कुलधर्म के विनष्ट होने से पितर का पतन हो जाता है। पूर्वजों के शुभाशुभ कर्म का ही नहीं वरन् संतान के कर्म का प्रभाव भी पूर्वजों पर पड़ता है। इसलिए संस्कार में पुत्र पर श्राद्ध कर्म आदि का दायत्वि डाला गया है। जैन कर्म सिद्धांत में कर्म विधान के लिए उपादान व निमित्त कारण का भेद किया गया है। गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं "ये लोग अपनी ही मौत मरेंगे, तू तो मात्र निमित्त होगा।" जैन दृष्टि में हमारे पाप पुण्य अन्य की दया पर नहीं, हमारी मनोवृत्ति व क्रिया पर निर्भर करते है।

कर्मों की अवस्थाओं के संबंध में जैन दृष्टि कर्म विपाक की नियतता और अनियतता दोनों को स्वीकार करती है। जिन कर्मों का बंध तीव्र कषाय भावों के कारण होता है, उन्हें नियत विपाकी मानती है। हर किसी में कर्म विपाक में बदलाव की क्षमता नहीं होती। आध्यात्मिक पुरुष ही अपने परिणामों की निर्मलता से, त्याग-तप के पुरुषार्थ से कर्मों के स्थिति अनुभाग का खंडन कर पाते है। साधारण जन को तो उनका फल भोगना ही होता है। गीता व बौद्ध परंपरा में भी संचित कर्म को ज्ञान द्वारा बिना फल भोग के नष्ट किया जा सकता है। माना है, "ज्ञानाग्नि सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते"।

आचार्य कुंदकुद, आचार्य अमृतचंद्र आदि सभी आचार्यो ने शुभ-अशुभ दोनों को ही बंधन कारक माना है, जिस प्रकार सोने के वेड़ी और लोहे की बेड़ी दोनों बेडियाँ हैं। पारमार्थिक दृष्टि से दोनों में भेद नही किया जा सकता है। मुक्ति के लिए पुण्य को भी छोड़ना होता है । जीव पाप कर्म से ऊपर उठ जाता है तो उसका पुण्य प्रबल होकर शुभ के लिए हो जाता है। जैन अवधारणा में आत्मा का लक्ष्य अशुभ से शुभ और शुभ से शुद्ध कर्म की ओर बढ़ना है। आत्मा का शुद्धोपयोग ही जैनत्व की कसौटी है, चरम लक्ष्य हे। गीता मे श्रीकृष्ण कहते है "तू जो भी कर्म करता है वे सभी शुभाशुभ कर्म मुझे अर्पित कर दे। उनके प्रति किसी प्रकार की आसक्ति या कर्तत्वभाव मत रख। इस प्रकार संन्यास योग से तू शुभाशुभ फल देने वाले कर्म वंधन से मुक्त हो जाएगा। गीता का अतिम लक्ष्य भी शुभाशुभ से ऊपर निष्काम जीवन दृष्टि का निर्माण है। जैन व गीता दर्शन की अनेक मान्यताओं में साम्य है। दोनों पुनर्जन्म ओर आत्मा के गुणों को स्वीकार करते है। जैन दृष्टि में हर कर्म का फल, स्वयं का भोगना होता है। कर्मों की निर्जरा के लिए ज्ञाता-दृष्टा होकर अनुरक्त नहीं होना ही चरम पुरुषार्थ है। आंखे पदार्थ को देखती हैं, लेकिन उसकी संरचना या उसका उपयोग नहीं करती है। वैसे ही ज्ञानी जानता है कि वह कर्ता या भोक्ता नहीं है, इसलिए सभी कामनाओं को तज कर वह सर्वगत होता है, बिन्दु से सागर, अहंकार से अर्हम् और ओम् हो जाता है।

[illegible] भवन, पांच बत्ती
न्यू कॉलोनी, जयपुर

द्रव्य का परिणामीनित्य स्वरूप

✍ डॉ राजकुमारी जैन

हमें जगत के विभिन्न पदार्थ निरन्तर परिवर्तनशील स्वरूप में ज्ञात होते हैं। हम देखते है कि जो आम पहले हरा और खट्टा होता है वही आम कुछ दिन पश्चात पीला और मीठा हो जाता ही वही आम और एक हो दिन पश्चात सड़ जाता है, उसका पीला रग काले रग में तथा मीठा स्वाद कड़वे स्वाद में परिवर्तित हो जाता है। हमारा यह अनुभव एक ही वस्तु के प्रति 'यह वही है' तथा 'यह वह नहीं है' रूप परस्पर विरोधी प्रतीतियों को समाहित किये हुए है तथा यह उस वस्तु के परिवर्तनशील और स्थायी स्वरूप की ओर सकेत कर रहा है। अनुभव द्वारा ज्ञात हो रहा पदार्थों का यह प्रतिपक्षी विशेषताओं से युक्त स्वरूप दार्शनिकों के लिये प्राचीन काल से ही गम्भीर समस्या रही है। दर्शन के इतिहास के प्रारम्भ से ही भारत और यूनानी सभी दार्शनिक इन प्रश्नों से जूझते रहे हैं कि परिवर्तन का क्या स्वरूप है परिवर्तन की प्रक्रिया के आधार रूप में कोई एक स्थायी सत्ता विद्यमान हो अथवा नहीं, यदि हो तो वह स्थायीसत्ता स्वय परिवर्तनशील है अथवा नहीं, यदि वह स्वय परिवर्तनशील है तो फिर वह 'एक स्थायी सत्ता' किस प्रकार हो सकती है उसे स्थायी सत्ता किस प्रकार कहा जा सकता है तथा परिवर्तन से उस स्थायी सत्ता का क्या सम्बन्ध है, यदि परिवर्तन की प्रक्रिया के आधार रूप में कोई स्थायी तत्व विद्यमान नहीं है तो परिवर्तन को एक 'प्रक्रिया किस प्रकार कहा जा सकता है ऐसे अनेक प्रश्नों के समाधान के प्रयास के रूप में जैन दार्शनिक अपनी द्रव्य की अवधारणा को प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार जगत के प्रत्येक पदार्थ की अपनी स्वतत्र सत्ता है। इसलिये जो भी अस्तित्वन है वह द्रव्य है तथा वह उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त तथा गुण पर्याय का आश्रय है।[1]

द्रव्य शब्द द्रु' धातु से बना है जिसका अर्थ है द्रवित होना, गमन करना।[2] इस मूल धातु से व्युत्पत्ति के अनुसार द्रव्य को परिभाषित करते हुए कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं जो उन उन सद्भाव पर्यायों को द्रवित होता है, गमन करता है उसे द्रव्य कहते है तथा यह सत्ता से अभिन्न है।[3] जैनेन्द्र व्याकरणकार कहते हैं "द्रव्य भव्ये "[4] अर्थात जो निरन्तर नये स्वरूप में बनने, स्वरूप लाभ करने की योग्यता से सम्पन्न हो, निरन्तर भवन शील हो वह द्रव्य है। इस प्रकार जैन आचार्यो के अनुसार द्रव्य परिवर्तनशील है। वह सामान्य रूप से सदैव वही रहते हुए प्रतिक्षण पूर्ववर्ती विशेष स्वरूप का परित्याग कर उत्तरवर्ती विशेष स्वरूप को प्राप्त करने की प्रक्रिया में विद्यमान शाश्वत् सत्ता है और इसलिये सदैव उत्पादव्ययधौव्य स्वरूप है। जो नहीं है उसकी उत्पत्ति उत्पाद, जो है उसका अभाव व्यय और निरन्तर अवस्थिति ध्रौव्य कहलाता है।[5] द्रव्य के समय विशेष में विद्यमान उत्पत्तिविनाशवान विशेष स्वरूप को पर्याय तथा निरन्तर नयी पर्याय की प्राप्ति रूप से घटित हो रही परिवर्तन की प्रक्रिया के आधार रूप में विद्यमान अन्वयी (सदैव वही रहने वाले) सामान्य स्वरूप को द्रव्य कहा जाता है।[6]इस प्रकार द्रव्य काल क्रम से निरन्तर नयी पर्याय रूप से

परिणमित हो रहा शाश्वत तत्व है और पर्याय उस शाश्वत तत्व का समय विशेष मे विद्यमान विशिष्ट स्वरूप है।

द्रव्य का विशेष पर्यायों रूप से परिणमन कारणात्मक नियमों के अनुसार होता है। इसे स्पष्ट करते हुए अकलंक देव कहते है, ''जो स्व प्रत्यय (उपादान योग्यता) और पर प्रत्यय (निर्मित कारण) के सद्भावानुसार उत्पत्तिविनाशवान पर्यायों को प्राप्त होता है, पर्यायों से प्राप्त होता है उसे द्रव्य कहा जाता है।[6] इसकी व्याख्या करते हुए वे कहते है कि जिस प्रकार उड़द अपनी सीझ सकने की उपादान योग्यता तथा उन्हें खौलते हुए पानी में देर तक डाले जाने रूप बाह्य परिस्थितियो के सद्भाव पूर्वक ही अपने 'कच्चे उड़द' रूप पूर्ववर्त्ती अवस्था का परित्याग कर 'सीझे हुए उड़द ' रूप उत्तरवर्ती अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं, यदि उनमे सीझने की उपादान योग्यता का अभाव हो अथवा उन्हे खौलते हुए पानी में देर तक डाले जाने रूप वाह्य कारण की प्राप्ति नहीं हो तो कच्चे उड़द कभी सीझे हुए उड़द रूप पर्याय को प्राप्त नही कर सकते। इसी प्रकार एक द्रव्य का समय विशेष मे एक विशेष पर्याय रूप से परिणमन उसकी उपादान योग्यता और निमित्त कारणों के सद्भावानुसार होता है।

द्रव्य की एक विशेष पर्याय रूप से उत्पत्ति की उपादान योग्यता द्रव्य का गुणपर्यायात्मक स्वरूप है। उसके इस स्वरूप को स्पष्ट करते हुए अकलंकदेव कहते है, ''द्रव्य गुणपर्यायवान होता है। ये विज्ञानादि गुण और पर्याय द्रव्य में सहवर्ती और क्रमवर्ती रूप से विद्यमान है। ये शक्ति-व्यक्ति स्वरूप है तथा इनमें स्पर्शादि के समान भेदाभेद सम्बन्ध है।''

इसकी व्याख्या करते हुए वादिराज कहते है,'' द्रव्य की सहवर्ती (द्रव्य में सदैव युगपत् विद्यमान) विशेषताऐ,यथा-आत्मा मे युगपत् विद्यमान ज्ञानदर्शणससुखवीर्यादि तथा पुद्गल में युगपत् विद्यमान रूपरसगन्धस्पर्शादि गुण हैं। आत्मा में क्रमवर्ती रूप से विद्यमान हर्ष विषाद आदि अथवा पुद्गल में क्रमवर्ती रूप से विद्यमान कोश, कुशूल आदि विशेषताऐं पर्याय है। ये विज्ञानादि गुण पर्याय शक्ति-व्यक्ति स्वरूप हैं , के अर्थ को स्पष्ट करते हुये वे कहते हैं कि 'जो व्यंजित होता है,अभिव्यक्त होता है वह व्यक्ति है । गुणो का वर्तमानकालीन व्यक्त स्वरूप ही व्यक्ति है। कार्योत्पादन की सामर्थ्य को शक्ति कहा जाता है। वादिदेव कहते हैं वर्तमान समय में घटज्ञानादि रूप से जो ज्ञान विद्यमान है वह ज्ञान का व्यक्ति रूप है। उत्तरवर्ती ज्ञान पर्याय की योग्यता को ज्ञान का शक्ति रूप कहा जाता है।[7]

गुण द्रव्य की अनिवार्य विशेषताएं है। ये द्रव्य को अन्य द्रव्यों से पृथक एक निश्चित विशिष्ट स्वरूप प्रदान करती है। ये द्रव्य का ऐसा शाश्वत और सामान्य स्वरूप हैं जिसमे अनन्त विशेष स्वरूपों में अभिव्यक्त होने की सामर्थ्य तथा कारणात्मक नियमो के अनुसार सदैव किसी विशेष स्वरूप को प्राप्त करने की प्रवृति विद्यमान है। अपनी इस सामर्थ्य और प्रवृति के कारण गुण सामान्य रूप से सदैव वही रहते हुए एक विशेष स्वरूप से नष्ट होकर दूसरे विशेष स्वरूप से उत्पन्न होते हुए प्रति क्षण उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप है।'' गुण के ही समय विशेष में विद्यमान व्यक्त स्वरूप को पर्याय कहा जाता है। तथा वह विशेष पर्याय रूप से

उत्पत्तिविनाशवान होते हुए भी सामान्य रूप से उत्पत्तिविनाशरहित होने के कारण द्रव्य का परिणामी नित्य स्वरूप है। उदाहरण के लिये आम पर्याय में अवस्थित रगगन्धरसम्पर्वत्तय पुद्गल द्रव्य का रग गुण रगत सामान्य रूप से नष्ट होकर पीत रग रूप पूर्ववर्ती पर्याय रूप से नष्ट होकर पीत रग रूप उत्तरवर्ती पर्याय को प्राप्त करता है, कुछ समय पश्चात् वही रग गुण सामान्य पीत रूपता का परित्याग कर कृष्णरूपता को प्राप्त करता है। उत्पाद, व्यय ओर ध्रौव्य तीन अलग अलग घटनाए न होकर द्रव्य का एक ही समय में विद्यमान स्वरूप है।'पीत रग' रूप नवीन पर्याय की उत्पत्ति ही 'हरित रग' रूप पूर्ववर्ती पर्याय का विनाश है तथा यही इन दोनों पर्यायों के आधार रूप में निरन्तर अवस्थित रगलसामान्य की ध्रुवता है। पुद्गल द्रव्य के रग गुप के समान ही एक द्रव्य के समस्त गुण सदैव सामान्यविशेषात्मक और उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक स्वरूप से युक्त होते हैं।

गुण का स्वरूप सामान्य और विशेष, उत्पाद-व्यय और, ध्रौव्य, शक्ति और व्यक्ति, अन्वय और व्यतिरेन रूप सप्रतिपक्षी धर्मों से युक्त है। इन सप्रतिपक्षी धर्मो में तात्विक रूप से अभेद होने पर भी स्वभावगत अन्तर है। इसलिये इनका पृथक पृथक ज्ञान कराने में के उद्देश्य से इनमें शाब्दिक और लक्षणिक दृष्टि से भेद किया जाता है। गुण के ही सामान्य, शक्तिमय, ध्रुव और अन्वयी स्वरूप को गुण तथा उसके विशेष, व्यक्त, उत्पत्तिविनाशवान और व्यतिरेकी स्वरूप को पर्याय कहा जाता है। इस भेदात्मक अर्थ में गुण और पर्याय शब्दों का प्रयोग करते हुए आचार्य अमृतचन्द्र कहते हैं अनेकान्तात्मक वस्तु के अन्वयी विशेष गुण और व्यतिरेकी विशेष पर्याय कहलाते हैं। सत्ता निव्यानिव्य स्वभावी होने के कारण अत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप है। गुण उसका ध्रुव स्वरूप तथा पर्यायें उसका उत्पादव्ययात्मक स्वरूप हैं। यह पूर्व पर्याय रूप से विनाश को प्राप्त होती हुई तथा गुण रूप से ध्रुव होती हुई सदैव उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप है।[12]

जिस प्रकार गुण और पर्याय में भेदाभेद सम्बन्ध है उसी प्रकार द्रव्य और गुण तथा द्रव्य और पर्याय में भी भेदा भेद सम्बन्ध एक द्रव्य अपने अनेक सहवर्ती गुणों और क्रमवर्ती पर्यायों के अतिरिक्त कुछ नहीं है लेकिन वह उनका समूह मात्र न होकर उनमें व्याप्त एक अखण्ड सत्ता है। नाम, लक्षण प्रयोजन परस्पर भिन्न भिन्न एक द्रव्य के अनेक सहवती गुण ताक्षत्म्य सम्बन्ध से युक्त है। ये परस्पर एक दूसरे की आत्मा या स्वभाव होते हुए एक सत्ता एक द्रव्य है।एक द्रव्य का अनेक गुणात्मक सामान्य स्वरूप क्रारणात्मक नियमों से परे और शाश्वत है। यह द्रव्य का स्वरूपास्तित्व है जो द्रव्य की समस्त पर्यायों में अनुगत होकर उन पर्यायों की एक द्रव्यरूपता को स्थापित कर रहा है ,तथा उनका अन्य द्रव्यों से भेद का आधार है। इस सामान्य स्वरूप की समय विशेष में उत्पन्न होने वाली विशेष पर्याय कारणात्मक नियमों के अनुसार उत्पन्न होती है। द्रव्य का एक विशेष पर्याय रूप से परिपामन उसकी उपादान योग्यता और निमित्त कारणों के सद्भावानुसार होता है। पर्याय शक्ति विशिष्ट द्रव्यशक्ति द्रव्य की उपादान योग्यता है जिसके होने पर निमित्त कारणों के सद्भावानुसार द्रव्य एक विशेष पर्याय को प्राप्त करता है। एक द्रव्य में अपने सामान्य स्वरूप के अनन्त विशेष स्वरूपों में अभिव्यक्ति की

शाश्वत सामर्थ्य विद्यमान है जिसे द्रव्य शक्ति कहा जाता है। इस द्रव्य शक्ति के द्रव्य में सदैव विद्यमान होने पर भी वह किसी भी समय किसी भी पर्याय को प्राप्त नहीं कर सकता।इसके विपरीत अव्यवहित उत्तरक्षण में द्रव्य के परिणमन की सम्भावनाएं उसके पूर्ववर्ती पर्याय के विशिष्ट स्वरूप के अनुसार निर्धारित होती है। इन सम्भावनाओं में से जिस पर्याय की प्राप्ति के लिये अनिवार्य निमित्त कारणों का सद्भाव होता है, द्रव्य उस पर्याय रूप से परिणमित हो जाता है। उदाहरण के लिये मृतिका कण रूप से अवस्थित पुद्गल द्रव्य में अपने रूपरसगन्धस्पर्शमय सामान्य स्वरूप की समस्त विशिष्ट अभिव्यक्तियों को प्राप्त करने की द्रव्य शक्ति विद्यमान है। इस शाश्वत द्रव्य शक्ति से सम्पन्न होने पर भी वह द्रव्य अपने वर्तमानकालीन मृतिका कण रूप विशेष स्वरूप के कारण अव्यवहित उत्तर क्षण में कुछ विशेष पर्यायो रूप से ही परिणमन की योग्यता रखता है। यदि उसका जल से संयोग हो जाय तो वह पिण्ड रूपता को प्राप्त कर लेगा, यदि उसका अग्नि से संयोग जो जाय तो उसका पीलापन लाल या काले रंग मे रूपान्तरित हो जायेगा, उसकी कोमलता कठोरता में बदल जायेगी, यदि... । इन सीमित सम्भावनाओं में से जिस विशिष्ट स्वरूप की प्राप्ति के लिये अनिवार्य निमित्त कारणों का सद्भाव होता है, द्रव्य उत्तरवर्ती क्षण में अपनी पूर्ववर्ती पर्याय का परित्याग कर उस विशेष पर्याय रूप से रूपान्तरित हो जाता है।

एक वस्तु मात्र द्रव्य या मात्र पर्याय न होकर द्रव्यपर्यायात्मक सत्ता है। द्रव्य की प्रत्येक पर्याय द्रव्य ही होती है। और इसलिये वह अपनी प्रत्येक पर्याय में अपने सामान्य स्वरूप की समस्त विशिष्ट अभिव्यक्तियो को प्राप्त करने की शाश्वत सामर्थ्य से परिपूर्ण है। लेकिन द्रव्य की विशेष पर्याय रूप से परिणमन की सामर्थ्य उसकी द्रव्यरूपता के कारण न होकर उसके पर्यायात्मक स्वरूप के कारण है। द्रव्य अपनी अनन्त सम्भावनाओं में से किस पर्याय को कब और किस प्रकार प्राप्त कर सकता है यह उसकी वर्तमानकालीन पर्याय के विशिष्ट स्वरूप द्वारा निर्धारित होता है। मृतिका कण रूप में अवस्थित पुद्गल द्रव्य में घटरूपता को प्राप्त करने की सामर्थ्य है लेकिन इस सामर्थ्य की अभिव्यक्ति अव्यवहित उत्तर क्षण में न होकर निमित्त कारणों के सद्भाव पूर्वक उनमें पिण्ड ,स्थास, कोश, कुशूलादि, पर्यायों रूप से घटित होने वाली परिवर्तन की लघु प्रक्रिया द्वारा ही संभव है। मृतिका कणों में मिट्टी की अनेक पर्यायों को प्राप्त करने की सामर्थ्य ही नहीं है बल्कि ये पुद्गल द्रव्य की समस्त पर्यायों की संभाव्यता स्वरूप भी है । वे खनिज तेल बन सकते हैं, जल बन सकते है, स्वर्णाभूषण बन सकते है, लेकिन उनका इन रूपों में परिवर्तन अव्यवहित उत्तर क्षण में संभव न होकर निमित्त कारणों के सद्भाव में घटित होने वाली परिवर्तन की दीर्घकालिक प्रक्रिया द्वारा ही संभव है। किसी भी पर्याय में विद्यमान पुद्गल द्रव्य निकटवर्ती या सुदूरवर्ती किसी क्षण मे अपने रूपरसगन्धस्पर्शमय सामान्य स्वरूप की किसी भी विशेष पर्याय को प्राप्त करने की शाश्वत सामर्थ्य से परिपूर्ण है। उसमें अपनी इस सामर्थ्य का अभाव कभी नहीं होता । लेकिन पुद्गल द्रव्य में ज्ञानदर्शन -सुखवीर्यमय चेतन स्वरूप की प्राप्ति की क्षमता का अत्यन्ताभाव होने के कारण पुद्गल

द्रव्य कभी भी जीव द्रव्य रूप से परिणमित नहीं हो सकता।

द्रव्य का सदैव किसी न किसी पर्याय रूप से परिणमित होते रहना अनिवार्य स्वभाव होते हुये भी उसका एक विशेष पर्याय रूप से परिणमन एक आकस्मिक धटना है। द्रव्य की वर्तमान कालीन पर्याय के अनित्य होने तथा उसका उत्तरवर्ती पर्याय रूप से परिणमन निमित्त कारणों के सद्भावानुसार होने के कारण द्रव्य का विशेष पर्यायों रूप से परिणमन अनियत या अव्यवस्थित होता है। यदि मृतिका कणों का जल से संयोग हो तो ही वे पिण्डरूपता को प्राप्त कर सकते है तथा उनमें परिवर्तन की लघु प्रक्रिया द्वारा घटरूपता की प्राप्ति की सभावना होती है, लेकिन यदि वे अग्नि में तप जायें तो उनकी यह सभावना समाप्त हो जाती है तथा तब वे परिवर्तन की दीर्घ प्रक्रिया द्वारा ही घटरूपता को प्राप्त कर सकते है। यदि मृतिका कण पिण्ड रूप में परिवर्तित हो जाते है तो उस पर्याय में अवस्थित होने पर उरकी पर्याय शक्ति का स्वरूप बदल जाता है। उनमें इस पर्याय के अनुरूप अव्यवहित उत्तर क्षण में तथा तदनुसार परवर्ती क्षणों में सभावनाए बदल जाती है, उनमें से जिस पर्याय के अनुकूल निमित्त कारणों का सद्भाव होता है मृतिका पिण्ड उस पर्याय रूप से रूपान्तरित हो जाता है। यदि इस स्तर पर उसे स्थास रूपता की प्राप्ति हेतु अनिवार्य निमित्त कारणों का सयोग प्राप्त हो तब ही वह स्थास रूपता को प्राप्त करते हुये घट पर्याय की और अग्रसर हो सकता है लेकिन यदि ऐसा न होकर वह किसी अन्य पर्याय को प्राप्त करता है तो उसकी परिवर्तन की दिशाए बदल जाती हैं। इस प्रकार द्रव्य की द्रव्यशक्ति के नित्य और कारण निरपेक्ष होनेके कारण उसका द्रव्यात्मक स्वरूप भी नियत और अवस्थित है लेकिन उसकी पर्याय शक्ति के अनित्य और कारण सापेक्ष होने के कारण उसकी पर्यायें अनियत या अव्यवस्थित है। इस प्रकार द्रव्य का विशेष पर्याय रूप से परिणमन में नियतिवाद का अभाव है।

पुद्गल द्रव्य का परिणमन कारणात्मक नियमों के अनुसार अनिवार्यतया होने वाला परिणमन है। पर्याय शक्ति विशिष्ट द्रव्य शक्ति तथा एक विशेष पर्याय के लिये अनिवार्य निमित्त कारणों का सद्भाव पुद्गल द्रव्य के एक विशेष पर्याय रूप से परिणमन का साधकत या पर्याप्त कारण है। इसका सद्भाव होने पर पुद्गल द्रव्य अनिवार्यतया उस विशेष पर्याय रूप से रूपान्तरित होता है। उदाहरण के लिये मृतिका घट में मद्गर का प्रहार होने पर टूटने की उपादान योग्यता होने तथा मुद्गर के प्रहार रूप निमित्त कारण की प्राप्ति होने पर वह अनिवार्यतया टूटता है।

पुद्गल द्रव्य के विपरीत उपादाननिमित्त कारणों के सद्भावनानुसार परिवर्तन की अनिवार्यता जीव के स्वभाव में नहीं है। जीव एक चेतन द्रव्य है। ज्ञानदर्शनोपयोग रूप होने के कारण सदैव किसी न किसी पदार्थ की ओर उन्मुख होना उसे विषय बनाना तथा उसे जानने के लिये प्रवृत्त होना जीव का स्वभाव है। इस उपयोगात्मक स्वरूप के कारण जीव के परिणमन में स्वतन्त्रता विद्यमान है। निश्चित रूप से जीव का परिवर्तन भी स्वरूप प्रत्यय हेतुक होता है लेकिन उपादान योग्यता और निमित्त कारणों का सद्भाव जीव के परिणमन का पर्याप्त कारण न होकर मात्र अनिवार्य कारण है। इन कारणों के

सद्भावनानुसार जीव के परिणमन की सम्भावनाएं सीमित हो जाती हैं। इन सीमित सम्भावनाओं में से जीव चयन पूर्वक जिस पर्याय की प्राप्ति हेतु प्रवृत्त होता है उस रूप से परिणमित होता है। उदाहरण के लिये जिस जीव ने मनुष्य पर्याय प्राप्त की है, जो आठ वर्ष से अधिक आयु का हो चुका है उसमे प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उपादान योग्यता विद्यमान होने तथा गुरू के उपदेश रूप निमित्त कारण का सद्भाव होने पर भी वह सम्यग्दर्शन रूप पर्याय को अनिवार्यतया प्राप्त नहीं करता। इन अनिवार्य कारणों का सद्भाव होने पर यदि वह अपनी चेतना को तत्व चिंतन पर केन्द्रित करता है तो ही उसे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो सकती है, लेकिन यदि वह भोगों में लीन हो जाय तो उसे सम्यग्दर्शन होना सम्भव नही है। अथवा एक समय में जीव में पाँचों इन्द्रियों के विषयों को जानने की उपादान योग्यता होने तथा इन सभी इन्द्रियों तथा इनके विषय रूप वाह्य सामग्री का भी सद्भाव होने मात्र से व्यक्ति की अनन्तर क्षणवर्ती ज्ञान पर्याय का स्वरूप निर्धारित नही होता। इसके विपरीत जीव जिस इन्द्रिय के विषय को जानने हेतु प्रवृत्त होता है उसी इन्द्रिय के विषय को जानता है। इस प्रकार जीव अपनी पर्यायों का नियामक स्वयं है। कारण सामग्री अनन्तरर्ती क्षण में जीव के परिणमन की सम्भावनाओं को सीमित तो कर सकती है लेकिन उसमें उसके परिणमन को निर्धारित करने की सामर्थ्य नहीं है। यद्यपि संसारी अवस्था में जीव के ज्ञानादि गुणों का परिणमन इन्द्रिय, मन आदि निमित्त कारणों के अवलम्बन पूर्वक होता है लेकिन मुक्तावस्था में जीव के इन गुणों की अभिव्यक्ति इन्द्रियादि पर पदार्थों से निरपेक्ष रूप से ही होती है। इस अवस्था में जीव किसी भी अन्य द्रव्य की सहायता लिये बिना अनन्तदर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख ओर अनन्त वीर्य से सम्पन्न होता है।

जीव की मुक्त पर्याय, पुद्गल द्रव्य की परमाणु रूप पर्याय तथा धर्म अधर्म आकाश और काल द्रव्य की पर्यायें अन्य द्रव्य के संयोग से रहित शुद्ध द्रव्य की पर्याय हैं, इसलिये ये स्वभाव पर्याय कहलाती हैं। इन पर्यायों की उत्पत्ति में एक अनिवार्य निमित्त कारण काल द्रव्य है जो उदासीन निमित्त कारण है। इसके विपरीत जीव की पुद्गल के संयोग-जन्य संसारी अवस्था और उसमें भी मनुष्य, पशु आदि अवस्थाएं तथा विभिन्न पुद्गल परमाणुओं के संयोग से उत्पन्न स्कंध रूप अवस्था विभाव पर्याय है। इनकी उत्पत्ति मे जीव, पुद्गल आदि अन्य द्रव्यों की सहकारी कारण रूपता प्रेरक निमित्त कारण है। इस प्रकार किसी भी द्रव्य का परिणमन स्वपर प्रत्यय हेतुक ही होता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जैन दर्शन के अनुसार जो भी अस्तित्ववान है वह परिणामीनित्य सत्ता है। जगत मे विद्यमान कोई भी पदार्थ अपने मूलस्वरूप को कभी नही छोड़ता। ज्ञान दर्शन सुखवीर्य आत्मा का शाश्वत स्वभाव है तथा वह तो कभी अपने इस चेतनामय स्वरूप का परित्याग करता है और न ही उसमें रूपादि गुणों से युक्त जड़ स्वरूप की कभी उत्पत्ति हो सकती है। इस प्रकार द्रव्य का मूल स्वभाव सदैव वही रहता है, ध्रुव है। द्रव्य का यह अनादि अनन्त शाश्वत स्वरूप ही निरन्तर नये विशेष स्वरूप रूप से परिणमित होता हुआ विद्यमान है। सत्ता का यह नित्यानित्यात्मक, एकानेकात्मक, सामान्यविशेषात्मक स्वरूप ही हमारे एक ही वस्तु के प्रति यह वही है, तथा 'यह वही नहीं है' रूप परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले निर्विरोध अनुभवों का आधार है।

◆

अणुबम का प्रतिरोधी अणुव्रत

✍ *विद्यावाचस्पति डॉ. श्रीरजन सूरिदेव*

अहिसा जैन सिद्धान्त की मूल प्रस्थापना है। वेदान्त की सृष्टि जिस प्रकार ब्रह्म की जिज्ञासा से हुई है, उसी प्रकार जैन सिद्धान्त की सृष्टि के मूल में अहिसा की जिज्ञासा है, जिस का सार्वजनिक विस्तार अणुव्रत के रूप में हुआ है। गृहस्थों के लिए आशिक रूप से पालनीय अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह ये पाँच 'अणुव्रत है और श्रमणों द्वारा सम्पूर्ण रूप से पालनीय वे ही पॉचव्रत 'महाव्रत' कहलाते है। जैनधर्म को 'जन धर्म मानने वाले पुण्यश्लोक आचार्य श्री तुलसी अणुव्रत को अहिसाव्रत का मूल मानते थे। अणुव्रत के उक्त पॉचों व्रतों में प्रथम अहिंसाव्रत सर्वप्रमुख है। शेष चारों व्रत अहिसा के परिपोसक या परिपोषक हैं। दूसरें शब्दों में शेष चारों व्रत अहिसा में ही गतार्थ हैं।

पारिभाषिक भगी में कहें तो, प्राणातिपा-विरति ही अहिसा है। परन्तु, 'प्राणातिपात शब्द प्राण के अतिपात (प्राणिवध) तक ही सीमित लगता है। 'अहिसा' शब्द की पारिभाषिक व्यापकता की दृष्टि से ऐसा कहना ठीक होगा कि सवर (नूतन कर्मबन्ध का रोध) और सत्प्रवृति ही अहिसा है। सत्प्रवृत्ति की दृष्टि से भगवान् महावीर ने कहा है– "किसी भी जीव का वध मत करो, उसे कष्ट मत दो, कभी मत सताओ, उसमें आधि-व्याधि उत्पन्न करने वाले आचरणों से सदा दूर रहो। उसे अधीन या दास मत बनाओं यही ध्रुव धर्म है यही शाश्वत सत्य है।' इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखकर 'अहिसा की शास्त्रीय परिभाषा को समास-शैली में इस प्रकार कहा गया है-मनसा, वाचा, कर्मणा और कृत, कारित, अनुमत रूप से आक्रोश, बन्ध और वध का त्याग ही अहिसा है। अहिसा व्रत में भगवान् ने 'आक्रोश' से भी बचने का उपदेश किया है। आक्रोश, अर्थात् कटुवचन कहना, भर्त्सना करना, शाप देना आदि वाचिक हिसा है। अहिसाव्रतियों को इससे सर्वथा अलग रहना चाहिए, अर्थात् उसे 'भाषा-समिति' का सम्यक् रूप से पालन करना चाहिए।

सामान्यत , प्राणातिपात हिसा है और प्राणातिपात से विरति अहिसा। यों, स्वरूपत अहिसा एक है और हिसा भीएक ही है। परन्तु, कारण की दृष्टि से हिसा के दो रूप होते हैं, अर्थ हिसा और अनर्थ-हिसा। अर्थ हिसा आवश्यकतावश की जाती है और अनर्थ हिसा अनावश्यक होती है। अर्थ-हिसा के त्याग से श्रावकों या गृहस्थों की जीवन यात्रा सम्भव नहीं है। इसलिए, वे अनर्थ हिसा का त्याग और अर्थहिसा का आवश्यकतानुसार परिणाम करते है। इसलिए, उनका अहिसाव्रत 'स्थूल प्राणातिपात विरति कहलाता है। जैन अनुशास्ताओं ने गृहस्थों की विवशताओं और दायित्वों को लक्ष्य किया था इसीलिए उन्होंने उनके लिए आदेश किया है कि आरम्भी हिसा (कृषिकर्म में होने वाली हिसा) और उद्योगी हिसा (व्यापार के तहत कल-कारखानों आदि में होने वाली हिसा) से यदि नहीं बच सको तो, सकल्पी हिसा (मन के स्तर पर होने वाली भावहिसा) और अप्रायोजनिक हिसा (अनावश्यक या निष्प्रयोजन की जाने वाली हिसा)से अवश्य ही

बचना चाहिए।

संकल्पी हिंसा मन के संकल्प से जुडी होती है, जो कालान्तर में कार्यरूप मे भी परिणत होती है, अर्थात् भावहिसा द्रव्यहिंसा बन जाती है। इसलिए, संकल्पी हिंसा, अर्थात् मनोगत भावहिंसा पर नियन्त्रण आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। भावहिंसा पर नियन्त्रण अणुव्रत के पालन से ही सम्भव है। भावहिंसा से ग्रस्त जीव निरन्तर रौद्रध्यान आर्न्तध्यान की स्थिति मे रहता है। आर्न्तध्यान प्रायः आत्मभय की स्थिति है और रौद्रध्यान दूसरे को भय-विप्लुत या आतंक-पीड़ित करके स्वयं त्रयग्रस्त होने की स्थिति है। कोई भी व्यक्ति दूसरे को भयग्रस्त करके स्वयं भयमुक्त नही हो सकता।

आर्तध्यान यदि भावहिंसा का समीपी होता है, तो रौद्रध्यान द्रव्यहिंसा का प्रतिरूप होता है। एक का संबंध यदि भाव-प्रत्यय से है, तो दूसरे का द्रव्य-प्रत्यय से। युद्धजनित सभी प्रकार की विभीषिकाएँ या विनाशकार्य भावहिंसा के द्रव्यहिंसा हो जाने का भयावह परिणाम है। अणुबम का निर्माण भी भावहिंसा की द्रव्यहिंसा में परिणति का कुपरिणाम है। अमेरिका के युद्धोन्मादी कषाय-कलुषित चित्तवाले प्रशासकों द्वारा जापान के विनाश के लिए उसके हिरोशिमा शहर पर अणुबम गिराया जाना उनके रौद्रध्यानमूलक भावहिंसा के द्रव्यहिंसा मे परिणत होने का दुष्परिणाम है। पुनः भारत और पाकिस्तान जैसे आर्थिक दृष्टि से विकासशील देशों में अणुबम बनाने की प्रतिद्वन्द्विता उनकी भावहिंसा के द्रव्यहिंसा में बदलने की दुष्प्रतिक्रिया है। किन्तु, इस सन्दर्भ मे अहिंसावादी भारत का स्पष्ट दृष्टिकोण यह है कि अहिंसा शस्त्र के परित्याग की बात नहीं करती, अपितु वह शस्त्र के प्रयोग का विवेक प्रदान करती हैं।

राजनीति के स्तर पर भी भावहिंसा के द्रव्यहिंसा मे परिणत होने के उदाहरण मिलते है। कोई राजनीतिक दल जब अपनी 'रणनीति' तैयार करेन की बात कहता है, तब स्पष्ट है कि उसके मन मे कोई वाचिक या कायिक हिसा की योजना है। उसकी यह मनोगत भावहिंसा प्रायः लोकसभा या विधान सभा या फिर चुनाव के क्षेत्रों मे प्रत्यक्ष रूप से हाथापाई, मारपीट, खून-खराबी, उठा-पटक, गाली-गलौज आदि के स्तर पर द्रव्य हिंसा मे परिणत होते दिखाई पड़ती है। इससे स्पष्ट हे कि द्रव्य हिंसा का मूलकारण भावहिंसा अथवा संकल्पी हिंसा ही है।

अणुबम बनाने का मूल उद्देश्य हर हालत मे विनाश ही है। इस हिंसात्मक उद्देश्य को अणुव्रत के अहिंसाव्रत से ही निर्मूलित किया जा सकता है और इस प्रकार अणुबम बनाने के सकल्प का निराकरण अणुव्रत के द्वारा ही हो सकता है। संक्षेप मे, कहे तो, अणुबम का निषेध अणुव्रत से ही किया जा सकता है और इसके अहिंसा सिद्धान्त से ही देश को सांस्कृतिक संकट और मानवता के विनाश से त्राण मिल सकता है। हिंसासे मुक्ति का उपाय या विकल्प अहिंसा-सिद्धान्त के तत्व-चिन्तन मे ही निहित है, जिसके अन्वेषण का प्रयत्न आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है। अहिंसा की परिकल्पना अहिंसक समाज मे ही की जा सकती है।

महावीर के चिन्तन ने अहिंसा को प्राणिवध से विरति की सीमा से ऊपर मनोगत भावहिंसा से विमुक्ति के साथ जोड़ा है। द्रव्य हिंसा की सीमा से

प्रवेश करने वाली भावहिसा पर नियन्त्रण मन पर नियन्त्रण से ही सम्भव है। इसके लिए निश्चय दृष्टि और व्य , दोनों ही आवश्यक है। हिसा से आत्मा की अधोगति होती है, इसलिए यह अकरणीय है। यही निश्चय दृष्टि है। किन्तु, व्यवहार दृष्टि से सोचने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि सभी प्राणियों को अनी आयु प्रिय है सुख अनुकूल है और दु ख प्रतिकूल। सभी जीव जीना चाहते है, मरना कोई भी नही चाहता। ऐसा समझकर किसी जीव की हिसा नहीं करना चाहिए। किसी जीव को त्रास या दु ख नहीं पहुँचाना चाहिए। किसी के प्रति किसी प्रकार का वैर-विरोध न रखकर सदैव मैत्रीभाव रखना चाहिए।

अहिसा-सिद्धान्त के सन्दर्भ में आगमोक्त जैनाचार का सार यही है कि जो जिसे मारने की इच्छा करता है, वह भी उसी के जैसा सुख-दु ख का अनुभव करने वाला प्राणी है। जो जिस पर शासन करना चाहता है, वह भी उसी के जैसा प्राणी है। इसी प्रकार जो जिसे दु ख देना चाहता है या उसे वश में करना चाहता है, अथवा उसके प्राण लेने की इच्छा करता है, वह भी उसी के जैसा प्राणी है। इस बात पर गम्भीरता से विचार करना चाहिए। इस प्रकार के चिन्तन को हृदयगम करने के लिए उत्तराध्ययना (2 20,6 2) 'सूत्रकृताग' (1 1 15 13), 'आचाराग' (5 101) आदि आगम ग्रन्थ मननीय है।

आज अणुबम की विभीषिका के युग में अहिसा दृष्टि का विकास आवश्यक है। भगवान महावीर ने अहिसा को केवल भौतिक अहिसा तक ही सीमित न रखकर उसे बौद्धिक या वैचारिक अहिसा के स्तर पर प्रतिष्ठित किया है। उनकी यह सर्वथा नवीन और मौलिक उपस्थापना है। जब तक मनुष्य के विचारों में अहिंसा नहीं आयगी तब तक वह भौतिक अहिसा को मूल्य नहीं दे पायेगा। वैचारिक अहिसा से व्यवहारिक और तात्त्विक दोनों प्रकार की समस्याओं का समाधान सम्भव है। वैचारिक या बौद्धिक अहिसा तत्त्वत अनेकान दृष्टि है। अनेकान्त दृष्टि के समग्रत उपयोग के द्वारा ही दार्शनिक या दृष्टिगत सन्तुलन की स्थापना में सफलता सम्भव है। परमाणु-अप्रसार-सन्धि ('सी टी बी टी) अनेकान्त के तहत बौद्धिक या वैचारिक सन्तुलन का ही रूपान्तर है, जो अणुव्रत के अन्तर्गत अहिसा सिद्धान्त का ही पुनर्मूल्याकन है।

सप्रति, आवश्यकता इस बात है कि भारत की जनता अपनी अहिसात्मक वैचारिकता के साथ, अनेकान्त की मर्यादा को मूल्य देते हुए उदार भूमण्डली दृष्टिकोण एव विशाल उन्मुख मानसिकता के साथ आने वाली नई इक्कीसवीं शती में, अणु बम के भय से मुक्त होकर प्रवेश करें। इसके लिए मन और बुद्धि आचार और विचार व्यवहार और सिद्धात आदि सभी प्रकार की बाह्य एव आभ्यन्तर दृष्टियों अहिसक बनना पड़ेगा। यदि मनोभाव के स्तर पर राग और द्वेष की तीव्रता बनी रही, तो उस स्थिति में मानसिक स्तर पर अहिसक हो पाना कदापि सम्भव नहीं होगा और तब हम बौद्धिक या वैचारिक स्तर पर भी अहिसक कैसे बन सकेंगे ? चारित्र-चेतना ओर व्यवहार चेतना दोनों में अविनाभावी सबध है। व्यवहार-शुद्धि के लिए चारित्र-शुद्धि आवश्यक है। चारित्र-चैतन्य से ही हम व्यवहार चैतन्य की ओर प्रस्थित होते है।

भारतीय चिन्तन में, विशेषतः आर्हत चिन्तन में हिंसा सर्वथा हेय है। और फिर, अणुबम के भय का उन्मूलन करने वाले अणुव्रत से ही अहिंसा प्रत्याशित है, तो वह अवश्य ही उपादेय है। अधुना, अणुबम की प्रतिद्वन्द्विता की स्थिति में अहिंसात्मक अनेकान्त दृष्टि को दर्शन के क्षेत्र से व्यावहारिक जीवन के क्षेत्र में ले जाने की अपेक्षा है। तभी दर्शन और जीवन-व्यवहार में समन्वय की स्थापना हो पायेगी।

अणुव्रत की अहिंसा का मुख्य रूप आत्म कल्याण बनाम जनकल्याण है। अणुबम यदि जन कल्याण का बाधक तत्व है, तो अणुव्रत उसका साधक तत्व है। अणुव्रत जब तत्त्व-दर्शन से अधिक जीवन-दर्शन में परिणत होगा, तभ वह अणुबत के निषेध या उसकी वर्जना में समर्थ होगा, और तभी उसका तत्त्व चिन्तन में समाज-चिन्तन में बदल सकेगा।

आज अणुव्रत की अनेकान्तात्मकों अहिंसा दृष्टि से सामाजिक जीवन का अध्ययन किया जाय तो सामाजिक व्यवस्था में वैचारिक परिवर्तन होगा और इससे हिंसा का निर्मूलन किया जा सकेगा। हिंसात्मक समस्याओ के समाधान के लिए अहिंसात्मक वैचारिक या बौद्धिक चिन्तन तथा भौतिक या व्यवहारिक प्रयत्न, दोनो ही समानान्तर रूप से आवश्यक हैं।

अणुबम से उत्पन्न होने वाली हिंसा के भय का निराकरण अहिंसा के चिन्तन से संवलित होने पर भी सम्भव होगा। आज अणुव्रत-आन्दोलन के जनक आचार्य श्री तुलसी के चिन्तन के परिप्रेक्ष्य मे अणुव्रत दर्शन को समाज-दर्शन के स्तर पर उतारने की अपेक्षा है, तभी अहिंसा-दर्शन जन-जन का जीवन-दर्शन बनेगा। आज, अणुव्रत ही अणुबम का प्रतिरोधी हो सकता है। ◆

'जय महावीर'

✍ रचि. देवेन्द्र कुमार पाठक 'अचल' ढाना (म.प्र.)

मारो काटो बचो बचाओ हा ! हा !! स्वर है चारों ओर।
रक्त रंजिता दुखियारी सी दिखलाती है सन्ध्या भोर॥
होती थी नित जहाँ अर्चना-वन्दन स्वर मे आराधन।
अक्षत ले करते थे तीर्थंकर का सादर अभिनन्दन॥

हरति पत्र तरु से उतारना जहाँ मानते है अपराध।
साधक जन को जहाँ बताये गए बन्ध के सिन्धु अगाध॥
दानवता के दलन हेतु थे जहाँ अवतरित हुये अनन्त।
सीस झुकाकर जिन्हें विश्व ने कहा जयति जय जय अर्हत॥

आज वही आतंकवाद ने डाला है अपना डेरा।
मानवता को मिटा रहे जो बढ़ा चढ़ा अपना घेरा॥
बढ़े हुये ये दानवीय पग रहे धरा पर धरे न शेष।
दिख न सकें पृथ्वी पर इनके, कुटिल कलुष कोई अवशेष॥

रहे सुवासित अखिल विश्व में महावीर प्रभु के सिद्धान्त।
इनसे ही रुक सके समूचे बहते दृग जल बिन्दु अशान्त॥
गूंज उठे फिर से त्रिलोक में त्रिशला नन्दन की वाणी।
रोम रोम में रमें अहिंसा भरी भावना कल्याणी॥

मिटे अमंगल बहे मलय मंगलकारी करुणासागर।
हो जाय तृण तीरो तेवर मंगल बरसे प्रभु निशिवासर॥
हो उठे पुनः वसु धरा धन्य अन्तः तरंग बोले महावीर।
धरती से नभ, नभ के ऊपर लहरें उठें "जय महावीर"॥

◆

महावीर का अपरिग्रहवाद

✍ बुद्धि प्रकाश भास्कर

आज से 2600 वर्ष पूर्व, जिस युग में भगवान महावीर हुए, उस समय भारतीय समाज की स्थिति अच्छी नहीं थी, बड़ी दयनीय थी। सारे देश में विषमता छा रही थी। गरीब अमीर, छोटा बड़ा, ऊँचा नीचा का भेदभाव जबरदस्त था। एक वर्ग अपने आप को ज्ञानी वर्ग मानकर, अन्य को हीन मानता था। धर्म पर कुछ लोगों ने अधिकार कर, अपने आप को धर्म का ठेकेदार बनाये हुए थे। उन्होंने धार्मिक क्रियाओं को अपने स्वार्थ पूर्ति का साधन बना रखा था।

सर्वसाधारण इन तथाकथित धर्म के ठेकेदारों से डरता था। ये धर्म के ठेकेदार अपने आप को महापडित, पुरोहित, राज गुरु आदि नामों से सबोधित करवाना पसन्द करते थे। इन्होंने यज्ञ आदि की परिपाटी डाल रखी थी। यज्ञ के नाम पर धन, वैभव आदि तो कमाते ही थे, अपनी रसना इन्द्रिय की तृप्ति के लिए भी साधन जुटाते थे। यज्ञ में पशुबलि से मास प्राप्त होता था, इस मास का भक्षण करके भी ये लोग अपने आप को धर्मात्मा कहते थे। हजारो-निरीह मूक पशु धर्म के नाम पर प्रतिदिन मारे जाते थे।

ऐसे में भगवान महावीर का होना इन मूक प्राणियों के लिए बड़ा ही शुभ योग था। भगवान महावीर ने अपने उपदेशों से जीव हिसा को सबसे बड़ी बुराई बताकर लोगों को अहिसा धर्म अपनाने के लिए प्रेरित किया। भगवान की वाणी दिव्य थी उसमें आकर्षण था, वह चित्राकर्षक थी, अत जो प्राणी सुनता था, उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था।

समाज की विषमता समाप्त करने के लिये महावीर ने अहिसा के साथ साथ सत्य-भाषण पर भी जोर दिया, क्योंकि असत्य से तो समाज में मायाचार पनप रहा था। अचौर्य का महत्त्व बताकर, समाज में व्याप्त अराजकता को समाप्त किया। ब्रह्मचर्य का महत्त्व बताकर, महावीर ने गृहस्थ इकाई को सुरक्षा प्रदान की।

इन सब के साथ साथ भगवान महावीर ने अपरिग्रहवाद पर जोर दिया। यह एक स्वाभाविक स्थिति बन जाती है कि जब समाज में अराजकता हो, छीना झपटी हो, तो सग्रहवाद पनपने लगता है। उस समय स्थिति यही थी। इसलिए सग्रह की प्रवृत्ति पनपने लगी थी। सग्रह की प्रवृत्ति में जो सशक्त होता है, वह निर्बल को पीछे हटा देता है। उससे उसका भी हिस्सा छीन लेता है। परिणाम यह निकलता है कि एक तरफ आवश्यकता से अधिक धन खाद्य तथा अन्य उपभोग की सामग्री होती है और दूसरी ओर कुछ नहीं। परिणाम बड़ा भयावह होता है। समाज के एक वर्ग में भुखमरी फैल जाती है दूसरी ओर ढेर वस्तुयें, पड़ी-पड़ी खराब होती रहती है। इस स्थिति का निराकरण, अपरिग्रहवाद के सिद्धात से ही हो सकता है।

जो स्थिति 2600 वर्ष पूर्व थी उससे अच्छी स्थिति आज के भारत में नहीं है। वस्तु स्थिति तो यह है कि इस समय तो उससे कई गुणी खराब स्थिति है। आज के समाज की विषम स्थिति का रूप यह है कि जहाँ धन है, वहाँ बड़ी तिजोरियाँ नोटों के बडलों से भरही हुई है, स्वर्ण-बैक लाकरों में समा नहीं रहा है। व्यक्ति सोच नहीं पाता, कहाँ खर्च करें ? दूसरी ओर सुबह का भोजन हो गया तो शाम का पता नहीं है पुत्र मर रहा है अस्पताल के

पलंग पर दम तोड़ रहा है, पर इंजेक्शन लगवाने के भी पैसे नही है। एक तरफ बड़े-बड़े भोज हो रहे हैं, प्लेटो में इतना खाना झूंठन मे छोड़ा जा रहा है कि दो आदमी पेट भर ले। दूसरी ओर फैके हुए दोनो को चाटकर, अपना पेट पालते अभावग्रस्त जीवन जी रहे लोग है। ऐसी स्थिति मे भगवान महावीर के 'अपरिग्रह- वाद' का सिद्धात, आज अधिक प्रासंगिक है, उपयोगी है। हमे भगवान महावीर के अपरिग्रहवाद के सिद्धांत को समझना पड़ेगा। महावीर के धर्म के दो आधार भूत स्तंभ है-एक गृहस्थ दूसरा साधु। दोनो स्तंभ अपने अपने क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण स्तंभ है। साधु संस्था समाज पर नियन्त्रण रखती है, समाज को अपने कर्त्तव्य से विचलित नही होने देती, आचरणहीन होने से रोकती है, समाज को सांसारिक नाटक की वास्तविकता बताकर मुक्ति के सही मार्ग पर अग्रसर करती है। मुक्ति पथ के राही समाज के प्रबुद्ध व सुयोग्य नागरिक होते है, समाज मे सदाचार के पक्षधर होते हैं।

दूसरा प्रमुख स्तंभ श्रावक है। श्रावक नही हो तो साधु संस्था का अस्तित्व ही खतरे मे पड़ जायेगा। व्यवहार धर्म के पालने हेतु श्रावक अर्थात् गृहस्थ की अत्यंत आवश्यकता है।

भगवान महावीर का उपरोक्त सिद्धांत गृहस्थ के दृष्टिकोण से अणुव्रत और साधु की दृष्टि से महाव्रत कहलाता है। सारांश यह है कि जहाँ गृहस्थ किसी सिद्धांत का आंशिक पालन करता है, वही साधु को वही सिद्धांत पूर्ण रूप से पालन करना पड़ता है। इनके पालन करने के लिए दोनो पक्षों के लिये नियम है। यह नहीं है कि स्वच्छंद रूप से इनका पालन हो। इतना होते हुए भी गृहस्थ के लिए प्रत्येक सिद्धांत के नियम पालन करने मे जीवन के व्यावहारिक पक्ष का ध्यान रखा गया है।

अपरिग्रहवाद के भी दो रूप है। परिग्रह- परिमाण रूप अणुव्रत गृहस्थ के लिए और साधु के लिए अपरिग्रह महाव्रत। बाह्य में चेतन-अचेतन दो प्रकार का परिग्रह हैं और अंतरंग में पर पदार्थो में निज बुद्धि होना परिग्रह है।

परिग्रह की शास्त्रीय परिभाषा है-मूर्छा परिग्रह : मूर्छा को समझाते हुए आचार्य अमृत चन्द्र ने कहा है- "मोहोदयात् उदीर्णो मूर्च्छा तु ममत्व परिणामः।"

अर्थात् मोह के उदय से उत्पन्न ममत्व परिणाम ही मूर्च्छा है। पर पदार्थ के छूटने मात्र से अपरिग्रह नहीं होता वरन् उसमे ममत्व भाव छूटने से अपरिग्रह होता है।

सामान्य व्यक्ति के लिए केवल बाह्य परिग्रह को समझना अनिवार्य है। बाह्य परिग्रह से तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को-भूमि, सपत्ति, स्वर्ण धन, रजत धन, पशुधन, इत्यादि सभी परिग्रहो के परिमाण को निश्चित करना होगा। स्थिति यह है जो साधन है वे सीमित है, उन्हें यदि समाज के कतिपय समर्थ व्यक्ति हथिया लें तो अन्य उनसे वंचित रह जायेंगें उनका जीना कठिन उनका मूल्य चुकाना भी हो जायेगा।

लोगों को आवासीय मकान नही मिल रहे क्योंकि ऊंची कीमत देकर जब सामर्थ्यवान उन पर अपना अधिकार कर रहे है तो, छोटी कीमत वालो को कौन पूछेगा ? यही स्थिति जीवन की आवश्यक खाद्य वस्तुओं की है। इसी प्रवृति के कारण आज समाज का बहुत भाग पौष्टिक आहार से, जिसमें फल-सब्जी, मेवे, दूध आदि सभी आते हैं, वंचित है।

यदि भगवान महावीर के अपरिग्रहवाद को हम स्वीकार कर लें, बिना प्रयास के, बिना तनाव के हम जन कल्याण के भागीदार बन जायेंगे। आवश्यकता है, हम इच्छाओं मनोवृत्तियों को बदलें।

[illegible] बाग, दुर्गापुर, कानपुर-[illegible]

महावीराष्टक स्तोत्र

✍ पण्डित भागचन्द जी
पद्यानुवादक वीर सागर जैन

जिनके चेतन में दर्पणवत् सभी चेतनाचेतन भाव।
युगपद् झलकें अतरहित हो ध्रुवउत्पाद व्ययात्मक भाव॥
जगतसाक्षी शिवमार्ग प्रकाशक जो है मानो सूर्य समान।
वे तीर्थंकर महावीर मम (हम) हिय आवें नयनों के द्वार॥1॥

जिनके लोचनकमल लालिमा रहित और चचलताहीन।
समझाते है भव्यजनों को बाह्याभ्यन्तर क्रोध विहीन॥
जिनकी प्रतिमा प्रकट शातिमय और अहो है विमल अपार।
वे तीर्थंकर महावीर मम (हम) हिये आवें नयनों के द्वार॥2॥

नमते देवों की पक्ति की मुकुटमणि का प्रभा समूह।
जिनके दोनों चरण कमल पर शोभित होता जीव समूह॥
सासारिक ज्वाला हरता स्मरण जिनका बने जल की धार।
वे तीर्थंकर महावीर मम (हम) हिये आवे नयनों के द्वार॥3॥

जिनके अर्चन के विचार से मेंढ़क भी जब हर्षितवान।
क्षणभर में बन गया देवता गुण समूह और सुक्ख निधान॥
तब अचरज क्या यदि पाते है सच्चे भक्त मोक्ष का द्वार।
वे तीर्थंकर महावीर मम (हम) हिये आवें नयनों के द्वार॥4॥

तप्त स्वर्ण-सा तन है फिर भी तनविरहित जो 'ज्ञानशरीर'
एक रहें होकर 'विचित्र' भी, सिद्धारथ राजा के वीर–
होकर भी जो जन्मरहित हैं श्रीमन् अपितु न रागविकार।
वे तीर्थंकर महावीर मम (मम) हिय आवें नयनों के द्वार॥5॥

जिनकी वाणी रूपी गगा नय लहरों युत हीन-विकार।
विपुल ज्ञानजल से जनता का करती है जग में स्नान॥
अहो! आज भी इससे परिचित ज्ञानीरूपी हस अपार।
वे तीर्थंकर महावीर मम (हम) हिये आवें नयनों के द्वार॥6॥

तीव्र वेग त्रिभुवन का जेता काम योद्धा महा प्रबल।
वय कुमार में जिनने जीता, उसको केवल निज के बल॥
शाश्वत् सुख शान्ति के राजा बनकर जो हो गये महान्।
वे तीर्थंकर महावीर मम (हिय) आवें नयनों के द्वार॥7॥

महामोह आतंक शमन को जो है आकस्मिक उपचार।
निरापेक्ष बन्धु हैं जग में जिनकी महिमा मंगलकार ॥
भव भय से डरते संतो को शरण तथा वर गुण-भडार।
वे तीर्थकर महावीर मम (हम) हिये आवें नयनो के द्वार ॥8 ॥

'महावीराष्टक' स्तोत्र को, 'भाग' भक्ति से कीन।
जो पढ़ले अथवा सुने, परमगति वह लीन ॥

◆

"..........नयन पथगामी भवतु में"

✍ *पं. ताराचन्द्र पाटनी, ज्योतिषाचार्य*

यह कथन अतिशयोक्ति भरा नही है कि निष्ठावान प्रभु- भक्त का हृदय भक्ति रसामृत का लहराता, गरजता सागर है। उस सागर से भक्ति अपने को शब्दो के माध्यम से अभिव्यक्त करती है तो कोई दिव्य रचना जन्म लेती है। क्या पुरातन युग, क्या मध्य युग, और क्या वर्तमान युग हर युग मे महान् आचार्यो ने भक्ति रचना की है। भक्ति साहित्य की अनेक ऐसी रचनायें है जिनमें भक्त हृदय की कामनाऐं गूथी गई है। अपने आराध्य की चगाण वदनायें , स्तुतिगान एवं महानता की यशोगथा गाते-गाते अपने लिए भी मांग लिया है अपना अभीप्सित ।" बोहिलाओ सुगई गमणं , आदोग्गं समाहिमरणं जिन गुण सम्पत्ति होऊ मज्झं" अर्थात् आरोग्य , बोधिलाभ तथा उत्तम –श्रेष्ठ समाधि प्राप्ति हो ऐसी भावना व्यक्त की है।

भगवान महावीर आप्त पुरुष हैं। उनके जीवन - संदेश से दर्शन एवं धर्म की जो चिंतन धारा प्रवाहित हुई है उसे अपनी छोटी सी रचना महावीराष्टक में कविवर भागचन्द जी ने गूंथ दिया है। उनकी मंगल प्रार्थना मे न ऐश्वर्य की मांग है, न संकट - मुक्ति का निवेदन है,न स्वर्गादि लाभ की प्रार्थना है। किसी प्रकार भी कोई याचना, कामना नहीं है । एक ही प्रार्थना है," भगवान मेरे नयनों में समा जाए" । यह प्रार्थना ऐसी प्रार्थना है जैसे, कोई सागर से प्रार्थना है करे 'तू मेरी गागर मे समा जाए' प्रार्थना तो प्रार्थना। भक्त नही सोचता कि " क्या ऐसा हो सकता है? सागर को गागर में समाता क्या कभी देखा है"? भक्त का हृदय इन विकल्पो से दूर है। संसार मे ऐसा कुछ सत्य हो या न हो इससे उसे कोई मतलब नही होता है। उसके अन्तःकरण की भाव-भाषा ही सत्य है।

मात्र आठ श्लोको की रचना में प्रत्येक श्लोक के चतुर्थ चरण मे भक्त हृदय भागचन्द्र की दिव्य भावना का पुनः पुनः संगान है "महावीर -स्वामी नयनपथगामी भवतु मे "। यह भक्त का एक उत्कष्ट भाव है जो उसके हृदय घट से छलक छलक जा रहा है। भक्ति का पूर्ण रूप है- भक्त में भगवान का समा जाना सिंधु का बिंदु में अवतरित होना उस अद्भुत पूर्ण रूप की अभिव्यक्ति है यह पुन. भक्ति। भक्ति की बेला में स्वरचयिता से भर गए हैं । ऐसे मे भक्तराज जिन आँखों की बात कर रहे हैं जगत हमें जिन आँखों से देख रहा है और हम जगत् को जिन आँखों से देख रहे हैं, उन आँखों की चर्चा है

क्या? भागचन्द्र चतुरिंद्रिय एव पचेंद्रिय जीवो को प्राप्त शरीर की आँख की बात क्या करेंगे? शरीर की ये ऑखे प्रकृति के सूर्य को देखने में चौंधिया जाती है तो जो सूर्योतिशायी हैं, कोटि सूर्यो से भी अधिक जाज्वल्यमान है, उन्हें क्या देखेगी। ऑखें बहुत बडी विशाल चीजों -समुद्र पर्वत आदि - जिन्हें नापा जा सकता है उन्हें भी एक नजर में नही देख पाती , तो जो असीम है, विराट है उसे कैसें देख पाएगी?

ऑख कौन सी? असीम को, प्रकाशमान को सदा सर्वदा अपलक देखने वाली हृदय की ऑख, ऑख है । भक्ति की आँखा से, प्रभु प्रीति की ऑख से देखा जाता है परमात्मा को। समयातीत, क्षेत्रातीत , नामातीत , रूपातीत परमात्मा को देखे और उसे समाले अपने मे, ऐसे दिव्य अन्तश्चक्षु, ऐसे विलक्षण अतर नयन है भक्त के। भक्त अपने नयन-कमलों के सिहासन पर विराजमान करता है भगवान को।

महावीराष्टक स्तोत्र ' रचना एक दिव्य माला है। भक्ति के अत्यधिक कोमल, नाजुक सूक्ष्म भावों के सूत्र में भगवान महावीर के जीवन-सदेश के सुगधित पुष्प बड़ी सुन्दर काव्यात्मक शैली एव चितन पूर्ण कुशलता से पिरोए गये है।

प्रथम श्लोक में है - भगवान महावीर अनत ज्ञानी है। उनके ज्ञान में लोकालोक के समस्त पदार्थ झलकते है। उनके लिए रहस्य जैसा कुछ नहीं है वे जगत के मात्र साक्षी हैं। उन्होंने साक्षी भाव को मुक्ति का मार्ग बताया है।

द्वितीय श्लोक में है - भगवान महावीर कषायों से मुक्त है। परम विशुद्ध अर्हत है।

तृतीय श्लोक में है - भगवान महावीर देवताओं के भी देवता है, देवाधिदेव हैं।

चतुर्थ श्लोक में है - भगवत्-भक्ति से भगवत्ता पाई जाती है।

पचम श्लोक में है - परस्पर विरोधी लगने वाले विलक्षण रूप भगवान महावीर के जीवन में अविरोध भाव से उपस्थित है।

षष्ठम् श्लोक में है - भगवान महावीर के श्रीमुख से प्रवाहित पावनवाक् गगा ससार के कलिमल को विशुद्ध, निर्मल करने वाली है।

सप्तम श्लोक में है - महावीर ऐसे जिन अर्थात् विजेता है, जिन्होंने अपने ही पुरुषार्थ से विकारों के दलदल को समाप्त करके परम नित्यानद को पाया है।

अष्टम श्लोक में है - भगवान महावीर आधि-व्याधि-उपाधि को समाप्त करने वाले मतिमान् वैद्य है। वे निरपेक्ष भाव से जगत को आनन्द मगल करने वाले एक मात्र शरण्य हैं। ऐसे प्रशस्त भावों से जो भी भक्त भगवत् भक्ति करेगा, भक्ति स्तोत्र का श्रवण करेगा वह निश्चित ही परम पद को प्राप्त करेगा।

भगवान महावीर आध्यात्मिक सूर्य है। उनके द्वारा देशना के ज्योतिस्वरूप प्रकाश की अविरल धारा प्रवाहित होती है। कुछ आत्माएं आत्म बोध पाती है। कुछ नहीं भी पाती है। किन्तु भगवान महावीर न किसी पर प्रसन्न हुए, न किसी पर अप्रसन्न, वे हर स्थिति में तटस्थ है। अखड वीतराग भाव में स्थित है। यह विशुद्ध साक्षी भाव हर साधक के अतर में जागृत हो और वह इस प्रकार स्वरूप-एकत्व भाव में लीन होता हुआ प्रभु चरणों में अभ्यर्थना करता रहे कि अनत साक्षी वीतराग निरजन निर्विकार महावीर मेरे अतर चक्षु में समाहित हो जाए अर्थात् मेरी अन्तस् चेतना में महावीर जैसा ही वीतराग भाव जागृत हो जाए।

महावीर पार्क सामने
चौकड़ी मोदी खाना, जयपुर-3

ज्योति पुंज महावीर से प्राप्त आलोक से जीवन आलोकित करें

✍ सुशीला देवी कासलीवाल

अपना ही नही जन-जन का जीवन आलोकित करे, समता का पाठ पढ़ें, पढ़ायें।

सबके मंगल, कल्याण की कामना कर तन-मन निर्मल करके आत्म ज्योति जगायें।

ज्योर्तिमय महावीर की भक्ति कर स्वयं को ज्योर्तिमय बनायें। बाल, वृद्ध, युवा सबको यह पाठ पढ़ायें।

महावीर की दिगम्बरता से अपरिग्रह का पाठ पढ़ें और जगत में प्रलय मचाती भौतिकता की आँधी को शान्त करें।

निज की/आत्मा की शक्ति को पहिचाने; ज्ञान अनंत, सुख अनंत, हम अजर, अमर है यह जानें।

प्रभु के पाँच नामों को जीवन में सार्थक करें–

) बौने पन से निकले, हम वर्द्धमान बनें

) हम वीर बने, कायर नहीं। आतंकवादी दुष्ट से भयभीत होकर न जीयें, दुर्बल की रक्षा करे।

) चतुर्गति में भटकाते कर्मों को ललकारें, उन्हें उखाड़ फैंकें, हम अतिवीर बनें।

) धर्म, सम्प्रदाय, आधुनिक विज्ञान, भौतिक विकास,देश, काल किसी नाम से मूढ़ न बनें, देखा देखी न कर विवेक की तुला पर बात तोले, सन्मतिं बने।

) कर्म शत्रु से, अपनी विपरीतताओं, अल्पताओं से टक्कर लोहा लें, परमात्म पद पाये, महावीर बनें।

अपनी संतान के जीवन में महावीर के पाँच नामोंको सार्थक करें–

) बालक का गर्भाधान वासना से नही, इस भावना से हो कि वह महावीर बने।

(2) जन्म होने पर बालक को 'शुद्धोसि, बुद्धोसि, निरंजनोसि' की लोरी सुनायें।

(3) सच्ची धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक शिक्षा बालक को दें कि वह तप-त्याग के मार्ग पर चल सके और इस जीवन मे न सही निकट ही आगे कैवल्य प्राप्त करे, सिद्ध परमात्मा बने।

- अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के पॉच अणुव्रत/महाव्रत जीवन में धारण करे।
- चलने में (ईर्या), बोलने में (भाषा), भोजन में (एषणा)उठाने धरने (आदान-प्रदान) और मलमूत्र विसर्जन मे (व्युत्सर्ग) में सावधानी बरतें कि किसी के मन को हम ठेस तो नहीं पहुँचा रहे हैं, छोटे प्राणी को पीड़ा तो नहीं दे रहे हैं।
- ऑख, नाक, कान, जीभ और स्पर्शन इन्द्रियों को वश में करे; हम उनके वश हो कुमार्गगामी न बनें।
- आत्मनिरीक्षण करें कि हम बाह्य सुख दुःख की धूप छाया में उलझे न रह जाये, कि रात-दिन के दौड़ते क्रम मे जीवन यों ही निकल जायें, कि हम मन की आधि, देह की व्याधि में और परिवार धनार्जन आदि रूप उपाधि में उलझे न रह जाये ऊपर उठ सकें।
- हमे जीवन से प्रीति हो, ' जीओ और जीने दो' हमारा महामंत्र हो।
- हम अनेकान्ती बनें, एकाती नहीं। विवक्षित पदार्थ/वस्तु/तत्त्व को उसकी समग्रता में ग्रहण करें, एक पक्ष को पूरी वस्तु न माने।
- हम स्याद्वाद को अंगीकार कर व्यवहार कुशल बने, अपेक्षाधीन नय दृष्टि अपना कर स्व पर

का हित साधन करें।

- हम अपने आनुपूर्वी को सम्यक् करें, पदार्थ को सम्यक् क्रम में ग्रहण करें यथा-

आत्महित को प्रथम स्थान दें, बन सकें तो परहित भी करें। 'सव्वो सुद्धा हु सुद्ध णया', शुद्ध नय की दृष्टि को प्रमुख करें और छोटे बड़े सभी जीवों को त्रिकाल सिद्ध स्वीकार करें। शुद्ध नय की इस स्वच्छ भूमिका में कर्मोदय जनित पर्याय प्रसग से समय समय पर व्यवहार प्रकरणानुसार हो।

अशुद्ध नय को प्रकरण की सीमा न लाँघने दें कि हम सधत्थ सदुरो लोये" को विस्मरण कर दें जड़ चेतन सब पदार्थों से उठते, सिद्धोऽह के नाद को, स्वर्णाक्षरों में लिखे को सुन, पढ़ न सकें। हम जाने कि जिसने मजिल को प्राप्त कर लिया उससे रास्ते के पड़ाव कैसे छूट सकते है, शुद्ध नय आरोहण से प्राप्त महातेज के उजालों के होते कर्मोदय जनित पर्याय के प्रकरण कक्ष कैसे अन्धकार ग्रस्त रह सकते है। अरहता मगलम् का मत्र जपने वाला 'जीवो हि मगल (जीव मात्र मगल स्वरूप है) जप लेता है जीव जीव की कर्म काई को, मिथ्यात्व को गौणकर उनके मगल स्वरूप का दर्शन कर लेता है। पर कर्मोदय का भार वहन करते कुदेव को मगल स्वरूप जपने वाले ने 'अरहता मगलम् नहीं जपा, वह कर्म काई युक्त में मागल्य देख रहा है, जन्म-मरण से मुक्ति प्रदातृत्व देख रहा है

- हम ज्ञान गृह के ज्ञान लोक के नित्य वासी है देह गेह तो कर्मोदय से बन गई है, पराई है, क्षणभगुर है। हम अपने नित्य ज्ञानानन्द के लोक में रमण कर कृतार्थता का सहज वेदन करें तनावों से मुक्त जीयें।

867, लालजी साढ का रास्ता
जयपुर–302 003

ओ मानव !

✍ श्री हजारी लाल बज

ओ मानव !
अपने जीवन का सदुपयोग कर।
जीवन क्या खाना, पीना, रहना सोना, मात्र है?
बार-बार जन्म लेकर तूने यह ही किया
भटकता रहा ससार में।
तू ज्ञान स्वभावी है
क्यों भूलता है अपने आपको ?
पुद्गल के रूप रस गध स्पर्श में
तुझे क्या मिला ?
मिली सिर्फ धूल।
अपने आपको अपने में खोज
तुझे मिलेगा
ज्ञान का अनत प्रकाश
झलझलाता चारों ओर विस्तार पाता
सुख का अनत समुद्र
लहर पर लहर उमड़ाता
शान्ति की अजस्र धारा
अन्तर्बाह्य अशान्ति का ताप मिटाती
बल के महा सुमेरु
जिन्हें देव दानव भी डिगा न पाये
धृति क्षमा मृदुता मैत्री प्रमोद
सभी मिलेंगे तुझको
कितने नाम गिनाये।
महावीर ने पुद्गल का व्यामोह छोड़ा
चेतना के महालोक में
बारह वर्ष रह
इन्हें ही पाया
ओर हो गये जन्म-मरण से मुक्त
शाश्वत सुख के धाम परमात्मा।
तू भी हो जा शाश्वत सुख का धाम।
कौन रोकता है तुझको ?
ओ मानव !

◆

जैन दर्शन का प्राण-अनेकांत

✍ प्रकाश हितैषी, शास्त्री
सम्पादक सनमति सन्देश, दिल्ली

अनेकांत का नाम जैन समाज मे हमेशा प्रचलित रहा है। कुछ समझदार प्राणी अनेकांत का अर्थ समन्वयवाद करते हैं। कुछ लोग कहते हैं- सभी धर्मों में कुछ न कुछ सत्यांश रहता है, अतः सत्यांश को स्वीकार कर लेना अनेकांत है, किन्तु अनेकांत का सत्य स्वरूप विरले ही मनीषी गण समझ पाते हैं।

आचार्य अमृतचंद ने कहा है- एक वस्तुनि तदेवानित्यानित्यमित्येकवस्तु वस्तुत्व निष्पादक परस्पर विरुद्ध शक्ति द्वय प्रकाशनं अनेकांतः।

परिभाषा– प्रत्येक वस्तु में नित्य अनित्य आदि पस्पर विरुद्ध धर्म को प्रकाशित करना अनेकांत है। इस परिभाषा में चार अनिवार्य नियम निकलते हैं, जिनके निर्णय कर लेने पर ही अनेकांत को समझने की दक्षाता प्राप्त होती है। वे नियम है- 1. वस्तु में वे धर्म होना चाहिए। 2. वे वस्तु को सिद्ध करने वाले हों। 3. वे धर्म परस्पर विरुद्ध लगते हों। 4. उनके ज्ञान से भेदविज्ञान प्रगट करने वाला तत्वाज्ञान प्राप्त होना चाहिए।

इन नियमों को जानने वाला ही अनेकांत दर्शन को समझ पाएगा। भारतीय दर्शनो के इतिहास में जैन दर्शन का महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। मनुष्य को विवेकशील होना चाहिए। विवेक के बिना मनुष्य को पशु संज्ञा दी है। आत्मा और अनात्मा की स्वतंत्र सत्ता का ज्ञान होना दर्शन की उपलब्धि है। जिस उपलब्धि प्रयोजन संसार दुःख का निवारण कर शाश्वत शांति प्राप्त करना है। शांतिपूर्वक जीवन जीने की कला प्राप्त हो जाना यही अनेकान्त दर्शन का साध्य है।

वस्तु अनेक धर्मात्मक है

अनेकांत का अर्थ है- वस्तु में अनेकानेक धर्म हैं उनमें कुछ धर्म अविरुद्ध होते है, कुछ धर्म विरुद्ध लगते हैं। इससे यह फलित हुआ कि अनेकांत प्रत्येक वस्तु का स्वभाव है। वस्तु स्वभाव का नाम ही धर्म है। (वत्थु सहावो धम्मो)अतः धर्म प्राप्त करने के लिए अनेकांत के को समझ लेना अतिआवश्यक है। वस्तु के स्वभाव को यथार्थ समझ लेने पर ज्ञान सम्यग्ज्ञान बन जाता है। जिस सम्यग्ज्ञान के बल पर ही मोक्ष मार्ग एवं शाश्वत् शांति की प्राप्ति होती है। जीवन सब प्रकार के दुःखों से छूट जाता है। यथार्थ ज्ञान औरत आत्मिक अतीन्द्रिय सुख का जोड़ा है। ये दोनों ही एक साथ ही उत्पन्न होते हैं। सम्यग्ज्ञान यथार्थ जीवन की एक कला है। सम्यग्ज्ञान अकेला कभी उत्पन्न ही होता है- वह सम्यग्दर्शन और सम्यग्चारित्र को साथ लेकर उत्पन्न नहीं होता है। इस रत्नत्रय की प्राप्ति होती ही मोक्ष मार्ग शाश्वतशांति का मार्ग है।

स्याद्वाद : अनेकांत वस्तु का स्वभाव है तो स्याद्वाद उस अनेकांत को समझाने की शैली है। अनेकांत और स्याद्वाद में वाच्य वाचक संबंध है। अनेकांत वाच्य है, स्याद्वाद वाचक है। स्याद्वाद का दूसरा नाम सप्तभंगी भी है, अर्थात् उस अनेकांत को सात भेदों के द्वारा समझा जा सकता है। वे सात भेद इस प्रकार है-स्याद् अस्ति, स्याद नास्ति, स्याद् अस्ति नास्ति, स्याद् अवक्तव्य, स्याद् अस्ति अवक्तव्य स्याद् नास्ति अवक्तव्य, स्याद् अस्ति नास्ति अवक्तव्य।

इनका भाव इस प्रकार है — प्रत्येक वस्तु अथवा आत्मा अपने चतुष्टय (द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव) से है परचतुष्टय से नहीं है। जैसे जीवजीव है, जीव अजीव नहीं है। ये अस्तिनास्ति धर्म प्रत्येक वस्तु में एक साथ रहते हैं। प्रत्येक वस्तु कभी भी अपने स्वभाव को छोड़कर पर स्वभाव रूप नहीं हो सकती है। क्योंकि प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व गुण उसे अपने स्वरूप में सुरक्षित रखता है। ये दोनों धर्म एक साथ रहकर भी एक साथ कहे नहीं जा सकते, इसलिए अवक्तव्य है। दूसरी बात यह भी है, वस्तु का धर्मवस्तु में है, उस धर्म को हाथ पर रखकर या वचनों द्वारा केसे कह सकते है जैसे कोई कहे कि ज्ञानदर्शन दिखाओ कैसा है, तो वह दिखने की चीज तो है नहीं, मात्र कार्य द्वारा उसे समझा जा सकता है, उसका ज्ञान किया जा सकता है। अथवा, बोले हुए वचनों द्वारा जीव द्रव्य को कैसे दिखाया जा सकता है, वचन तो सकेत मात्र हैं। इसी प्रकार, प्रत्येक धर्म पर से भिन्न है, और अपने से अभिन्न है। वचनो द्वारा उस धर्म का अनुभव तो नहीं कराया जा सकता है। जैसे कोई कहे कि पेट में दर्द है तो वह दर्द कैसा है? वह दर्द दिखाया नहीं जा सकता स्वय अनुभव किया जा सकता है। इसी लिए वस्तु को अस्ति, नास्ति अस्ति नास्ति और अवक्तव्य कहा है। वे धर्म होते हुए भी वचनों द्वारा अनुभव नहीं कराए जा सकते है। वस्तु अनुभव साध्य है, वचन साध्य नहीं है। इस प्रकार स्याद्वाद द्वारा वस्तु स्वरूप को समझा सकता है।

मिथ्या अनेकात — वस्तु सत् ही है, असत् नहीं, ऐसा एक पक्ष स्वीकार करना और दूसरे पक्ष का निषेध करना, यह मिथ्या अनेकात है। स्वामी समतभद्र ने आप्त-मीमासा में कहा है-'निरेपेक्ष नय मिथ्या सापेक्ष वस्तु तेऽर्थकृत।'अर्थात् अकेला कोई भी नय मिथ्या है, सापेक्षनय ही सम्यक् होते हैं। जैसे निश्चय नय और व्यवहारनय सम्यग्ज्ञान का भेद होने से दोनों एक साथ होते है, अकेला न निश्चय नय होता हैं और न व्यवहार नय। अकेला एक नय मानना दूसरे का अभाव मानना मिथ्या नय है। एकातवादी वस्तु के एक धर्म को स्वीकार करने है दूसरे धर्म का निषेध करते है, यह मिथ्या अनेकात है। आप्तमीमासा में कहा है—

सदेव सर्वं को नेच्छत् स्वरुपादि चतुष्टयात्।
असदेव विपर्यासान्न चैन्न व्यवतिष्ठते॥

अर्थात् स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा से सब वस्तुओं को सत् कौन नही मानेगा तथा पर चतुष्टय की अपेक्षा से वस्तु को असत् कौन नहीं मानेगा? जैसे घट का अस्तित्व घट में है, पट में नहीं। पट (वस्त्र) का अस्तित्व पट में है घट में नहीं है।

सप्तभगी का प्रयोग — घट अपनी अपेक्षा से सत् है, पट की अपेक्षा से असत् है, अर्थात् एक सत् में अन्य सत् की नास्ति है, इसमें विरोध की कौन सी बात हैं? विरोध तो तब होता जब जिस दृष्टि से वस्तु सत् है उसी दृष्टि से असत् होती। जैसे बाप की अपेक्षा आदमी बेटा है और बेटे की अपेक्षा बाप है। एक आदमी में अनेक रिस्ते (जैसे मामा भानजा साला बहनोई आदि) हो सकते है किन्तु बिना अपेक्षा से वे रिस्ते सही है, किन्तु बिना अपेक्षा के वह रिस्ते हो ही नहीं सकते। जैसे बाप की अपेक्षा से वह बेटा है किन्तु बाप की अपेक्षा बाप नहीं है। बाप तो वह अपने बेटे की अपेक्षा से कहलायगा।

स्यात् का अर्थ — स्यात् शब्द का अर्थ अपेक्षा है, शायद नहीं। वाद का अर्थ है- कथन करना। अर्थात् अलग अलग अपेक्षाओं से वस्तु का कथन स्याद्वाद

है। व्यावहारिक जीवन में भी स्याद्वाद शैली का प्रयोग होता है। रिश्तेदारी, बड़ा-छोटा, विशेष-सामान्य आदि का आपस में प्रयोग करना सब स्याद्वाद शैली है।

कुछ लोग 'भी' को सम्यक् अनेकांत कहते है तथा 'ही' को मिथ्या अनेकांत बतलाते है, किन्तु यह मान्यता खोटी है। क्योंकि आचार्य समंत भद्र ने स्वयंभू-स्वतोत्र में कहा है-

अनेकांतेऽप्यनेकांतः प्रमाणनय साधनः।
अनेकांतः प्रमाणान्ते तदेकातोऽर्पितानयात्॥

अनेकांत भी अनेकांत रूप है। प्रमाण ज्ञान से अनेकांत का ज्ञान होता है एवं नय से सम्यक् एकांत का ज्ञान होता है। जैसे आत्मा आदि सभी पदार्थ अस्तिनास्ति या नित्या-नित्यात्मक हैं। याने वस्तु अपने चतुष्टय से नित्य है और परचतुष्टय की अपेक्षा नास्ति रूप भी है। यह प्रमाण से अनेकांत का ज्ञान कराया है। अनेकांत में 'भी' का प्रयोग होता है। किन्तु जब नय से वस्तु का कथन करते है तो सम्यक् एकांत का प्रयोग होता है। जैसे द्रव्यदृष्टि से द्रव्य नित्य ही है और पर्याय से अनित्य ही है। यहां सम्यक् एकांत में 'ही' का प्रयोग होता है। किन्तु यह नय दृष्टि में सम्यक् एकांत है।

प्रमाण वस्तु का ज्ञान कराता है किन्तु नय वस्तु स्वरूप का निर्णय कराता है। क्योंकि नय भी सम्यक ज्ञान का ही अंश है। नय ज्ञान के बिना वस्तु स्वरूप का सच्चा निर्णय नहीं हो सकता है।

अनेकांत दर्शन की आवश्यकता— वस्तु के यथार्थ परिज्ञान के लिए अनेकांत दर्शन की महती आवश्यकता है। किसी पदार्थ या व्यावहारिक जीवन की बात को सही सही समझ [illegible] के कारण बड़े-बड़े [illegible] खड़े हो जाते है। जिससे [illegible] [illegible] तो अहित होता ही है, दूसरों पर अपने विचार लादने की वृत्ति बनी रहती है। एकांत दृष्टि कहती है जो मेरा है वह सत्य है किन्तु अनेकात दृष्टि कहती है, जो सत्य है, वह मेरा है। अनेकांतवादी के मस्तिष्क के दरवाजे खुले रहते है। उसमें बाहर की वायु प्रवेश करने की गुंजाइश रहती है, एकांतवादी के दिमाग के दरवाजे बंद हो जाते हैं, जिससे वह अन्य बात सोचने की या निर्णय करने की उसमें चाह ही नहीं उठ सकती है। एकांतवादी विवाद में उलझा रहता है, अनेकांतवादी विवाद को समाप्त कर विसंवाद से दूर रहता है। क्योकि वह जानता है धर्म में विवाद होता ही नहीं और जहां विवाद है वहां धर्म की गंध भी नही रह जाती है। विवाद के स्थान पर वह मध्यस्थ ही रहता है। अनेकांत दर्शन विचारों को परिमार्जित करता है। कहा भी है। कहा भी है, 'अनेकांतमक वस्तु गोचरः सर्वसंविदाम्।' ज्ञानी धर्मात्मा वस्तु का यथार्थ निर्णय कर शांति की छत्रछाया में विश्राम करता हैं, एकांतवादी अत्यंत हठाग्राही एवं कषाय वेष्टित रहता है। उसकी बात न मानने पर वह क्रोधित होकर झुंझला जाता है। इन दोनों मे समता और विषमता का भाव जागृत रहता है। अनेकांत वादी अपने से विरोधी पर दयादृष्टि करता है और चाहता है यह जल्दी सन्मार्ग का पथिक बन जाए। क्योंकि भूला हुआ जीव करुणा का ही पात्र होता है। एकांतवादी विरोधी पर रुष्ट होकर कषाय करता है। अनेकांती के अपने विचार सुलझे हुए है, उसे किसी से उलझने की क्या आवश्यकता है? विवाद वस्तु में है ही नहीं है, विवाद अज्ञान से होता है। [illegible] वस्तु को यथार्थ [illegible] रहा है। उसे विवाद में उलझने को [illegible] [illegible] है? विवाद के समय को वह शांति में प्रयुक्त करता है। ◆

ध्यानोपदेश कोष में धर्मध्यान का वर्णन

आचार्य गुरुदास कृत

अनुवादक ब्र विनोद जैन एव
ब्र अनिल जैन

केवलज्ञान रूपी नेत्रों से, सर्वज्ञ जिन के द्वारा क्रम से आज्ञाविचय अपायविचय, विपाक विचय सस्थान विचय इस प्रकार चार का धर्म ध्यान कहा गया है ॥56॥ त्रिकालगोचर अनत गुणपर्यायों सहित वस्तु तत्त्व को जैसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है उसको वैसा ही हम लोगों को मान्य है, ऐसा विचार करना आज्ञाविचय धर्म ध्यान कहलाता है ॥57॥बन्ध के कारणों को छोड़ कर रत्नत्रय से सहित होकर कर्म रूपी शत्रुओं की सेना को नष्ट करके कब शाश्वत शिव अर्थात् मोक्ष सुख को प्राप्त करूगा ऐसा विचार करना अपाय विचय धर्म ध्यान है ॥58॥ कष्ट की बात है कि आठ कर्म द्रव्य-क्षेत्रादिचतुष्टय को प्राप्त करके प्राणियों को शुभ अशुभ फल को देकर ससार में भटकाते हैं ऐसा विचार करना विपाक विचय धर्म ध्यान है ॥59॥ उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूप जीव अजीव तत्वों से सहित ताड़ वृक्ष के समान आकार वाला अनादिसिद्ध समस्त लोक है ऐसा विचार करना सस्थान विचय धर्मध्यान है ॥60॥ ध्येय वस्तु दो प्रकार की है वह चेतन और अचेतन रूप है सम्पूर्ण दोषों से रहित सकल और निकल परमात्मा ध्येय है ॥61॥क्षीर समुद्र के मध्य में हजार पाखुडी का कमल है उस पर योगी अन्तरग और बाह्य से सदा जागृत निरन्तर अपनी आत्मा को ध्याता हुआ मस्तक पर चन्द्रमा के द्वारा छोड़ी गई अमृत रूपी जल धारा से स्नान किया हुआ, चन्द्रमा की आभा के समान "अर्हं इस बीजाक्षर को मुक्ति के लिये जपे ॥62-63॥ जो मन, वचन एव काय को रोककर एक सौ आठ बार सम्पूर्ण णमोकार मत्र को जपता है वह प्रोषध के फल को प्राप्त करता है ॥64॥ जो अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधुभ्यो नम, मत्र को दो सौ बार, अरहत सिद्ध मत्र को तीन सौ बार अरहत मत्र को 600 बार जपता है और अकार रूप जो परम बीज है उसे 500 बार जपता है वह ही प्रमाद रहित होता हुआ प्रोषध के फल को प्राप्त करता हुआ समीचीन शुद्ध बुद्धि को प्राप्त करता है ॥65-66॥ उस ही णमोकार मत्र के प्रथम पद में सात वर्ण है उन्हें जो एकाग्रमन से हमेशा जाप करता है वह शाश्वत शिवसुख को प्राप्त करता है ॥67॥ अ सि आ उ सा ये विश्वव्यापी बीजाक्षर है इन बीजाक्षरों को जो योगी निरन्तर जपता है उसे सम्यग्ज्ञान रूपी ऋद्धि की प्राप्ति होती है ॥68॥ शरण उत्तम मगल रूप परम मत्र पदों का भी जो पुरुष जाप करता है स्मरण करता है वह मोक्षरूपी लक्ष्मी को वश में कर प्राप्त करता है ॥69॥ शवासन में स्थित अपने ध्यान के अभ्यास से ललाट पर स्थित, निर्मल चन्द्र कला से सुशोभित स्फटिकमणि के समान उज्जवल सुगधित अष्टम पृथ्वी के समान अमृतधारा से सहित 13 अक्षरों वाली महाविद्या को नासिका के अग्रभाग पर ध्यान करता हुआ महाबल अर्थात् अनन्त वीर्य और अखण्डित ज्ञान अर्थात् केवल

ज्ञान की प्राप्ति होती है ॥70-71॥ जो अन्य सर्वलक्ष्य से रहित होकर सब ओर से मन को रोक कर, ॐ अर्हत सिद्ध सयोगकेवली स्वाहा' (13 अक्षर) मंत्र का अभ्यास करता है, वह प्रत्यक्ष विश्व को सम्पूर्ण रूप से देखता है ॥72॥ इस लोक और परलोक के विरोधी सब जीवों की शांति के लिये 'णमो अरहंताणं' इस मंत्र का 108 वार जाप कर आठ पांखुड़ी का कमल मुख मे बनावे उसको आठ वर्गो से भरे अर्थात् पहली पांखुड़ी में चौदह स्वर, दूसरी में कवर्ग, तीसरी मे चवर्ग, चौथी में टवर्ग, पांचती में तवर्ग, छटवी में पवर्ग, सातवीं मे य र ल व, आठवीं में श स ष ह ये आठ वर्ग भरे, पांखड़ी के जो किनारे हैं उसमें प्रत्येक पत्र पर ॐ णमो अरहंताणं अथवा ॐ आदि एक-एक अक्षर लिखे। इस प्रकार मंत्र को न्यास करके फिर ज्ञान की सिद्ध के लिये मंत्र का जाप करे ॥73-74-75॥ तथा योगी कमल की कर्णिका पर आठ वर्गो को ग्रहण कर आकाश की तरफ उठता हुआ "ह्रीं" इस बीजाक्षर का ध्यान करता हुआ आगे कथित विद्या का ध्यान व जाप करे ॥76॥ ह्रीं ॐ ॐ ह्रीं हंसः इस मंत्र का ध्यान करे ॥77॥ ॐ श्री जोग्गे मग्गेतच्चे भूदे भव्वे भविस्से अक्खे पक्खे जिणपारो स्वाहा। ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरहंताणं ह्रीं नमः; वह योगी इस विद्या का ध्यान करता हुआ जाप करे ॥78॥मस्तक मे मुख मे कण्ठ में हृदय में नाभि के बीच में प्रत्येक कमल पर ध्यान मे चन्द्रमा की कलाओं का ध्यान करे ॥79॥ उदित होते हुये सूर्य बिम्ब की कांति के समान प्रभा समूह से देदीप्यमान महान् राग रूप स्नेह को शोषण करता हुआ कर्म समूह को जलाता हुआ स्वय सम्पूर्ण कर्मो को शोषित कर दिया है ऐसे परम पद को ले जाता हुआ सब ओर फैले हुये नाभिकमल मे अकार का, उपर्युक्त कहे हुय अकार के समान ही विशेपताओ से युक्त "ॐ" कार को हृदय मे स्थित कमल पर कण्ठ कन्दल पर स्थित कमल पर 'आ' कार का, सिर पर स्थापित कमल में चन्द्रमा की किरणों के समान आभा वाले सि वर्ण का तथा मुख कमल पर मोती के हार के समान तथा बर्फ के समान सफेद 'सा' वर्ण का ध्यान करे ॥80-81-82-83॥ अपने संवेग और निर्वेद को करने वाले अन्य पद या एक अक्षर का ध्यान करता हुआ योगी ध्यान से च्युत नहीं होता है अर्थात् किसी प्रकार का चिंतवन करते रहने से उसके ध्यान का अभ्यास बना रहता है ॥84॥ वीतराग भाव से युक्त योगी जो कुछ भी चितवन करता है वह ही ध्यान है, इससे अन्य परम्परा से आगत ग्रन्थ विस्तार है ॥85॥ जो प्रमाण, नय और निक्षेपों के द्वारा आत्म तत्त्व को जानता है वह परमात्मा को जानता है तथा परमात्मा को प्राप्त कर लेता है ॥86॥ त्रिकाल विषयक सम्पूर्ण पदार्थो को जानने की शक्ति तो आत्मा और परमात्मा दोनों में है किन्तु साक्षात् शक्ति की व्यक्ति की विवक्षा केवल परमात्मा में है। सामान्य नय से अर्थात् द्रव्यार्थिक नय से परमात्मा तथा आत्मा वास्तव में एक है ॥87॥ पंचकल्याणमय अतिशयों से सहित, नौ क्षायिक लब्धियों से सहित, आठ प्रातिहार्यों से युक्त समवसरण में स्थित जिनेन्द्र भगवान ध्यान करने योग्य है ॥88॥ सम्पूर्ण लक्षण से युक्त । निरा-

मणिमय दर्पण में सक्रामित हुए प्रतिबिम्ब के समान शान्त उन भगवान का चिन्तन करना चाहिए अर्थात् ध्यान करना चाहिए ॥89॥ जो सर्वज्ञ है, सर्वदर्शी है सभी का हित करने वाले है, निर्मल शरीर से रहित व्यय से रहित वीतरागी उत्कृष्ट देव योगियों के ध्यान के गोचर है। साचे में डाला हुआ मोम जिस प्रकार साचे के आकार का होता है उसी प्रकार जिस आकार अर्थात् शरीर से मोक्ष जाते है उस शरीर के आकार प्रमाण सिद्धों की आत्मा रहती है। इस प्रकार उनका ध्यान करना चाहिए॥90-91॥ सिद्धो में लीन है मन जिसका ऐसे जीव को निश्चय से वही अनन्य शरण है। उन सिद्ध के गुणों का विचार करने से विचार करने वाला आत्म-गुणों से तन्मय होता हुआ स्वय सिद्ध रूप हो जाता है ॥92॥ भव्य जीव परमात्मा और उनके गुणों के समूह में अपनी आत्मा को लगावे ऐसी भावना से भावित भव्य सिद्धों के स्वरूप को प्राप्त करता है॥93॥ सिद्ध भगवान त्रिकाल गोचर अनन्त गुणपर्यायों से सहित अनादिनिधन अमूर्तिक असख्यात प्रदेशी है। निष्कल परमात्मा लोकलोक के ज्ञाता विश्व व्यापी स्वभाव में अवस्थित, विकार से रहित है। ठीक इसी प्रकार शुद्ध नय से मेरा भी स्वरूप है अर्थात् ध्याता जब शुद्ध नय की अपेक्षा से विचार करता है तो सिद्धों के समान-ही आत्म स्वरूप का चिन्तन करता है ॥94-95॥ इस प्रकार ऐसे पुरूषकार परमात्मा का अपने शरीर के भीतर स्थित प्रकाशमान होता हुआ शुद्ध स्वभाव को प्राप्त परमात्मा का ही हमेशा ध्यान करना चाहिए॥96॥ इस प्रकार शुद्ध नय का आलम्बन लेने वाला ध्याता सम्पूर्ण आश्रवों को रोक महा सवर से युक्त होता हुआ कर्म वन को नष्ट करे॥97॥

वज्रवृषभ नाराच आदि उत्तम सहनन को प्राप्त करके ध्यानी मुनि जब योग प्रारम्भ करता है तब निश्चल मन को सम्यक् प्रकार से रोकने में समर्थ होता है॥115॥ उपर्युक्त योगी देह के छिन्न-भिन्न होने अथवा नष्ट होने पर अथवा जल जाने पर अपने को दूर में स्थित व्यक्ति के समान देखता हुआ वर्षा, तूफान आदि दुखों के द्वारा भी कपायमान नहीं होता है॥116॥ ध्यान में स्थित योगी न देखता है न कुछ सुनता है, न कुछ सूघता है, बाह्य पदार्थों को ना ही जानता है, अत साक्षात् लेप रहित मूर्ति के समान प्रतीत होता है॥117॥ सम्यग्दृष्टि आदि असख्यात गुण श्रेणी निर्जरा के प्रगट हो जाने से किया है आत्म स्वभाव को जिसने एसो योगी ध्यान के बल से ही असख्यात गुणी कर्मों की निर्जरा करता हुआ कषायों के उपशमन से सुख और साथ में ज्ञानादि वैभव को प्राप्त करता है॥118-119॥ पुन वह ध्यानी आत्मा परलोक में जहॉ पर उदित होते हुए पूर्ण चन्द्रमा के समान बढती हुई सम्पत्ति है यथा अणिमामहिमा आदि अमूल्य गुण रत्नों से समूह से व्याप्त है ऐसे स्वर्ग सागर में सुख रूपी अमृत को भोगता हुआ बीते हुए काल को नहीं जानता है॥120-121॥ वहाँ से अर्थात् स्वर्ग से च्युत होकर पृथ्वी पर तीर्थकर आदि सम्पत्ति को भोगकर शुक्ल ध्यान रूपी अमृत को पीकर अजर अमर पद को प्राप्त करता है॥122॥



शुद्धि-पत्र

प्रथम खण्ड

क्र.स	पृ.स	परा	पक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
1.	4	1	14	. .	"स्वर्ग से करता रहा" तक की 8 पक्तियो को इसी पृष्ठ पर पैरा दो के बाद पढे।
2	4	3	1	अधोयानियो	अधोयोनियो
3	7	3	6	बना है	हुआ
4	16	2	4	नही	X
5	17	2	4	आप	अप्प
6	21	3	6	अनुकरण	X
7.	41			(कोष्ठक मे गीत के रचनाकार) मुनि उत्तम सागर	
8	47	2	8	भुतेषु	दारेषु
9	48	3	1	जिनासु	जिज्ञासु
10	49	1	4	23	13
11	49	2	3	इन्द्र	इन्द्रने
12	50	2	1	ब्रह्मतारम्भ	ब्रह्वारम्भ
13	53	1	14	यद्यपि	X
14.	55	कविता	3	मुझे	न मुझे
15.	55	कविता	3	तेरी	मेरी
16	55	कविता	10	जे देठो	आ बैठा
17.	55	कविता	11	नयनो	चरणों
18.	59	कविता	छन्द की पक्ति	पद्मलिग के आगे	ण दण्ड लिंग भी पढे
19	64	1	16	Interdiscingi ...	Interdiscipl . . .
20	69	5	5	दीप	जीव
21	69	6	9	महावीर (के आगे)	परमात्मा को भी पढे
22	70	3	4	छवित्र	[illegible]
23.	71	2	10	समाज	समाज को
24	72	4	20	को	[illegible]
25	75	3	8	[illegible]	[illegible]
26	76	2	10	[illegible]	[illegible]
[illegible]	79	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	1	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	3	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	1	5	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

क्र स	पृ स	पैरा	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
33	84	3	8	ताक्षत्मय	तादात्म्य
34	86	3	6	साधकत	साधकतम
35	87	3	5	वह	वह न
36	88	1	13	या परिपोषक	X
37	88	2	1	प्राणतिया	प्राणातिपात
38	89	1	10	त्रयग्रस्त	भयग्रस्त
39	90	1	3	व्य	व्यवहार
40	90	1	7	अनी	अपनी
41	90	अन्तिम	4	उन्मुख	उन्मुक्त
42	92	3	6	चित्राकर्षक	चित्ताकर्षक
43	92	8	6	भरही	भरी
44	95	1	10	चगाण	चरण
45	95	1	12	आदोग्ग	आरोग्ग
46	95	4	8	पुनभक्ति	पुनरुक्ति

द्वितीय खण्ड

47		3	22	सूघ कृताग	सूत्र कृताग

चतुर्थ खण्ड

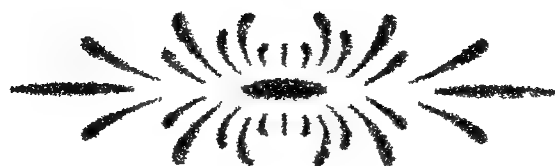
48	25			तीर्थकर के छियालीस गणु मे	
49			5	भोजन	योजन
50			6	सुहोभ	सुहोय
51			11	कटक विन	कटक
52			अतिम	गुण	X
53				घाट	घार
54				लहेत	लहते
55	42	तीर्थकर महावीर का वैराग्य चिन्तन			
	आ ज्ञानसागर कृत वीरोदय काव्य के दशम सर्ग से उद्धृत।				

खण्ड 5

56	15	3	1	Hastoa	Has to go to a
57	15	अन्तिम	3	ज्ञान	ज्ञानी
58	15	11	6	अचे	बचे
59	16	प्रथम	2	सुजन	सृजन
60	16			वसतुत	वस्तुत
61	16			असुवधि	असुविधा
62	16			पआवम्मा	पद्मावत्थम्मा
63	16			अनवाद	अनुवाद
64	दूसरा		4	दीप	दीर्घ

द्वितीय खण्ड

साहित्य चर्चा



मथुरा का सुप्रसिद्ध सरस्वती आन्दोलन और उसका प्रभाव

✍ डॉ. फूलचन्द जैन 'प्रेमी'

जैन-परम्परा में लगभग दो हजार वर्ष पूर्व मथुरा का "सरस्वती आन्दोलन" विश्व इतिहास की एक ऐसी अद्भुत घटना है, जिसकी मिसाल अन्यत्र दुर्लभ है। यह कोई बीसवी शती के राजनैतिक आन्दोलनों जैसा आन्दोलन नहीं था, अपितु श्रुतज्ञान की धारा को अविच्छिन्न बनाये रखने, उसके संरक्षण एवं प्रचार-प्रसार के प्रति आचार्यों, विद्वानों एवं तत्कालीन विशाल जनसमुदाय की जागरूकता, प्रगतिशीलता, समर्पण एवं आस्था का प्रतीक आन्दोलन था जिसने इस श्रुत-सत्पदा की रक्षा के लिए एक क्रान्ति की और इसी की प्रतिबद्धता का जीता-जागता उदाहरण माँ जिनवाणी, श्रुतदेवी स्वरूपा पुस्तक (शास्त्र) धारिणी सरस्वती देवी की प्रतिमायें बनवाकर प्रतिष्ठित की और ज्ञान की इस देवी को अपने आन्दोलन की अधिष्ठात्री बनाया। मथुरा के जैन साधु ही इस क्रान्ति रूप आन्दोलन के पुरस्कर्ता, प्रवर्तक एवं आद्यवेत्ता थे, जिन्होंने मूर्तियाँ, अन्यान्य स्मारक, विविध कलाकृतियाँ बनवाकर उन पर शिलालेख का अंकन प्रारम्भ करके इस आन्दोलन को सक्रिय किया। यदि मथुरा के उस कंकाली टीले के उत्खनन से सन् 132 की शिलालेखयुक्त जैन सरस्वती की यह मूर्ति न मिलती, तो सम्भवतः सारस्वत अभियान स्वरूप इस महान् और प्रथम सरस्वती आन्दोलन की अद्भुत घटना का विश्व को पता ही नहीं चलता।

मूर्तांकन रूप में शिलालेख एवं लिपि के उल्लेख-सहित भारत की सर्वाधिक प्राचीन सरस्वती की मूर्ति का निर्माण एवं प्रतिष्ठित करने का प्रथम श्रेय मथुरा को प्राप्त है।

कर्मभूमि के मानवों को राजा ऋषभदेव ने, जब वे गृहस्थ थे और प्रजानायक भी, तब जीविकोपार्जनार्थ तथा अन्य व्यवहार निर्वहन हेतु पुरुषार्थ पर आधारित सभ्यता के प्रथम पाठ पढ़ाये, जीवन जीने की कला सिखालाई एवं भाषा-लिपि एवं अंकगणित सहित सभ्यता और संस्कृति से संबंधित सभी 64 कलाओं का आविष्कार कर मानव समाज के हितार्थ प्रदान किया।

वस्तुतः वर्तमान अवसर्पिणी महाकाल खण्ड के तीसरे आरे की समाप्ति में जब एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व, तीन वर्ष आठ महीने पन्द्रह दिन शेष थे, तब फाल्गुन कृष्णा एकादशी को इस देश में प्रथम बार श्रुतावतरण हुआ था। आदि तीर्थङ्कर ऋषभदेव ने सभी जीवों के कल्याणार्थ प्रथम दिव्य देशना दी और धर्मचक्र का प्रथम बार प्रवर्तन हुआ।

जब से प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव ने सर्वोच्चज्ञान केवलज्ञान प्राप्त करके तीर्थङ्कर के रूप में प्रथम दिव्य ध्वनि के माध्यम से श्रुतावतरण का श्रेय प्राप्त किया तभी से श्रुतज्ञान की अजस्र गंगा प्रवहमान होती चली आ रही है। यद्यपि कालदोष तथा अन्य परिस्थितियों के कारण इसकी धारा बीच-बीच में थोड़ी-बहुत मलिन भी हुई, साथ ही अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर सहित तेईस तीर्थङ्करों ने सभी अपने-अपने समय की परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुसार इसका संवर्धन-संशोधन भी किया। इसी

श्रुतधारा के अन्तिम शोधक-प्रस्तोता अन्तिम तीर्थङ्कर श्रमण भगवान महावीर थे, जिन्होंने केवलज्ञान प्राप्ति के बाद श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को 557 वर्ष ईसा पूर्व पञ्चशैल राजगृह नगरी के विपुलाचल पर्वता पर अपनी प्रथम देशना (धर्मोपदेश) दिव्यध्वनि के माध्यम से देकर धर्मचक्र का प्रवर्तन किया। इनके प्रमुख शिष्य इन्द्रभूति आदि ग्यारह गणधरों ने इस दिव्यध्वनि को अर्थरूप ग्रहण कर, उसे शब्दों में गुम्फित किया और उसे द्वादशाङ्ग 'श्रुत' का रूप दिया। इसी ज्ञानामृत रूप द्वादशाङ्ग श्रुतधारा के सरक्षण की चिन्ता के कारण मथुरा के जैन साधु समुदाय ने सम्पूर्ण प्रजाजनों को साथ मिलाकर ''सरस्वती-आन्दोलन' के लिये प्रेरित किया और इसकी अधिष्ठात्री शास्त्रधारिणी देवी 'सरस्वती' की मूर्ति प्रतिष्ठित करके सम्पूर्ण देश में क्रान्ति और जागृति पैदा की।

वस्तुत श्रुतावतरण के समय भी गौतमादि गणधरदेवों द्वारा श्रुत गुम्फन के बावजूद इन्हें लिपिबद्ध करने की अपेक्षा पूर्व परम्परा के अनुसार इस श्रुत सम्पदा को गुरु-शिष्य परम्परा विधि द्वारा कण्ठस्थ विधि से इसे धारण करते हुए अगले छह सौ वर्षो तक सरक्षित रखने का पूरा प्रयास हमारे पूज्य आचार्यों ने प्राणपण से किया। इस प्रयास का यह फल भी सामने आया कि इससे आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग स्थानाङ्ग, समवायाङ्ग व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती), ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अन्त कृद्दशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण, विपाकश्रुत और दृष्टिवाद-इस द्वादशाङ्ग श्रुत का निर्दोष सरक्षण तीर्थङ्कर महावीर निर्वाण के 162 वर्ष बाद तक ही सम्भव हो सका। अन्तिम श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु स्वामी के बाद प्रज्ञावान् वाग्मनीषी आचार्यों के अभाव के साथ ही स्मृतिक्षीणता के लक्षण और उदाहरण जब सामने आने लगे तब हमारे आचार्यों को यह श्रुतज्ञान लम्बे समय तक सुरक्षित रखने की चिन्ता हुई, किन्तु उन श्रुतधराचार्यों के अभाव और स्मृतिक्षीणता के कारण उस सम्पूर्ण मूल श्रुत का बहुभाग क्षत-विक्षत और विलुप्त होता चला गया और विवेकशील आचार्यों को श्रुत के उस भाग को विलुप्त घोषित करना पड़ा और साथ ही अवशिष्ट ज्ञान को वाचना के माध्यम से सुरक्षित करने का पूरा प्रयास करके हमारे आचार्यों ने सरस्वती आन्दोलन जैसे जागृतिपूर्ण आन्दोलनों के माध्यम से अवशिष्ट श्रुत की रक्षा की।

आगम वाचनायें और सरस्वती आन्दोलन

इसका प्रभाव यह हुआ कि द्वादशाङ्ग श्रुत के अवशिष्ट अशों के एकदेश ज्ञाता श्रुतधर आचार्यों की अक्षुण्ण-परम्परा ईसा की पहली-दूसरी शताब्दि तक तो अवश्य ही चलती रही। इसी आन्दोलन की यह देन है कि हमारे तत्कालीन प्रज्ञावान् आचार्यों को अपनी गुरु-शिष्य परम्परा से प्राप्त श्रुताशों को भी भविष्य में स्मृति क्षीणता एव कालदोष से बचाने के लिए उस श्रुतज्ञान को ग्रन्थारूढ (शास्त्रबद्ध) करना अर्थात् ग्रन्थों के रूप में निबद्ध करना प्रारम्भ करना पड़ा। सुप्रसिद्ध "माथुरी वाचना" इसी सरस्वती आन्दोलन की देन है।

यद्यपि इसके पूर्व पाटलिपुत्र वाचना महावीर निर्वाण के 160 वर्ष बाद स्थूलभद्राचार्य की अध्यक्षता में हो चुकी थी, जिसमें उपस्थित श्रुतधरों की स्मृति के आधार पर ग्यारह अगों का सङ्कलन किया गया था। दृष्टिवाद नामक बारहवें अङ्ग का ज्ञान उपस्थित

श्रुतधरों में से किसी को न होने के कारण उसे सङ्कलित नहीं किया जा सका। डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री के अनुसार[1] जैन मुनियो की अपरिग्रहवृत्ति, वर्षाकाल को छोड़ शेष समय में निरन्तर परिभ्रमण एवं उस काल की अन्य कठिनाईयों के कारण यह अङ्गज्ञान पुनः छिन्न-भिन्न होने लगा।

इधर मगध में मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात् जैन मुनियों का मगध से स्थानान्तरित होना तथा जैनधर्म के केन्द्र का वहाँ से टूट जाना स्वाभाविक ही था। अतः जैनधर्म का केन्द्र मगध से हटने के पश्चात् मथुरा ही बना। कुषाणवंशी राजाओ के समय जैनधर्म की पर्याप्त उन्नति हुई। अतः वीर निर्वाण के 827-840 वर्ष के मध्य मथुरा में मुनिसंघ का सम्मेलन बुलाया गया और उन्ही ग्यारह अङ्गों को पुनः एक बार व्यवस्थित करने का प्रयत्न किया गया। कहा जाता है कि उस समय भी बारह वर्ष का भयङ्कर दुर्भिक्ष पड़ा था, जिससे बहुत-सा श्रुत नष्ट तथा विच्छिन्न हो गया था। फिर भी इस माथुरी वाचना में सङ्कलित और व्यवस्थित सिद्धान्तो को मान्यता प्रदान की गयी।

इस तरह भारतदेश के पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण तक समय-समय पर आचार्यों के सम्मेलन बुलाकर उन्हें परम्परा से प्राप्त श्रुत को निबद्ध करने के उद्देश्य से देश के विभिन्न क्षेत्रों मे वाचनाओं का आयोजन इस सरस्वती आन्दोलन के कारण सम्पन्न हुआ। पाटलिपुत्र वाचना, वलभी वाचना तथा अन्यान्य अज्ञात वाचनाओं के माध्यम से श्रुत-संरक्षण के प्रयास किये गये। अब से दो हजार से भी अधिक वर्ष पूर्व कलिंग सम्राट खारवेल ने भी इसी सरस्वती आन्दोलन से प्रभावित हो [illegible] राजधानी भुवनेश्वर के पास उदयगिरि खण्डगिरि में एक बृहद् श्रमण सम्मेलन के आयोजन का करके इसी तरह के प्रयास का एक प्रमुख और ऐतिहासिक श्रुतज्ञान सरक्षण के महान कार्य का निर्वहन किया। जिसका उल्लेख पूर्व की प्रथम शती मे उत्कीण हाथी गुम्फा के प्राकृत भाषा और बाह्मी लिपि वाले बृहद् लेख में मिलता है।

बलभी और वर्तमान अर्धमागधी आगम

यद्यपि श्वेताम्बर जैन-परम्परा मान्य अन्तिम वाचना वी नि सं. 980 मे देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के नेतृत्व मे बलभी नगर में आयोजित हुई। इस सम्मेलन में विविध पाठान्तर और वाचना भेद का समन्वय करके माथुरी वाचना के आधार पर आगमो को सङ्कलित कर लिपिबद्ध किया गया। जिन पाठो का समन्वय नहीं हो सका, उसका "वायणांतरे पुण" "नागार्जुनीयास्तु एवं वदन्ति" इत्यादि रूप से उल्लेख किया गया। श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा मान्य वर्तमान आगम इसी सङ्कलना के परिणाम हैं।' इसी वाचना के परिणामस्वरूप श्वेताम्बर-परम्परा मे अब तक अर्धमागधी प्राकृत भाषा में 45 आगम विद्यमान है। इनमें 11अङ्ग, 12 उपाङ्ग, 6 छेदसूत्र, 4 मूलसूत्र, 10 प्रकीर्णक और दो चूलिका है। यह अलग बात है कि वर्तमान श्वेताम्बर सम्प्रदाय की तीनों परम्पराओं में इन 45 आगमो की मान्यता के सम्बन्ध मे भी अन्तर है। आश्चर्य यह है कि दिगम्बर जैन-परम्परा में प्रसिद्ध आचार्य शिवार्य द्वारा रचित एव आ. अपराजित सूरि की विजयोदया टीका से विभूषित "भगवती आराधना" जैसे महान् ग्रन्थ मे [illegible] आदि कुछ आगमो के [illegible]

अर्धमागधी आगम के उन ग्रथों में नहीं है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि बलभी वाचना के पूर्व की माथुरी आदि वाचना के वे अश आज भी भगवती आराधना आदि में उपलब्ध है, जो विभाजन के पूर्व के थे।

शौरसेनी आगम का पुस्तकारूढ होना

मथुरा के उस सरस्वती आन्दोलन का प्रभाव धीरे-धीरे पूरे देश में बढ़ता ही गया और हमारे प्रज्ञावान् आचार्यों को श्रुत-परम्परा से प्राप्त श्रुतांशों को भी भविष्य में स्मृति-क्षीणता एव कालदोष के प्रभाव से बचाने की चिन्ता से उन्हें ग्रथों के रूप में निबद्ध करने का अभियान शुभारम्भ करने की इच्छा हुई, क्योंकि उन्होंने देखा कि अब तक अङ्गों और पूर्वों के पूर्ण ज्ञाता आचार्यों का अभाव हो गया है। मात्र इनके एकदेश ज्ञान के धारक आचार्य ही बचे थे। इनमें आचार्य धरसेन स्वामी प्रमुख थे, जो गिरिनार पर्वत (काठियावाड़ गुजरात) की चन्द्रगुफा मे ध्यान साधना में लीन थे, किन्तु जब इन्होंने अपना आयुष्य कुछ ही काल शेष जाना तब उन्हें सर्वाधिक चिन्ता हुई कि कहीं मेरी आयु की समाप्ति के साथ ही यह अङ्ग और पूर्वों का अवशिष्ट एकेदश ज्ञान समाप्त न हो जाए अत अपनी आयु के अवशिष्ट कुछ ही दिनों में उस ज्ञान की वाचना योग्य शिष्यों को देकर उन्हें पुस्तकारूढ करा देने का विकल्प उनके मन में आया। इसके लिए उन्होंने दक्षिणापथ के महिमा नगरी में विहार कर रहे विशाल श्रमणसघ को इस आशय का एक सन्देश लिखकर पत्र भिजवाया।

आचार्य धरसेन जैसे प्रज्ञावान् श्रुतधर वरिष्ठ आचार्य का पत्र पाते ही स्थिति की गम्भीरता को समझते हुए दक्षिणापथ के उस सघ ने भी शीघ्र ही योग्यतम मुनियों को गिरिनगर की ओर प्रस्थान कराया। विकट लम्बे रास्तों पर निरन्तर पैदल विहार करते हुए, अनेक उपसर्ग और परिषहों की चिन्ता किये बिना मात्र श्रुतरक्षा के एक ही लक्ष्य को केन्द्र में रखकर वे दोनों मुनि गिरनार पहुँचे। जिस दिन ये दोनों साधु आचार्य धरसेन के चरण सान्निध्य में पहुँचने वाले थे, उस दिन की पिछली रात्रि में आये स्वप्न में आचार्य धरसने ने कुन्दपुष्प, चन्द्रमा और शङ्ख के समान श्वेत वर्ण वाले हृष्ट-पुष्ट दो बैलों को अपने चरणों में प्रणाम करते हुए देखा। ऐसे सुखद स्वप्न को देखकर आचार्य श्री मन ही मन अत्यन्त प्रमुदित और आश्वस्त हुए। उन्होंने इस स्वप्न के फलितार्थ में यही सोचा कि अब इस आगम रूप रथ को आगे बढ़ाकर गतिमान रखने वाले समर्थ शिष्य निश्चित ही मिलेंगे। ऐसा सोचते ही उनके मुख से निकला- "जयउ सुय-देवदा " अर्थात् "समस्त जीवों का कल्याण करने वाली श्रुतदेवी जिनवाणी जयवन्त रहे।"

जब आचार्य धरसेनस्वामी के चरण सान्निध्य में विनयपूर्वक ये दोनों शिष्य उपस्थित हुए और निमित्तज्ञानी एव योगी आचार्य धरसेन ने इनके तेजस्वी मुख को देखा तो अत्यन्त प्रमुदित हो चिन्तामुक्त हो गये।

यद्यपि सरस्वती के अवतार रूप इन दोनों शिष्यों की विद्वत्ता तपस्या, विनयशीलता और सयम साधना की तेजस्विता और सामर्थ्य को वे समझ गये थे, फिर भी उन्होंने उनकी सब तरह से परीक्षा ली और उसमें पूरी तरह सफल होने पर पुष्पदन्त और भूतबलि नाम प्राप्त मुनिद्वय को अत्यन्त शुभ मुहूर्त में आचार्य धरसेन ने द्वादशाङ्ग श्रुत के बारहवें और अन्तिम अङ्ग दृष्टिवाद में समाहित अग्रायणी पूर्व की

चयनलब्धि-अधिकार से कम्मपयडिपाहुड की वाचना देना प्रारम्भ किया।

अद्‌भुत प्रतिभाशाली इन दोनों शिष्यों ने प्रदत्त इस श्रुतज्ञान को अमृत समझ शीघ्र ही धारण कर लिया। यह अध्ययन-अध्यापन का कार्य आषाढ़ शुक्ला 15 के दिन पूर्ण हुआ। वे दोनों मुनि इस आगम ज्ञान के पूर्ण पारङ्गत हो गये, तब आचार्य धरसेन सर्वाधिक निश्चिन्त्य हो गये। अपना अन्तिम समय जान आत्मकल्याण की निर्विघ्न पूर्णाहुति हेतु आचार्य धरसेन ने ध्यान साधना मे लीन होने से पहले अपने अन्तर्मन में यह देखा कि कहीं इन दोनों शिष्यों के प्रति गाढ़ अनुराग मेरी साधना में बाधक न बने, अतः उन्हें यथायोग्य उपदेश देकर दूसरे ही दिन वहाँ से अन्यत्र विहार करने का आदेश दिया। पुष्पदन्त और भूतबलि नामक ये दोनों साधु गुरु-आज्ञा को शिरोधार्य कर वहाँ से विहार कर अंकलेश्वर पधारे और वहाँ चातुर्मास का निश्चय किया। अनुकूल क्षेत्र-काल समझ वे दोनो साधु आचार्य गुरुदेव से प्राप्त इस आगम ज्ञान को लिपिबद्ध करने में तल्लीन हो गये।

दिगम्बर परम्परानुसार इस षट्‌खण्डागम रूप आगमज्ञान को सर्वप्रथम लिपिबद्ध और पुस्तकारूढ़ करने का श्रेय इन्हीं दोनों आचार्य पुष्पदन्त-भूतबलि को दिया जाता है। जिस दिन वे आगम रूप शास्त्र पूर्णरूप से पुस्तकारूढ़ हुए वह पवित्र दिन ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमी था, जो कि आगे चलकर श्रुतपञ्चमी और ज्ञानपञ्चमी पर्व नाम से विख्यात हुआ। [illegible] ने इस शुभ दिन को श्रुतावतरण की [illegible] दी और इस तरह यह दिन भी [illegible] आन्दोलन को आगे बढ़ाने वाला [illegible] और सदा के लिए यादगार दिन बन गया।

आचार्य धरसेन स्वामी से प्राप्त इस आगमज्ञानांश को "षट्‌खण्डागम" नाम से पुस्तकारूढ़ करने का श्रेय प्राप्त करने वाले आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलि के इस महान् सिद्धान्त ग्रंथ को दिगम्बर परम्परा में सर्वोपरि महत्ता और पूज्यता प्राप्त है। इस ग्रंथ के छह खण्डों के तलस्पर्शी ज्ञानार्जन को चक्रवर्ती के छहखण्ड पृथ्वीविजय करने के समान दुष्कर माना गया हैं इसी कारण आगे चलकर दसवीं शती के महान्‌आचार्य नेमिचन्द्र इस महान् ग्रन्थ के अध्येता बनकर इसके सारभूत ग्रंथ गोम्मटसार की रचना करके सिद्धान्त-चक्रवर्ति कहलाये।

षट्‌खण्डागम के द्वारा आगमज्ञान पुस्तकारूढ़ होने का मार्ग प्रशस्त हो जाने के बाद पुस्तकारूढ़ करने की जो गङ्गा प्रवाहित हुई उसमें शताधिक आचार्यों ने अपने ज्ञान और अनुभव से अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया। आचार्य गुणधर रचित कसायपाहुड की गणना भी इसी शौरसेनी आगमज्ञान की यथार्थ-परम्परा के अन्तर्गत गौरवपूर्ण आगम ग्रंथ के रूप में की जाती है। षट्‌खण्डागम और कसायपाहुड इन दोनों ही सिद्धान्त-ग्रंथों पर आगे चलकर आचार्य वीरसेन और आचार्य जिनसेन ने मिलकर क्रमशः धवला और जयधवला नाम से विशाल टीकायें लिखीं।

लगभग पहली शताब्दी के ही आसपास आचार्य शिवार्य ने भगवती आराधना, आचार्य वट्टकेर ने मूलाचार तथा आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने पञ्चास्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार, नियमसार, अष्टपाहुड, बारस अणुवेक्खा, रयणसार आदि ग्रंथों का प्रणयन कर इस श्रुतज्ञान की धारा को [illegible] प्रदान की। इसके बाद भी आगम ज्ञान के आधार पर

आचार्य समन्तभद्र, सिद्धसेन आदि आचार्यों की विशाल परम्परा ने इस आन्दोलन की धारा इतनी तेज गति से प्रवाहित की, जिसका साक्षात् प्रमाण आचार्यों द्वारा प्रणीत विशाल वाडमय की वर्तमान में उपलब्धता है। इतना ही नहीं जैनधर्म की दिगम्बर और श्वेताम्बर इन दोनों परम्पराओं में इस सरस्वती आन्दोलन का इस तरह गहरा प्रभाव हुआ कि प्राकृत भाषा के साथ-साथ सस्कृत, अपभ्रश तथा अन्यान्य सभी प्रान्तीय और क्षेत्रीय भाषाओं में प्रथमानुयोग, करणानुयोग, द्रव्यानुयोग और चरणानुयोग-इन चारों अनुयोगों के सभी विषयों पर अगणित शास्त्रों के प्रणयन की अबाध परम्परा से जो सरस्वती आन्दोलन गतिमान होता रहा, वह अब भी इस इक्कीसवीं शती में निरन्तर प्रवहमान हे।

सरस्वती आन्दोलन की प्रतीक सरस्वती के मूर्ताङ्कन का शुभारम्भ

पूर्वोक्त वृतान्त तो सरस्वती आन्दोलन से आन्दोलित हो आचार्यों द्वारा सरस्वतीरूपी ज्ञान गङ्गा के प्रवाह रूप शास्त्र-प्रणयन का है। उधर ई सन् 132 की अब तक सर्वाधिक प्राचीन शिलालेख वाली उक्त सरस्वती की मूर्ति, जो कि मथुरा के ककाली टीले के उत्खनन से प्राप्त हुई वह इस सरस्वती आन्दोलन की प्रतीक थी। सरस्वती के इस मूर्ताङ्कन के शुभारम्भ के साथ ही देश में सर्वत्र सरस्वती की मूर्तियों के निर्माण का भी अभियान चल पड़ा।

इसी क्रम में स्थापत्यकला से भरपूर देश के अनेक उत्कृष्ट प्राचीन जैन मन्दिरों में विभिन्न लक्षणों एव मुद्राओं में प्राचीन से प्राचीन और अर्वाचीन से अर्वाचीन सरस्वती की कलात्मक रूप में सुन्दर स्वतन्त्र एव परिकरयुक्त मूर्तियाँ देखने को मिलती है। पल्लू (बीकानेर) से प्राप्त सरस्वती की दोनो सुन्दर मूर्तियाँ बहुत ही प्रसिद्ध हैं। इनमें से एक मूर्ति बीकानेर के पुरातत्त्व सग्रहालय में तथा दूसरी राष्ट्रीय सग्रहालय दिल्ली में सग्रहीत हैं।

एक बहुत ही अशितय भाव भगिमाओं युक्त सुन्दर, किन्तु कम प्रसिद्ध श्वेत पाषाण की खड्गासन मुद्रा में कलापूर्ण सरस्वती की मूर्ति राजस्थान में नागौर जिले के लाडनूँ नगर के दिगम्बर जैन प्राचीन बड़े मन्दिर में परिकर सहित स्थापित है, जो कलात्मकता भव्यता एव सौम्यता आदि गुणों से युक्त अद्वितीय मूर्ति है। यह बारहवीं शती के मध्यकाल की है, किन्तु ज्ञान और शिल्प को प्रभावी सौन्दर्य की एक गहरी सवेदना से मिश्रित यह मूर्ति दर्शकों को स्वय ही आकर्षित कर लेती है।

वस्तुत भारतीय कला धार्मिकता से ओत-प्रोत है। उसमें आध्यात्मिकता की गहरी छाप है। श्रेष्ठ मूर्तियों के जितने उदाहरण देखते हैं, सभी में एक पवित्र लावण्य और निर्मलधारा प्रवाहित होती दिखाई देती है। यही कारण हैं कि जब कभी भारतीय शिल्पकारों ने नारी को अपने शिल्प का विषय बनाया तब अधिकतर उसे माँ के रूप में प्रदर्शित किया। यही कारण है कि भारतीय देवियों में सरस्वती को सदा माता का सच्चा स्वरूप प्रदान किया जाता है। इसीलिए जैनधर्म में जिनवाणी, वाग्देवी तथा श्रुतदेवता के रूप में सरस्वती की मान्यता प्राचीन काल से ही प्रचलित है। आगमिक ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी के रूप में जिनवाणी स्वरूपा सरस्वती को उसका प्रतीक बनाया गया और उसकी उपासना प्रारम्भ हुई। पवित्र आगमिक ज्ञान को प्रतीकात्मक रूप देने के लिए श्रुतदेवी या ज्ञानदेवी सरस्वती की प्रतिमाओं के

निर्माण का सर्वप्रथम प्रारम्भ ईसा पूर्व की दूसरी शती में मथुरा के इसी सरस्वती आन्दोलन से दिखलाई देता है। यही कारण है कि आज अनेक कलापूर्ण सरस्वती की प्रसिद्ध मूर्तियाँ देश के जैन मन्दिरों की दीवालों पर अथवा स्तम्भ में विराजित है। सरस्वती के मूर्तांकन की परम्परा मात्र जैन तक ही सीमित नहीं रही, अपितु सरस्वती के विभिन्न रूपों के मूर्तांकन की परम्परा भारत की अनेक धर्म-परम्परओ में प्रचलित दिखलाई देने लगी।

आचार्य हेमचन्द्र ने सरस्वती के वाक्, ब्राह्मी, भारती, गौ, गी, वाणी, भाषा और श्रुतदेवी- ये नाम बताये हैं। इन नामों के अनुरूप गुणों का संयोजन करके मूर्तिकारों ने मथुरा की इसी सरस्वती मूर्ति और सरस्वती आन्दोलन से प्रभावित हो विभिन्न मुद्राओं में सरस्वती की मूर्तियों का निर्माण किया। इतना ही नहीं अपितु जैनधर्म की दोनो परम्पराओ में इसी के विकास स्वरूप आगे चलकर सोलह विद्या-देवियों के मूर्तांकन की भी परम्परा चल पड़ी। लाडनूं के पूर्वोक्त जैन मन्दिर में एक ही श्वेत-पाषाणफलक पर सोलह विद्या देवियों का दुर्लभ मूर्तांकन भी स्थापित मिलता है। ये सोलह विद्या देवियां हैं–रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रश्रृंखला, वज्रांकुशा, जाम्बूनदा, पुरुषदत्ता, काली, महाकाली, गौरी, गाँधारी, ज्वालामालिनी, मानवी, वैरोठी, अच्युता, मानसी और महामानसी। पुरात्त्वविद् श्री बालचन्द जैन ने "जैनप्रतिमा विज्ञान" (पृ. 54) में इन सोलह विद्यादेवियो के विषय में लिखा है कि जैनो की ये विद्यादेवियाँ अपने नाम के अनुसार वाणी की विभिन्न प्रकृतियों के कल्पित मूर्तरूप है।

इस प्रकार यह सरस्वती आन्दोलन और इसका व्यापक प्रभाव तथा इस आन्दोलन की प्रतीक स्वरूप वाग्देवी सरस्वती के मूर्तांकन का अध्ययन आज भी जिनवाणी रूप श्रुतज्ञान की उस दीर्घ और प्राचीन परम्परा को सतत् वर्धमान बनाये रखने के सकल्प की प्रेरणा देता है, जिसे हमारे तीर्थंकरो और इनकी परम्परा के सहस्रों महामनीषि आचार्यो ने संरक्षित करके हम तक पहुँचाया। उस अमूल्य विरासत को आगे बढाने वाले हम सही उत्तराधिकारी बनें यही आकांक्षा और प्रार्थना है।

अध्यक्ष, जैन दर्शन विभाग,
सम्पूर्णानन्द संस्कृत महाविद्यालय,
वाराणसी-2।

1 प्राकृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ 164
2 प्राकृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ 164

[illegible]

विबुह-सिरिहर-विरइउ 'वड्ढमाणचरिउ' का वैशिष्ट्य

✍ डॉ अशोक कुमार जैन

भारत में प्राचीन काल से ही सास्कृतिक अभिव्यक्ति के लिए लोकभाषा में साहित्य लिखा जाता रहा है। जीवन के विविध मूल्यों के प्रति समाज को जाग्रत करना और लोक जीवन के विविध पक्षों को लोक भाषा में अभिव्यक्त करना, ये दोनों ही बातें महत्त्वपूर्ण समझी जाती रही हैं।

ईसा की सातवीं शती से लेकर सोलहवीं शती तक जैन कवियों द्वारा रचित अपभ्रश साहित्य प्राप्त होता है। इस सुदीर्घ काल में जो प्रचुर साहित्य रचा गया है उसका केवल एक अश इस समय प्रकाश में आया है। जैन ग्रथ भण्डारों में अपभ्रश भाषा का साहित्य विपुल मात्रा में भरा पड़ा है। धर्म और साहित्य का अद्भुत सफल मिश्रण जैन कवियों ने किया है। जिस समय जैन कवि काव्य रस की ओर झुकता है तो उसकी कृति सरस काव्य का रूप धारण कर लेती है और जब धर्मोपदेश का प्रसग आता है तो वह पद्यबद्ध धर्म-उपदेशात्मक कृति बन जाती है।[1]

तीर्थंकर महावीर का चरित्र जन-जीवन में आध्यात्मिक चेतना सञ्चार कर उन्हें समुन्नत बनाता है, अत अनेक आचार्यों एव कवियों ने प्राकृत, सस्कृत अपभ्रश तथा हिन्दी भाषा में विपुल मात्रा में साहित्य का सृजन किया है। विबुध श्रीधर विरचित 'वड्ढमाणचरिउ' ग्रन्थ सभवत महावीर चरित से सम्बद्ध प्रथम महत्त्वपूर्ण रचना है। भगवान महावीर के 2500वें निर्वाण समारोह पर अप्रकाशित चरित ग्रन्थों के प्रकाशन की योजनान्तर्गत प्रकाशित वड्ढमाणचरिउ अन्यतम पुष्प है[2] जिसका सम्पादन एव अनुवाद लब्धप्रतिष्ठ जैनविद्या के मनीषी डॉ राजाराम जैन ने किया है तथा भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली से प्रकाशित है।

कवि ने इस ग्रथ की रचना वोदाउव निवासी जायस कुलोत्पन्न नरवर एव सोमा अथवा सुमति के पुत्र तथा वीवा (नामकी पत्नी) के पति नेमिचन्द्र की प्रेरणा से असुहर ग्राम में बैठकर वि स 1190 की ज्येष्ठ शुक्ला पचमी सूर्यवार के दिन की थी। विबुध श्रीधर की उपलब्ध रचनाओं में साहू नट्टल साहू नेमिचन्द्र, साहू सुपट्ट एव चौथे पुत्र कुवर के उल्लेख एव सक्षिप्त परिचय प्राप्त होते हैं। कवि ने उनके आश्रय में रहकर क्रमश पासणाहचरिउ, वड्ढमाणचरिउ, भविसयत्तकहा और सुकुमाल चरिउ नामक ग्रथों की रचना की थी।[3]

कवि ने वड्ढमाणचरिउ की 10 सन्धियों में वर्द्धमान के चरित का सागोपाग वर्णन किया है। उसकी कथा का मूल स्रोत आचार्य गुणभद्र कृत उत्तर पुराण के 74वें पर्व में ग्रथित महावीर चरित्र एव महाकवि असग कृत वर्धमान चरित्र है। कवि ने उक्त स्रोत ग्रथों से घटनायें लेकर आवश्यकतानुसार उनमें कुछ परिवर्तन परिवर्धन कर मूलकथा को सर्वप्रथम स्वतत्र अपभ्रश काव्योचित बनाया है। प्रस्तुत ग्रथ में मूल कथा तो अत्यन्त सक्षिप्त है। प्रारम्भ से 8 सन्धियों में नायक वर्द्धमान के पुरुरुवा शबर सुरौरदेव, मरीचि, ब्रह्मदेव, जटिल सौधर्मदेव, पुष्पमित्र ईशान देव, अग्नि शिख सानत्कुमार देव, अग्निमित्र महिन्द्र देव, भारद्वाज विप्र, माहेन्द्र देव, स्थावर ब्रह्मदेव,

विश्वनन्दि, महाशुक्र देव, त्रिपृष्ठ, सप्तम नरक का नारकी, सिंह, प्रथम नरक का नारकी, सिंह, सौधर्म देव, कनक ध्वज, कापिष्ठ देव, हरिषेण, प्रीतिकर देव, प्रियदत्त, सूर्य प्रभदेव, नन्दन, प्राणतदेव एवं महावीर रूप भवावलियॉ का जीवन विस्तृत कथानक रसात्मकता या प्रभावान्विति उत्पन्न करने में पूर्ण समर्थ है। तीर्थंकर महावीर के एक जन्म की ही नहीं अपितु 33 जन्मों की कथा उस विराट जीवन का चित्र प्रस्तुत करती है, जिस जीवन में अनेक भवों के अर्जित संस्कार तीर्थंकरत्व को उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं।

कवि ने महावीर के चरित्र को प्रस्तुत करते हुए यह बताया कि कुण्डलपुर नरेश राजा सिद्धार्थ के यहां श्रावण शुक्ल छठ के दिन वर्धमान का भव्यता के साथ गर्भ-कल्याणक मनाया गया। चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के दिन उनका जन्म हुआ। प्रारंभ से ही वर्द्धमान के धीर गम्भीर व्यक्तित्व का कवि ने प्रभावी वर्णन किया है। उनके कई नाम प्राप्त हैं उनके संबंध में लिखा कि उनके जन्म-काल से ही प्रतिदिन अपने कुल-श्री को चन्द्रकला के समान शोभा समृद्ध एवं वृद्धिगत देखकर मुकुटों मे जटित रत्न-किरणों से भास्वर राजा सिद्धार्थ ने अपने पुत्र का नाम 'वर्द्धमान' रखा।

विजय एवं संजय नामक चारण मुनियों का उन जिनेश्वर के दर्शन मात्र से ही तात्विक सन्देह दूर हो गया अतः उन्होंने अगले दिन ही उन त्रिजगदीश्वर जिनेश्वर का 'सन्मति' नामकरण किया।

'महावीर' नाम के संबंध में कवि ने उनके अद्भुत साहसिक व्यक्तित्व को निरूपित करते हुए लिखा कि किसी दिन वे सन्मति वर्धमान अन्य बालकों के साथ वृक्षारोहण का खेल खेल रहे थे। उसी समय उन्हे अपने साथी बालकों से दूर हुआ देखकर संगम नामक देव ने उन्हें सन्त्रस्त करने हेतु स्वयं ही विक्रिया ऋद्धि से दीपावली के समान प्रज्जवलित सहस्र फणावलियों वाले भुजंग का वेश धारण कर उस वटमूल को घेर लिया। उस भुजंग को देखकर अन्य बालक तो वेगपूर्वक कूद पड़े और भयभीत होकर जहां तहां भाग गये, किन्तु सम्मान प्राप्त वे वर्धमान लीला पूर्वक ही उस फणिनाथ के सिर पर अपने पैर जमाकर निःशंक भाव से उस वृक्ष से उतरे तब उस संगम देव ने निर्भय जानकर हर्षित मन से उस परमेश्वर जिनवर को अपना वास्तविक स्वरूप दिखाया एवं स्वर्ण कलश के निर्मल जलों से अभिषेक कर आभरणों से सम्मानित किया और उनका नाम 'महावीर' रख दिया। इस प्रकार महावीर अपनी विलक्षण विशेषताओं के कारण वर्द्धमान, वीर, सन्मति आदि नामों से स्मृत किये जाते हैं।

अगहन मास की दशमी के दिन नागवन खण्ड में उन्होने दीक्षा धारण की। जिन दीक्षा के महत्व को बताते हुए प्रसंग वश कवि ने लिखा है, 'जो जिन दीक्षा धारण करता है, वह तो हृदय से महान होता है, वह भव-भोगों से विरक्त रहता है किन्तु भीरु जन उस दीक्षा को धारण नही कर सकते'।

वैशाख शुक्ल दशमी को ऋजुकूला तट पर भगवान वर्द्धमान को केवलज्ञान रूप लक्ष्मी की प्राप्ति हुई। संसार के कल्याण के लिए उन्होंने तत्वों के स्वरूप को समझाया। जीवों के भेद प्रभेदों पर कवि ने विशद प्रकाश डालते हुए जैन परम्परा के प्राचीन भौगोलिक व्यवस्थाओं जैसे द्वीप, नदियों, पर्वतों, समुद्रों आदि का वर्णन किया।

कार्तिक कृष्ण अमावस्या को तीर्थंकर भगवान महावीर ने निर्वाण प्राप्त किया।

कवि ने इस ग्रथ में आध्यात्मिक विकास की अवस्थाओं का बहुत सजीव चित्रण किया है। गुणस्थानों के नाम बताते हुए लिखा कि मिथ्यात्व, सासादन मिश्र (सम्यग्मिथ्यात्व), अविरत, देश-विरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत, अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मराग, उपशान्त मोह, क्षीणकषाय सयोगी जिन, अयोगी ये 14 आध्यात्मिक उत्क्रान्ति की अवस्थायें हैं। नारकी एव रति भाव को प्रकाशित करने वाले देव चार गुणस्थानों के धारी होते है। तिर्यञ्चों के पाच गुणस्थान होते है, किन्तु मनुष्य समस्त गुणस्थानों को प्राप्त होते है।

वड्ढमाणचरिउ एक सफल पौराणिक महाकाव्य है। इसमें पुराण पुरुष महावीर के चरित का वर्णन है। इस कोटि के महाकाव्य में अनेक चमत्कृत अलौकिक एव अति प्राकृतिक घटनाओं के साथ-साथ धार्मिक दार्शनिक, सैद्धान्तिक एव आचारात्मक मान्यतायें तथा धर्मोपदेश, विचित्र स्वप्नदर्शन आदि सन्दर्भों का रहना आवश्यक है। कुशल कवि उन सन्दर्भों को रसमय बनाकर उन्हें काव्य की श्रेणी में उपस्थित करता है। विबुधश्रीधर ने 'वड्ढमाणचरिउ' में ऐसे कथानकों की योजना की है जिनसे महदुद्देश की प्राप्ति होती है।

सत्सगति से जीवों की परिणति में भी निर्मलता आ जाती है। गार्हस्थिक जीवन में रहते हुए व्यक्ति को अपनी धार्मिक क्रियाओं के प्रति सजग रहना चाहिए जैसे युवराज नन्दन जिनेश्वर की पाद-द्वन्द्वों की पूजा के साथ निरन्तर सयममय भावों को भाता हुआ जिनेन्द्र के चरितों को सुनने हेतु समुत्सुक रहता था, सम्यक्त्व सहित व्रतों के परिपालन में निरत था। प्रियकरा के साथ पाणिग्रहण हो जाने पर प्रियकरा ने भी सम्यक्त्वपूर्वक व्रतों को प्राप्त कर लिया तथा धार्मिक कार्यों में वह भी सलग्न रहती थी क्योंकि कुलाङ्गनायें सदैव अपने प्रियतम के अनुकूल चलती हैं।

मनुष्य जीवन की सार्थकता विषय-भोगों से विरत रहने में है। विषयासक्त व्यक्ति की स्थिति को बताते हुए कवि ने लिखा है–

विसहर इव तो वि ण परिहरइ अहणिसु हिययतरे सभरइ।

धिम्मूढि पयडि दुम्मिय मणहँ ससारि एह सयलहँ जणँह॥

विषय तो विषधर की तरह हैं तो भी वह जीव उन्हें भी छोड़ता। अहर्निश मन में उन्हीं का चिन्तन किया करता है। ससार में प्रकृति-स्वभाव से ही दुर्मति-खोटे मन वाले समस्त ससारी जनों को धिक्कार है।

अनित्यानुप्रेक्षा का चिन्तन करते हुए कवि ने वर्णन किया है "वपु जीवन, सम्पदा और आयु इन सभी का उसी प्रकार नाश हो जाता है जिस प्रकार सध्या की लालिमा। समस्त वस्तु-सन्तति को नाशवान समझो। वे सब तो आधे क्षण तक ही रमणीय प्रतीत होती है।[5] ससार की असारता का जिसे प्रतिभास हो जाता है उसका चित्त विषय-भोगों में नहीं लगता।

नीति सम्बन्धी प्रसगों का भी कवि ने सजीव वर्णन किया है, अत्यन्त क्रोधी व्यक्ति के लिए हिताकारी प्रिय-वचन उलटे उसके क्रोध के ही निमित्त बनते हैं। अग्नि में सन्तप्त घी में यदि पानी पड़ जाये, तो वह तुरन्त ही अग्नि बन जाता है।

मनुष्य यदि हृदय से सुकोमल है, तभी उसे

प्रिय वचन प्रभावित कर सकते हैं, किन्तु जिसका हृदय कर्कश है उसके लिए रम्य सामीनति क्या अनुकूल पड़ सकती है ? अग्नि से तपाये जाने पर ही लोहा मृदुता को प्राप्त होता है, किन्तु जल से सामनीति कर देने पर वही कर्कश हो जाता है। इसी प्रकार शत्रु शत्रु द्वारा पीड़ित होकर ही नम्र बन सकता है, अन्य किसी उपाय से नहीं।

स्वभाव से ही अहितकारी तथा शभुकर्मो में लगा हुआ व्यक्ति प्रेम अथवा सामनीति के प्रदर्शन से शान्त नहीं हो सकता।

कवि ने दो प्रकार के धर्मो की चर्चा की हैः सागार धर्म की ओर अनगार धर्म इन दोनों का मूल आधार कवि ने सम्यक्त्व को ही माना है, और बतलाया है कि "सम्यग्दर्शन संसार समुद्र से तैरने के लिये नौका के समान है।"

कवि ने दर्शनिक सिद्धान्तो का भी यथास्थान वर्णन किया है। जैन दर्शन के प्रमुख तत्व 'जीव' का विस्तुत विश्लेषण किया है, साथ ही समकालीन अन्य दर्शनों व सम्प्रदायों की चर्चाएँ भी की हैं। इनमें सांख्य, नारायण, भागवत तथा आजीवक-दर्शन तथा सम्प्रदाय उल्लेखनीय है।

'वड्ढमाणचरिउ' में अनेक सुभाषितों एवं लोकोक्तियों का भी सुन्दर वर्णन अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है यथा-

सम्मत्त हो सुद्धि पयणइं सोक्खु न कासु।(6/18/12)

सम्यक्त्व शुद्धि किसके लिए सुखप्रद नहीं होती?

ण मुवइ विहव-वित्त हो धम्म भाव, मज्जहि विहवहि ण महाणुभाव। (8/7/6)

जो महानुभाव होते हैं, वे अपने वैभव से विमूढ़ (मन वाले) नहीहोते, धर्मभाव को नहीं छोड़ते।

णयवंतउ दंति उण करणहिं जो तहि रिउ णो उपज्जइ (4/14/1)

जो नयवान्, इन्द्रिय-जयी तथा आत्म-संयमी है, उसका शत्रु कोई नहीं होता।

जीवन किसका सफल है इस संबंध मे कवि ने लिखा है-तहो जम्मु सहलु णिम्मल मणोहँ सो नर पहाणु वर वुहमणाहँ।

गुतित्रय-हय-दुरियागमणु जसु चरिउ दुरिय भवणिग्गमणु॥

उसी मनुष्य का जन्म सफल है तथा निर्मल मन वाले सज्जन बुधजनों में वही प्रधान है जिसने गुप्तित्रय से पापासवों का हनन किया है तथा जिसका चरित्र पापरूप भव से निकल आया है।

इस प्रकार यह चरित काव्य सिद्धान्त, आचार, नीति, आदि का प्रतिपादन करने वाला लोकोत्तर काव्य है। कवि ने नायक वर्द्धमान के पूर्वजन्मों के कथा प्रसंगों से उत्थान-पतन की दशाओं का सजीव चित्रण किया है। विस्तृत जानकारी ग्रन्थ को पढ़कर ही प्राप्त हो सकती है। डॉ. राजाराम जी द्वारा लिखित प्रस्तावना अनेक दृष्टि से उपयोगी है। अपभ्रंश भाषा में हमारी बहुमूल्य साहित्यिक संपदा सुरक्षित है। ऐसे चरित काव्यों के स्वाध्याय से चारित्रिक विकास हेतु अग्रसर होना चाहिए।

◆

सन्दर्भ

1 [illegible]

2 [illegible]

3 [illegible]

4 [illegible]

5 [illegible]

तिलोयपण्णत्ती मे भगवान महावीर और उनकी सिद्धत्व-साधना के सूत्र

✍ डॉ राजेन्द्र कुमार बसल

भगवान महावीर की साधना का सूत्र है- आत्मा के ज्ञायक स्वभाव के अवलम्बन द्वारा शुद्धात्म स्वरूप स्वतत्रता की प्राप्ति। अनादि मोह-राग-द्वेष रूप कर्म बध के क्षय से वीतरागता के प्राप्ति के साथ ही अनतज्ञान-दर्शन-वीर्य-सुख रूप अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति ही जैन दर्शन को इष्ट है। वह प्रत्येक जीवात्मा को परमात्मा होने की घोषणा करता हुआ सर्वोदय का मार्ग बताता है।

जैन-साहित्य में आचार्य यतिवृषभाचार्यकृत 'तिलोयपणत्ति' 'करणानुयोग' का महत्वपूर्ण प्राचीन ग्रथ है जिसमें जैन भूगोल, खगोल एव इतिहास का वर्णन शौरसेनी प्राकृत भाषा में नौ महाधिकारों में किया गया है। इसमें 5776 गाथाएँ है। प्रथम खड के प्रथम अध्याय में त्रिलोक के सामान्य स्वरूप का वर्णन करने वाली 286, नरक लोक का वर्णन करने वाली 371 एव भवनवासीलोक का वर्णन करने वाली 254, कुल 911 गाथाएँ हैं। द्वितीय खण्ड में मनुष्य लोक एव 63 शलाका महापुरुषों का वर्णन करने वाली 3006 गाथाऍ है। तृतीय खड में तिर्यग्लोक का वर्णन करने वाली 323, व्यतरलोक का वर्णन करने वाली 103, ज्योतिर्लोक का वर्णन करने वाली 624, स्वर्गलोक का वर्णन करने वाली 727 और सिद्ध लोक का वर्णन करने वाली 82, कुल 1859 गाथाएँ है।

आचार्य यतिवृषभ जैन दर्शन के 'करणानुयोग' के प्रख्यात अध्यात्मयोगी आचार्य थे। उनका समय लगभग 5वीं शताब्दी ई माना गया है। उन्होंने आचार्य आर्यमक्षु और नागहस्ति से आचार्य गुणधर-कृत आद्य जैन-रचना 'कषायपाहुड का गहन अध्ययन कर' चूर्णी सूत्रों की रचना की। उनकी दूसरी रचना उक्त तिलोयपण्णत्ति है, जिसके द्वितीयखण्ड एव तृतीय खण्ड के सिद्धलोक हेतु सिद्धत्व-साधना के सूत्र इस लेख की विषय वस्तु है।

तिलोय पण्णत्ती में भगवान महावीर–

तिलोयपण्णति के द्वितीय खण्ड में 24 तीर्थंकर 12 चक्रवर्ती, नौ बलभद्र नौ नारायण और नौ प्रतिनारायण इस प्रकार 63 शलाका महा पुरुषों का वर्णन है। भरतक्षेत्र में वदन करने योग्य ऋषभ से लेकर महावीर पर्यत 24 तीर्थंकर हुऐ। तीर्थंकर भव्य जीवों के ससार रूपी वृक्ष को ज्ञान रूपी फरसे से छेदते है (गा 519-521 ति प द्वितीयखण्ड)।

चतुर्थकाल के 75 वर्ष 81/2 माह शेष रहने पर चौबीसवें तीर्थंकर भ महावीर पुष्पोत्तर विमान से अवतरित हुए थे। (गा 531)। उनका जन्म भ पार्श्वनाथ की उत्पत्ति के पश्चात् 278 वर्ष व्यतीत हो जाने पर हुआ। (गा 584) महावीर का जन्म कुण्डलपुर में पिता सिद्धार्थ और माता त्रिशला से चैत्र शुक्ला त्रयोदशी उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र में हुआ। (गा 556) उनका वश नाथ वश था। (गा 557)। उनकी आयु 72 वर्ष प्रमाण थी (गा 583)। उनका कुमार काल 30 वर्ष था (गाथा 591)। शरीर का प्रमाण सात हाथ था। (गा 594) महावीर स्वर्ण सदृश्य वर्ण के थे (गा 596)। उनका चिन्ह सिंह था, (गा 612)। जाति स्मरण के कारण उन्होंने

कुमारवस्था में कुण्डलपुर में अकेले ही जैनेश्वरी दीक्षा ली (गा. 675/677)। उन्हें 12 वर्ष बाद केवलज्ञान की प्राप्ति हुई (गा. 685)। यह काल छदमस्थ काल कहलाता है। उन्हें ऋजूकूला नदी के किनारे वैशाख शुक्ला दसमी अपरान्ह मे हस्तनक्षत्र में केवलज्ञान हुआ (गा. 709)। उसके साथ ही सौधर्मादिक इन्द्रों के आसन कम्पायमान हुए (गा. 714)। केवलज्ञान की उत्पत्ति पर इन्द्र, अहमिन्द्र एवं चारों जाति के देवों ने सात कदम आगे चलकर महावीर जिनेन्द्र देव को प्रणाम किया। (गा. 715-717)। भ. पार्श्वनाथ के 289 वर्ष 8 माह बाद महावीर को केवलज्ञान हुआ (गा. 711)।

महावीर को केवलज्ञान होने पर सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने विक्रिया ऋद्धि से समश वरण रूपी धर्म सभा की अद्‌भुत रचना की (गा. 718)। उनके समवशरण की रक्षा करने वाले गुह्यक यक्ष और सिद्धयानी यक्षणी थी (गा. 943-948)। महावीर का केवली काल तीस वर्ष था अर्थात् तीस वर्ष तक उन्होने धर्मोपदेश दिया (गा. 969)। महावीर के इन्द्रभूति गौतम आदि ग्यारह गणधर थे (गा. 972-975)। ये सभी ब्राह्मण मूल के थे।

महावीर के धर्मतीर्थ में 300 पूर्वधर, 9900 शिक्षक, 1300 अवधिज्ञानी, 700 केवली, 900 विक्रया ऋद्धिधारी, 500 विपुलमति एवं 400 वादी थे । (गा. 1171-1172)। उनके धर्मतीर्थ मे 36000 आर्यिकाएँ थी (गा. 1187), प्रमुख चन्दना थी (गा. 1191)। उनके अनुयायी श्रावक-श्राविकाओं की संख्या क्रमशः एक लाख और तीन लाख थी (गा. [illegible])।

[illegible] में तीस वर्ष [illegible]

पक्ष शेष रहने पर महावीर कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी के प्रत्यूष काल मे स्वाति नक्षत्र में कार्योत्सर्ग आसन मे पावापुरी से अकेले ही सिद्ध हुए। (गा. 1250 एवं1219)। महावीर के बाद तीन अनुबद्ध केवली हुऐ। उनकी मुक्ति के पश्चात् 6 वर्ष में 4400 मुनि शिष्यो ने मुक्ति प्राप्त की (गा. 140/142)। आठ सौ मुनि सौधर्म स्वर्ग से ऊर्ध्व ग्रैवेयक तक गये। (गा. 1248)। आठ हजार आठ सौ मुनि अनुत्तर विमानों में गये। (गा. 1228)। भ. पार्श्वनाथ के 250 वर्ष व्यतीत होने पर महावीर मोक्ष गये। (गा 1260)। उनका तीर्थ काल 21042 वर्ष प्रमाण है (गा. 1285)। महावीर के निर्वाणत्सव के उपलक्ष्य में दीपावली को प्रतिवर्ष उल्लास पूर्वक मनाई जाती है। सिद्धों का निवास सिद्ध-लोक कहलाता है। इस प्रकार सिह की अवस्था में सम्यक्त्व धारण करने वाला जीव 9वी पर्याय में पशु से परमात्मा हो गया।

तिलोय पण्णत्ती में सिद्ध लोक का वर्णनः

धार्मिक और दार्शनिक साहित्य का उद्देश्य जगत के जीवो को चर्तुगति के दुख से मुक्त कराकर अक्षय-अनन्त, अनुपम, अतींद्रिय सुख के लोक अर्थात् सिद्धलोक पहुँचाना है। इस दृष्टि से 'तिलोय पण्णत्ती' के नौवे महाधिकार की सिद्धलोक का वर्णन करने वाली 82 गाथाएँ बहुत महत्त्वपूर्ण है। इनमे सिद्धों की निवास-भूमि (गा. 3-4), सिद्धों की संख्या (गा. 5), सिद्धों की अवगाहना (गा. [illegible]) सिद्धों का सुख (गा. [illegible]) [illegible] भाव-भावना (मोक्ष की प्रक्रिया) (गा. [illegible]) [illegible] (गा. [illegible]) वर्णित है। इनके अनुसार [illegible]

प्रागभार) के ऊपर 7050 धनुष ऊँचाई पर है (गा- 3।)। अतीत समय में छह माह आठ समय का भाग देकर 592 का गुणा करने पर जो सख्या प्राप्त हो, वह सिद्धों की सख्या है (गा 5)। सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना (आकार) 525 धनुष और जघन्य 3 1/2 हाथ प्रमाण है (गा 6)। एक सिद्ध जीव से अवगाहित क्षेत्र के भीतर जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना वाले अनतानत सिद्ध जीव होते है (गा 14)।

सिद्ध-भगवतों का सुख-

सिद्ध भगवान् अनुपम स्वरूप-सहित कृत-कृत्य, निरजन, निरोग, निरवद्य निष्पाप, स्व-आधार, निर्मल ज्ञानयुक्त, तीन लोक और तीन काल की सब द्रव्य-पर्यायों को एक समय में जानते है (गा 17/18)। वे जन्म-जरा और मृत्यु से विनिमुक्त, निर्मल, अनक्षर, निर्वेद, अनतज्ञानी, अनतसुखी सर्वज्ञ, स्व-सत्ता से कर्मों का घात करने वाले, सदाशिव, शुद्ध, परमपद-स्थित, परम सुखी सर्वगत, सर्वदर्शी, अव्याबाध-अनत-अक्षय-अनुपम और अतीन्द्रिय सुख का निरतर भोग करते है (गा 20/21)।

सिद्धत्व-साधना के सूत्र एव प्रक्रिया–

आचार्य यतिवृषभ ने तिलोयपण्णत्ती' की सिद्ध लोक का वर्णन करने वाली गाथा क्र 22 से 69 तक 48 गाथाओं में आत्मा के स्वरूप, शुद्धात्मा की उपलब्धि, उपयोग के भेद एव शुद्धापयोग से शुद्धात्मा की उपलब्धि, कर्म-बध, ध्यान, ध्यान द्वारा कर्मो का क्षय पुण्य-पाप एव विषयों से विरक्ति आदि का विशद् वर्णन किया है, जो मूलत पठनीय एव मननीय है।

आत्मा का स्वरूप और लक्षण शुद्धोपयोग से सिद्धि

आत्मा सदा से एक, शुद्ध दर्शन-ज्ञानात्मक और अरूपी है, परमाणुमात्र भी अन्य पदार्थ उसका नहीं है (गा 28)। आत्मा ज्ञानात्मक, दर्शन भुत अतींद्रिय महापदार्थ, नित्य, निर्मल, शुद्ध और निरालम्ब है (गा 35)। इस प्रकार की आत्मा की त्रिकाल शुद्ध सहज ज्ञानादि स्वभाव और परिणति ही वह आधार है जिसके आश्रय से निरजन कार्य परमात्मा प्रकट होता है।

आत्मा उपयोगात्मक है। उपयोग भाव अनुष्ठान की दृष्टि से तीन प्रकार है-शुभ, अशुभ और शुद्ध। जीव जब शुभ या अशुभ भाव से परिणमित होता है, तब शुभ या अशुभ रूप होता है और जब शुद्ध भाव से परिणमता है, तब शुद्ध होता है (गा 60)। अत शुद्ध आत्मा की भावना करना चाहिये। अशुभोपयोग से कुमानुष, तिर्यंच और नरक गति का दुख मिलता है और जीव हजारो दु खों से पीड़ित होकर दीर्घ काल तक ससार में परिभ्रमण करता है (गा 62)। धर्म परिणत आत्मा के शुद्धोपयोग से निर्वाण और शुभोपयोग से स्वर्गादिक-सुख मिलता है (गा 61)। शुद्धोपयोग से निष्पन्न सिद्धों को अतिशय आत्मीक विषयातीत, अनुपम, अनत अविच्छिन्न सुख मिलता है। (गा 63)।

स्व-समय का सिद्धान्त

समय का अर्थ पदार्थ और आत्मा है। आत्मा के सदर्भ में एक साथ जानना और परिणमन करना ही समय है। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वभाव में स्थित रहता है, यही उसका सौदर्य है। जो अपने स्वभाव में स्थित न रहे वह पर-समय है। इसी तथ्य को दर्शाते हुए आचार्य यतिवृषभ कहते है कि जो आत्मा

सव परिग्रह-रहित एकाग्रतापूर्वक अपने चैतन्य भाव को जानता और देखता है, वह स्व-चारित्ररूप 'स्व-समय' है। (गा. 26)। ज्ञानी अनेक प्रकार के परिणामों को जानता हुआ भी पर द्रव्य-पर्याय मे परिणमित नही होता, उसे ग्रहण नहीं करता और न उस रूप उत्पन्न होता है (गा. 68)। जो अज्ञानी पर द्रव्य को शुभ अथवा अशुभ मानता है, वह मूढ़ अज्ञानी दुष्ट आठ कर्म वांधता है (गा. 67)। स्व-समय की प्रवृत्ति शुद्ध नय से ही होती है।

शुद्ध नय से शुद्धात्मा और अशुद्ध नय से अशुद्धात्मा की प्राप्तिः

शुद्ध नय (दृष्टि) से शुद्धात्मा को उपलब्धि होती है और मोहग्रंथी का क्षय होकर अक्षय-अनुपम सुख प्राप्त होता है। इस तथ्य की पुष्टि करते हुए आचार्य यतिवृषभ कहते है कि ' न मैं पर पदार्थो का हूँ और न पर पदार्थ मेरे है, मैं तो अकेला (केवल) ज्ञान ही हूँ, इस प्रकार जो ध्यान में चिन्तन करता है वह आठ कर्मो से मुक्त होता है (गा. 30)। 'न मैं पर पदार्थो का का हूँ और न पर पदार्थ मेरे हैं मै तो अकेला ज्ञान ही हूँ, इस प्रकार जो ध्यान में आत्मा का चिंतन ध्यान करता है वह आत्मा का ध्यान करने वाला ध्याता होता है (गा. 30)। जो विशुद्ध आत्मा इस प्रकार जानकर उत्कृष्ट आत्मा का ध्यान कराता है, वह जीव अनुपम, अपार और अतिशय सुख पाता है (गा 36)। 'मै दूसरो का नहीं हूँ, पर मेरे नहीं हैं इस लोक में मेरा कुछ भी नहीं है, इस प्रकार की जो भावना भाता है उसका कल्याण होता है (गा 38)। अतः शुद्ध नय उपादेय है।

अशुद्ध नय से अशुद्धात्मा की प्राप्ति होती है। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए आचार्य श्री कहते हैं 'जो देह में अहम् (मैं पना) और धनादिक मे ममेदं (यह मेरा) इस प्रकार दो प्रकार के ममत्व को नहीं छोड़ता, वह मूर्ख अज्ञानी दुष्ट कर्मो से बंधता है (गा.55)। कर्म और नो कर्म में 'मैं हूं' तथा मै कर्म-नोकर्म रूप हूँ, इस प्रकार जो मान्यता होती है उससे यह प्राणी गहन संसार मे घूमता है (गा. 46)। अशुद्ध नय हेय है।

स्व-समय-प्रवृत्ति का शुभारम्भः भेद-विज्ञान

स्वभाव-विभाव, आत्मा-अनात्मा का ज्ञान भेद-विज्ञान से होता है। जब तक जीव आत्मा और आस्रव का विशेष अंतर नहीं जानता, तब तक वह अज्ञानी विषयो में प्रवृत रहता है (गा. 67)। जो भेद-विज्ञान द्वारा सर्व परिग्रहों से रहित अपने आत्मा का आत्मा द्वारा ध्यान करता है, वह अल्पकाल में ही समस्त दुखों से छुटकारा पा लेता है (गा. 51)। इस प्रकार जो गहरे संसार-समुद्र से निकलना चाहता है वह शुद्धात्मा का ध्यान करता है (गा. 52)। इस प्रकार भेद-विज्ञान से शुद्धात्मा की उपलब्धि और मोह ग्रथि का क्षय होकर संवर होता है। मोह ग्रंथि को नष्ट करने वाला जो जीव राग-द्वेष को नष्ट कर सुख-दुख में समतावान होता हुआ श्रामण्य में परिणमित होता है, वह अक्षय-सौख्य को प्राप्त करता है (गा 54)। अतः भेद-विज्ञान द्वारा शुद्धात्मा की उपलब्धि/इष्ट है।

आत्मध्यान रूप शुद्धोपयोग से कर्मों का क्षयः

शुद्धोपयोग द्वारा कर्मों के क्षय से मोक्ष होता है। इसी को स्पष्ट करते हुए आचार्य यति वृषभ कहते है जो द्रव्य के स्वभाव और आत्मा के स्वभाव को जानकर द्रव्य के प्रति [illegible] होता है, वह कर्मों से मुक्त होता है (गा [illegible])। जिस प्रकार [illegible]

सचित ईंधन को पवन युक्त अग्नि जला देती है, वैसे ही ध्यान रूपी अग्नि बहुत भारी कर्म ईंधन को क्षण मात्र में जला देती है (गा 22)। रागादि परिग्रह से रहित मुनि शुक्ल ध्यान द्वारा अनेक भवों के सचित कर्मों को शीघ्र जला देता है (गा 64) शुद्ध स्वभाव युक्त साधु को दर्शन-ज्ञान से सपूर्ण और अन्य द्रव्यों से असपुक्त ऐसा ध्यान निर्जरा का कारण है (गा 25)। जो दर्शन मोह और चारित्र मोह को नष्ट कर विषयों से विरक्त होता हुआ मन को रोककर आत्म स्वभाव में स्थित होता है, वह कर्मबध तोड़कर मोक्ष-सुख पाता है (गा 23/48)।

ध्यान का स्वरूप-

ज्ञान का स्थिर होना ही ध्यान है। जिसके मोह-राग-द्वेष नहीं है तथा योग परिकर्म नहीं है, उसके शुभाशुभ (पुण्य-पाप) को जलाने वाली ध्यान मय अग्नि पैदा होतीहै (गा 24)। रत्नत्रयादि गुणों से युक्त अविनश्वर अखड प्रदेशी निजात्मा का ध्यान करना चाहिये। (गा 45)। देह में स्थित, देह से न्यून, देह-रहित, देहाकार, शुद्ध इन्द्रियातीत आत्मा का ध्यान करना चाहिये। (गा 43)। मिथ्यात्व, अज्ञान पाप और पुण्य-इनका मन-वचन-काय, तीन प्रकार से त्याग करके योगी को निश्चय से शुद्धात्मा का ध्यान करना चाहिये। (गा 59)।

आत्मध्यान की भावना की आवश्यकता-

पर द्रव्यों के प्रति अनादि मूर्च्छा/आसक्ति तोड़कर आत्म जागरण द्वारा स्व-समय में प्रवृत्ति प्रचड-अखड आत्म-भावना से ही सम्भव है। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को रेखाकित करते हुए आ यति वृषभ ने आत्म-ध्यान हेतु आत्मभावना भाने पर जोर दिया है। आत्मसाधक निम्न प्रकार निरतर भावना भाता रहता है-

तीनों लोकों में पर पदार्थ मेरे कुछ भी नहीं है, यहाँ मेरा कुछ भी नहीं है। मोह भी मेरा कुछ नहीं है, मै एक ज्ञान-दर्शन उपयोग रूप हूँ। ऐसी भावनाओ से जीव दुष्ट अष्टकर्मों को नष्ट कर अक्षय सुख पाता है। (गा 29/39)। ज्ञान दर्शन-चारित्र में भावना करना चाहिये। ये तीनों आत्मस्वरूप है, अत आत्मा की ही भावना करो। (गा 27)।

आत्मसाधक भावना भाता है कि 'न मैं देह हूँ, न मन हूँ, न वाणी हूँ और इनका कारण भी नहीं हूँ। ऐसी भावना से शाश्वत स्थान प्राप्त होता है (गा 32)। देह के समान मन और वाणी पुद्गल-द्रव्यात्मक होन से 'पर' है और पुद्गल द्रव्य भी परमाणु-द्रव्यों का पिड है (गा 33)। न मैं पुद्गल मय हूँ और न मैंने पुद्गलों को पिड रूप किया है। इसलिये न मै देह हूँ और न उसका कर्ता हूँ (गा 34)। अत हे मोक्षभिलाषियों देह से कुछ भी राग मत करो। देह से भिन्न अतींद्रिय आत्मा का ध्यान करो। (गा 49)

आत्मसाधक यह चितवन कर आत्मा स्थिरता करता है कि प्रकृति बध, स्थिति बध, अनुभाग बध और प्रदेश बध से रहित जो आत्मा है, वह मैं हूँ (गा 49)। केवलज्ञान, केवल दर्शन, केवल सुखमयऔर केवलवीर्य-स्वभावी, मैं हूँ।

आत्मध्यान की भावना का फल मोक्ष

आत्म भावना से चित्त शात होता है, जिससे इन्द्रिया शात होती है और इन्द्रियों के शात होने पर स्वभाव से रति होती है, फिर आत्मा का निर्वाण होता है (गा 31)। निजात्म भावना से जीव प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, प्रतिहरण, धारणा, निवृत्ति

निदन, गर्हण और शुद्धि को प्राप्त करते हैं (गा.53)। जो साधु नित्य उद्योगशील होकर आत्म-भावना का आचरण करता है, वह अल्प काल मे सर्व दुखो से छुटकारा पा लेता है।

ध्यान की अपूर्णता/असफलता सूचक चिन्ह–

आचार्ययति वृषभ के अनुसार निम्न स्थितियों मे ध्यान नहीं होगा–

(1) जिस जीव के ध्यान मे यदि ज्ञान से निज आत्मा का प्रतिभास नहीं होता तो फिर वह ध्यान नहीं है। उसे प्रमाद, मोह या मूर्च्छा ही जानना चाहिये। (गा. 44)।

(2) जब तक हृदय में आत्म स्वभाव की उपलब्धि प्रकाश भाव नहीं होती तब तक जीव संकल्प-विकल्प रूप शुभ-अशुभ को उत्पन्न करने वाला कर्म करता है (गा.65)।

इससे स्पष्ट है कि शुभ-अशुभ भावो के शमन/वमन होने पर ही ज्ञान में आत्मा का दर्शन होता है, अन्यथा नहीं।

ध्यान में राग और पुण्य भाव के दुष्परिणाम–

आत्म-ध्यान में राग और पुण्य भाव बाधक तत्व है, अतः उनको छोड़ना चाहिये। यह आत्मार्थियों के भ्रम निवारण हेतु दिशा बोधक है। जिसके देहादिक में अल्प राग (मूर्च्छा) भी है वह समस्त शास्त्रों का ज्ञाता (सर्व आगमधारी) होकर भी स्व समय (आत्मा) को नहीं जानता। (गा.41)। परमार्थ से बाह्य मोक्ष का हेतु न जानने वाले अज्ञानी पुरुष पुण्य की इच्छा करते है (गा. 57)। पुण्य से वैभव, वैभव से मद, मद से मति मोह और मति मोह से पाप होता है, अतः पुण्य छोड़ना चाहिये। (गा. [illegible])। [illegible] पुण्य और पाप में भेद मानता है, वह मोही अपार संसार का भ्रमण करता है (गा.58)। इस प्रकार प्रत्येक आत्मार्थी को राग एव पाप के समान पुण्य और पुण्य भाव की इच्छा छोडना ही इष्ट है।

सिद्धलोक प्रज्ञप्ति–

अंत मे आचार्य यति वृषभ ने गाथा 70 से 77 में कुन्थुनाथ जिनेन्द्र से वर्धमान जिनेन्द्र तक आठ तीर्थकरों को क्रमशः नमस्कार किया है। पश्चात् अहरंत, सिद्ध आचार्य एवं साधुओ के जयवन्त होने की भावना भाई है (गा.78)। ज्ञान रूपी परशु से सब जीवो के भव-दुख छेदने वाले भरत क्षेत्र के विद्यमान 24 तीर्थकरों को नमस्कार किया है (गा 79)। पश्चात्, जिनवर वृषभ, गणधर वृषभ और यतिवृषभ की नमस्कार सूचक गाथा है (गा 80)। अंतिम दो गाथाएं ग्रंथाकार प्रमाण सूचक है। इस प्रकार सिद्ध लोक-स्वरूप-निरूपण सूचक नवमां महाधिकार समाप्त हुआ। ◆

हे वीर जिन! आप उस निर्मल कीर्ति से जो गुणों से समुदत है, पृथ्वी पर उसी प्रकार शोभा को प्राप्त हुए है, जिस प्रकार कि चन्द्रमा आकाश मे नक्षत्र-सभा-स्थित उस प्रभा से शोभता है, जो कि कुन्द-पुष्पों की शोभा के समान सब ओर से धवल है॥1॥

हे वीर जिन! आपका शासन-माहात्म्य कलिकाल में भी जय को प्राप्त है। उसके प्रभाव से गुणों में अनुशासन-प्राप्त शिष्य जनों का भव विनष्ट हुआ है। इतना ही नहीं, किन्तु जो दोष रूप चाबुकों का निराकरण करने में समर्थ है तथा अपने ज्ञानादि तेज से जिन्होंने आसन्न विभुओं को निस्तेज किया है वे (गणधर देवादि) भी आपके इस शासन-माहात्म्य की स्तुति करते हैं॥2॥

[illegible]

ब्रह्मनाथ के राजस्थानी गीत

✍ डॉ गगाराम गर्ग, पूर्व प्राचार्य

राजस्थानी गीतों की लम्बी परम्परा में पूर्वी राजस्थान के दिगम्बर जैन कवियों, हर्षकीर्ति, नेमिचद, नाथूब्रह्म, अखैराम, के पर्याप्त राजस्थानी गीत अभी अचर्चित ही है। अकबर के समकालीन महाकवि ब्रह्म रायमल्ल के राजस्थानी में लिखित चरित्र ग्रथ और प्रबधगीत डा कस्तूरचद कासलीवाल ने महावीर ग्रथ अकादमी जयपुर द्वारा ' ब्रह्म रायमल्ल और त्रिभुवनकीर्ति " ग्रथ में प्रकाशित करवाए हैं।

जैन ब्रह्मचारी नाथू ने अपनी महत्वपूर्ण रचना, " श्री नेमीश्वर राजमती को ब्याहुलौ"-वर्तमान टोंक जिले के नगर कस्बे के जैन मदिर में श्रावण सुदि 6 सवत् 1728 में लिखी थी-

"नगर नगीन सोभितौ जी , चौबीसी ब्राजमान ।
श्रावक पूजै भाव स्यौं जी , सकति सहत दे दान
सतरासै अठाइस मैं जी , सावण सुदि छठि जानि
ब्याहु राजमती नेम कौ जी , नाथू करैइ बखान ।

टोंक जिले के " नगर" अथवा पूर्वी राजस्थान के किसी क्षेत्र में आविर्भूत गीतकार नाथू ब्रह्म अच्छे सगीतकार थे। उन्होने अपने कई फुटकर गीत राग सोरठ, राग मल्हार, रागमारू, राग धनाश्री शीर्षकों से लिखकर उनकी गेयता को प्रमुखता दी । डोरी कौ गीत, "दाई ', "पार्श्वनाथ जी को सोहलो" गीत नाम स्मरण और आराध्यदेव के बाल्य वर्णन की दृष्टि से लिखे गए। नाथू ब्रह्म के फुटकर गीतों में भक्ति, नीति, उपदेश के साथ-साथ सस्कार और लोकाचार के वर्णन की प्रमुखता रही। नेमिनाथ-राजमती की कथा पर ही लिखित "बारहमासा गीत और श्री नेमीश्वर राजमती की "लूहरि" में भाव व्यजना और प्रकृति चित्रण दोनों को ही प्रधानता मिली । द्वार पर शादी के लिए आये कितु विवाहपूर्व ही वैराग्यपथ पर बढ चले नेमिनाथ के प्रति राजुल का कथन एक सामान्य नारी की पीडा और भावनाओं को अपने में समेटे हुए है-

"कोई नेम जी नै ल्याव मनाइवे,
हथककण धोंगी वधाइवे , उतौ समुद्रबिजै कौ नदा बे ।
मानु सोभै दुतिया चदा बे , न्हासै पाप सबै दुख फदा बे ।
सखी सावणड़ो अब आयो वे , सब पुरष त्रिया मनि भायो वे ।
सखिया सब मिलि खैल्है तीजौ वे , हु कैसें खेल्हु होरी वे ।"

जैन धर्म के बाइसवे तीर्थकर नेमिनाथ की वैराग्य कथा से सम्बन्धित प्रबधगीत नेमीसुर राजमती कौ "ब्याहुलौ" में सस्कार अनुरूप चार ढालें है - ढाल हल्दी की , ढाल निकास , ढाल सिदूरी की, तथा ढाल ब्रिदावनी । सुदर वस्त्र, सेहरा तथा बाग से सजे-धजे दुल्हे नेमिनाथ के श्रृगार के आकर्षण को नाथू ब्रह्म ने बड़े मधुर शब्दों में गाया है -

"हल्दी बोली है हाय, मैं कदि चदस्या लाडिकलाकै आगै ।
नेमकुमर मागल रच्यो, हो हल्दी ल्याया है जोतगी देवता,

जोंतगी देवता की नारी गावै है गीत । 1''
सेहुरौ बनायौ है माली कै, झूमिकां कौ करि अधिक बनाव,
सेहुरौ बनायौ है कल्पवासी देवता। 2''
रतन जड़त मानुं सूर प्रकास । 3''
हो कपड़ा सीया है दरजी कै, टाकै टाकै हीरा रतन लगाय । 4''
कपड़ा सीया है भवणवासी देवता,
किरण्या सहस रवि उग्यौ है सूरो । 5''
मोचड़ी बणाइ है मोची कै,
मौरा मोत्यां का अधिक बणाइ । 6''
मोचड़ी गणाइ है व्यंतर देवता,
जांणीक धरा चंद कीयो है प्रकास । 7''
सांपड़ि उपड़ि बागौ पहरीयौ,
चंदन केसरि की खौली बणाय । 8''
आख्यां काजल घालीयो,
मुखां बिड़ला हो चावि सवारि । 9''

बारात की निकासी के अवसर पर बहिनो द्वारा दूल्हा का "राईनमक" उतारने की रीति के साथ मंगलाचार गाये जाने लगे। अनेक वाद्यो की ध्वनि से आकाश गूंज उठा -

"भुवा कुंती गावै है मंगलाचार,
लूंण उतारै वैन्हड़ी जी ।
कोड़ि छपन जादुं सब ज्यांकी नारि तौ,
गावै गीत सुहावेणा जी । 2''
बाजा बाजै साढ़ी बारा कोडि तौ,
[illegible] [illegible] [illegible] जी ।
भेरि नफीरी बाजे है ताल तौ,
[illegible] बाजै [illegible] जी । 3''
[illegible]

योद्धाओ को बाराती के रूप में उल्लिखित कर बारात के बोहन हाथी और विभिन्न किस्म के घोड़ो के वर्णन में रूचि लेते हुए बारात-गमन का एक उत्तम समूहचित्र प्रस्तुत किया गया है-

"हंसती चल्या उतंग रै , दीरघ जाकौ अंग ।
उपरि रंग सुरंग का, आंबावाड़ी चह खचारो ।
घोटक अंत न पार रै, अैराकी सिरदार
बगतर पहर्‌यो हो भीर, नख सख सबै बन्या हो ।
आरबी चल्या असमान रै, गगन न दीसै हो भान,
खुरतालां की हो तांन कौ, चमकै बीजली हो ।
बलकी घोड़ा मयमंत रै, खंधारी बलिवंत ।
चले राजमतीकंत का, नेमिसुर सांवलौ हो
तुरका ताजी सब गुंडरै, बाध्या छुटा तो खूंट,
चले बगदा सब उटका, नाल्यां सो भर्‌या हो
पाठी काछी की जाति रै, देसी रोठीतो नाति,
चले सब नाना हो भांतिक, गिनती को नही हो ।9''

विभिन्न प्रकार के अश्वों, हाथी और रथो पर सवार नेमिनाथ की बारात राजमती के द्वार पर पहुंची। मोतियों के आभूषणों से सुसज्जित राजमती सखियों के साथ गवाक्ष पर खड़ी होकर प्रियतम नेमिनाथ को निहारने लगी। नेमिनाथ के तोरण द्वार पर पहुंचने पर "पौरी" की रस्म सम्पन्न हुई-

कौण की पौति सिंदूर सिंदूरी
कौंण की धीह सुहागिन पूरी ।
कामिणि कलस ले आइ के [illegible]
उग्रसेणि राजा को [illegible] । 1''
पांच कलस [illegible] सिर सोहे,
[illegible] विधना [illegible]
[illegible] सोना जी [illegible]
[illegible] । 2''

उपरि सोहै हो सुधर बुझारा
कामणि गावै है गीत सुचारा ।

स्वर्ण, रजत, पीतल ताबा के कलश और कुम्भ कलश सिर पर धारण किए सुदरिया अन्य गीत गाती हुई रमणियों के साथ तोरण द्वार पर तोरण की रस्म का निर्वाह करवा ही रही थी कि उसी अवार पर बारात के भोजनार्थ लाये गये पशुओं की दर्दभरी चिधाड़ ने हिंसा विरोधी नेमिनाथ का मन वैराग्य की ओर फेर दिया। अब नेमिनाथ "अनत चतुष्टय" के पहियों, उपशम के जूए से जुडे दया धर्म रूपी रथ में बैठकर सम्यक्त्व बैलों के सहयोग से मुक्ति वधु को विवाहने चल दिये -

दया धर्म रथ कौ बनाय नेमिनाथ जी
अनत चतुष्टय का पह्या चारयू ही बनाय
दशविधि छाह लै बनाय उपरि नाथ जी
उपसम जुड़ी बाधि समकित बैल जोया सारही ।
केवल ग्यान रासि लीया हाथि जी,
जनेती भी गैल हुवा, अतिसै चौतीस जाकी
गिणित न कोउ और तप व्रत साथि जी
कह कविकै नाथ नेम मुकति परणवानै
दया धर्म रथ कौं बनाय चले नेमिनाथ जी ।

मुक्तिवधु के साथ यशस्वी नेमिनाथ के विवाह की खुशी में वरपक्ष की सुदरियों ने "ब्रिंदावनी' खेलने का रिवाज भी निबाहा । किंतु इस खेल में रमणिया अपनी सखियों के मध्य किन्ही मनपसद वस्तुओं का वितरण न कर देवागनाओं के साथ धार्मिक विधानों का निर्वाह कर रही थी -

सुणि सासु जी सुणि सासु जी
ब्रिंदावन खेलण जास्या जी ।
सात सखी मिलि खेलन चाली,
म्हे रोक्या क्यों रहस्या जी ।
एक भावै हो भावना इक पाठ पढ़ै मन लगार जी।
एक करै गुरू बरणण, पूजा करै इक बाए जी
करि पूजा हो इद्र इद्राणी
हरष उछाह करता जी,
केवल ग्यान करी विधि सारी,
थानिक आप पहुचा जी,

नाथू ब्रह्म का प्रबधगीत लोकजीवन और विवाह सस्कार से युक्त तो है ही, यह अपने रोचक वर्णन, गीतात्मकता और उत्प्रेक्षा उपमा, रूपक अलकारों से युक्त होने के कारण कवि के श्रेष्ठ काव्यत्व का निदर्शन भी है। अन्य कई फुटकर गीतों में कवि ने भक्ति और वैराग्य को प्रधानता दी है।

समय-समय पर प्रभावित करने वाली कर्मगति की अनिवार्यता को नाथू ब्रह्म ने सीता हरण, लकादहन और कीचक वध के उदाहरणों से अभिव्यक्त किया है-

करमा की गति न्यारी हो, जीवा करमा की गति न्यारी ।
नहि जाणु कवणि विचारी ।
हो कहा रावण कहा लका नगरी काहा राम हुआ अवतार ।
सीता हरण जोग आइ बरत्यो हनमत लक परजारी।
हो पाण्डु जाइ बैराठा रहिया पुन्य पुरिष अधिकारी।
कीचक मारि सिला तलि दीयो, द्रोपता सीलि सुधारी।

राजस्थानी साहित्य की श्रीवृद्धि में ढूढाड़ी क्षेत्र के जैन कवियो की साहित्यिक कृतियों के योगदान को विस्मृत करना बड़ी भूल होगी ।

110ए रणजीत नगर
भरतपुर (राज)

भगवान महावीर विषयक विशिष्ट वाङ्मय

✍ डॉ. शोभनाथ पाठक

भगवान महावीर की महत्ता से मंडित प्राकृत, अपभ्रंश, अर्द्धमागधी, संस्कृत आदि का बृहत् वाङ्मय विविध वरीयताओं से विभूषित अध्येताओं को आकर्षित कर उसमें अवगाहन का आह्वान करता है जिसके सम्बल से सामाजिक संवार, नैतिक निखार एवं आध्यात्मिक उत्थान आदि का लोक कल्याणकारी कार्य किया जा सकता है। इस परिप्रेक्ष्य में तत् संबंधी संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है। यथा–

महावीर स्तोत्रम् : महावीर भगवान महावीर के प्रति असीम आस्था एवं भक्ति का भाव अभिव्यक्त करते हुए आचार्य जिनवल्लभ सूरि की इस अनुपम कृति में तीस श्लोक है। इसका प्रारम्भ प्रभु महावीर की वन्दना से किया गया है

मापारिवारण निवारण दारुणोरु,
कण्ठीरवं मलयमन्दरसारधीरम्।
वीरं नुवामि कलिकालकलंक पंक,
संभार संहरण तुंगतरंग तोयम्॥

भगवान महावीर की स्तुति से कलिकाल का कलुषित प्रभाव क्षीण हो जाता है जो मोक्ष देने वाला है। यही नहीं, वरन् सांसारिक सागर से पार होने के लिए भगवान महावीर का सहारा ही श्रेयस्कर है। भगवान महावीर की स्तुति-स्मरण से सब कुछ प्राप्त करना संभव है यथा–

सिद्धान्तमन्तरणकारणमन्तरायं,
[illegible]रोगसमवापमलोमायम्।
[illegible]मोहतिमिरावरणावसायं,
वीरं नुवामि [illegible]॥

महावीर का स्मरण मात्र ही समस्त [illegible] बुराइयों को समाप्त कर सत्य की ओर उन्मुख करता है। अज्ञानान्धकार मे भटकते हुए प्राणी को महावीर की स्तुति ज्ञान आलोक से आलोकित करती है। यही नहीं वरन् भगवान वीर का करावलम्बन ही संसार सागर से श्रद्धालुओं को पार कर मोक्ष प्रदान करता है। तभी तो कविवर की भाव विह्लता इस रूप में उफन पड़ी :

हे देव ! किंकरमिमं परिमावयेह, मज्ञन्तमुद्धर जवे (जवाद) भवसिंधु पूरे। उत्तारणाय कुरु वीर! करावलम्बम भूयोऽसमञ्जसनिरन्तर चारिणो मे।

वर्द्धमान विलास स्तोत्र– भगवान महावीर की वंदना करते हुए कविवर श्री जगद्भूषण की श्रद्धा-भक्ति इस प्रकार उमड़ी है यथा–

एताश्रीवर्द्धमानस्तुति मतिविलसद् वर्द्धमानानुरागत्।
व्यक्ति नीतां मनस्यां वसति तनुधिया श्रीजगद्भूषणेन॥
यो धीते तस्य कायाद् विगलति दुरितं श्वासकाशप्रणामो।
विद्याढ्या नवद्या भवति विलुसिता कीर्तिदद्दामलक्ष्मी॥

भगवान महावीर की भक्ति से भक्त को सब कुछ प्राप्त हो सकता है और सब प्रकार की सुख-शान्ति का जीवन व्यतीत किया जा सकता है। किन्तु भक्ति मन की एकाग्रता एवं पूर्ण श्रद्धा-भक्ति-आस्था से की जानी चाहिए। भगवान महावीर के प्रति असीम आस्था रखने वाले भक्तों द्वारा पर्याप्त साहित्य का सृजन किया गया है जिसमें उनका पूर्ण जीवन वृत्त प्रतिबिंबित होता है तथा [illegible]

शब्दार्णव चन्द्रिका, महावीर स्तुति (जिनपति सूरी) महावीर स्तुति (जयसागर जी) महावीर स्तुति (सहज कीर्ति) वर्द्धमान स्तुति, वर्द्धमान विलास स्तोत्र वर्द्धमान द्वात्रिंशिका स्तोत्र, आदि प्रमाण हैं, जबकि वर्द्धमान स्वामी कथा (मुनि पद्मनन्दी जी) सवाद सुदर, जैन महावीर गीता, तीर्थंकर महावीर, तीर्थंकर वर्द्धमान, भगवान महावीर, भगवान महावीर का आदर्श जीवन, भगवान महावीर और उनका सदेश, महावीर चरित्रम, महावीर पुराण, महाश्रमण महावीर, महावीर मेरी दृष्टि में, महावीर चरित काव्यम, महावीर वचनामृत, वैशाली के राजकुमार वर्द्धमान महावीर, वीर विभूति, श्रमण भगवान महावीर, सस्कृत एव प्राकृत जैन साहित्य में महावीर कथा आदि कृतियाँ अपने आप में अद्वितीय है जिनमें भगवान महावीर विषयक विशिष्टतम् सामग्री सजोयी गई है, जबकि मूल आगम्-षटखडागम्, उपाग साहित्य, प्रकीर्णक, मूल सूत्र, छेदसूत्र, निर्युक्ति, चूर्णी, टीका साहित्य, कथा साहित्य, स्तुति स्तोत्र साहित्य आदि का विशाल भडार भगवान महावीर की महत्ता से मडित है। उक्त परिप्रेक्ष्य में भगवान महावीर के 2600 वें जन्म जयन्ती के अवसर पर तत्सबधी कुछ विशिष्ट सामग्री प्रस्तुत है यथा–

आचाराग सूत्र के नवें उपधानश्रुत नामक अध्ययन में महावीर की चर्य्या, सहिष्णुता, तपस्या आदि का बड़ा रोमाचक विवरण प्रस्तुत किया गया है यथा–

एवाइ सन्ति पडिलेहे, चित्तमताई से अभिन्नाय।
परिवज्जियाण विहरित्था, इति सखाए से महावीर।

सूत्रकृताग के वीर-स्तुति अध्ययन में महावीर का महत्ता को विशेष वर्णन किया गया है, धर्म-अध्ययन' में धर्म का प्ररूपण है। "समाधि-अध्ययन" में दर्शन, ज्ञान, चरित्र समाधि आदि की उपादेयता का विवरण है जबकि 'मार्ग-अध्ययन' में महावीरोक्त मार्ग को सर्वश्रेष्ठता प्रदान की गई है।

स्थानाग सूत्र (ठाणाग) के पाचवे अध्ययन में महावीर के पाच महाव्रतों की वरीयता को विशेष से बताया गया है जबकि आठवें अध्ययन में महावीर द्वारा दीक्षित राजाओं का विवरण दिया गया है।

व्याख्याप्रज्ञप्ति-इस सूत्राग को भगवती सूत्र नाम से भी जाना जाता है। इसमें 41 शतक है। भगवान महावीर विषयक विविध प्रसग इसमें पर्याप्त मात्रा में हैं। गोशालक विषयक वर्णन बड़ा रोचक है जबकि गौतम गणधर के प्रश्नोत्तर अत्यधिक सारगर्भित व उद्‌बोधक है।

ज्ञातृधर्मकथा (नायाधम्म कहाओ)- इसका नाम ही महावीर की महत्ता से मडित है जिसका व्युत्पतिगत अर्थ है प्रभु महावीर द्वारा उपदिष्ट धर्म कथाओं का प्ररुपण। इसका दूसरा नाम 'न्याय धर्म कथा' भी है। मेघकुमार का प्रसग इसमें अत्यधिक रोचक है।

उपासक दशा (उवासगदसाओ) अन्तकृद्दसा (अन्तगडदसाओ) अनुत्तरोपपातिक दसा (अणुत्तरोववाइयदसाओ), त्रिलोकप्रज्ञप्ति (तिलोय पणत्ति) तथा उपाग साहित्य, प्रकीर्णक, छेदसूत्र, नियुक्ति भाष्य, चूर्णी, टीका साहित्य, चरित साहित्य, काव्य कथा, आदि का विशाल वाङ्मय महावीर की महत्ता से विभूषित है, जिसमें सभी प्राणियों के कल्याण विषयक शिक्षा प्रद उद्‌बोधक सामग्री सजोयी गई है। सक्षिप्त लेख में तत्सबधी पर्याप्त साहित्य को समाविष्ट नहीं किया जा सकता फिर भी "सवाद सुदर" सस्कृत की इस कृति का श्लोक स्मरणीय है-

प्रणम्य श्री महावीर वदमालपुरदरम्।
कुर्वे स्वात्मोपकाराय ग्रथ सवादसुन्दरम ॥

◆

बीसवीं शती के जैन दार्शनिक

✍ डॉ. शोभा लाल जैन

बीसवीं शती में अनेक जैन दार्शनिक एवं नैयायिक हुए है, जो उल्लेखनीय हैं। उन्होने प्राचीन आचार्यो द्वारा रचित जैन दर्शन और जैन न्याय के ग्रंथों का न केवल गहन अध्ययन अध्यापन किया है, बल्कि राष्ट्रभाषा हिन्दी में अनुवाद और सम्पादन भी किया है। जैन न्याय के ग्रंथों के प्रतिपाद्य विषयों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक आकलन प्रस्तुत कर ग्रंथ और ग्रन्थकार का ऐतिहासिक परिचय प्रस्तुत किया है। हिन्दी भाषा में जैन न्याय के कुछ मौलिक ग्रन्थों का प्रणयन भी किया है।

जैन दार्शनिकों की परम्परा मे बीसवी शताब्दी के प्रमुख जैन सन्त प्रवर न्यायाचार्य पं. गणेश प्रसाद जी वर्णी, आर्यिका ज्ञानमति माताजी, न्यायाचार्य पं. माणिकचन्द्र जी "कौन्देय", पं. सुखलाल संघवी, डॉ. पं. महेद्र कुमार न्यायाचार्य, पं. दलसुख भाई मालवणिया, डॉ. दरबारी लाल कोठिया डॉ. ए एन. उपाध्याय, डॉ. हीरालाल जैन, पं. फूलचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री, पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री, पं. चैनसुखदास न्यायतीर्थ आदि जैन विद्वानों ने जैन दर्शन के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिया है।

न्यायाचार्य पं. गणेशप्रसाद वर्णी ने कुन्दकुन्दाचार्य लिखित समयसार की टीका एवं अनुवाद किया है। अनेक छात्रों को जैन दर्शन एवं जैन न्याय मे प्रशिक्षित किया है। आर्यिका ज्ञानमती माता जी, हस्तिनापुर ने अष्टसहस्री और प्रमेयकमलमार्तण्ड जैसे दार्शनिक ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद किया है। पं. माणिक चंद जी "कौन्देय" ने आचार्य विद्यानंद लिखित तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक भाष्य का सात खण्डों में हिन्दी अनुवाद किया है। पं. सुखलाल संघवी ने प्रमाण मीमांसा, ज्ञान बिन्दु, सन्मति तर्क, जैन तर्क भाषा आदि ग्रंथों का वैदुष्य पूर्वक सम्पादन कर उनकी सरल प्रस्तावनाए लिखी है। उनका भाषा टिप्पण, विभिन्न ग्रंथों के तुलनात्मक उद्धरण और परिशिष्टों का संयोजन महत्त्वपूर्ण हैं।

डॉ. पं. महेन्द्र कुमार ने न्याय विनिश्चयविवरण, सिद्धान्तविनिश्चय टीका, न्यायकुमुदचन्द्र (लघीस्त्रयालंकार), प्रमेयकमलमार्तण्ड (परीक्षामुखालंकार), अकलंकग्रन्थत्रय, तत्त्वार्थवार्तिक भाष्य, तत्त्वार्थवृत्ति (श्रुत सागर कृत) आदि के विद्वतापूर्ण सम्पादन के साथ उनकी अनुसंधान पूर्ण प्रस्तावनाएं लिखी है। हिन्दी भाषा में लिखा गया "जैन दर्शन" उनकी मौलिक रचना है।

डॉ. हीरालाल जैन प्राच्य विद्याओं के, जैन सिद्धान्त, प्राकृत, संस्कृत एवं अपभ्रंश भाषा और साहित्य के अप्रतिम तथा मर्मज्ञ विद्वान थे। उनके

द्वारा दूसरी शती में रचित षटखण्डागम का श्रमसाध्य सम्पादन और आठवीं शती में लिखी गयी उनकी धवला टीका की व्याख्या, हिन्दी अनुवाद और ऐतिहासिक भूमिका सहित सोलह खण्डों में प्रकाशित उनकी विशिष्ट उपलब्धि है।

प फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री ने श्री पूज्यपादाचार्य विरचित सर्वार्थसिद्धि का हिन्दी अनुवाद एव सम्पादन किया है। तत्त्वार्थसूत्र पर लिखी गयी सर्वार्थसिद्धि प्रथम टीका है।

प चैन सुखदास न्यायतीर्थ (जयपुर) ने भी जैन दर्शन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। सर्वार्थसिद्धिसार का सम्पादन किया है। यह सर्वार्थसिद्ध का सार रूप है। जैनदर्शनसार यह भी सस्कृत में लिखी गयी उनकी पुस्तक है।

डॉ दरबारी लाल कोठिया, चार न्यायाचार्यों में प्रसिद्ध चौथे न्यायाचार्य थे। उन्होंने जैन दर्शन के क्षेत्र में बहुत ही महनीय योगदान दिया। उन्होंने न्याय-दीपिका, आप्त-परीक्षा, प्रमाण परीक्षा, पत्रा-परीक्षा, स्याद्वाद-सिद्धि प्रमाण-प्रमेयकलिका द्रव्य सग्रह आदि ग्रथों का सम्पादन एव हिन्दी अनुवाद किया है तथा उनकी विस्तृत प्रस्तावनाए लिखकर साथ में निबद्ध की है। इसके अतिरिक्त जैन तर्कशास्त्र में अनुमान-विचार, जैन दर्शन और प्रमाण शास्त्र परिशीलन तथा जैन तत्वज्ञान मीमासा ये तीन अनुसधानपूर्ण मौलिक कृतिया है, जो हिन्दी भाषा में लिखी है।

◆

(भारतीय भाषा विज्ञान, पृष्ठ 113-114)

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी

जिन ऋषियों ने वेद मत्रों की रचना की उन्होंने उसी समय वैदिक भाषा की भी रचना न कर डाली थी। वह भाषा एक सुदीर्घ विकास-परम्परा का परिणाम है। इस सम्बन्ध में आचार्य किशोरीदास वाजपेयी का निम्नलिखित तर्क विचारणीय है "वेदों की भाषा का प्रकृत रूप क्या था यह जानने के लिये निराधार कल्पना की जरूरत नहीं। वेदों की जो भाषाहै, उससे मिलती जुलती ही वह 'प्रकृत-भाषा' होगी, जिसे हम 'भारतीय मूल भाषा' कह सकते है। उस मल भाषा को 'पहली प्राकृत भाषा समझिए। 'प्राकृत भाषा' का मतलब 'जनभाषा'। जब वेदों की रचना हुई उससे पहले ही भाषा का वैसा पूर्ण विकास हो चुका होगा। तभी तो वेद जैसे साहित्य को वह वहन कर सकी। भाषा के इस विकास में कितना समय लगा होगा। फिर, वेद जैसा उत्कृष्ट साहित्य तो देखिए। क्या उस मूल भाषा या 'पहली प्राकृत की पहली रचना ही वेद है ? सम्भव नहीं। इससे पहले छोटा मोटा और हल्का भारी न जाने कितना साहित्य बना होगा, तब वेदों का नम्बर आया होगा सो, वेदों की रचना के समय तक वह मूल भाषा पूरी तरह विकसित हो चुकी हो होगी और देश-भेद से या प्रदेश-भेद से उसके रूप भेद भी हो गये होंगे। उन प्रादेशिक भेदों में से जो कुछ साहित्यिक रूप प्राप्त कर चुका होगा, उसी में वेदों की रचना हुई होगी परन्तु अन्य प्रादेशिक रूपों के भी शब्द प्रयोग ग्रहीत हुए होंगे।

◆

कविवर श्री जौहरी लाल जीः एक परिचय

✍ बाबू लाल सेठी

हिन्दी साहित्य मे जैन कवियों का महत्व पूर्ण योगदान रहा है। परन्तु उनके द्वारा रचित साहित्य का समुचित प्रचार प्रसार न होने के कारण वे प्रकाश में नही आ सके। कविवर श्री जौहरी लाल जी भी उनमें से एक हैं। आपके द्वारा रचित आलोचना पाठ का पठन तो प्रायः प्रत्येक जैन धार्मिक नर नारी प्रतिदिन करता है। सामायिक पाठ के द्वितीय अंग के रूप में भी इसका पाठ किया जाता है। इस पाठ में बड़ी सरल भाषा में दैनिक क्रियाओं में होने वालों पापों का वर्णन समुचित रूप से किया गया है। सिद्ध पूजा एवं बीस तीर्थंकर पूजा भी प्रकाशित देखने को मिली है।

शास्त्र भंडार को व्यवस्थित करते समय एक हस्तलिखित पांडुलिपि देखने को मिली जिसमें उनके द्वारा रचित करीब 200 रचनाऐं है। इन रचनाओं में स्तुतियॉ,भजन, गीत, स्तवन तथा अन्य पद्यात्मक रचनाऐं है। तीन भावातमक गद्य स्तुति भी है जो प्रायः देखने को बहुतकम मिलती है। ये रचनाये उपदेशी, वैरागी, अध्यात्मिक, भक्ति परक एवं नीति संबंधी हैं । आपकी भाषा में ठेठ मारवाड़ीपन है। शैली बड़ी प्रभावशाली एवं अलंकार पूर्ण है। तत्कालीन प्रचलित शब्दों का भरपूर उपपोग किया गया है। आपकी यह रचनायें आपको कविवर भूधर दास जी एवं बुधजन जी के समकक्ष ठहराती है।

आपकी भक्तिपरक रचनाओं की तुलना तुलसी, सूरदास, बुधजन आदि से सहज की जा सकती है। यथा-

बुधजनः- मेरे अवगुन जिन न गुणों मै ओगुन को धाम।
पतित उद्धारक आप हो करो पतित को काम ॥

सुरदासः- मेरे अवगुन चित्त न धरो ।
समदर्शी है नाम तिहारो चाहो तो पार करो ॥

जोहरी लाल जी पार्श्वनाथ स्तवन मेंः- मेरे ओगुन चिन नहीं धरिये, दीन दयाल जिनंद ।
आपनो लखि अपनों पद दीजयों चरन सरण आनद ॥

इस प्रकार सभी संत कवियो ने प्राय:एक सा ही भाव दर्शाया है। पाण्डुलिपियों में वर्णित विशेष तीन रचनाओं के संबध में कुछ जानकारी निम्न प्रकार है -

1. पारसनाथ स्तवनः- इसके 55 पदों में उन्होंने जैन धर्म का सार रखते हुये अशुभों से निवृत्ति एवं शुभ में प्रवृत्ति की प्रार्थना करते हुये आत्मगुणों का वर्णन किया है यथा-

आहार कु भय वा और परिग्रह मैथुन संज्ञा चार ।

अनादि काल कत लग रही सग इनते लेय उबार ॥35॥
सपरस रसना नेत्र नाशिका करण जु इन्द्री पच ।
इनके भोग दुसह दु ख कारण मेट करो सुख सच ॥36॥
क्रोध मान माया लोभादिक षोडस भेद विडारि ।
हास्य अरति रति सोक जुगुप्सा भय जुव वेद निवारि ॥37॥
ज्ञानावरण दरसनावरनी, मोहनीय अतराय ।
चार धातिया नाश करण की शक्ति देहु जिनराय ॥38॥
कर्म वेदनी आयु नाम गौतर जू अघाति च्यारि ।
इनकू मेट सिद्ध पद दीज्यों जन्म मरण दुख टारि ॥ 39॥
परपरणति तजि आप आप लखि ध्याऊ शुद्ध स्वरूप ।
सो निज रूप क्रिया निधि दे प्रभु कीजै आनद रूप ॥40॥

2 प्रतिज्ञायें – आपने जीवन से सम्बन्धित सभी पहलुओं यथा– खाना, पहिनना, खेलना, व्यवहार आदि के सम्बन्ध में लिये हुऐ नियमों का बड़ी ही सरस भाषा में 68 पदों में वर्णन किया है यथा–

पारस नाथ जिन जोग त्रिविधि के त्याय
करू प्रतिज्ञा आप ढिग हे जिन होऊ सहाय ॥
जुवा चौपड़ सतरज गजफो होड़ादिक सब त्याग
मेह फाटिका पेटी केरा त्याग कियो सम भाव ॥6॥
बहुबिजा की रीत न जानी त्याग हरी सब जाति
चावल गेहूँ जव जु चणा उड़द मूग षट धान
हल्दी धनिया जीरालूण जु साभर सिधव मान ॥56॥
काली लाल मीरच दाणामेथी लोंग आवला लेय
गुड़ हींगरा अरू पोदिना डोडा वा फल जेय ॥57॥
सख्या सब चालीस जु इनकी और ते नही काम ॥60॥
जिनमत सेवक जैसा धरमी तिनके शुभ आचार।
सो घर भोजन जीमन राखे सेस दिया सब छार ॥ 44॥
भोजन जीमत बोलू नाहि कर ते दयो समझाय ।
लूण मीरच उपर से लेवन की नही उपजत चाहि ॥ 45॥
हरित काय निज भोजन काजे लेय सुखाऊ नाहि ।
यामे दोष अधिक जिनवर जी भाखे आगम माहि ॥ 46॥

इस रचना में उन्होने भक्ष्य, अभक्ष्य, मर्यादा, समयावधि तथा जिसका उन्हें ध्यान नहीं था उसका भी उन्होने उल्लेख किया है। जो जीवन मे संयम पालना चाहते हैं, उनके लिये यह रचना बहुत ही सारपूर्ण है।

3. कुरीतियाँ :- विभिन्न सामाजिक समारोहों के अवसर पर, यथा- विवाह, मृत्यु, जन्म आदि पर की जाने वाली कुप्रथाओं का 28 पदों में बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है , यथाः-

या जग के मांहि सैली बिना गैली बांता हो रही ॥टेक॥
ब्याह विनायक मंगल के हित भीत कुदेव थपावे
जिन मंदिर को बैठ पालकी कंचनी नचती जावे ॥ 16 ॥ या जग....
फेरा के दिन सब तिरिया मिल टुंट्यों सांग बणावे
एक जणी को बींद बणावे परणी को परणावे ॥ 22 ॥ या जग....
तिरिया के जन पलो लागे अथवा पग पड़ जावे
झिलमिल दिया टामण टूमण झाडा जाय झडावे ॥ 28 ॥ या जग....
विसफोटक को रोरा होय जब माता पूजन जावे
एक लुगाई के सिर सिगरी और सीतला गावे ॥ 29 ॥ या जग....
तन धन सुत रक्षा हित हिंसा जतन करावे
काली गोरी देवी ध्यावे भेरू जक्ष मनावे ॥ 30 ॥ या जग ...
दाग देकर पाणी देवे फिर भाटा खुडकावे
तीया के दिन फूल मगावे कव्वा न्योत जिमावे ॥ 33 ॥ या जग....
ठोरन की मिष्टा भेली कर ताको थापि सुखावे
न्हाय धोकर करे रसोई ग्लानि कहां नसि जावे ॥ या जग ...

आपके जीवन के परिचय के बारे में देखने को नहीं मिला परन्तु निम्न पदों से ऐसा प्रतीत होता है कि आपने लश्कर ग्वालियर और जयपुर मे निवास किया है। आपकी भाषा में मारवाड़ीपन होने से जयपुर में अधिक निवास करना प्रतीत होता है , यथा- पारसनाथ स्तवन में-

लश्कर सहर सु मध्य सार जिन भवन विराजे।
समोशरण संयुक्त जिनंद पारस प्रभु राजे ॥
जिनकी पूजा भविक करत नित कलिमल धोवे।
इन्द्रादिक पद पाय अनुक्रम शिवपति होवे ॥
ये सरधा उत्पात करि करि भक्ति हम तुम [illegible] ।
है जिन [illegible] ॥ 56 ॥

[illegible] में -

परिग्रह हजार अढाई दश विधि जैपूर चलण समाज

या विधि पच अणुव्रत ध्याऊँ शुद्धातम के काज ॥15॥

आपको पारस नाथ भगवान का विशेष इष्ट था क्योकि प्रतिज्ञा करते समय आपने उन्ही को स्मरण किया है और उनके ही स्तवन में पूर्ण जैन धर्म का सार रख दिया है। आप सगीत के भी पूर्ण मर्मज्ञ प्रतीत होते है क्योंकी किस भजन को किस राग में गाना है वह उन्होने गीत या भजन के पहिले लिखा है। यह प्रयास किया जा रहा हैकि उनके भजनों को जो ठेठ मारवाड़ी भाषा मे है और जिनका अर्थ आज की पीढ़ी को समझना मुश्किल है उन्हे हिन्दी में रूपान्तरित किया जाए एव विभिन्न जैन पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशन हेतु उपलब्ध कराया जावें तथा बाद में वह एक पुस्तकाकार प्रकाशित कराया जावें। कुछ भजन गीत निम्न प्रकार है –

(1)

दान दीजिये मन बच काई। निर इछक सुर शिव सुखदाई ॥
फल इछा तै फल नसि जाई कोटिन को धन कण में गमाई
दान दिजिये मन वच काई निर इछक सुर शिव सुख दाई
मिथ्या दृष्टि बिन बाछाते भोग भूमि सूर पद जा पाई
सम्यक दृष्टि सुपाय जोगते तद् भव करमन देत खिपाई॥ दान दिजिये

येक पेसे न फलयेतो जो भव सरधा भाव धरै तो
कृत कारत अनुमोदन ताई मन वच तन हौरी सरधाई॥ दान दिजिये

(2)

तजो रे जिया पर वनिता दुख दाई
या मैं सुरत रच न पाई
देखत ही तो दोष करत है
बातानि बुधि बिसराई॥
छिवत शुक्र जाय विनसि सब
सेवत नरक सिधाई॥ तजो रे
पच राज मिल दन्ड देत है
धक धक सब जग गाई
तन धन जस सुख नास होत फुनि
सकल दोष उपजाई॥ तजो रे

रावण परतिय इच्छा करि
विनसे ये निंद कहाई
ताके नाम तनी रच मूरति
सब जन मारत ताई॥ तजो रे ...
नागिन मारत है प्रकोप तै
ये मारत हरषाई
विष उतरन की विधि जगमाही
याकी औषध नाहि तजो रे ॥
ते पर तिय लखि भूमि निहारत
आप आप लव लाई
सो सुर शिव सुख पाई ज्हौरी
मुक्ति रमनि पति थाई ॥तजो रे ....

(3)

चेतन चित धारी के, निज गुन में लग रही सटा सटी। टेक ॥
पर पदार्थ तै आप भिन्न है, जड़ है रही फटा फटी ॥
रागादिक विभाव भाव तजि शुद्ध चिदानंद रटा रटी ॥ चेतन..
इंद्री विषै भोग विष सम लखि चाह नही है नटा नटी॥
सब जीव पै दया चित धरि मोह द्वेष की घटा घटी॥ चेतन..
गुण स्थान श्रेणी क्षिपक चढ़ि घाति कर्म की कटा कटी।
लोका लोक चराचर देखे ज्हौरी आनन्द गटा गटी॥

हमारे लिए यह गर्व की बात है कि काल प्रभाव वश, परिस्थितिवश तथा भीषणा आघात आदि के कारण हमारे विपुल ग्रथों के नष्ट या विलुप्त होने के बावजूद अभी भी मुद्रित/अमुद्रित/अप्रकाशित विशाल ग्रथ राशि विद्यमान है जिसके सरक्षण एव प्रकाशन की समुचित व्यवस्था किए जाने हेतु समन्वित प्रयास अपेक्षित हैं। इसके लिए उन सस्थाओं को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये जो इस कार्य में सर्वतोभावेन समर्पित होकर सलग्न है। इस दिशा में यद्यपि कुछ सस्थाए कार्यरत हैं और साधनाभाव होते हुए भी यथाशक्य प्रयासरत हैं, तथापि अभी कुछ वर्ष पूर्व ही मध्य प्रदेश के बीना नगर में स्थापित अनेकात ज्ञान मन्दिर एव शोध सस्थान ने साधनाभाव होते हुए भी अल्प समय में ही हस्त लिखित ग्रथों की पाण्डुलिपियों का सकलन कर उनके सरक्षण का श्रम साध्य प्रयास किया है वह निश्चय ही सराहनीय है। हमारा कर्त्तव्य है कि ऐसी सस्था को हम अपना पूर्ण सहयोग देकर उसे सतत प्रोत्साहित करें। क्योंकि जो कार्य हम स्वय (एकाकी) नहीं कर सकते वह कार्य यदि कोई सस्था करती है तो निश्चय ही हमारी बधाई एव सहयोग की पात्र है।

अनेकान्त साहित्य शोध सस्थान
सूरजगज दूसरा चौराह इटारसी-461111



धर्म

✍ प्रकाश चन्द्र सघी बापू नगर, जयपुर

जगत में
बात धर्म की
होती है काफी,
लो भूल ना जाय इसे
इस कारण शायद
बने हुए है
लाखों मन्दिर, मस्जिद गिरजाघार भी।
सत और पण्डित
हजारों की सख्या में,
जा नगर-नगर और गाँव-गाँव में
करते हैं प्रचार धर्म का
पर अर्थ धर्म का
लोग समझ ही पाये कितना।
धर्म स्थलों पर भी
करने को प्रभु के दर्शन,
पूजा अर्चन, भक्ति
बहुत से नित जाते हैं
पर वे भी अर्थ धर्म का
शायद जान नहीं पाए है।
भीड़ देखकर लोगों की
प्रवचन और सत्सगों में
मदिर और तीर्थस्थलों में,
लगता है
बढ आस्था रही धर्म में,
औ प्रभावना लोगों के मन में।
पर वास्तविकता तो यह है
दुनियाँ में बढ पाप रहे हैं
अनाचार, अत्याचार,
झूठ, कर चोरी, बेईमानी जैसे कामों में
कथित धार्मिक जन भी लिप्त हो रहे हैं।
सब धर्मों का लक्ष्य एक है-
आत्मा परम शुद्ध हो जाए
उसको मिले ससार भ्रमण से मुक्ति,
परम शाति और सुख वह पाए।
पर क्या बिना शुद्धि हुए मन की
आत्मा की शुद्धि सभव है ?
कितना भी जाओ मदिर,
कर लो दान
कितनी भी कर लो भक्ति प्रभु की,
कितने भी कर लो व्रत, उपवास,
कितने भी पढ लो धर्म शास्त्र,
करने का यह सब अर्थ नहीं है
यदि जीवन मे नैतिकता का है अभाव,
और कर्तव्य बोध नहीं है,
यदि मन कषाय रहित हो शुद्ध नहीं है।



प्राकृत एक झलक

✍ प्रस्तोताडॉ.कमल चन्द सौगाणी
चित्तरंजन मार्ग, सी-स्कीम , जयपुर

केतकर मानते है कि वैदिकभाषा का निर्माण प्राकृतों के रूप से हुआ है।[1] प्राकृतों के विविध रूपों में एक रूप ने वैदिक भाषा का रूप लिया। कालक्रम में वैदिक का रूपांतर लौकिक संस्कृत में हुआ और देश भर में लौकिक संस्कृत का भौगोलिक प्रसार होता गया।

डॉ.माधव मुरलीधर देशपांडे लिखते हैं–

ऋग्वेदीय ऋचाओ की रचना करने वाले ऋषि अपने दैनिक व्यवहार में प्राकृत सदृश भाषा का व्यवहार करते होगे । प्राकृत की कुछ विशिष्टताएँ ऋग्वेद के कुछ शब्दों में ,ध्वनियों में,प्रकृति–प्रत्ययों में और वाक्य–रचनाओ में मिलती हैं ।

लगता है स्वयं पाणिनी दो स्तर की भाषाओं का व्यवहार कर । उसके आसपास के साथ लोग संस्कृत का व्यवहार नहीं करते थे, इसलिए वह प्राकृत बोलता था।

संस्कृत –प्राकृत दोनो भाषाओं में आदान – प्रदान होता रहा है। स्वयं संस्कृत के निर्माण में प्राकृत की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है ।

संस्कृत सीखने वाले और सिखाने वाले दोनों ही प्राकृत भाषाओं का व्यवहार करते थे। शिक्षा के स्तर पर (सीखने, अधययन करने और आवश्यक स्थानो पर उसका उपयोग करने पर भी) संस्कृत का व्यवहार करने पर भी –बाकी सारा काम काज प्राकृत मे होता था। इसका परिणाम यह होता कि लोग जब संस्कृत का व्यवहार करते, उस समय उनकी भाषा में [illegible] था और उसे गुरू सदैव ठीक करते रहते थे । स्वयं गुरू भी प्राकृत शव्दों को संस्कृत रूप देते रहते थे। जब सस्कृत में शव्द न मिलता तो सीधे प्राकृत शब्द का व्यवहार करते और उसे संस्कृत –ध्वनियों के अनुसार परिवर्तित कर उस शव्द को संस्कृत बना देते थे । यो संस्कृत शव्द भडार प्राकर्तो के बल समृद्ध होता रहा है। संस्कृत भाषा मे शव्द सीधे प्रकृत भाषाओं से गये हैं। इसलिए जब उसें संस्कृत रूप दिया गया तो शव्द न बदलकर उस शव्द की केवल ध्वनियॉ वदली गई । ध्वनि –परिवर्तन प्राकृतों से संस्कृत में हुआ है, प्राकृतों ने संस्कृत का रूप लिया है। प्राकृतों के रूप सहज में उच्चारित होते थेऔर संस्कृत तो सीखनी पडती थी। यह क्रम शताव्दियों तक वैदिक काल से पाणिनी के काल तक चलता रहा है। संस्कृत भाषा इस तरह विकसित होती रही है और वह समाज की अभिजात भाषा बनी रही है ।

द्विभाषी समाज में संस्कृत अभिजात भाषा थी और प्राकृतें लोक भाषाएं थी। दोनो के प्रयोजन अलग–अलग थे और उनका व्यवहार भी अलग–अलग था। आज हमारे देश में अंग्रेजी लोक भाषा नहीं है। सब की मातृभाषाए अलग–अलग है किन्तु सभी अंग्रेजी सीख रहे है और शिक्षा के क्षेत्र में ही नहीं अपितु अन्य क्षेत्रों में भी मातृभाषाओं का [illegible] न कर अंग्रेजी का व्यवहार कर रहे है।

[illegible]

[illegible]

में इस बात का प्रमाण है कि प्राकृत बोलनेवालों की सख्या सस्कृत बोलने वाले से अधिक थी।

प्राकृतों के विकास का ऐतिहासिक विकास काल ई पू छठी शती से बारहवीं शती ई तक–है। किन्तु प्राकृत भाषाए वैदिक काल से पतजलि के समय तक तो लोक–व्यवहार की भाषाए रही है।

सब प्राकृत भाषाओं का वैदिक व्याकरण और शब्दों का नानास्थलों में साम्य है। जितना घना सबध प्राकृत भाषाओं का वैदिक बोली के साथ है इतना ही घना सबध इनका मध्यकालीन और नवीन भारतीय जनता की बोलियों से है ।

प्राकृत को बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म ने अपनाया है । गौतम बुद्ध और भगवान महावीर ने प्राकृत के रूपों को लोक व्यवहार की भाषा समझकर महत्व दिया है ।

महाराष्ट्री प्राकृत दक्षिण के प्रदेशो में भी पहुँची है। दक्षिण की भाषाओं के उद्भव से पूर्व प्राकृत भाषा दक्षिण में व्याप्त हो गई थी । जैन धर्म और बौद्ध धर्म के दक्षिण में पहुचँने का प्रमाण, वहाँ पर प्राकृत भाषा का पहुँचना है । दक्षिण में आधुनिक भाषाओं (मराठी, तेलगु, कन्नड़) के अभिलेखों से पूर्व प्राकृतों में लिखे मिलते है ।

सस्कृत की तुलना में दक्षिण की भाषाएँ– तेलुगु– कन्नड़ मलयालम– प्राकृत से अधिक मेल खाती है ।

मौर्यो के काल में तो प्राकृत राजभाषा थी ही किन्तु उसका यह क्रम सातवाहनों के काल में भी जारी रहा । प्राकृत का अधिक उत्कर्ष सातवाहनों के काल में हुआ है –और वह प्राकृत महाराष्ट्री प्राकृत है ।

मौर्य राजाओं के समय में उत्तर–पश्चिम में यवनों (ग्रीकों का) का राज्य था। ग्रीक या यवन राजाओं नें जिस भारतीय भाषा का प्रयोग किया है वह भाषा प्राकृत है, उसकी लिपि खरोष्टी है ।

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी कायह चितन ठीक है कि अपभ्रश भाषा का ऐतिहासिक (पारपरिक भी) सबध प्राकृत कहते हैं। वे अपभ्रश को तृतीय प्राकृत कहते है।

अपभ्रश भाषा प्राकृत के परपरा की भाषा है। वह सस्कृत के परपरा की भाषा नहीं है।

अपभ्रश भाषाएँ ऐतिहासिक कालक्रम में प्राकृत भाषाओं से जुड़ी है। प्राकृतों की परपरा अपभ्रशों को पाप्त हुई हैं और अनतर अपभ्रशों की परपरा आधुनिक–भाषाओं को प्राप्त हुई हैं।

भारत की प्राचीन भाषाए

डॉ राजमल वोरा

◆

प्राकृत प्रकाश की प्रस्तावना

डॉ मण्डन मिश्र

प्राचीनता के विषय मे अलग-अलग तरह की व्याखाएँ विभिन्न समीक्षक अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार करते आये है, इस विवाद अथवा तर्क-वितर्क से ऊपर उठकर इतना कहना पर्याप्त होगा कि ये दोनों एक-दूसरे के पूरक है। इसीलिए सस्कृत-नाटकों में प्राकृत को स्त्री-पात्रों की भाषा के रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसका मूल कारण इस भाषा की मधुरिमा इसके शब्दों की मोहकता और हृदय के आकर्षण की स्वाभाविक शक्ति है। इसका साहित्य लालित्यपूर्ण और जनसामान्य को प्रभावित करने की महती शक्ति से सम्पन्न है।

तृतीय खण्ड

इतिहास एवम् पुरातत्व



भारत के दिगम्बर जैन गुहा मंदिर

✍ महेन्द्र कुमार पाटनी

प्राचीनकाल में जैन धर्मावलम्बियों ने भी काफी गुफाओं में मंदिरों का निर्माण करवाया तथा मूर्तियों को प्रतिष्ठित करवाया। इनके संबंध में संक्षिप्त जानकारी यहाँ दी जा रही है।

गजपंथा–

यहाँ से सात बलभद्र- विजय, अचल, सुधर्म, सुप्रभ, नन्दी, नन्दी मित्र, सुदर्शन ने मुक्ति प्राप्त की थी। यहाँ की गुफाओं का निर्माण सम्भवतः ईसा की प्रथम शताब्दी में हुआ था। गजपंथा पहाड़ पर तीन गुफा मंदिर है। पहली गुफा पार्श्वनाथ गुफा और पार्श्वनाथ प्रतिमा अत्यन्त प्राचीन है। इसके बाद दो गुफा आती है। इनका निर्माण कब व किसने करवाया ज्ञात नही होता, प्रतिमाओं पर लेप चढ़ाने से उनकी कला व रचना काल मालूम नहीं होता। दोनों गुफाओं में पलस्तर करके कमरों का रूप दे दिया गया है। प्रथम गुफा के दोनो पैनलों में तीर्थकर मूर्तियां हैं। दूसरी गुफा में सामने वेदी पर भगवान पार्श्वनाथ की 4 फुट ऊंची, 2 फीट 10 इंच चौड़ी कृष्णवर्ण की प्रतिमाएं विराजमान है। यह क्षेत्र महाराष्ट्र में नासिक से 6 कि.मी उत्तर की ओर डिण्डोरी रोड पर स्थित है। ग्राम म्हसरल है।

मांगीतुंगी–

यह सिद्धक्षेत्र महाराष्ट्र प्रान्त में स्थित है। यहाँ से रामचन्द्रजी, हनुमानजी, सुग्रीव, नील, महानील और असंख्य मुनियों ने निर्वाण प्राप्त किया था। जैन मान्यतानुसार नारायण श्री कृष्ण का अंतिम संस्कार उनके बड़े भाई बलरामजी ने यहीं पर किया था। आचार्य भद्रबाहु जब दक्षिण जा रहे थे तब यहां पधारे थे, इसकी स्मृति स्वरूप एक गुफा में उनकी ध्यानस्थ मूर्ति विराजमान है।

तलहटी से 1 किलोमीटर कच्चे मार्ग से सीढ़ियां शुरू होती है कुछ सीढ़ियां चढ़ने पर दो गुफाएं मिलती हैं जो शुद्धबुद्ध जी की गुफाएं कहलाती है। इन दोनों में तीर्थकर प्रतिमाएं विराजमान हैं। कई प्रतिमाएं दीवार मे भी खुदी हैं। मांगी शिखर पर 2, तुंगी शिखर पर एक गुफा है। इन्हे मंदिरों का रूप दे दिया गया है। इन दीवारों मे मुनियों व तीर्थंकरों की असंख्य मूर्तियां हैं।

चांदवड़ गुफा मंदिर–

यह गुफा मंदिर नासिक महाराष्ट्र में है। गजपंथा से मांगीतुंगी जाते समय चांदवड पड़ता है। वहाँ से चांदवड 40 कि.मी. है। ग्राम से पूर्व की ओर थोड़ी दूरी पर पहाड़ी के मध्य में श्रीचन्द्रनाथ दिगम्बर जैन गुफा के नाम से एक गुफा है। यहाँ मूलनायक के रूप में भगवान चन्द्र प्रभु की प्रतिमा है। यह साढ़े तीन फुट की अवगाहना सहित कृष्णवर्ण की पद्मासन प्रतिमा है। इसमें भगवान पार्श्वनाथ की पद्मासन ढाई फुट की तथा चार फुट की खड्गासन प्रतिमा भी है यहाँ मूलनायक की दायीं ओर एक मनोहर प्रतिमा, शिलापट्टों पर चौबीसी [illegible] यहाँ अन्य प्रतिमाएं [illegible] है।

सभी प्रतिमाए श्यामवर्ण की है। किसी प्रतिमा पर लेख नहीं है परन्तु ये रचना शैली के आधार पर 8वीं शताब्दी की मालूम होती है।

चाम्मार लेनी–

यह गजपथा से 16 किलोमीटर दूरी पर है यहाँ की पाडव गुफाओं में 11 न की गुफा में भगवान महावीर की एक प्रतिमा 3 फुट ऊची पदमासन मुद्रा में है।

अजनरी क्षेत्र–

गजपथा से 16 कि मी दूर त्र्यबक रोड पर अजनेरी क्षेत्र स्थित है। यहाँ पर्वत के ऊपर दो गुफाए है एक गुफा में भगवान मल्लिनाथ की लगभग 3 फीट ऊची एक पदमासन प्रतिमा पहाड़ में उत्कीण है-दूसरी गुफा में 5 मूर्तियाँ उत्कीण हैं।

झरी पार्श्वनाथ–

यह क्षेत्र भी महाराष्ट्र में स्थित है यह पूना सतारा मिरज रेल मार्ग पर किर्लोस्कर वाड़ीसे 5 कि मी दूर है। सड़क मार्ग से सागली से 51, कराड़ से 20, तास गाव से 2▪ कि मी है। कुडल ग्राम से 2 कि मी दूर है। पहाड़ी पर 26 फीट 2 इच लम्बी तथा 13 फीट 8 इच चौड़ी एक प्राकृतिक गुफा बनी हुई है। गुफा में, मडप में तथा मूर्ति के ऊपर निरन्तर जल झरता रहता है। इस गुफा में 3 फीट 8 इच अवगाहन की कृष्णवर्ण की पद्मासन पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा विराजमान है। मूर्ति पर 9 फण है। दायी ओर पद्मावती देवी की 2 फीट 7 इच की कृष्णवर्ण चर्तुभुज प्रतिमा है। फण के ऊपर पार्श्वनाथ की लघु प्रतिमा बनी है, और भी कई मूर्तिया है।

धाराशिव की गुफाए–

ये गुफाए महाराष्ट्र प्रात के उस्मानाबाद शहर से 5 कि मी दूर है। भगवान पार्श्वनाथ के कुछ वर्षों के पश्चात् कलिकुड नरेश ने यहा तीन गुफा मदिरों का निर्माण करवाया था उनमें भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा विराजमान करवाई थी। इस पर्वत पर 4 गुफा उत्तराभिमुखी व 3 गुफाए दक्षिणाभिमुखी बनी है।

गुफा न 1 इसमें सामने भगवान पार्श्वनाथ की 6 फीट श्याम वर्णा प्रतिमा है। इसी की बगल में 3 फुट की भूरे पाषाण की सर्वतोभद्रिका प्रतिमा है। एक 3 फुट की अर्ध पद्मासन भूरे पाषाण की तीर्थकर प्रतिमा भी रखी है। यहीं पर एक 2 फुट 7 इच ऊची श्यामवर्ण की सरस्वती मूर्ति भी है।

गुफा न 2 इसमें दीवार के सहारे 4 फीट 4 इच ऊची पार्श्वनाथ की खड़गासन प्रतिमा विराजमान है। इसी के पास 3 फीट 9 इच ऊची सर्वतोभद्रिका प्रतिमा है तथा 1 फीट 9 इच की पाषाण फलक में पद्मासन प्रतिमा उत्कीर्ण है।

गुफा न 3 इसमें 4 फीट चबुतरे पर भगवान पार्श्वनाथ की 6 फीट 2 इच ऊची और 6 फीट चौड़ी अर्ध पद्मासन 7 फर्ण की मूर्ति विराजमान है। इसमें एक अर्ध पद्मासन 4 फीट 2 इच ऊची श्यामवर्ण प्रतिमा भी है।

गुफा न 4 इसमें गारे मिट्टी की बनी हुई पार्श्वनाथ की जीर्ण शीर्ण मूर्ति विराजमान है। दक्षिणमुखी गुफा न 6 इसमें मध्य में 5 फीट 6 इच ऊची जीर्ण शीर्ण

9 फणों की पार्श्वनाथ की प्रतिमा है।

एलोरा के गुहा मंदिर–

एलौरा की जगत विख्यात गुफाएं ओर गुहा मंदिर महाराष्ट्र प्रांत के औरांगाबाद से पश्चिम मे 30 कि.मी. दूर स्थित हैं। यहाँ कुल 34 गुफाएं है जिनमें क्रमांक 30 से 34 तक की गुफाएं जैन धर्म से संबंधित हैं। गुफा नं. 30 यह सामने 4 फीट ऊंची सर्वतोभद्रिका प्रतिमा रखी है। इसकी प्रतिमाएं खड़गासन है।

गुफा नं. 30 (अ) इसमें दांयी ओर एक स्तम्भ में एक विशाल अर्ध पद्मासन मूर्ति के दर्शन होते हैं। इसकी बांयी ओर भी एक स्तम्भ में अर्ध पद्मासन मूर्ति है। इस गुफा को छोटा कैलाश भी कहा जाता है। यह ईसवीं संवत् 1247 की निर्मित है। इस गुफा में कई तीर्थकर प्रतिमाएं हैं तथा द्वादशमुखी देव नृत्य मुद्रा मे है जो सम्भवतः सौधर्म इन्द्र है।

गुफा नं. 31 इसमें एक बाहुबली की 6 फुट की ऊँची प्रतिमा है। गर्भगृह में 6 फुट पार्श्वनाथ की खड़गासन प्रतिमा है। इस प्रतिमा के आगे एक पद्मासन प्रतिमा है। सामने दीवार में गोमेद यक्ष, और अम्बिका की मूर्तियां हैं।

गुफा नं. 32 इस गुफा को इन्द्र सभा कहते है यहां दो मंजिली है तथा जैन गुफाओं में सबसे बड़ी है। यहां पर छतों की चित्रकारी संसार प्रसिद्ध है जो अजन्ता की अनुकृति है। इस गुफा की उत्कृष्ट मूर्तिकला और कलात्मक शिल्प विधान अद्वितीय है। यहां अनेक मूर्तियां है। भगवान पार्श्वनाथ की एक साढे तीन मीटर ऊँची प्रतिमा दीवार में है। यह गुफा कलाकृतियों से भरी है। ऊपर की मंजिल में अनेक मूर्तियां है। ढाई मीटर ऊँची अर्ध पद्मासन प्रतिमाएं भी है।

गुफा नं. 33 इसे जगन्नाथ सभा कहा जाता है। यह भी दो मंजिली है। इसमें अनेक तीर्थकर प्रतिमाएं हैं। इसमें एक 12 फीट की पार्श्वनाथ भगवान की खड़गासन प्रतिमा भी है।

गुफा नं. 34 यह गुफा भी दो मंजिली है। इसमे वीणा लिए हुए देवी, नृत्य करती 4 देवियां, यक्ष, त्रिभंग मुद्रा मे देवियां, गोमेद यक्ष, अम्बिका देवी, अर्ध पद्मासन प्रतिमाएं, खड़गासन तीर्थकर प्रतिमाएं, उत्कीर्ण हैं। गुफा नं. 34 के बाहर बरामदे के मध्य पेनल मे पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा है।

गुफा नं 30 से उत्तर की ओर से कच्चा मार्ग पहाड़ के ऊपर गया है। वहां पर पार्श्वनाथ मंदिर के नीचे 80 सीढ़िया उतर कर बांयी ओर एक गुफा मिलती है। वहां पर दायी ओर बांयी दीवार पर तीर्थकर मूर्तिया उत्कीर्ण है तथा यक्ष व यक्षियों की मूर्तियां है।

औरंगाबाद की गुफाएं– औरंगाबाद महाराष्ट्र में बेगमपुरा मोहल्ले से 5 कि.मी. उत्तर की ओर 10 गुफाएं है जो निकट निरजन की गुफाएं कहलाती है। दायीं ओर की प्रथम गुफा मे एक चबूतरे पर [illegible]

अन्धेरा रहता है।

जितूर– काचीगुड़ा मन्राड़ रेल लाईन पर मरणी स्टेशन से 42 कि मी दूरी पर जितूर नगर है। यह महाराष्ट्र में स्थित है। जितूर नगर से 4 कि मी पर सहयाद्रि पर्वत पर यह गुफा मंदिर है। एक अहाते में गुफा मदिर है। यहा कुल 6 गुफाए हैं। भगवान नेमिनाथ की लगभग 2 मीटर ऊँची पद्मासन प्रतिमा है। इनके अतिरिक्त यहा भगवान पार्श्वनाथ, भगवान बाहुबली आदि की मूर्तिया है। भगवान पार्श्वनाथ की एक प्रतिमा पाषाण के जरासे टुकड़े पर टिकी है।

गिरनार-राजुल गुफा– गिरनाथ पर्वत पर राजुल गुफा है। कहा जाता है कि राजुलमती ने यहीं तपस्या की थी। गुफा अधेरी है और इसमें बैठकर जाना पड़ता है।

खडार– सवाई माधोपुर से करीब 25 कि मी पर खडार स्थित है। खडार के किले पर चट्टानों पर डेढ मीटर अवगाहना की मूर्तिया उत्कीण हैं। इन्हें विक्रम सतव् 20 से 30 तक की बताई जाती है।

खदारगिरी– यह स्थान मध्य प्रदेश के चन्देरी नगर से 3 कि मी दूर है। पहाड़ी पर गुहा मदिरों तक जाने के लिए सीदिया बनी हुई है। यहा मुख्य दो गुफाए हैं कुल 6 गुफाए हैं। एक गुफा 13वीं शताब्दी की व 5 गुफाए 16वीं शताब्दी की हैं।

गुफा न 1– इसमें मूलनायक सम्भवनाथ भगवान की 3 फीट 6 इच की पद्मासन प्रतिमा है। और भी कई प्रतिमाए हैं। यहा कायोत्सर्ग मुद्रा में भगवान बाहुबली की एक बहुत ही अद्भुत मूर्ति है।

गुफा न2– इसमें एक चट्टान में 35 फुट ऊँची शान्तिनाथ भगवान की खड्गासन काले पाषाण की खडित मूर्ति है। इसके नीचे 8 खड्गासन प्रतिमाए है, उनके नीचे 5 पद्मासन मूर्तिया उत्कीण है। बड़ी प्रतिमा के बायी ओर 15 फुट की उतुग कायोत्सर्ग मुद्रा में तीर्थंकर प्रतिमा है।

गुफा न 3– में श्रेयासनाथ स्वामी की 15 फुट की तथा दो प्रतिमाए 8-8 फीट की हैं।

गुफा न 4व 5– में तीर्थंकर प्रतिमाए हैं तथा गुफा न 5 में बाहुबली प्रतिमा है।

गुफा न 6– इसमें 10 तीर्थंकर प्रतिमाए है और 3 प्रतिमाए यक्षी की है। यह सबसे प्राचीन गुफा है।

द्रोणगिरी– यह निर्वाण गुफा पर्वत पर स्थित अतिम 27 वें पार्श्वनाथ मदिर के नीचे एक प्राकृतिक गुफा है। यह विशेष लम्बी चौड़ी नहीं है। गुफा के बाहरी भाग में गुरुदत्तादि मुनियों के चरण चिन्ह विराजमान है। ऐसा माना जाता है कि इसी गुफा में तपस्या करते हुए उन्हें मुक्ति प्राप्त हुई थी।

उदयगिरी– विदिशा म प्र से 6 कि मी दूर उदयगिरी के प्रसिद्ध गुहा मदिर है। गुफा न 1 व 20 जैन गुफाए है। गुफा ने 1 में भगवान सुपार्श्वनाथ की एक प्राचीन मूर्ति है। गुफा न 2 में गुप्त सवत् 106 का एक अभिलेख है। इसमें 4 फीट ऊँचे एक फलक पर भगवान पार्श्वनाथ की भूरे वर्ण की पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। यह 10वीं शताब्दी की है। इसी गुफा के अन्य कक्षों में दो पद्मासन की पार्श्वनाथ प्रतिमाए हैं तथा भगवान आदिनाथ की 3 फीट 6 इच ऊची पद्मासन प्रतिमा उत्कीर्ण है।

एक पत्थर की बावड़ी, ग्वालियर के गुफा मंदिर– ग्वालियर के फूल बाग गेट के पास एक पत्थर की बावड़ी स्थित है। बावड़ी के बगल में दांयी ओर पद्मासन पार्श्वनाथ प्रतिमा हैं। यहां पर 20 से 30 फीट ऊँची खड्गासन मूर्तियां है। इनके आगे 9 मूर्तियों के आगे दीवार में द्वार बने हैं। इसके आगे एक गुफा में लगभग 125 छोटी बड़ी मूर्तियां दीवारों में उत्कीर्ण हैं। इसके पश्चात् 3 खड्गासन मूर्तिया बनी हुई हैं। अंत में दो गुफाओं में कुछ मूर्तियां है। इन्हीं गुफाओं में एक प्रतिमा सुपार्श्वनाथ भगवान की 35 फीट ऊँची 30 फीट चौड़ी पद्मासन प्रतिमा है जो भारत की सबसे बड़ी पद्मासन प्रतिमा है।

मुक्तागिरी का मेंढागिरी गुहा मंदिर–

मुक्तागिरी सिद्धक्षेत्र मध्यप्रदेश के बेतूल जिले में अवस्थित है। अमरावती से परतवाड़ा 52 कि.मी. है। और यहाँ से खरपी 6 कि.मी. है। खरपी से 6 कि.मी. मुक्तागिरी हे। मेंढागिरी मंदिर मुक्तागिरि पहाड़ी पर स्थित है। मंदिर संख्या 10 कहलाता है। इस मंदिर का निर्माण एल श्रीपाल ने करवाया था। इसमें दीवार मूर्तियों की कुल संख्या 72 है जो तीन चौबीसी है। मंदिर के 3 द्वार हैं। मध्यद्वार में 5 अरहन्त मूर्तियां उत्कीर्ण है मध्य दीवार के ऊपर खड्गासन प्रतिमा है। तथा दोनों द्वारों के ऊपर पद्मासन मूर्तियां हैं।

एहोल–

कर्नाटक के बीजापुर जिले में बादामी से पट्टदकल्ल होते हुए यहाँ पर पहुँचा जा सकता है। यहाँ के मेगुटी मंदिर के पास ही नीचे की ओर एक द्वितल गुफा मंदिर है। इसकी लम्बाई 30-35 फुट है तथा इसमें छठी शताब्दी के ब्राह्मी भाषा के लेख भी हैं। इनमें भी एक तीर्थंकर मूर्ति उत्कीर्ण है। एक मस्तक हीन तीर्थंकर प्रतिमा भी है जो आठवीं सदी की है।

मीन बसदी–

मेगुटी पहाड़ी के दक्षिण पूर्व की ओर जैन गुफा मंदिर है जो मीन बसदी कहलाता है। इसमें अरहनाथ की मूर्ति है। यहीं पर पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा में मूर्ति है। बाहुबली की सातवीं शताब्दी की सुन्दर मूर्ति है। भगवान महावीर की पद्मासन मूर्ति भी है। द्वारपाल का अंकन भी बहुत अच्छा है।

बादामी का जैन गुफा मंदिर–

कर्नाटक के बागलकोट से बादामी 79 कि.मी. है। बादामी की गुफा नं. 4 जैन गुफा है। यह गुफा मंदिर 31 फीट चौड़ा और 16 फीट गहरा है। इस गुफा मंदिर में एक एक इंच स्थान का उपयोग कर तीर्थंकरों की मूर्तियां बनाई गई है। कुछ खड्गासन हैं, कुछ पद्मासन है। यहाँ आदिनाथ की 8 फीट ऊँची, सुपार्श्वनाथ की भी 8 फीट ऊँची प्रतिमा है। पार्श्वनाथ की 7 फीट की मूर्ति भी दर्शनीय है। इनमें बाहुबली की 8 फीट ऊँची सुन्दर प्रतिमा है। गर्भगृह में भगवान महावीर की पद्मासन प्रतिमा विराजमान है।

श्रवण बेलगोल की भद्रबाहु गुफा– चन्द्रगिरि पर्वत पर स्थित मंदिरों के परकोटे के बाहर आने पर भद्रबाहु गुफा का द्वार दिखाई देता है। गुफा के

दाहिनी ओर एक शिला पर एक कायोत्सर्ग तीर्थंकर तथा अन्य पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमाए उत्कीर्ण है। यहाँ एक घिसा हुआ शिलालेख भी है। कहते है कि यहीं श्रुतकेवली भद्रबाहु ने तपस्या की और समाधि मरण किया तथा यहीं चन्द्रगुप्त मौर्य ने उनकी सेवा की, तपस्या की तथा शरीर त्यागा। यहॉ श्रुत केवली के चरण बने है।

उदयगिरी खडगिरी की गुफाए–

उड़ीसा की राजधानी भुवनेश्वर से पश्चिम की और 6 कि मी पर खडगिरी व उदयगिरी नामक दो पहाड़ियॉ है। यहॉ पत्थर काटकर बहुत सी गुफाए बनाई गई है। कुछ गुफाये भगवान महावीर के काल की हैं, कुछ का निर्माण सम्राट खारबेल के समय हुआ। उदयगिरी पर अलकापुरी-जय विजय, रानी गुफा, गणेश गुफा, स्वर्ग गुफा, मध्य गुफा, पाताल गुफा। इन गुफाओं में तीर्थंकरों की प्रतिमाए बनी हुई है। हाथी गुफा में सम्राट बारबेल का बहुत विशाल शिला लेख है। खडगिरी गुफा के नीचे-ऊपर पाँच गुफाए बनी है। अनन्त गुफा में 3 फुट की कार्योत्सर्ग जिन प्रतिमा विराजमान हैं। राजा इन्द्रकेशरी गुफा में 8 दिगम्बर जैन खड्गासन प्रतिमाए अकित है। आदिनाथ गुफा में 24 तीर्थंकरों की दिगम्बर जैन प्रतिमाए है। खडगिरी पर 98 व उदयगिरी पर 19 गुफाए हैं

मदारगिरी–

बिहार राज्य के भागलपुर जिले में भागलपुर से 48 कि मी दूर यह स्थित है। पहाड़ी पर छोटे मदिर के पास एक गुफा है। इसमें चरण बने हुए है। गुफा पर विशाल शिला इस प्रकार रखी हुई है जिससे यह छोटी खुली गुफा बन गई है।

कुलुहा पहाड़–

यह स्थान बिहार प्रान्त के हजारी बाग जिले की चतरा तहसील में है। गया से 55 कि मी है। गुफा की खड़ी दीवार में तीर्थंकरों की 10 पद्मासन मूर्तिया उत्कीर्ण है। मूर्तियों का आकार 10' है। प्रत्येक मूर्ति के नीचे उनके चिन्ह भी अकित हैं। उसके आगे एक चट्टान पर 5 पद्मासन और 5 खड़गासन दि जैन तीर्थंकर मूर्तिया बनी हुई है। इन मूर्तियों पर 6 फीट की शिला छज्जे की तरह बनी हुई है। इस गुफा मदिर से एक प्राकृतिक गुफा में भगवान पार्श्वनाथ की श्याम वर्ण पद्मासन मूर्ति विराजमान है। यह मूर्ति सम्भवत 12वीं शताब्दी की है।

राजगृह का सोन भडार –

यहाँ दो गुफाए है। बायी ओर की गुफा ठीक है। इसकी दीवारों पर शिलालेख अकित है। किन्तु दाई ओर की गुफा भग्न दशा में है। ये गुफाए ईसा की तीसरीं शताब्दी में बनी थीं। दाई ओर की गुफा में घुसते ही बायी ओर दीवार में 2 खड़गासन और 13 पद्मासन तीर्थंकर मूर्तिया बनी हुई है। बाई ओर की दीवार में 3 पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमाए उत्कीर्ण है।

डी-127, सावित्री पथ,
बापू नगर, जयपुर



जैन परम्परा से जुड़ी माया सभ्यता

✍ *डॉ. जिनेश्वर दास जैन*
ए-2, श्री जी, नगर, दुर्गापुरा, जयपुर

विश्व में माया सभ्यता लिए केवल एक ही साम्राज्य था जिसने वर्तमान के मैक्सिको, गौतेमाला, बेलीज, होन्डूरास व एल-सैल्वेडोर में बड़े-बड़े केन्द्र स्थापित किऐ । करीब 1,00,000 वर्ग मील की निचली भूमि में बसी माया सभ्यता ईसा की छठी शताब्दी से लेकर 9वी शताब्दी तक फली फूली। माया के विभिन्न नगरों में काश्तकारों ने जटिल एवं उन्नत खेती विधियाँ अपनाकर एक विस्तुत व्यापारिक जाल फैला दिया था। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि वहाँ की कुल आबादी 120 से 160 लाख के बीच हो। माया शहरों में भवन निर्माण शैली करीब-करीब एक सी ही थी।

वैसे तो वहाँ के अधिकतर शहर 600 ई. पू. से ही बसने शुरू हो गये थे। सर्वप्रथम तो लोग नदियों के किनारे बसे, फिर धीरे धीरे अन्यत्र बसने लगे। इन लोगों की एक विशेषता यह थी कि इनकी बस्तियों में लोगों की संख्या बढ़ने लगती तो एक पिरामिड प्रकार के मन्दिर/मंदिरों की स्थापना अवश्य करते थे। जिस बस्ती में जितने लोग आर्थिक दृष्टि से समर्थ व शक्तिशाली होते थे वे उतने ही बड़े व ऊँचे मन्दिर बनवाते थे। रियो-अजूल में मिले विस्तृत खंडहरों में पांचवीं शताब्दी में बना एक पिरामिड मन्दिर तो 155 फुट ऊँचा है जो माया साम्राज्य की सबसे ऊँची इमारत थी। इन मन्दिरों का निर्माण 7वीं से 12वीं शताब्दी के बीच हुआ बतलाते है।

मैक्सिको-गौतेमाला-बेलीज की सरहद पर तो कहीं कहीं 14 मंजिल जितनी ऊँची इमारतें बनी हुई हैं। विभिन्न राज्यों की सरहदें घने पेड़ों के द्वारा बनी हुई थी। डॉ. प्रोस्क रियकोफ द्वारा की गई खोज व गहन अध्ययन से यह पता चला है कि माया साम्राज्य में 500 वर्षों के दौरान बहुत तरह के बदलाव आये। उदाहरण के लिए मन्दिरों में होने वाले उत्सवों में आम जनता के लिये बैठने के स्थान बनाना, राज भवन भी मन्दिर के पास ही बनाना ताकि राजाओं का पर्याप्त नियन्त्रण रहे, धीरे-धीरे धार्मिक व अन्य सामाजिक कार्य भी एक ही स्थान पर करना इत्यादि। बाद में तो इन स्थानों पर धार्मिक, सामाजिक सांस्कृतिक कार्य भी एक ही जगह होने लगे और समाज के बुजुर्ग व प्रबुद्ध लोग तो व्यक्तिगत व सामूहिक समस्याओं को भी वहाँ भी सुलझाने लगे थे।

भूमि से प्राप्त उपकरणों व दीवारों पर बने चित्रों से इतिहास एवं पुरातत्व विशेषज्ञों ने तो यह अनुमान लगाया है कि वहाँ के शासक विश्व में सबसे अधिक निर्दयी थे। साथ में यह भी अनुमान लगाया है कि शासकों को खगोलशास्त्र, गणित इत्यादि का बहुत अच्छा ज्ञान था और बहुत कुशल व्यापारी भी थे।

उपरोक्त जानकारी मुझे "नेशनल ज्योग्राफिक" पत्रिकाओं से प्राप्त हुई है। ये सब जानकारी प्राप्त करके मुझे ऐसा लगा कि इस सभ्यता का संबंध जैन परम्परा से अवश्य रहा होगा। इस सम्भावना का पता लगाने का मैंने मन में [illegible] और मैं अमेरिका में दिसम्बर 1999 से जनवरी 2001 तक के प्रवास काल के दौरान [illegible]

2000 को लॉस एन्जिल्स से 6 घटे की उड़ान के पश्चात् कैन्कुन हवाई अड्डे पहुँचा। उचित ठहरने की व्यवस्था करने के बाद 2 नवम्बर को कैन्कुन से बस द्वारा 3 घंटे में चिचेन जा पहुँचा। इट्जा उस क्षेत्र का सबसे प्रसिद्ध और विस्तृत क्षेत्र में फैला और राज्यसरकार द्वारा उत्तम तरीके से रख रखाव वाला शहर है।

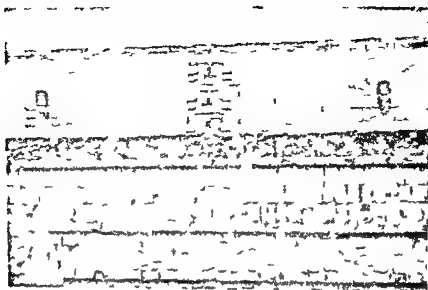
चित्र 2,3,4 में खडहर मन्दिरों के दृश्य है। पाश्चात्य इतिहासज्ञों ने इन इमारतों का वर्णन राजाओं के महल, फौजों के ठहरने का स्थान, अपराधियों को जगली जानवरों से खिलाया जाना इत्यादि रूप में किया है। मैं उपरोक्त वर्णनों से सहमत नहीं हूँ। इन मन्दिरों की निर्माण शैली कम्बोडिया में अगकोर स्थित कुछ मदिरों की सी है, और ये भी जैन परमपरा के अनुरूप हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि समस्त यूकटन उपमहाद्वीप में नए नए मदिर स्थापित करने के लिए पचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव हेतु इन विभिन्न इमारतों का निर्माण हुआ था। चित्र 2, में चिचेन इट्जा का सबसे ऊँचा पिरेमिड मदिर है, जो लगता है भगवान के अभिषेक के लिये पाडुक शिला है। चारों तरफ सीढ़ियाँ नर नारियों द्वारा कलश लेकर ऊपर चढ़ने के लिए बनी हैं।

चित्र 3 में एक कम ऊँचाई का मन्दिर है जो लगता है तप कल्याण का उत्सव मनाने के लिये है। इससे लगते ही सैकड़ों खम्भों से निर्मित एक धर्मशाला थी जहाँ साधु साध्वी, व यात्रीगण ठहर सकते हों।इसी भवन की दाहिनी दीवार पर 2 मूर्तियाँ बनी है (चित्र 4) जिन पर नागफण है। इन्हीं मूर्तियों को देखकर मैंने यह अनुमान लगाया है कि ये समस्त मदिर जैन परम्परा से जुड़े हुए थे। अधिकतर मन्दिरों के चारों कोणों पर सर्प बने हुए हैं चित्र 3 में ही एक और छोटा मन्दिर है। जो लगता है ज्ञानकल्याणक उत्सव के लिये बना हों। चित्र 5 में एक बहुत बड़ा मैदान का दृश्य है जहाँ पर बने प्लेटफार्म इत्यादि से लगता है कि यहॉ प्रतिष्ठा महोत्सव के दौरान होने वाले धार्मिक व सास्कृतिक कार्यक्रम होते हों।

दीवार पर अकित वीभत्स दृश्यों को देखकर पाश्चात्य इतिहासज्ञों ने यह धारणा बनाई थी कि यहॉ के शासक बहुत क्रूर व निर्दयी थे, पर ये नर्क के दृश्य दिखाने के लिये बनाये गए होंगे, ऐसी मेरी धारणा है । हाल ही में गौतेमाला में एक प्राचीन मदिर जमीन से निकला है जिसके चारों तरफ 11 कोठे बने हैं। शायद हे समवशरण की रचना हो। 15वीं शताब्दी में स्पेन द्वारा मैक्सिको देश पर कब्जा होने के बाद स्पेन की फौजों ने इन मन्दिरों की समस्त मूर्तियों को तुड़वा दिया व मन्दिरों को भारी क्षति पहुँचाई। वहॉ के वासी जो भारतीय कहलाते थे, उनकी महिलाओं के साथ बहुत निर्दयता का व्यवहार किया गया बताते है। इसाई मिनशरीयों ने जो फ्रास के राजा को पत्र लिखकर चिन्ता व्यक्त की थी उसके अनुसार महिलाओं के हाथ, पैर, स्तन काटकर झीलों में फिकवा दिया। इसके बाद तो माया सभ्यता का दर्दनाक अन्त हो गया। 13वीं शताब्दी में आस पास के पड़ौसी राजाओं ने भी आपस में लड़ना शुरू कर दिया जिससे माया सभ्यता को बहुत क्षति पहुँची।

इन मदिरों की पूर्ण खोज करना अत्यन्त आवश्यक है। अत जैन समाज से अपील है कि समाज के कुछ प्रबृद्ध व आर्थिक दृष्टि से समर्थ व्यक्तियों का ग्रुप इन मन्दिरों को देखने के लिए जाए ताकि जैन धर्म की प्राचीनता को सिद्ध करने के लिये महत्त्वपूर्ण प्रमाण प्राप्त हो सके। ◆






YUCATAN PENINSULA
BELIZE
GUATEMALA
HONDURAS

भगवान वर्द्धमान के दो दुर्लभ साक्ष्य

✍ डा. शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी

'वर्धमान' 'महावीर' और 'वीर' शीर्षक लेख मैंने इसी जैन समाज में विश्रुत स्मारिका में सचित्र वर्ष 1988 में प्रकाशित किया था। ये निदर्शन प्रथम शती ई. से संवत् 1236=1168 ई के क्रमशः मथुरा व श्रावस्ती के हैं। प्रस्तुत दोनों 'वर्द्धमान' के अभिलेखीय साक्ष्य मथुरा के ही हैं। यहाँ प्रथम वर्णित मूर्ति राजकीय संग्रहालय, मथुरा में सुशोभित है। वास्तव में यह वर्द्धमान भगवान की पद्मासीन मूर्ति रही होगी।[1] अब मात्र सिंहासन का अंश ही उपलब्ध है। पादपीठ के मध्य बौनी आकृति (यक्ष) धर्मचक्र को मस्तक पर धारण किये हुए है, आठ उपासकों को भी दर्शाया गया है। तीन पंक्तियों में कुषाण ब्राह्मी लिपि में लेख निम्नवत् उत्कीर्णित है:-

पंक्ति-1 ओं सिद्ध (म) सं. 80, 4 वृ 3 दि. 20 एतम्भि पूर्व्वाय (.) धमतस्य धितु ओख

पंक्ति- 2 रिकाये कुटुम्बिनिये दताये दानं वधमान प्रतिमा प्रतिठापिता।

पंक्ति - 3 गणतो कोट्टियास्तो (व) ..... स (य) सत्य से नस (य)[3]

अर्थात संवत् 84+78[2] = 162 में वर्द्धमान प्रतिमा का यह अप्रतिम साक्ष्य है। यह प्रतिमा दत्ता के दान और कोट्टियशाखा के आचार्य की प्रेरणा से बनवायी गयी थी। यह लाल चितीदार बलुए पाषाण पर तराशी गई थी।

दूसरा साक्ष्य लालरंग के सफेद चितीदार प्रस्तर है।[4] जो कंकाली मथुरा से सम्बद्ध है। इस सपाट पाषाण पर बांयी ओर ऊपर की तरफ 45 से.मी. नीचे चौकोर 35×35 से.मी. का आरपार छेद है। प्रस्तर के दांयी ओर ऊपरी कोर और नीचे बांयी कोर पर हारयष्टि, जो प्रभामंडल में प्रायः बनायी जाती है, का अंकन है। यह पाषाण सामने से सपाट और पीछे खुरदरा है। इसके सामने के भाग पर चार पंक्तियों में उत्तर कुषाण अर्थात लगभग 250 ई. का ब्राह्मीलिपि में अभिलेख उत्कीर्ण है। इस पर शासक का नाम अथवा संवत् नहीं है। लेख अधोलिखित है –

पंक्ति-1 उचेनगरितो शखातो अर्य्य बलत्रातस्यशिसिणी अर्य्य व्रह्म....

पंक्ति-2 अर्य्य बलत्रा तस्यशिष्यो अर्य्य संधिस्यपरिग्रहे नवहस्तिस्य धिता ग्रहसेनस्य वधु

पंक्ति-3 शिवसेनस्य देवसेनस्य शिवसेनस्य च भ्रात्रिनं मातु जयाये प्र...

पंक्ति-4 (मा) नस्य सर्व्व सत्वानं हितं सुखाय।[5]

आलोच्य शिलालेख में तत्कालीन 'उचेनगर' का उल्लेख है जो जे-5 व.जे.12(लख.संग्र.) की जैन मूर्तियों पर भी पाते हैं। इसकी पहचान 'उचेहरा' सतना म.प्र. से की जा सकती है।

'जया' ने वर्धमान प्रतिमा बनवायी जिस का परिचय इस प्रकार है। यह नवहस्ति की पुत्री ग्रहसेन की वधु तथा शिवसेन, देवसेन और शिव भाईयों की माता थी। यह किसी नारी का सम्पूर्ण परिचय है। अपने ही ढंग का है।

'सर्व्व सत्वानं हितं सुखाय' भी मथुरा की जैन मूर्तियों और कुछ मूर्तियों पर पाते हैं। [illegible]

के हित सुख के लिए वर्द्धमान प्रतिमा को जया ने बनवाया। चौथी पक्ति में 'मानस्य' स्पष्ट है, 'मानस्य' किसी अन्य तीर्थंकर के नाम के अन्त में नहीं आता है। मात्र 'वर्द्धमान' की षष्ठी में ही आयेगा। तीसरी पक्ति मे अतिम शब्द पूर्ण नहीं है। अत वर्द्धमान मानना समीचीन है।

वर्द्धमान की प्रतिमा बनवाने का जया का स्वप्न तो साकार न हो सका क्योंकि प्रस्तर पर कोई मूर्ति/आकार नहीं हे लेकिन उसकी भगवान वर्द्धमान के प्रति सच्चे मनोभावना पत्थर की लकीर बन गई जो सदा शिलालेखीय विद्वानों को चमत्कृत करती रहेगी।

सपर्या, 223/10 रस्तोगी टोला,
राजा बाजार, लखनऊ (उ प्र)

---

१ राजकीय सग्रहालय मथुरा सख्यक १४ ४९० आकार ४५ से मी ऊँचाई
२ कनिष्क की प्राय सर्वमान्य तिथि ७८ है।
३ दयाराम इपीग्राफी इडिका वाल्यू पृ ६७
४ राज्य सग्रहालय लखनऊ सख्यक जे-२५४ आकार ८३×६५ से मी
५ इपीग्राफी इडिका वाल्यू २ पृ २०८ न ३४ ब्यूर्ल ल्यूर्डसन ११९ फ्यूहरर न ७१

भगवान ऋषभदेव की ऐतिहासिकता

✍ डॉ. बाबूलाल सेठी

भारत के प्राचीनतम इतिहास के प्रमाणों स्वरूप हमें जो संस्कृति प्राप्त होती है वह है मोहनजोदड़ों की खुदाई से प्राप्त 4000 वर्षो से भी अधिक प्राचीन काल में प्रचलित पूजा के इष्टदेव,. सीलें, मुहरें तथा आयागपट्ट। इतिहासकारों ने उन्हे जिस सभ्यता का प्रतीक माना है उसमें नग्नदेवता की पूजा होती थी जिसका विस्तार ग्रीस तक था। मथुरा के कंकाली टीला से प्राप्त सामग्री में भी उसी सभ्यता की कड़ी 2000 वर्षो पूर्व तक प्रतीत होती है। उन सबमें बैल या वृषभ को महत्व दिया गया था जिससे भारत के कृषि प्रधान होने का संदेश हमें उस पूर्व काल से ही मिलता है।

भारत की मूल संस्कृति में झाँकने पर हमें मूल नाम आदि प्रभु ऋषभदेव का ही ऐसा मिलता है जिन्हें ब्रह्मा, केशी, शिव, अर्हत्, नग्न, महादेव, प्रजापति आदि अनके नामों से ऋग्वेद में पुकारा गया है, इंद्रियों को जीतने के कारण इन्हें जिनदेवता भी कहा गया है।

उस काल में मनुष्य तथा पशु विशालकाय रहे होंगे। ऐसे वर्णन हमें जैन शास्त्रों में देखेन को मिलते हैं। तब जनसंख्या बहुत कम थी तथा प्रकृति अहिंसक। भोग प्रधान युग में प्रत्येक भोग्य सामग्री कल्पवृक्षों से प्राप्त होती थी। इस भोगभूमि के काल के समाप्त होने पर कर्मभूमि आरम्भ हुई, अतः कल्पवृक्षों ने सामग्री देना बन्द कर दिया। मानव उस समय कार्य करना भी नहीं जानते थे अर्थात् प्रकृति प्रदत्त सब सामग्री लेते थे। उस कल्पयुग का अन्त होने पर "कर्म" युग का प्रारम्भ हुआ और इसी बीच मनुष्य को मानवीय जीवन प्रणाली बताने वाले 14 कुलकरों की परंपरा हुई। प्रथम कुलकर प्रतिश्रुति ने वाणी को मुखरित करके भाषा दी। द्वितीय कुलकर सन्मति ने तारों, नक्षत्रों के आधार पर ज्योतिष का ज्ञान तथा रात-दिन का विभाजन समझाया। तृतीय क्षेमंकर ने मुंह फाड़कर झपटने वाले पशओं को अकेला जंगलों में छोड़ मात्र गाय भैंस पालने ही का पाठ पढ़ाया। चौथे मन्वन्तर ने सुरक्षा के लिए लाठी का उपयोग हिंसक पशुओं को भगाने के लिए बतलाया। पांचवें सीमंकर ने कम होते कल्पवृक्षों को क्षेत्रीय सीमाओं में वांटकर उनका उपयोग वतलाया। छठवें सीमन्धर ने कलह करते मानवों को झाड़ियों के फलों और शाकादि के उपयोग निर्धारित किया। सातवें विमलवाहन फिर क्रमशः चक्षुष्मान् यशस्वान् अभिचन्द चन्द्राभ तथा मरुदेव आदि ने माता-पिता का के साथ जीवन का सह अस्तित्व बताया। तेरहवें कुलकर प्रसेनजित ने जरायुज को फाड़कर नवजात शिशु को बचाने तथा 14वें अन्तिम कुलकर नाभिराज ने नाल को काटने का तरीका बतलाया। करोड़ों वर्षो में यह सब लम्बे लम्बे अन्तराल से घटा। इन्हीं नाभिराज ने मरुदेव की पुत्री मरुदेवी से विवाह करके युगलिया युग का अन्त किया। उनके पुत्र के रूप में तेजस्वी बालक ऋषभ जन्मे। क्योंकि इनकी माता ने इनके गर्भस्थ रहते समय सोलह स्वप्न देखे जिनमें प्रथम स्वप्न में एक तेजस्वी ऋषभ (बैल) के दर्शन किए थे अतः बालक का नाम इसी आधार ऋषभ या ऋषभ रखा गया। यह बालक अत्यन्त बुद्धिमान और दक्ष था। इनके युवा होने पर नाभिराज ने इनका

विवाह कच्छ एव महाकच्छ की बहनें यशस्वती तथा सुनन्दा से कर दिया और उन्हें राजा बना दिया।

कुछ काल बीतने पर यशस्वती के भरत आदि 99 पुत्र एव ब्राह्मी पुत्री और सुनन्दा के बाहुबली पुत्र एव सुन्दरी नामक पुत्री का जन्म हुआ। ऋषभदेव ने अपने बेटों को सम्पूर्ण शिक्षाए स्वय दीं। ब्राह्मी को लिपि तथा सुन्दरी को अक सिखलाए। कालान्तर में वे बड़ी ही विदुषियॉं बन गईं। ब्राह्मी ने 18 लिपियाँ तथा सुन्दरी ने शून्य दशमलव अक बीज तथा रेखागणित को जन्म दिया। बाहुबली ने आयुर्वेद और न्याय पढ़ा। भरत ने सारी शिक्षाएँ प्राप्त की। प्रजा की जीवन एवम् आजीविका सबधी कठिनाइयाँ देख इन्हीं ऋषभदेव ने उसे कृषि (अन्न) मसि (लेखन) वाणिज्य, 72 कलाओं एवम् शिल्प की शिक्षा दी। इन्हें ब्रह्मा, प्रजापति, पशुपति के नाम से जाना जाने लगा। एक दिन सपरिवार दरबार में बैठे नीलाजना का नृत्य देखते समय नर्तकी की मृत्य हो गई। चतुराई से बिना किसी को पता चले दूसरी नर्तकी बदल दी गई। किंतु ऋषभदेव का मन वैराग्य से भर उठा। सम्पूर्ण राज्य को अपने बेटों में बाँट वे दिगम्बर होकर तप करने चल दिए। घोर तप किया। उनकी जटाएँ बढ़ गईं। महादेव और केशी पुकारा जाने लगा। इनके सभी पुत्र दिगम्बर केवलज्ञान प्राप्त कर निर्वाण को प्राप्त हुए। इनमें से बाहुबली प्रथम केवली रहे जिन्होंने एक वर्ष घोर तप करके, भाई भरत एव दोनों बहनों के सम्बोधन से "केवलज्ञान" पाया तथा बाद में निर्वाण भी। भरत चक्रवर्ती पद त्याग "दो घड़ी की दीक्षा" द्वारा तप धारण कर "केवलज्ञान" प्राप्त कर निर्वाण को प्राप्त हुए। दोनों बहनों ने भी आर्यिका दीक्षा ली और तप किया। वे प्रथम श्रमणियाँ थीं।

इन्हीं भरत के नाम पर इस देश का नाम "भारतवर्ष" दिया गया। इन्ही आदि प्रभु की मूर्तियाँ बहुधा भरत और बाहुबलि के साथ त्रिमूर्ति रूप दिखाई पड़ती हैं।

ऋषभदेव के तप हेतु जाते समय 4000 राजाओं ने भी उनके साथ दीक्षा ली। ऋषभदेव के 6 मास तक आहारादि को ना उठन के कारण वे मारीचादि त्रस्त हो गए और क्षुधा के कारण भ्रष्ट हो गए। उन्होंने 363 मतों को जन्म दिया। 6 माह तप करनके बाद जब ऋषभदेव आहार हेतु उठे तब उन्हें आहार देने की विधि किसी को ज्ञात न होने से कोई उन्हें कपड़े तो कोई रत्नजवाहर कोई फल पकवान तो कोई कन्या देने ही दौड़ा। वे पुन निराहार ही लौट कर तप करने बैठ गए। जब पुन 6 मास बाद उठे तब राजा श्रेयास को स्वप्न से पूर्व भव में दिए हुए आहारदान देने की विधि की स्मृति लौट आई और उन्होंने विधि पूर्वक पड़गाहन करके इक्षुरस का आहारदान दिया। मुनि ऋषभदेव ने 'अजुलियो से, ही उसे 'एक स्थिति में खड़े होकर' पिया। उस दिन को आज भी हम 'अक्षय तृतीया' कह कर याद करते हैं। भारत की प्राग् ऐतिहासिक सीमाओं में आज भी हमें उनके प्रभाव दिखते हैं। ऋषभदेव का कोई भी शत्रु नहीं था इसलिए उन्हें अरिहन्त अथवा अर्हत कहा जाता है।

ऋषभदेव की स्तुति ऋग्वेद जैसे सर्वप्राचीन ग्रथ में भी कोई ऋचाओं में मिलती है। यथा 2/33/15 "एक वस्त्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हणोणे न हँसी"। 10/12/166 ऋषभ मा समानाना सपलाना विवासहिम। हन्तार शत्रूणा कृधि विराज गोपति गवाम्॥ अन्य साहित्य यथा महाभागवत् महापुराण आदि में भी उन्हें स्मृत किया गया है। "ऋषभ पवित्राणा योगिना निष्कल शिव।" (अ 14 श्लो 18 महा अनु पर्व) "ऋषभेवा पशुनामधिपति"

(तांड्य ब्रा. 14,2,5)।

भगवान ऋषभदेव का जन्म चैत्र बुदी नवमी के दिन अयोध्या में हुआ था। जैनियों के विशेष पर्वो में यह वर्ष का महत्त्वपूर्ण पर्व होता है। महावीर जयन्ती की तरह यह भी पूरे देश विदेश के जैन धर्म के अनुयायियों द्वारा मनाया जाता है। उन्हें केवलज्ञान की उपलब्धि फाल्गुन बदी एकादशी को तथा निर्वाण कैलाश पर्वत पर माघ बदी चतुर्दशी को प्राप्त हुआ।

भगवान ऋषभदेव को तीर्थंकर के रूप में इस काल में सर्वप्रथम माना गया है। जैन मान्यतानुसार व्यवहार 'काल' 'अनादि अनन्त' है। इसे प्रवाह में सर्पिणी कहा गया है। सर्पिणी प्रवाह का अतीव सुखकारक 'सुषमा सुषमा' कही जाती हैं उसके बाद सुख कम होकर 'सुषमा' रह जाता है। कालान्तर में 'सुषमा दुषमा' फिर दुषमा सुषमा', फिर 'दुषमा' तथा अन्त में घाटी स्वरूप अत्यन्त दुखकाल 'दुषमा दुषमा' आता है। जिसमें प्रलय होकर मात्र कुछ जोड़ियाँ जीवों की बच रहती है उन्ही से नवनिर्माण उठता है। सर्पिणी प्रवाह की ढलान को अवसर्पिणी काल तथा उठाव को उत्सर्पिणी काल कहते हैं। तीर्थंकर मात्र चौथे काल भाग मे होते हैं। उत्सर्पिणी काल हम बहुत पीछे छोड़ आए हैं। यह अवसर्पिणी काल का पंचम आरा चल रहा है, दुषमा' वाला। उत्सर्पिणी काल के 24 तीर्थंकर 'भूत चौबीसी' कहलाते हैं। तीसरे काल भाग के प्रारम्भ में आदिनाथ और चौथे काल भाग के लिए अन्तिम चरण में भगवान महावीर 24वे तीर्थंकर हुए है। भगवान ऋषभदेव को इस वर्तमान चौबीसी का प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ आदीश्वर, अर्द्धेश्वर कहा गया है।

ऋषभदेव की वाणी को श्रुतवाणी सरस्वती के रूप में पूजा जाता है जो उनके मुख से झरी। इसी [illegible]

हाथी में चक्र होता है। उत्खननों से प्राप्त सामग्री में जो चिन्ह पाए जाते है पशु जीव, स्वस्तिक, कमल, घन्टे, कलश, ध्वजा आदि उनसे जैनत्व की ही झलक मिलती है। यथा, अशोक की सिंह लाट। इसमें बौद्ध धर्म के प्रतीक ना होकर मात्र जैन धर्म के प्रतीक सिंह, चक्र, बैल, हाथी, तथा घोड़ा ही प्रदर्शित है। इसे जैन धर्मावलम्बी मौर्य शासन का जैन प्रतीक मानते है।

भारत भर में भगवान आदिनाथ की अति प्राचीन मूर्तियाँ यत्र तत्र मन्दिरो एवं क्षेत्रों में पाई जाती है। लोहानीपुर का नग्न कायोत्सर्गी धड़ भी 5000 वर्ष पूर्व का आंका गया है। सांगानेर की लाल पाषाण की मूलनायक प्रतिमा की प्राचीनता 4000 वर्ष पूर्व की आंकी गई है जो प्रभु आदिनाथ की है। बड़वानी के समीप बावनगजा की मूर्ति एक चट्टान में तराशी हुई विश्व की विशालतम मूर्ति है। यह प्रतिमा खड्गासन में महादेव आदिप्रभु की है, एवं 27 मीटर ऊँची है तथा 3000 वर्ष से भी अधिक प्राचीन मानी गई हैं। कुण्डलपुर के बड़े बाबा की शांतिमयी प्रतिमा भी आदिनाथ की ही चतुर्थ काल की जानी जाती है। लाडनूं के दिगम्बर जैन भूगर्भ मन्दिर में भी आदिनाथ प्रभु की अति प्राचीन जटायुक्त प्रतिमा है जो उनके केशी महादेव होने का संकेत देती है। देवगढ़की खड्गासन मूर्ति भी बहुत सुन्दर आदिप्रभु का वैभव लगभग 4000 वर्षों से दर्शाती है। इसी प्रकार [illegible] के आदिप्रभु अति प्राचीन जाने जाते है। इस तरह भारत के प्राचीन वैभवपूर्ण इतिहास में आदिनाथ, भगवान ऋषभदेव माने जाते है, जो इतिहास का प्राण है।

श्री दि. जैन मन्दिर [illegible] के पास

[illegible]

◆

"स्वतन्त्रता आन्दोलन में जैन समाज का योगदान"

✍ डॉ त्रिलोक चन्द कोठारी कोटा

हमारे भारत देश की आजादी की लड़ाई का लम्बा-गौरवपूर्ण इतिहास है, जो आज हमारी अनमोल धरोहर है। आजादी की इस लड़ाई में सभी ने मिलजुल कर हिस्सा लिया था, कष्ट सहे हमें तभी आजादी मिली।

1857 की क्राति अपने आप में अद्भुत थी। महारानी लक्ष्माबाई, तात्या टोपे, मगल पाडे, लाला हुकुमचन्द जैन, अमरचन्द बाठिया आदि अनगिनत शहीदों ने अपनी कुर्बानी देकर आजादी की मशाल जलाई। इसी लड़ाई में महात्मा गाधी सहित अनेक नेताओं ने आजादी के आन्दोलन को दिशा दी। गाधी जी ने अहिसा के आधार पर अपनी नीति बनाई और अतत सफलता प्राप्त की।

आजादी की इस लड़ाई में जैनियों ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। जहाँ अनेक वीर पुरुषों ने बलिदान किया वहा अनेक लोगों ने जेल की कठोर यातनाए सहीं। ऐसे भी लोगों का अशदान कम नहीं है जिन्होंने बाहर से समर्थन और सहायता देकर आन्दोलन को सफल बनाया। लगभग 4000 जैन आन्दोलन में जेल गये।

आजादी की इस लड़ाई में जैन महिलाओं ने पुरुषों के कधे से कधा मिलाकर कार्य किया। कुछ महिलायें तो सीधे ही क्रातिकारी आन्दोलनों से जुड़ी रही तो कुछ ने जेल की कठोर यातनायें सहीं। अनेक महिलाओं ने गृहस्थ धर्म निभाते हुए सम्पूर्ण योगदान दिया। विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार, नमक आन्दोलन, सत्याग्रह आन्दोलन शराब की दुकानों के विरोध में धरना आदि सभी राजनैतिक गतिविधियों में जैन महिलाओं ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। धरना बैठना तो मानो उनके क्रिया-कलापों का एक हिस्सा बन गया था। इस सबसे अधिक ऐसी महिलाओं की सख्या है जिन्होंने आरती उतारकर अपने पतियों को सहर्ष जेल भेजा और घर की चिन्ताओं से मुक्त रखा, साथ ही उनकी अनुपस्थिति में उनके कार्य को जारी रखा उनमें से कुछ महिला स्वतन्त्रता सेनानियों के साहस और बलिदान की गौरव गाथा निम्न प्रकार है–

(1) श्रीमती अगूरी देवी

महान् देशभक्त महेन्द्र जी जैन (आगरा) की पत्नी अगूरी देवी स्वतन्त्रता आदोलन में अपने पति की सहयोगिनी बनी। 26 जनवरी 1930 को पूर्ण स्वाधीनता दिवस मनाने के निर्देश पर की गयी सार्वजनिक सभा में अगूरी देवी ने सैनिक प्रेस की छत पर खड़े होकर भाषण दिया। फलस्वरूप आपको जेल भेज दिया गया। आप गर्भवती थीं, फिर भी 5 माह की सजा सुनायी गयी। नमक सत्याग्रह में उन्होंने सार्वजनिक रूप से नमक कानून को भग किया। इस दौरान उनके साथ सरोजनी नायडू भी थी, जिन्होंने जगह-जगह महिलाओं को सत्याग्रह की प्रेरणा दी। अगूरी देवी को गिरफ्तार किया गया और 6 माह की सजा एव जुर्माना हुआ। 1932 के सत्याग्रह के बाद आप हिसात्मक क्रातिकारी गतिविधियों में सक्रिय हो गयी। 'करो या मरो" आन्दोलन में अगूरी देवी ने आगरा में जुलूस का

सफल नेतृत्व किया। उनके साथ महिलाओं ने बड़ी संख्या में इस आन्दोलन में भाग लिया।

(2) श्रीमती कमला देवी

प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी एवं पत्रकार पं. परमेष्ठीदास जैन (ललितपुर) की पत्नी कमला देवी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेकर जैन नारियों का गौरव और उनकी गरिमा बढ़ाई। 1942 के जन आंदोलन में आपने सक्रिय भाग लेकर सामाजिक परम्पराओं के दायरे में नारी वर्ग को एक दिशा प्रदान की। सभाबंदी कानून भंग करके सभा में भाषण देने के कारण आपको साबरमती जेल में पांच माह तक रहना पड़ा।

(3) कांचन जैन मुन्नालाल शाह

पूज्य बापू के आश्रम में अनेक वर्षों तक रहने वाली कांचन जैन मुन्नालाल शाह का जन्म चखोदारा (गुजरात) में हुआ, बाद में वे वर्धा (महाराष्ट्र) प्रवासिनी हो गयीं। देश की आजादी को ही अपना सर्वोत्तम लक्ष्य निर्धारित करने वाली कांचन जैन ने 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन में सक्रियता से भाग लिया और एक वर्ष बारह दिन का कारावास होगा।

(4) श्रीमती केशरबाई

भारत माता के चरणों में सर्वस्व न्यौछावर करने वाली केशरबाई ललितपुर निवासी श्री मोतीलाल जैन की पत्नी थी। महात्मा गांधी की प्रेरणा से श्रीमती केशरबाई आजादी के रणक्षेत्र में कूद पड़ीं। वे नारी जाति को जागृत करने में जुट गयी और कांग्रेस की सक्रिय कार्यकर्ता हो गयी। 1941 का व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन प्रत्येक कार्यकर्ता को स्वतंत्रता के लिए प्रेरित कर रहा था। श्रीमती केशरबाई ने तन मन धन से इस आंदोलन में हिस्सा लिया। फलतः एक माह कारावास की सजा उन्हें सुनाई गई।

(5) श्रीमती गंगाबाई जैन

प्रसिद्ध देशभक्त वैद्य कन्हैयालाल जैन (कानपुर) की पत्नी श्रीमती गंगाबाई जैन अपने पति के कंधे से कंधा मिलाकर स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय रहीं। साइमन वापिस जाओ, दांडी यात्रा, नमक सत्याग्रह आदि आंदोलनों तथा सत्य, अहिंसा और सत्य, अहिंसा और भाईचारे की नीति ने गांधी जी को जनता के बीच में ला दिया था। इसी क्रम में 1931 के आन्दोलन के समय जब यू.पी कांग्रेस का जलसा श्रद्धेय पुरुषोत्मदास जी टण्डन के सभापत्तिव में हुआ तो उसकी स्वागताध्यक्ष बनने के कारण श्रीमती गंगाबाई को 6 माह का कारावास झेलना पड़ा।

(6) श्रीमती गोविन्द देवी पटुआ

जैन वीर महिलाओं में कलकत्ता की श्रीमती गोविन्द देवी पटुआ का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। गांधी जी के आह्वान पर महिलाओं ने आंदोलनों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। श्रीमती पाटुआ ने बड़ा बाजार कलकत्ता के विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर धरना देने वाले जत्थों का वीरता पूर्वक नेतृत्व किया। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में श्रीमती पटुआ ने 'करो या मरो' मंत्र के साथ बड़े उत्साह से भाग लिया। फलतः आपको गिरफ्तार कर लिया गया। जेल में अनेक यातनाएं आपको सहनी पड़ी।

(7) अमर शहीद उषावती संघवी

अहमदाबाद (गुजरात) की कुमारी उषावती संघवी भारत के स्वतंत्रता के आन्दोलन की मर

दीपशिखा थी जो अपना पूरा प्रकाश दे भी नही पायी थी कि जीवन का अवसान हो गया। 5 अप्रेल, 1943 को अहमदाबाद नगर में ब्रिटिश शासन के विरोध में एक विशाल जुलूस निकाला जा रहा था। इसमें प्रमुख भूमिका 22 वर्षीय जयावती निभा रही थी। अचानक पुलिस ने जुलूस को तितर-बितर करने के लिए आसू गैसे के गोले छोड़ना प्रारम्भ किया। नेतृत्व करती जयावती पर इस गैस का इतना अधिक दुष्प्रभाव पड़ा की उनकी मृत्यु हो गयी।

(8) श्रीमती धनवतीबाई राका

खादी एव चरखे को ही अपने जीवन का अग बनाने वाली श्रीमती धनवती बाई राका नागपुर के प्रसिद्ध स्वाधीनता सेनानी और पूज्य बापू के अत्यन्त प्रिय कार्यकर्ताओं में एक श्री पूनमचन्द जी राका की पत्नी थी। राष्ट्रीय आन्दोलन में वे महिलाओं के नेतृत्व के लिए विख्यात थीं। वे अनेको बार जेल गयीं।

(9) श्रीमती नन्हीबाई जैन

सन् 1942 के अग्रेजों भारत छोड़ो आन्दोलन में सभी प्रान्तों की महिलाओं ने बढ़-चढ कर हिस्सा लिया था। ग्राम लथाकाना (सिहोरा) जिला जबलपुर मध्य प्रदेश की श्रीमती नन्ही बाई जैन ने सन् 1942 के इस आदोलन में भाग लिया। फलस्वरूप आपको 8 माह 18 दिन जबलपुर जेल में गुजारने पड़े।

(10) श्रीमती प्रभादेवी शाह

अपने प्रारम्भिक जीवन को देश सेवा के लिए समपिर्त करने वाली और मृत्यृ के उपरान्त भी अपने पार्थिव शरीर को अनुसधान के लिए मेडिकल कॉलेज को समर्पित करने की घोषणा करने वाली श्रीमती प्रभादेवी शाह को देश प्रेम की भावना विरासत में ही मिली थी। प्रभादेवी शाह के मुख्य कार्य प्रभातफेरी, सूत कातना, विदेशी माल का बहिष्कार आदि थे। 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में वे सक्रिय रहीं, गिरफ्तारी का वारट कटा पर सहयोगियों ने उन्हें गिरफ्तार नहीं होने दिया।

(11) ब्रह्मचारिणी पण्डिता चन्दाबाई

जैन समाज की सेवा में समर्पित, नारी जागरण की दशा में उल्लेखनीय कार्यकर्त्री तथा जैन बाल आश्रम आरा की सस्थापिका पण्डिता चन्दाबाई ने अनवरत परिश्रम कर शिक्षा प्राप्त की। राष्ट्रपिता महात्मा गाधी, कस्तूरबा गाधी, डॉ राजेद्र प्रसाद, पडित नेहरू, सुभाष चन्द्र बोस, आचार्य कृपलानी आदि अनेक नेतागण राष्ट्रीय आदोलन के जमाने में जैन बाला आश्रम में आकर ठहरते थे। जैन बाला आश्रम की शिक्षा गाधी जी द्वारा प्रतिपादित राष्ट्रीय शिक्षा के आधार पर दी जाती थी। शिक्षा के सबध में आप महात्मा गाधी से विचार-विमर्श भी करती थी। आपने ही महिलादर्श नामक पत्र का सम्पादन शुरू किया था। आश्रम में महिलाओं को स्वदेशी वस्त्रों को धारणकरने की प्रेरणा दी। आश्रम की समस्त शिक्षिकाए एव छात्राए चरखा कातती एव कपड़ बनुती थीं। आपने महात्मा गाधी के असहयोग आन्दोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। आपके क्रातिकारी कार्यों के कारण आपका सम्मान सदैव होता रहा। अखिल भारतीय जैन महिला परिषद् की स्थापना करके देश की महिलाओं में पर्दाप्रथा और दासता की भावना को दूर करने का प्रयास भी आपने किया था।

(12) श्रीमती प्रेम कुमारी विशारद

श्रीमती प्रेमकुारी विशारद ने 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन में खुलकर भाग लिया। आप गिरफ्तार कर ली गयीं और आपको नागपुर जेल मे रहना पड़ा। जैन सन्देश (जनवरी, 1947) लिखता है कि "अप कट्टर समाज सुधारक, राष्ट्रीय विचारक और बहुत सादा लिबास में रहले वाली खादी प्रिय महिला है।"

(13) श्रीमती फूलकँवर बाई चौरड़िया

अपने पति श्री माधोसिंह की प्रेरणा से देश के कार्यों में हिस्सा लेने वाली फूलकॅवर वाई ने अपने कार्यक्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। श्रीमती चौरड़िया एक जागरूक महिला थी। सत्याग्रह और पिकेटिंग के दौरान अनेक बार पुलिस यातनायें उन्हें सहनी पड़ी थी। अजमेर सत्याग्रह में भाग लेने के कारण श्रीमती चौरड़िया को 3 माह जेल में रहना पड़ा था। भारत छोड़ो आन्दोलन में भी आपने सक्रिय भाग लिया था और एक माह की जेल यात्रा की थी।

(14) मृदुला बेन साराभाई

मृदुला बेन साराभाई को स्वराज्य की भावना विरासत में मिली।उनके पिता श्री अम्बालाल साराभाई पूज्य बापू के परम भक्त थे। माता सरला देवी ने दांडी यात्रा के समय महिलाओं का नेतृत्व किया था। घर में देश भक्ति का वातावरण होने के कारण बचपन से ही वे देश भक्ति और स्वाधीनता आन्दोलन से जुड़ गयीं। गुजरात की महिलाओं में जागृति लाकर उन्हें संगठित एवं प्रशिक्षित करके अहमदाबाद की युवा प्रवृत्तियों के संचालन में उन्होंने अग्रणी भूमिका निभायी। विदेशी कपड़ों की होली जलाने, शराब की दुकानें बन्द कराने तथा धरना टोलियों के संगठन और संचालन में उनकी महती भूमिका रहीं। 1942 में सत्याग्रहियों की देखभाल करने के लिए गांधी जी ने उन्हें नगर समिति का प्रमुख बनया था। आन्दोलनों का नेतृत्व करने के कारण उन्हें दो बार जेल यात्रा करनी पड़ी। कस्तूरबा गांधी के निधन के बार गठित हुए कस्तूबर गांधी ट्रस्ट में वे संगठन मंत्री बनी। 1941 के अहमदाबाद, 1946 के मेरठ व 1946-47 के पंजाब व बिहार के साम्प्रदायिक दंगो के समय राहत कार्यो में भी उनका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान रहा था।

(15) श्रीमती माणिक गौरी

श्रीमती माणिक गौरी प्रसिद्ध गांधीवादी नेता श्री छोटेलाल चेलाभाई की धर्मपत्नी थीं। श्रीमती गौरी अपने पति के कंधे से कंधा मिलाकर स्वतंत्रता आन्दोलन मे उनका सहयोग करती रहीं। शराब बंदी के लिए हजारों समर्पित स्वयं सेविकाओं को तैयार किया। वे स्वयं सूत कातती थीं। 1921 में जब विदेशी कपड़ों की होली जलायी गयी तो अपने पति के कपड़ों के साथ अपने 2000 रुपये के विदेशी कपड़े भी आपने जला दिये थे।

(16) श्रीमती राजमती पाटिल

राजूताई या राजमती ताई उपनाम से विख्यात महाराष्ट्र की क्रांतिकारी महिला श्रीमती राजमती पाटिल ने अपने कार्य कलापों से क्रांतिकारियों को भरपूर सहयोग दिया। राजमती और उनके साथी पोस्टर और बुलेटिन तैयार कर बांटने का कार्य करते थे। 6 अगस्त, 1943 को तिलक चौक सोलापुर में आपने तिरंगा झंडा फहराया, फलतः आपको गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। जेल से रिहा होने के पश्चात उन्होंने [illegible]

मदद करने का दायित्व सभाला। राजमती भूमिगतों के साथ कधे से कधा मिलाकर उनका सहयोग कर रही थी। यहाँ ही उन्होंने हथियार चलाना सीखा। वे क्रातिकारियों को खाद्य सामग्री आदि की आपूर्ति करती थी। अनेक अवसरों पर राजमती ताई ने क्रातिकारियों को भरपूर सहयोग दिया।

(17) श्रीमती लक्ष्मी देवी जैन

सहारनपुर की श्रीमती लक्ष्मी देवी जैन सविधान निर्मात्री सभा के सुप्रसिद्ध सदस्य स्व बाबू अजित प्रसाद जैन की पत्नी थी। 1943 में जब स्वतत्रता आन्दोलन विभिन्न रूपों में चल रहा था तब सहारनपुर में महिलाओं के लिए एक स्त्री समाज की स्थापना हुई जिसकी लक्ष्मी देवी प्रमुख कार्यकर्त्री थी। पति के कधे से कधा मिलाकर आप मातृभूमि को स्वतत्र कराने में सक्रिय हो गयी। सन् 1941-42 के दौरान देश व्यापी आन्दोलन में जब आपने जेल यात्रा की तो कुछ महीने की पुत्री भी आपके साथ थी।

(1) श्री अर्जुन लाल सेठी

श्री अर्जुन लाल सेठी स्वतत्रता आन्दोलन के जनक थे। वे स्वतत्रता आन्दोलन की नींव के पत्थर थे। उन्होंने उस समय बी ए , पास किया जब उच्च शिक्षा गौरव की बात समझी जाती थी। वे अग्रेजी के अतिरिक्त फारसी, सस्कृत एव पाली के विद्वान् थे। जयपुर महाराजा ने उनको दीवान पद लेने का आग्रह किया लेकिन उन्होंने उसे ठुकरा दिया। वे क्रातिकारी शिक्षक एव क्रातिकारी छात्र थे। उन्होंने राजस्थान में सशस्त्र क्राति की और वे जेल में रहे । उन्होंने अजमेर को अपना कार्य क्षेत्र बनाया और वे क्रातिकारियों का मार्गदर्शन करते रहे। हिन्दू मुस्लिम एकता के वे कट्टर समर्थक थे। उन्होंने अपना समस्त जीवन राष्ट्रीय स्वतत्रता आन्दोलन में लगा दिया। अन्त में 29 दिसम्बर 1941 में अजमेर में वे स्वर्गवासी बन गये।

(2) श्री आनन्दराज सुराणा

अपने देशभक्त पिता श्री चादमल सुराणा के वे योग्य पुत्र थे। उनके देशभक्ति एव जयनारायण व्यास जैसे राष्ट्रीय नेताओं से सम्पर्क होने के कारण उन्हें बीकानेर रेल्वे की सर्विस से निकाल दिया गया। उन पर राजद्रोह का मुकदमा चला। लम्बी जेल यातना सहनी पड़ी। उन्होंने क्राति के मतवालों को अपूर्व सहयोग दिया। सवत् 1952 में वे दिल्ली राज्य विधान सभा के सदस्य चुन लिये गये। उन्होंने अपने आपको अहिसा, विश्व शाति एव निरामिषवादिता के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित कर दिया था। पीड़ित मानवता की सेवा के लिए उन्होंने सुराणा विश्व बन्धुत्व ट्रस्ट स्थापित किया। श्री सुराणा ने अपने जीवन में लाखों रुपयों का दान दिया।

(3) श्री बलवन्त सिह मेहता

श्री मेहता मेवाड़ के सेवक थे। मेवाड़ में जब प्रजामडल बना तो आप उसके प्रथम अध्यक्ष बने। वे सन् 1929 में लाहोर काग्रेस में उदयपुर से डेलीगेट बनकर गये। मेवाड़ प्रजामडल गैर कानूनी शोषित होने पर उन्हें जेल में बन्द कर दिया गया। वे एक वर्ष तक जेल में बन्दी रहे। सन् 1942 को वे भारत छोड़ो आन्दोलन में गिरफ्तार कर लिये गये और ड़ेढ वर्ष तक जेल यातना भोगी। उन्होंने आदिवासियों के मध्य खूब कार्य किया। वे इतिहासज्ञ थे और राजस्थान इतिहास काग्रेस में खूब भाग लिया करते थे। उन्होंने सामन्तवाद, राजाशाही एव महाराणाओं के विरुद्ध

सत्याग्रहों का सदैव नेतृत्व किया।

(4) श्री सिद्धराज ढढ्ढा

भारत छोड़ो आन्दोलन में उन्होंने चेम्बर ऑफ कामर्स को छोड़कर सत्याग्रह में भाग लिया और 2 वर्ष तक वाराणसी जेल में रहे। सन् 1956-60 तक सर्वसेवा संघ के मंत्री रहे। आपने जयपुर ग्रामीण मेंअर्थव्यवस्था का शोध तथाअध्ययन करने हेतु कुम्हार घर ग्राम स्वराज संस्थान की स्थापना की। वे जयप्रकाश नारायण के साथ विदेशों में घूम कर आये।

(5) श्री उमरावमल आजाद

श्री उमरावमल आजाद ने आजाद मोर्चे में भाग लेकर खूब कार्य किया। वे पर्चे बांटने, बुलेटिन पहुँचाने, लोगों को इकट्ठा करने, नारे लगाने, प्रभात फेरी एवं जुलूस निकालने का कार्य करते थे। एक बार पुलिस ने उन्हें खूब पीटा जिससे उनके हाथ पांव की हड्डी टूट गयी। उन्होने घर से भाग कर आगरा, इन्दौर, रतलाम, कोटा आदि स्कूलों में क्रांतिकारियों से सम्पर्क किया।

(6) श्री कपूरचन्द छाबड़ा

देशभक्ति में सबसे आगे रहने वाले श्री कपूरचन्द छाबड़ा ने सन् 1932 में अजमेर जाकर सत्याग्रह किया और 9 महीने तक जेल में रहे। कितनी ही बार पुलिस ने उन्हें पकड़ा और जंगलों में जाकर छोड़ दिया। श्री छाबड़ा जी जनता की सेवा के लिए हमेशा तत्पर रहते थे।

(7) श्री भूरेलाल बया

श्री भूरेलाल बया का जन्म संवत् 1960 श्रावण शुक्ला-12 को हुआ। वे सन् 1923 में व्यापार करने हेतु बम्बई गये। साइमन कमीशन के बहिष्कार के देश व्यापी आन्दोलन से प्रभावित होकर स्वतंत्रता आन्दोलन की ओर मुड़ गये। उन्होंने नमक कानून तोड़ा और सत्याग्रह किया। सन् 1930 और सन् 1932 में वे जेल में रहे। इसके पश्चात् प्रजामण्डल के कर्णधार के रूप में कार्य करने लगे। वे मेवाड़ प्रजामण्डल के भी मंत्री एवं अध्यक्ष रहे। उन्होंने किसान सत्याग्रहों का संचालन किया। पहले माणिकलाल वर्मा के नेतृत्व में बने मंत्रिमण्डल में और बाद में हीरालाल शास्त्री के मंत्रिमण्डल में मंत्री रहे। उसके पश्चात् वे गांधी दर्शन एवं अन्य रचनात्मक कार्यक्रमों की ओर मुड़ गये।

(8) पं. श्री उदय जैन

श्री उदय जैन मूल रूप से राष्ट्रीय शिक्षक और समाज सुधारक रहे। उन्होंने सन् 1932 में कानोड में जवाहर विद्यापीठ नामक शिक्षा संस्था की स्थापना की जो राजस्थान दक्षिणपूर्वी आदिवासी क्षेत्रों की प्रगतिशील शिक्षण संस्था है। सन् 1940 में उदय जैन ने कानोड में मेवाड़ प्रजामण्डल की शाखा स्थापित की। भारत छोड़ो आन्दोलन में श्री जैन 6 महीने तक उदयपुर सेन्ट्रल जेल में बन्द रहे। उनका जन्म 19 जुलाई को कानोड में हुआ।

(9) श्री हीरालाल कोठारी

आपका जन्म 18 अक्टूबर, 1917 को हुआ। बम्बई में जब मेवाड़ प्रजामण्डल की स्थापना की गयी तब आप उसके उत्साही कार्यकर्ता बन गये। 2 अक्टूबर, 1941 को गांधी जयन्ती मनाने के अपराध में उन्होंने 6 माह का कारावास भुगता।

(10) श्री फूलचन्द पोरवाल जैन

श्री फूलचन्द पोरवाल मेवाड़ प्रजामण्डल में प्रारम्भ से ही जुड़े रहे। भारत छोड़ो आन्दोलन में

उन्हें 6 मास का कारावास भोगना पड़ा। वे वर्षों तक नाथद्वारा नगरपालिका में रहे। वे नगर कांग्रेस के प्रेसीडेन्ट भी रह चुके हैं।

(11) श्री दौलतमत भण्डारी

आपका जनम 16 दिसम्बर, 1907 को हुआ। एम ए , एल एल बी की डिग्री प्राप्त करने के पश्चात् जयपुर में वकालत प्रारम्भ की। सन् 1942 में उन्होंने आजाद मोर्चा की स्थापना की। सरकार विरोधी कार्यवाही के कारण उन्हें जेल यातना भोगनी पड़ी। सन् 1952 के लोक सभा चुनाव में वे भारी बहुमत से चुन लिये गये। सन् 1955 में उन्हें पहले हाईकोर्ट का जज और सन् 1968 में प्रधान न्यायाधीश बनाया गया। भूमि सुधार कानून में सुधार लाने के लिए सरकार ने आपकी अध्यक्षता के एक समिति गठित की।

(12) श्री बशीलाल लुहाडिया

श्री बशीलाल जुहाड़िया जयपुर से ससद सदस्य रहे चुके हैं। वे जयपुर जिला बोर्ड के निर्वाचित अध्यक्ष रहे। वे जयपुर राज्य सभा परिषद् एव देशीराज्य प्रजा परिषद् के सक्रिय सदस्य रहे । आप राजस्थान प्रान्तीय काग्रेस कमेटी एव अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के वर्षो तक सदस्य रहे।

नमक सत्याग्रह में लुहाडिया ने प्रान्तीय काग्रेस के डिक्टेटर के रूप में सत्याग्रह किया और अजमेर जेल में चार माह की सजा भुगतनी पड़ी। आयुपर्यन्त लुहाडिया जी वरिष्ठ नागरिक परिषद् के अध्यक्ष और देश एव समाज सेवा में लगे रहे।

(13) श्री रूपचन्द सौगानी

आपका जन्म 1911 में हुआ। एल एल बी की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् जयपुर में वकालत प्रारम्भ कर दी। वे सन् 1930 से ही राजनीति में आ गये। सन् 1937-51 तक जयपुर प्रजामण्डल और फिर जयपुर शहर काग्रेस के मत्री रहे। सन् 1939 में आपने सत्याग्रह जत्थे का नेतृत्व किया और उन्हें एक वर्ष 6 माह की कारावास की सजा दी गयी। वे जयपुर राज्य प्रतिनिधि सभा के जयपुर से निर्वाचित सदस्य रहे। उन्होंने जयपुर प्रतिनिधि सभा में जयपुर के पहले बजट पर 7 घण्टे तक लगातार भाषण दिया। आपको जयपुर के प्रधानमत्री सर श्री टी टी कृष्णमाचारी एव सर मिर्जा इस्माइल जैसे कुशल प्रशासकों के पास कार्य करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। आपका सन् 1977 में स्वर्गवास हो गया।

(21) श्री विजय चन्द जैन

सन् 1916 में जन्में श्री विजयचन्द जैन ने राष्ट्रीय आन्दोलनों में सक्रिय भाग लिया। सन् 1942 में आपको भारतसुरक्षा कानून के अन्तर्गत एक वर्ष की सजा हुई। किन्तु हाईकोर्ट के निर्णयानुसार 9 महीने बाद ही रिहा कर दिये गये। सन् 1948 के काग्रेस के जयपुर अधिवेशन में उन्होंन स्वागत समिति में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने 17 वर्ष तक राजस्थान वित्त निगम के सचिव पद पर कर्य किया।

(22) श्री गैंदी लाल छाबड़ा

श्री छाबड़ा प्रजामण्डल में आजीवन काग्रेस के पूर्ण सक्रिय सदस्य रहे। पुलिस ने उन्हें कितनी बार पकड़-पकड़ कर जगलों में छोड़ दिया परन्तु वे एक बार भी जेल नहीं जा सके। पुलिस द्वारा उनकी अनेकों बार पिटाई भी की गई लेकिन वे सदैव राष्ट्रीय विचारों से ओत प्रोत रहे।

(23) श्री दीपचन्द बख्शी

श्री बख्शी जी ने प्रजामण्डल के आन्दोलनों में खूब भाग लिया और 4 महीने की सजा हुई। सन् 1942 में आजाद मोर्चे के आन्दोलनों में भाग लिया। पुलिस उन्हें पकड़ती और जंगलों में जाकर छोड़ आती। बख्शी जी सेवा भावी जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

(24) श्री दूलीचन्द जैन

पाकिस्तान में जन्मे श्री जैन बंटवारे के पश्चात् जयपुर आ गये। श्री जैन कट्टर कांग्रेसी है। आपने नशाबन्दी के लिए कार्य किया और हर राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया। पुलिस ने कई बार गिरफ्तार किया और हिरासत में रखा।

(25) श्री राजरूप टांक

श्री टांक जयपुर के प्रसिद्ध समाजसेवी थी। हरजिन सेवा स्त्री शिक्षा, अनाथाश्रम सेवा, गौ-सेवा आदि आपकी मुख्य प्रवृत्तियां रही। जयपुर राज्य प्रजामण्डल से आप सदैव जुड़े रहे। अधिवेशनों की व्यवस्था को भी आप द्वारा ही संभाला जाता था। एक बार इनको पुलिस ने हिस्ट्रीशीटर बना दिया जो एक वर्ष तक चला। एक बार आपका सार्वजनिक अभिनन्दन भी आयोजित किया गया।

(26) श्री किशन लाल शाह

श्री शाह अपनी जागीर विरोधी प्रवृत्तियों से कारण 14 मार्च, 1947 को डाबड़ा हत्याकाड में बुरी तरह फंस गये। आप पर सामन्तशाही शासन की हत्या का अभियुक्त बनाकर मुकदमा चलाया गया। आप मारवाड़ लोक परिषद् के पहले सदस्य और फिर महामंत्री बनाये गये। नागौर जिला कांग्रेस के दो वर्षों तक अध्यक्ष रहे। श्री शाह 1952-62 तक कांग्रेस पार्टी की ओर से तथा 1967 से 72 तक स्वतंत्र पार्टी की ओर से राजस्थान विधान सभा के सदस्य रहे।

(27) श्री फूलचन्द बाफना

श्री बाफना प्रारम्भ से ही युवको के प्रेरणा स्रोत रहे। सन् 1940 मे लोक परिषद् के पहले सत्याग्रह में सक्रिय सदस्य रहे। सन् 1942 में आपको गिरफ्तार कर लिया गया तथा दो वर्ष तक जेल में रहे। आप मारवाड़ लोक परिषद् के प्रधानमंत्री रहे तथा हीरालाल शास्त्री के नेतृत्व के में मंत्रीमंडल में मंत्री बनाये गये। सन् 1957 के पश्चात् वे भू-दान और सर्वोदय की ओर मुड़ गये और सिद्धराज ढढ्ढा के नेत्व के सर्वोदय की गांव-गांव तक पहुँचाया और जीवन भर इधर ही कार्य करते रहे। सन् 1963 मे वे राजस्थान विधान सभा के सदस्य निर्वाचित हुए।

(28) श्री मानमल जैन लाडनूं

श्री जैन मारवाड़ लोक परिषद के कर्मठ सदस्य रहे। सन् 1942 मे लाडनूं सत्याग्रहियों का जत्था लेकर जोधपुर आये और निषेधाज्ञा का उल्लंघन करने पर गिरफ्तार किये गये और एक वर्ष 3 महीने कारावास में रहे। श्री जैन आज भी पूरे उत्साह से कांग्रेस की प्रवृत्तियों में भाग लेते हैं।

इसी तरह श्री नथमल लोढ़ा, श्री मिश्रीलाल जैन, श्री मिलापचन्द जैन, बसन्ती लाल बगीचा वाला, श्याम प्रकाश काला, अभयमल जैन, मानमल जैन जोधपुर ने भी राष्ट्रीय आन्दोलनों मे सक्रियता से भाग लिया। इन्होंने पुलिस के अमानुषिक अत्याचार सहे लेकिन आन्दोलनों को आगे बढ़ाते रहे। ◆

हिन्दी भाषा के विकास में जैन हिन्दी कवियों का योगदान

✍ श्रीमती सिधुलता जैन

हिन्दी भाषा के विकास में जैन कवियों साहित्यकारों का भी पर्याप्त योगदान रहा है। हिन्दी के इस विकास का काल विभाजन डॉ धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार इस प्रकार है –

(1) प्राचीनकाल (1000 से 1500 ई तक)

प्राचीनकाल में जैन साहित्य के अतर्गत पुराण-साहित्य चरितकाव्य, कथाकाव्य एव रहस्यवादी काव्य सभी लिखे गये । इसके अतिरिक्त व्याकरण ग्रन्थ तथा शृगार, शौर्य, नीति और अन्योक्ति सबधी फुटकर पद्य भी लिखे गये। आचार्य देवसेन का श्रावकाचार, मुनि जिनविजय का भरतेश्वर बाहुबली रास, असग कवि का चन्दनबाला रास जिनधर्म सूरी का स्थूलिभद्र रास विजयसेन सूरी का रेवन्तगिरि रास, सुमति गणि का नेमिनाथ रास स्वयभू का पद्म चरित, नागकुमार चरित पुष्पदन्त का महापुराण, नागकुमार चरित तथा यशोधर चरित श्री चन्द का कथाकोष, धनपाल धक्कड़ की भविसयत्त कथा, आचार्य हेमचन्द्र की देशी नाममाला (कोश) शालिभद्रसूरि का बाहुबलि रास अभयतिलक का महावीर रास आदि की रचना की गई।

पुष्पदन्त (दसवीं शती) कश्यप गोत्रीय ब्राह्मण थे और शिवजी के भक्त थे किन्तु अन्त में जैन हो गये। इनके महापुराण में ऋषभदेव आदि तीर्थंकरों तथा उनके समसामयिक महापुरुषों के चरित हैं।

मुनिजिनविजय का भरतेश्वर बाहुबली रास जैन साहित्य की रास परम्परा का प्रथम ग्रथ माना जाता है। इस ग्रथ में भरत तथा बाहुबली का चरित वर्णन है। चन्दनबाला रास पैतीस छन्दों का एक लघु खण्डकाव्य है। जिसकी रचना 1200 ई के लगभग असग कवि ने जालौर में की थी। इसकी कथा नायिका चन्दनबाला चम्पानगरी के राजा दधिवाहन की पुत्री थी जो सम्पूर्ण दु ख सहती हुई अपने सतीत्व पर अटल रही और महावीर से दीक्षा ली। विजयसेन सूरी का रेवन्तगिरिरास 1231 ई के लगभग लिखी गई। इसमें तीर्थकर नेमिनाथ की प्रतिमा तथा रेवन्तगिरि तीर्थ (गिरनार) का वर्णन है। यात्रा तथा मूर्ति स्थापना की घटनाओं पर आधारित यह रास वास्तुकलात्मक सौंदर्य का भी आकर्षण प्रस्तुत करता है। नेमिनाथ रास की रचना सुमतिगणि ने 1213 ई में की थी। अट्ठावन छन्दों की इस रचना में कवि ने नेमिनाथ का चरित्र सरस शैली में प्रस्तुत किया है।

लौकिक कथाओं का आश्रय लेकर जैनधर्म की शिक्षा देने के लिए अनेक काव्य लिखे गये। इनमें धनपाल की 'भविसयत्त कथा' प्रसिद्ध है जो कि एक भविष्यदत्त नामक बनिये से सबधित है। जोइन्दु के 'परमात्म प्रकाश' तथा 'योगसार में अध्यात्मपरक रचनायें हैं। रामसिह के 'पाहुड़ दोहा में भी यही बात है । धर्मसूरीके 'जम्बू स्वामी रासा' में गृहस्थ जीवन की मधुरता की झाकी है। हेमचन्द के 'शब्दानुशासन' में अनेक दोहों में नारी-हृदय की मधुरता और शृगार का हृदयहारी वर्णन है ।

(2) मध्यकाल 1500 से 1800 ई तक इस युग की विशेषता यह थी कि हिन्दी प्रदेश की भाषाओं पर से अपभ्रश का प्रभाव पूर्णत समाप्त हो गया था। दूसरी विशेषता यह है कि इस प्रदेश की उपभाषाएँ विशेषत खड़ी बोली ब्रज और अवधी अपने पैरों पर खड़ी हुई स्वतन्त्र रूप ग्रहण किया।

मध्यकालीन हिन्दी का आरभ सत काव्य से होता है। उस पर नाथ और सूफी सम्प्रदायों का

प्रभाव माना जाता है, किन्तु इस युग का जैन संत काव्य अपनी पूर्व परम्परा से अनुप्राणित है। जैन अपभ्रंश में वे सभी मूल बीज प्रस्तुत थे, जो हिन्दी के संतकाव्य में परिलक्षित होते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है- कि नाथ सम्प्रदाय में उस समय प्रचलित 12 सम्प्रदाय अन्तर्भुक्त किये गये थे उसमे नेमि सम्प्रदाय एक शक्ति सम्पन्न सम्प्रदाय था। यह सौराष्ट्र में तो प्रचलित था ही, दक्षिणी और उत्तरी भारत में भी विख्यात हुआ था। पारस सम्प्रदाय ईसा से 800 वर्ष पूर्व प्रतिष्ठित सम्प्रदाय था। यह 23वें तीर्थकर पार्श्वनाथ से सम्बद्ध था। भगवान महावीर के माता-पिता इसी सम्प्रदाय के अनुयायी थे।

जैन संत भगवान सिद्ध के अनुयायी थे। मध्ययुग के जैनों ने भी अन्य संत कवियों के समान बाह्य कर्म कलाप (आडम्बरो) का निर्भीकता के साथ विरोध किया। जैन हिन्दी कवियों ने कबीर के साथ-साथ तीर्थ भ्रमण, चतुर्वर्णी व्यवस्था, सिर मुंडाना, बाह्य शुद्धि चौका आदि का भाव शुद्ध न होने पर विरोध किया है।

हिन्दी के जैन कवियों ने भी सतगुरु के चरणों में अपनी भक्ति के पुष्प बिखेरे हैं। रूपचन्द जी ने चेतन को संबोधित करते हुए लिखा है-

चेतन अचरज भारी,यह मेरे जिये आवै।
अमृत वचन हितकारी, सतगुरु तुमहि पढ़ावै॥
सतगुरु तुमहिं पढ़ावै चित्त दै, और तुमहुँ हो ज्ञानी।
तबहुँ तुमहि न क्यों हूँ आवै, चेतन तत्त्व कहानी।"

हिन्दी के ख्याति लब्ध कवि बनारसी दास ने अध्यात्मगीत में आत्मा को नायक और सुमति को पत्नी बनाया। उन्होंने बनारसी विलास लिखा है-

पिय मो करता मै करतूति, पिय ज्ञानी मै ज्ञान विभूति।
पिय सुखसागर मै सुख सींव, पिय शिवमंदिर मै शिवनींव।
पिय ब्रह्मा मै सरस्वती नाम, पिय माधव मो कमला नाम।
पिय शंकर मै देवि भवानि, पिय जिनवर मै केवलबानि।

ऐसी रचनाएं जैन कवियों की मौलिक देन हैं। हिन्दी के इस क्षेत्र में आचार्य जिनप्रभ सूरि का अंतरंग विवाह, अजय पाटणी का शिव रमणी विवाह, ऋषभदास का आदीश्वर विवाहला, विनयचन्द्र और साधु कीर्ति की चूनड़ी ऐसी ही कृति है। कवि बनारसी दास, भूधरदास और द्यानतराय के आध्यात्मिक फाग अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। विनोदी लाल का नेमिराजुल बारहमासा, नेमि ब्याह, राजुल पच्चीसी आदि प्रसिद्ध कृतियाँ नेमिनाथ और राजुल के संबंध में है।

अरहंत के रूप में जैन कवियों ने सगुण की उपासना की है। अरहंत समवशण में विराजकर अपनी दिव्यध्वनि से विश्व के लोगो का उपकार करते हैं, अतः जैन आचार्यो ने अपने प्रसिद्ध 'णमोकार मंत्र' में अरहंत को सिद्ध से भी पहले स्थान दिया है। अरहंत की भक्ति मे सहस्रों स्तुति स्रोतों की रचना हुई है।

मध्यकालीन भारत में जयपुर, ग्वालियर और आगरा संगीत के केन्द्र थे। अधिकांश जैन कवि इन्हीं स्थानों पर उत्पन्न हुए अथवा यहाँ उन्होंने अपना साहित्यिक जीवन व्यतीत किया।

तुलसी की भाँति जैन कवियो उपाध्याय जय सागर, कवि जयलाल और भूधरदास ने भी अपने आराध्य देव से भव-भव में भक्ति की याचना की है। भूधरदास ने जैसी दीनता दिखाकर भक्ति का वर मांगा है, अन्य कोई नहीं माँग सका-

"भर नयन निरखे नाथ तुमको और वांछा ना रही,
मन ठइ मनोरथ भये पूरन रंक मानो निधि लही॥
अब होउ भव-भव भक्ति तुम्हरी, कृपा ऐसी कीजिए।
कर जोरि भूधरदास विनवें, यही वर मोहि दीजिए।"

मध्यकालीन जैन हिन्दी कवियों में अन्य कवि हैं- कवि सधारु, द्यानतराय, यशोविजय उपाध्याय (जस-विलास), भैया भगवती दास (ब्रह्मविलास) पाण्डे रूपचन्द (गोमट्टसार, दोहाशतक, गीतपरमार्थी, मंगलगीत, नेमिनाथ रासा) आदि है जिन्होंने हिन्दी को लोकप्रिय बनाने में [illegible] योग दिया। इस

कवियों ने हिन्दी को जनभाषा नाम देकर तथा उसमें सैकड़ों कृतियाँ लिखकरउसे झोंपड़ियों तक पहुँचाने मे अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया।

(3) आधुनिककाल (1800 से अब तक)

साहित्यिक प्रयोग की दृष्टि से इस युग में खड़ी बोली ने अन्य उपभाषाओं को दबा दिया। भाषा का प्राधान्य इस युग को खड़ी बोली युग कहने को बाध्य करता है।

जयपुर नगर 250 वर्षों से जैन विद्वानों का केन्द्र रहा है। हिन्दी साहित्य की इन्होंने जो महत्त्वूर्ण सेवा की थी वह देश के विद्वानों से छिपी नहीं है। इन विद्वानों में दौलतराम जी टोडरमल जी बखतराम जी जयचन्द जी, पारसदास जी सदासुख जी गुमानी राम जी, चपाराम जी भावसा आदि के नाम उल्लेखनीय है। इन विद्वानों में प टोडरमल जी के बारे में तो समाज अवश्य जानता है लेकिन अन्य विद्वानों के सबध में विशेष जानकारी बहुत कम लोगों को है।

आधुनिकाल के जैन कवियों में सर्वप्रथम हम दौलतराम कासलीवाल का नाम लेते है, जिन्होंने हिन्दी भाषा में 18 ग्रथों की रचना की। इनमें प्रमुख है- जीवन्धरस्वामी चरित, विवेक विलास, अध्यात्म बारहखड़ी श्रीपाल चरित, पद्मपुराण भाषा हरिवशपुराण भाषा, आदि पुराण भाषा आदि। इनकी भाषा खड़ी बोली मिश्रित ब्रजभाषा है तथा यत्र तत्र ढूँढाड़ी की झलक भी दिखाई देती है। किशन सिह (भद्रबाहु चरित्र निर्वाकाण्ड भाषा) नेमिचन्द (नेमिनाथ रास), दीपचन्द कासलीवाल (आत्मावलोकन) अजयराज पाटनी (आदिनाथ पूजा, चौबीस तीर्थंकर पूजा णमोकार सिद्धि आदि) खुशालचन्द काला (हरिवश पुराण पद्मपुराण जम्बूस्वामी चरित) टोडरमल (मोक्षमार्ग प्रकाशक) बख्तराम साह (बुद्धि विलास) जयचन्द छाबड़ा (सर्वार्थसिद्धि वचनिका) दौलतराम (छहढाला) प जुगलकिशोर मुखतार (युग भारती) प चैन सुखदास न्यायतीर्थ (दार्शनिक के गीत) आचार्य ज्ञानसागर (ऋषभचरित आदि) है।

समकालीन जैन कवियों में आचार्य विद्यासागर ने अपनी रचनाओं के माध्यम से हिन्दी भाषा के विकास में महत्त्वूर्ण योगदान दिया है। उनकी रचनाएँ जैन गीता मूकमाटी तोता क्यों रोता डूबो मत लगाओ डुबकी नर्मदा का नरम ककर चेतना के गहराव में आदि है। आचार्य श्री ने विद्याकाव्य भारती में एक स्थान पर लिखा है-

लालित्यपूर्ण कविता लिखके तुम्हारी
होते अनेक कवि हैं कवि नामधारी।
मै भी सुकाव्य लिख के कवि तो हुआ हूँ,
आश्चर्य तो यह निजानुभवी हुआ हूँ॥'

हिन्दी जैन कवियों की परम्परा में आचार्य विद्यासागर की शिष्य परम्परा में भी अनेक कवि साहित्यकार हुए है जिन्होंने हिन्दी साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

अन्य समकालीन जैन हिन्दी कवियों में डॉ हुकुमचन्द भारिल्ल श्री हरजसराज श्री राजमल पवैया जुगल किशोर जी युगल', प अनूपचन्द न्यायतीर्थ श्री प्रसन्न कुमार सेठी आदि है। इसके अलावा भी ऐसे बहुत से जैन साहित्यकार हैं जिन्होंन हिन्दी भाषा के विकास में योगदान दिया है दे रहे है। उन सभी के नाम गिनाना बहुत मुश्किल है।

अत में हम यही कहना चाहेंगे कि हिन्दी साहित्य एव भाषा के विकास में जैनधर्म का बहुत बड़ा हाथ है।

व्याख्याता हिन्दी'
प्राच्य विद्यापीठ शाहपुरा बाग
आमेर रोड, जयपुर-2



चतुर्थ खण्ड

विविध



जैन धर्म एवं समाज का भारतीय संस्कृति को योगदान

✍ राजकुमार काला

जैन आचार्यों, एवं विद्वानों के चिन्तन व कर्म ने भारत मे धर्म व दर्शन सम्बन्धी विचारों एवं क्रियाओ को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से प्रभावित किया है। जैन धर्म श्रमण संस्कृति का प्रतिनिधि है और अन्य धर्म व दर्शनों से स्वतन्त्र है। भारत में श्रमण व ब्राह्मण दोनो परम्पराऐं प्राचीन हैं। श्रमण परम्परा ने ब्राह्मण परम्परा को और ब्राह्मण परप्मरा ने जैन क्रियाओं को प्रभावित किया है। कुछ प्रमुख पक्षों पर यहाँ विचार किया गया है।

1. आत्मा सो परमात्माः जैन धर्म एवं समाज आत्मा की स्वतंत्र सत्ता और प्रत्येक आत्मा के अनन्त शक्तिवान होने की धारणा को स्वीकार करता है। उसी आधार पर जैन धर्म ने यह विचार दिया है कि हर प्राणी जीवात्मा है और वह अपनी शक्तियो का विकास करके स्वयं परमात्मा बन सकता है। जैन धर्म सृष्टि के कर्ता व नियन्ता के रूप में किसी परमात्मा को स्वीकार नही करता। आत्मा के स्वयं परमात्मा बनने की इस धारणा ने आत्म निर्भरता की भावना को जन्म दिया है। धर्म की परिपालना स्वाधीन है। इस धारणा से ईश्वर पर निर्भरता घटी है। ईश्वर जगत का कर्ता है, भगवान की प्रार्थना करेगे व धर्मोचार्यो के निर्देशो के अनुसार कार्य करेंगे तो भगवान हमारे पापो को क्षमा कर देगा- इस धारणा को खण्डित कर आ अमितगति कहते हैं : स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ, फल निश्चय ही वे देते ,करे आप फल देय अन्य तो, स्वयं किये निरफल होते। अपने कर्म सिवाय जीव को, कोई न फल देता कुछ भी,पर देता है यह विचार तज दे तू छोड़ प्रमादी बुद्ध ॥

भगवान के आदेश के नाम पर अनेक धर्मांध राजाओ,आचार्यो एवं पुराहितों ने समाज पर कहर ढाया है, निरपराध लोगो को सताया है, व्यापक पैमाने पर नर संहार किया है। जैन धर्म ने भगवान के नाम पर होने वाले अनेक कुत्सित कर्मों पर रोक लगाई है। जैन कर्म सिद्धान्त का ही प्रभाव है कि भारतीय जन मानस सामान्य रूप से यह स्वीकार करता है कि हमें हमारे कर्मो का फल मिलता है। कोइ भी ऐसी सत्ता नहीं है जो पापों को क्षमा कर दें। हमारे सत्कर्म ही हमारे कुकर्मो के फल से हमे बचा सकते है। सम्यक् प्रतीति, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् आचरण द्वारा ही आत्मा परमात्मा बनता है। आत्मा को परमात्मा बनने के लिए सद्गुरु की आवश्यकता तो है जो सही मार्ग दर्शन करे, परन्तु पण्डे , पुजारी, महन्त और भक्त व भगवान के बीच खड़े हो गये अनेक मध्यस्थों की आवश्यकता नहीं है । इसी धारा के प्रभाव मे भारत मे अनेक [illegible] हुये जिन्होंने कर्म फल पर बल दिया और समाज को तथाकथित धर्माचार्यों, महन्तों व [illegible] की दासता से मुक्त करवाया।

2. सुख की धारणाः सुख के सम्बन्ध मे जगत मे चार धारणायें प्रचलित है: 1. इन्द्रिय-भोगों में सुख है। 2. [illegible] पाने पर सुख होता है। 3. इच्छानुकूल कार्य होने पर जीव सुखी होता है। 4. [illegible] का अभाव सुख है।

जैन धर्म प्रायः तीन प्रकार से सुख को [illegible] मानता है। [illegible]

है। आकुलता के कारण मोह-राग द्वेष है, मोह-राग द्वेष घटने से आकुलता घटती है सुख का अनुभव बढ़ता है। जब मोह -राग द्वेष का पूर्ण अभाव हो जाता है तो आत्मा पूर्ण सुखी हो जाती है। पूर्ण सुखी आत्मा ही परमात्मा कही जाती है। सुख की इस धारणा से प्रभावित होकर ही भारत में वैराग्य की धारणा विकसित हुई है। अनेक धर्म व दर्शनों ने मोह -राग -द्वेष अथवा क्रोध -मान-माया -लोभ घटाने को सुख का मार्ग माना है। अनेक सन्तों ने वैराग्य की इस धारणा को परिपुष्ट किया है। यद्यपि मोह-राग द्वेष के पूर्ण अभाव द्वारा आत्मा के ही परमात्मा बनने की बात तक अन्य चिन्तक नही पहुच पाये।

3 **अहिसा पर बल** अहिसा की अवधारणा विश्व में धर्म व दर्शन के क्षेत्र में जैन धर्म का अति विशिष्ट योगदान है। जैनाचार्यों ने अहिसा की धारणा की गहनतम व्याख्या कीऔर उसे अपने जीवन में उतारा। जैन गृहस्थ भी उसका यथा-शक्ति पालन करते हैं। जैन और अहिसा पर्यायवाची हैं। उत्तर वैदिक काल में पशु बलि धर्म का एक अनिवार्य अग बन गया था। देवताओं को बलि चढ़ाना एक पूजा पद्धति बन गयी थी। इसके परिणाम स्वरूप मासाहार का भी प्रचलन बढ़ा। जैनचार्यों ने धर्म व देव पूजा के नाम पर पशु हत्या व मासाहार के विरूद्ध जनमत तैयार किया। उन्होंने किसी भी प्राणी की हत्या न करने व उसे कष्ट न पहुचाने का उपदेश दिया। सभी प्राणियों की आत्मा को समान बताया। जैसा व्यवहार तुम अपने लिए चाहते हो वैसा ही व्यवहार सब प्राणियों के प्रति करो। मन-वचन कर्म, करने-कराने व अनुमोदन रूप हिसा के त्याग का उपदेश दिया। इसके परिणाम स्वरूप देव पूजा व यज्ञों में पशु बलि का विरोध प्रारम्भ हुआ, काफी सीमा तक पशु बलि कम हो गयी। इसी प्रकार शिकार खेल व क्रिडा में पशु हत्या के विरूद्ध जन मानस तैयार किया। पशु बलि घटाने पर मासाहार की प्रवृति भी घटी। जहा जहा जैन धर्म का प्रचार बढ़ा हिसात्मक धार्मिक क्रियायें घटीं और जैन धर्म के 'जीओ और जीने दो के विचार को भारत के चिन्तको व अनेक धर्मोचार्यो ने स्वीकार किया व प्रचारित किया।

4 **सामाजिक समानता** वैदिक परम्परा जन्म आधरित वर्ण व्यवस्था को मानती थी। ब्राह्मणों को सर्वश्रेष्ठ, क्षत्रियों को श्रेष्ठ और वैश्य व शूद्रों को इन दोनों से नीचा स्थान देती थी। ब्रह्माजी के मुह से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय जाघो से वैश्य व पैरों से शूद्र पैदा हुये है, ऐसा प्रतिपादित किया जाता था। जैनाचार्यों ने वर्ण व्यवस्था को कर्म आधारित माना और सबकी समानता व धर्म मार्ग पर चलने में समान अधिकार की बात कही। शूद्रों व महिलाओं को समान अवसर, सम्मान व धर्म सभा में स्थान प्रदान किया। फलस्वरूप चारों ही वर्ण के लोगों ने जैन धर्म स्वीकार किया। शूद्रों व महिलाओं को साधु सघ में स्थान दिया। उसका प्रभाव यह हुआ कि हिन्दु धर्म के अनेक विचारक वर्ण व्यवस्था को कर्म आधारित मानने लगे। जन्माधारित वर्ण व्यवस्था धीरे-धीरे उपेक्षित होती गयी। महिलाओं और शूद्रों की स्थिति पर व्यापक प्रभाव पड़ा। धार्मिक क्रियाओं में उनकी भागीदारी बढ़ी। उनके शिक्षा के अधिकार को मान्यता मिली। उनके साथ होने वाले अमानवीय व्यवहार घटे। जैन धर्म के साथ -साथ भारत के अन्य धर्मो में भी उनके प्रति विचारों में बदलाव आया। इस वैचारिक परिवर्तन से ही आगे चलकर दास प्रथा समाप्त हुई।

5 **पुजारियो,महन्तो व धर्माचार्यों से स्वतत्रता** भारत में ब्राह्मणों, विशेष रूप से पुजारी समुदाय को समाज में विशेष दर्जा व अधिकार प्राप्त रहे हैं। उन्होंने इसका उपयोग सामान्य समाज का शोषण करने में किया

है। जैन धर्म ने धर्म पालन में सबको स्वतन्त्रता व समानता दी है। धर्म पालन व धर्माचरण हेतु किसी पण्डे, पुजारी , महन्त या कर्मकाण्ड विशेषज्ञों की आवश्यकता नहीं हैं। जैनाचार्यो ने धर्म को आजीविका का साधन बनाने को अनुचित व अश्रेयस्कर कार्य माना है। हर व्यक्ति को धार्मिक ज्ञान का अधिकार माना है व उन्हें इस हेतु प्रेरित किया है। जैन धर्म की इस परम्परा से प्रभावित होकर समाज धर्माचार्यो के शिकंजे से काफी सीमा तक मुक्त हुआ है। सुधारवादी धार्मिक विचारो मे कर्मकाण्डी धर्माचार्यो का स्थान घटता गया और विद्वान धर्माचार्यो का महत्व बढा है।

जैन धर्म ब्राह्मणों का विरोधी नहीं है। अनेक ब्राह्मण जैनाचार्य बने है। महावीर के प्रमुख गणधर इन्द्रभूति गौतम स्वयं एक प्रकाण्ड विद्वान ब्राह्मण थे। उनके अध्ययन अध्यापन व निस्पृह वृत्ति का जैनाचार्यो ने स्वागत किया है। धर्म को धंधा बनाने को जैनाचार्यो ने अनुचित माना है। उनके अनुसार धर्म आत्मोन्नति का साधन है, आजीविका का नहीं । इन विचारो को अनेक वैदिक विचारकों ने भी अपनाया है।

6. सामाजिक कल्याण की प्रेरणाः जैन धर्म मे गृहस्थ के 6 दैनिक आवश्यक कार्यो में एक दान हैं । चार प्रकार के दान की प्रेरणा दी जाती है। आहार,अभय,औषधि, ज्ञान दान को दैनिक षट कर्म का भाग बनाने का परिणाम यह हुआ कि जैन समाज ने धर्मशालाये, औषधालय, विद्यालय, गौशालायें, प्याऊ, सदाव्रत, अनाथालय, पशु चिकित्सालय आदि स्थापित व संचालित किये। भारत में शिक्षा के प्रसार में जैन समाज का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जिस प्रकार हिन्दी भाषा क्षेत्र में कार्य के प्रारम्भ मे हिन्दू समाज श्री गणेशाय नमः से कार्य प्रारम्भ करता है, अन्यत्र में ॐ नमः सिद्धेभ्यः बोलने की परम्परा है।

अपरिग्रह एवं परिग्रह परिमाण व्रत की प्रणाली ने ऐसी मनोवृति पैदा कि जिसमें दूसरों की सहायता कर व्यक्ति आनन्द का अनुभव करता है। केवल मनुष्यों की नहीं बल्कि पशु-पक्षियों की भी। सहायता उनकी जिनसे वर्तमान या भविष्य में किसी प्रयोजन की सिद्धि होने वाली नही है। भारतीय समाज को जैन धर्म का यह एक महत्वपूर्ण योगदान है।

7. धार्मिक उदारता एवं धार्मिक सहिष्णुताः जैन धर्म व्यक्तिगत धर्म है, समुदाय का नही। फलतः कोई भी व्यक्ति जैन धर्म का जिस सीमा तक पालन करना उचित समझे पालन कर सकता है। यदि कोई छोड़ता भी है तो कोई भी दण्ड विधान नही है। अन्य धर्मावलम्बी जैन सिद्धान्त व आचरण को स्वतंत्रता पूर्वक अपना सकते है। इस अनेकान्त एवं स्याद्वाद के सिद्धान्त ने स्पष्ट किया कि एक वस्तु कार्य या घटना के अनेक पक्ष होते है, अतः वस्तु या घटना पर विचार अलग-अलग पहलू से किया जा सकता है। कथनी में भेद पाये जा सकते है यद्यपि वस्तु स्वभाव में भेद नहीं होता। धर्म की परिभाषा भी यह दी की 'वत्थु सुहावो धम्मो' वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। इसके साथ ही जैनाचार्यों ने धर्म को जान व समझ कर विवेक पूर्वक आचरण करने का निर्देश दिया। बिना सोचे विचारे, तर्क की कसौटी पर कसे बिना किसी धर्मादेश का मानना गुलाम [illegible] दिया। फलत. जैनियों ने भारतीय समाज को धार्मिक सहिष्णुता व सहअस्तित्व दिया। जिसका [illegible] प्रमाण भारत में है कि कई [illegible] जातियों में जैन, वैष्णव, आर्य समाजी, [illegible] परिवार में साथ-साथ रहने व वैवाहिक सम्बन्ध भी होते है।

[illegible]

तदनुसार आचरण करो। कर्म काण्ड धर्म नही है— यद्यपि धार्मिक जीवन में कर्मकाण्ड भी होता है व मार्ग के पड़ाव के रूप में आता है। सत्य कहा नहीं जा सकता, समझा जा सकता है अत विरोधी से घृणा मत करो उसे अपनी बात समझा दो— समझना न समझना मानना न मानना उसकी इच्छा पर है। धर्म को बलात् नहीं लादा जा सकता। इसीलिए जैन धर्म राजधर्म बनने पर भी कभी जैन समाज ने अन्य मतावलम्बियों को सताया हो, बलात् धर्म परिवर्तन कराया हो ऐसा इतिहास में एक भी उदाहरण नहीं है। यद्यपि जैनियों पर समय-समय राजाओं व विरोधी धर्माचार्यों ने अनेक बार आक्रमण किया है, पीड़ित किया है।

अहिंसा सिद्धान्त हिन्दू सस्कृति को जैन धर्म की देन है और अहिसा की धारणा से जैन तो धार्मिक सहिष्णु रहे ही, सामान्य भारतीय समाज में भी धार्मिक सहिष्णुता आयी

डॉ B A Saletore ने लिखा है— The principal of Ahinsa was partly responsible for greatest contribution of Jains to Hindu culture- that relating to tolerance Jains fastened the principal of tolerance more sincerely and at the same more successfully than any other community in India

8 महिलाओ का धार्मिक उद्धार धर्म के क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति अन्य धर्मों में सामान्यतया अछूत की जैसी रही है। उन्हें अनेक धार्मिक कृत्यों व अधिकारों से वचित रखा गया है। जैनाचार्यें ने उन्हें धार्मिक उपेक्षा व हीन भाव से निकाला। महिलाओं को पुरूषों के समान ही धर्म को जानने समझने व आचरण करने की प्रेरणा दी। सभी धार्मिक मामलों में जैन धर्म उन्हें समान अवसर प्रदान करता है। महिलायें भी अपनी आत्मिक उन्नति करके मोक्षमार्ग की साधना कर सकती है। महावीर के समवशण में 3,21 000 साधु व 36 000 साध्वियाँ थीं। जैन धर्म की इस व्यवस्था ने अन्य भारतीय धर्मों को भी महिलाओं पर लगे प्रतिबन्ध हटाने व उन्हें धार्मिक क्षेत्र में आगे बढ़ने के समान अवसर देने को प्रेरित किया।

9 धर्म को वैज्ञानिक दृष्टि जैनाचार्यों ने वस्तु स्वभाव को धर्म बताया। उन्होंने मूल तत्वों व समाज में विद्यमान अनेक पारस्परिक सम्बन्धों पर गहराई से विचार किया। आत्मा या जीव के साथ अचेतन पदार्थों, मुख्यत पुद्गल के स्वरूप का सारा विचार वस्तु व्यवस्था से सम्बन्धित है। फलत जैन शास्त्रों में भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, वनस्पति शास्त्र, प्राणी शास्त्र, गणित भूगोल ज्योतिष, न्याय व्याकरण के सिद्धान्त प्रचुरता से मिलते हैं। वस्तु की प्रकृति व कार्य-कारण सम्बन्ध जानने पर ही जैन दर्शन आधारित है। जीव हो या जड़ पदार्थ उसका स्वरूप न्याय से विचार कर अनुभव से प्रमाणित करो। इस प्रकार धर्म के क्षेत्र में वैज्ञानिक दृष्टि जैन धर्म की अनमोल देन है। जैन विचार पद्धति पूर्णत वैज्ञानिक है क्योंकि तर्क पर आधारित है और अनुभव से प्रमाणित है।

जैन धर्म और आधुनिक विज्ञान में अन्तर केवल इतना है कि वैज्ञानिक चिन्तन व अनुसधान केवल जड़ पदार्थों पर केन्द्रित है। इस चिन्तन में जीव नाम का प्रमुख तत्व उपेक्षित है। जैनाचार्यों ने जीव व अचेतन पदार्थों दोनों के स्वरूप को गहराई से जाना व समझा है। इस चिन्तन में जीव मुख्य व जड़ पदार्थ गौण है क्योंकि जड़ पदार्थों के स्वरूप का चिन्तन जीव के स्वरूप को प्रतिपादित करने के लिए हुआ है।

जय जवान कॉलोनी टोंक रोड़, जयपुर।

मंगलमयी पदयात्रा

जयपुर से सिद्धिक्षेत्र सम्मेदशिखरजी, दिनांक 30 सितम्बर-13 नवम्बर,2001.

✍ नवीन बिल्टीवाला

धर्ममयी पद यात्रा, आगम के अनुरुप

तन मन धन उज्जवल करै
प्रकटै शुद्धस्वरुप, सद्चित्त आनन्द रूप
मंगल हो..........भव-भव मंगल हो।

दिगम्बर साधु तो पदयात्रा कर गॉव-गॉव; नगर-नगर मे जिनशासन की ध्वजा फहराकर धर्मप्रभावना करते ही रहे है। परन्तु श्रावक भी यथासामर्थ्य इसमे पीछे नही रहे हैं। श्रावकों द्वारा तीर्थक्षेत्रों की पदयात्रा करते हुऐ वन्दना करने को प्राचीन परम्परा रही है। पं. टोडरमल जी की चिट्ठी से ज्ञात होता है कि लगभग 300 वर्ष पूर्व मुल्तान समाज ने मुल्तान से दक्षिण भारत स्थित श्रवणवेलगोल की पदयात्रा दिगम्बर मुनि के दर्शनार्थ की थी। ताराम्बोल पुस्तक में भी श्रावकों की पदयात्राओं का उल्लेख आता है। वैसे तो यातायातके साधन ना होने से गत शताब्दी के पूर्वार्न्ध तक तो बैलगाडियों-ऊंटगाडियों से तीर्थयात्राओं पर जाते ही रहे हैं।

परन्तु सुखद आश्चर्य व प्रसन्नता का विषय तो यह है कि वर्तमान युग में जबकि यातायात के सभी साधन सुगम सुलभ है, तब भी तीर्थक्षेत्रों, अतिशयक्षेत्रों [illegible] समाज के उत्साही, समर्पित श्रावकों [illegible] हेतु आकृष्ट कर ही लेता है। मैं तो [illegible] [illegible]

द्वारा ले जाती रही है। परन्तु गत वर्ष श्री दिगम्बर जैन पदयात्रा संघ के सरंक्षक श्री ज्ञान प्रकाश बक्षी ने श्री सुभाष जैन 'पाड्यॉ' के संयोजकत्व में दि 30 से 13 नवम्बर, 2000 की अवधि मे 1300 कि.मी. की ऐतिहासिक पदयात्रा जयपुर से सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखर जी सानन्द सम्पन्न करवाकर ऐसा अभिनव साहसपूर्ण धर्म प्रचार का स्वर्णिम कार्य किया जिसके लिऐ वे सदैव साधुवाद के पात्र रहेगे।

समाज रत्न पू. वैधराज सुशील कुमार जी की वर्षो की हार्दिक भावना सम्मदेशिखर जी की पदवन्दना करने की थी। वे समाज में चेतना के स्फुरन हेतु ऐसे पौरुष पूर्ण कार्य की आवश्यकता अनुभव कर रहे थे। आपके आत्मीय आग्रह को श्री ज्ञान प्रकाश जी बक्षी व श्री हेमचन्द्र जो चौधरी टाल न सके और असम्भव से कार्य में संभावना की किरण ढूढने लगे। वार्त्तालाप, विचार विमर्श का क्रम प्रारम्भ हुआ, कार्य योजना बनी।

अन्तत. पू. आचार्य विद्यानन्द जी, पू. आचार्य वर्द्धमान सागर जी, पू आचार्य [illegible] जी, पू. आर्यिका गणिनी सुपार्श्वमति माताजी पू. मुनि पुंगव सुधासागर जी आदि सभी मुनिराजों, आर्यिकाओं के मंगल आशीर्वाद तथा समाज के [illegible] [illegible]

लिऐ रवाना हुआ, जोकि बस्सी दौसा, सिकन्दरा नादौती होता हुआ 5 अक्टूबर को वहाँ पहुँचा।

6 अक्टूबर को श्री महावीर जी से सम्मेदशिखर जी की पदयात्रा के लिए 108 पदयात्रियों का दल समाज के श्रेष्ठी जनों व साधर्मी बन्धुओं से भावभीनी अश्रुपुरित विदाई व शुभकामनाओं के साथ एक ऐसी डगर की ओर बढ रहा था जहाँ हर कदम पर रोमाच, विस्मय व नयापन था। सिद्धक्षेत्र की 1300 कि मी की पदयात्रा व 45 दिन लगातार चलना, आज असभव लगता है, स्वय पर विश्वास नहीं होता था कि ये नन्हें-नन्हें कदम इतना चल सकने की सामर्थ्य भी रखते है ? परन्तु सबके आशीर्वाद व सिद्धक्षेत्र के माहात्म्य ने इस दुरुह कार्य को इतना सहज व सरल बना दिया कि पता नही चला कि कब मजिल पर पहुँच गये। हर पदयात्री एक इतिहास रचने जा रहा था। पूरा धर्ममयी आगमानुकुल पदयात्रा सघ हिण्डौन, बयाना से होता हुआ राजस्थान प्रान्त से निकल कर 9 अक्टूबर को फतेहपुरी सीकरी से उत्तर प्रदेश राज्य में प्रविष्ट हुआ। 10 अक्टूबर को आगरा नगर प्रवेश पर वहाँ के जैन समाज, नगर के महापौर, उपमहापौर, चिकित्सा राज्य मत्री डा रामबाबू हरित तथा श्रेष्ठी निरजन लाल जी बैनाड़ा द्वारा भव्य स्वागत किया गया। इस अवसर पर राज्य सरकार की ओर से अतिथि यात्रा का दर्जा दिया गया। आगरा में शाकाहार रैली व शहर के व्यस्त चौराहों, बाजारों में शाकाहार और अहिसा को अपनाने के आग्रह स्वरूप उद्बोधन को लोगों द्वारा सहारा गया। पदयात्रा के साथ चल रहा "शाकाहार रथ' तो पूरी यात्रा के दौरान ही राहगीरों ग्रामीणों, विद्यालय के बच्चों को शाकाहार-अहिसा व विश्वमैत्री-बन्धुत्व का मूक प्रचारक बना रहा। इसकी साजसज्जा बनावट व आलेख लोगों को बरबस अपनी ओर खींचते थे। यह "शाकाहार रथ' सतोष रोडवेज के मालिक श्री सुमेरचन्द्र जी जैन के सौजन्य से उपलब्ध हुआ था। पदयात्रा रूपी रथ के आध्यात्मिक सारथी बने पू. वैद्यराज जी के शब्दों में–

पद-पद पावन प्रेरणा पद-पद अति उल्लास।
पद से पद परम पद मिल जाने की आस।
सबका दृढ विश्वास मगल हो भव-भव मगल हो।
हर नुक्कड़ पर मैत्री हर पथ शाकाहार
हर मुख पर बात यह तज दे व्यसन विकार
शुभ जीवन आधार मगल हो भव भव मगल हो ।
सुखद रही पदयात्रा प्रेरक रहे प्रसग
साधर्मी वात्सल्य का जुड़ा वहाँ सत्सग
पुलकित है सब अग मगल हो भव-भव मगल हो।

पद-पद पर उल्लास, मैत्री-शाकाहार के प्रचार-प्रसार तथा राह में पड़े कस्बों-गावों के समाज के अपूर्व आत्मीयता से भरपूर साधर्मी वात्सल्य की छाव में पदयात्रा आगरा से एत्मातपुर, फिरोजाबाद इटावा, कानपुर भोगलीपुर फतेहपुर कोशाम्बी, दारानगर होते हुऐ 25 अक्टूबर को अपरान्ह इलाहाबाद में जीरो रोड स्थित वर्द्धमान ज्वैलर्स पहुँची

जहाँ से जैन विद्यालय के नन्हे-मुन्ने बच्चों ने बैंडवादन से हमारा स्वागत किया व जयकारो व बैंड की मधुर धुनों के बीच बाजारों से होते हुऐ जैन धर्मशाला लायें।

परम्परागत तरिके से आनन्द व उत्साह के साथ 26 अक्टूबर को दीपावली व 27 अक्टूबर को प्रातः भगवान महावीर का निर्वाणोत्सव मनाते हुऐ पदयात्रा गगा पर बने विशाल पुल, संगम स्थल, घाट, कुम्भ स्थल का अवलोकन करता हुआ बनारस के लिऐ रवाना हुआ, जहाँ 30 अक्टूबर को श्री दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र भैलुपुर में समाज द्वारा भव्य स्वागत किया गया। बनारस के जैन घाट पर बना स्याद्वाद्व महाविद्यालय की स्थिति देख अत्यन्त वेदना हुई। समाज को बड़े-बड़े विद्वान देने वाला यह महाविद्यालय आज आर्थिक विपन्नता व समाज की उपेक्षा के कारण दम तोड रहा है। पदयात्रा ने आगे मुगलसराय होती हुई 2 नवम्बर को कर्मनाशा स्थान से उत्तर प्रदेश से बिहार राज्य में प्रवेश किया। भभुआ, रोहतास, सासाराम, औरंगावाबद, गया जिलों से होते हुऐ 10 नवम्बर को नवगठित झारखण्ड राज्य के हजारीबाग में प्रवेश किया।

जैसे-जैसे शिखर जी की मंजिल पास आती जा रही थी, वैसे-वैसे उत्साह-आनन्द का अतिरेक [illegible] रहा था। अफसोस था तो सिर्फ एक की [illegible] पूर्ण धर्ममयी माहौल के ये दिन इतनी [illegible] निकल रहे थे? इतनी व्यस्त दिनचर्या [illegible]

और कब शाम। प्रातः 3 बजे जागरण के बाद नित्यकर्म से निवृत्त होकर 3.15 से 4 बजे तक पू. वैद्यराज जी ध्यानाभ्यास कराते व चेतना का स्फुरन करते जो कि पदयात्रियों को दिनभर उल्लासित रखती। मंगल वन्दना श्रीमति शान्ता जी कासलीवाल कराती। तत्पश्चात् सयोजक श्री सुभाष जैन आगे की पद्यात्रा की रूपरेखा बताते व आवश्यक निर्देश देते। सहसंयोजक श्री कुन्तीलाल जी पदयात्रा में सबसे आगे व सबसे पीछे चलने वालों की ड्यूटी लगाते। फिर प्रारम्भ हो जाता पदयात्रा का सफर। दिनभर में औसतन 35 कि.मी. चलते। संध्या को जहाँ रुकते वहाँ आरती-भजनों का कार्यक्रम मय साजों के होता जिसमें अनिल-विनोद बन्धु (सांभर वाले), श्री सुभाष बज, श्री संजय छाबड़ा व अन्य लोग शिरकत करते।

पदयात्रा के दौरान आहार-विहार पूर्ण सुनियोजित व व्यवसीत ढंग से संचालित हुआ। पदयात्रा को तन-मन-चेतन की शुद्धि का उपाय बनाया गया था। पदयात्रा के दौरान यथासंभव मौन रहने व णमोकार मंत्र का जाप करने के निर्देश थे। इस दौरान 24 लाख णमोकार के जाप पदयात्रियों द्वारा किये गये। राह में पड़े जिनालयों के जीर्णोद्धार हेतु लगभग 2 लाख रुपये की राशि पदयात्रियों व उनके परिजनों के सहयोग से न्यौछावर की गई।

दि. 13 नवम्बर को पदयात्रा [illegible] निर्धारित समय पर निर्विघ्न सानन्द सम्पन्न होकर सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखर जी, मधुबन में पहुँची। [illegible]

पहुँचे जहाँ जयपुर से व देश के अन्य भागों से पहुँचे साधर्मी बन्धुओं, यात्रीगणों व क्षेत्र की प्रबन्धकारिणी कमेटी के लोगों ने हार्दिक स्वागत किया। इस अवसर पर दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के उपाध्यक्ष श्री नरेश कुमार जी सेठी राज्य सरकार की ओर से मत्रीद्वय श्री माधोसिह जी व श्री गिरराज सिह जी तथा श्रेष्ठी श्री पूनम चन्द्र जी झरियावाले उपस्थित थे। आ श्री बिराग सागर जी महाराज का मगल आशीर्वाद प्राप्त हुआ।

पदयात्रा के दौरान समाज व विभिन्न राज्यों की सरकारों से सहयोग तथा चिकित्सा व्यवस्था हेतु सर्वश्री पूनम चन्द्र जी झरिया वाले तथा श्री राजेन्द्र जी गोधा (सम्पादक समाचार जगत, जयपुर) की सेवाऐं व परोक्ष सहयोग अतुलनीय रहा।

सभी पदयात्रियों ने केसरिया वस्त्र धारण कर 14 नवम्बर को प्रात पर्वतराज की वन्दना की एव पार्श्वनाथ भगवान की टोंक पर नारियल अर्पित कर पदयात्रा का समापन किया। इस बहुआयामी पदयात्रा में जयपुर के अलावा साभर, अजमेर कोटा आगरा व गोरखपुर के भी पदयात्री थे। जयपुर के प्रख्यात ठोलिया परिवार के श्री सुनील जी ठोलिया न्यूयार्क प्रवासी तो खास तौर से इस पदयात्रा हेतु भारत आये थे। 1[illegible] वर्ष से 73 वर्ष की आयुवर्ग के लोग इस पदयात्रा में थे।

उत्तर प्रदेश बिहार, झारखण्ड राज्यों की हरियाली नदी झरनें नहरें गगा-यमुना सोन नदी पर लम्बे-लम्बे पुल, पर्वतशृखलाए प्राकृतिक नजारे राह में पड़ने वाले सिघाड़े के तालाब गन्ने के खेत, अमरुद-आम के बगीचे, हरे-भरे खेत-खलिहान, राष्ट्रीय राजमार्ग पर भागते वाहन-ट्रक बिहार की उबड़-खाबड़ सड़के,सड़क किनारे ढाबे, राह में आये भव्य प्राचीन जिनालय बिहार-झारखण्ड में रात्रि का आतक, बन्दूक लिऐ रात को चौकसी करते सुरक्षा प्रहरी आदि ऐसे अनेकों प्रसग / दृश्य है जिन्हें कैमरे में तो कैद किया ही है साथ ही मन मस्तिष्क पर भी सदैव के लिए अकित हो गये हैं।

भावना है शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक उन्नति के लिऐ ऐसी पदयाँत्राऐं समय-समय पर सचालित होती रहे। पदयात्रा सघ आगे भी ऐसे साहसपूर्ण कार्य हाथ में लेंवे। पू सुधासागर जी महाराज के आशीर्वाद हमें स्मरण है, पदयात्री बने हो कभी 'करपात्री भी बनना। उम्मीद के साथ।

अथ श्री परसनाथ जी को स्तवन लिख्यते

बदौ श्री पारस जिनवर जी, मन बच सीस नवाय
निज सपति द्यो शिव सुख कारन, जाचत हूँ गुण गाय॥

सम्यक दर्शन देहू दया निधि, आयो हूँ तुम पासि।
सकादिके सब दोष निवारो , निरमल गुण परकास॥

शका अरूकाक्षा विचिकित्सा, मूढ अथिरता दोस।
अन उपगोहन नहीं बत्छल गुण, अप्रभावना दोष॥

जाति लाभ कुल रूप जु तप को बल विद्या अधिकार।
ये मद रहित दर्श द्यो जिनवर भव सागर तै तार॥

क्रमशः पेज 15

शाकाहार ही विश्व का भविष्य है

✍ *विमल कुमार जैन*

(का. श्री दि. जैन संस्कृत कालेज, जयपुर)

प्राणी जन्म से शाकाहारी होता है। सिहनी भी अपने शिशु शावक को दूध पिलाकर सन्तुष्ट होती है। किन्तु अज्ञानता के उन्माद वश प्राणी स्वभाव के विपरीत विकार से अटखेलियाँ करने का दुस्साहस करता है और फिर उन्हीं विकृतियों में ही वह रच-पच जाता है और शाकाहारी से मांसाहारी की संज्ञा प्राप्त कर लेता है। मांसाहारी प्राणी सदैव दुखी रहता है, रोगों से पीड़ित रहता है। सूक्तिकार ने लिखा है "शरीर व्याधि मन्दिरम्" अर्थात् शरीर को रोगों का घर कहा गया है। अवगुणो की खान कहा गया है, अनेक रोगों से ग्रसित शरीर का मांस यदि कोई भी व्यक्ति ग्रहण करता है तो यह तय है कि वह कभी भी स्वस्थ्य और सुखी नहीं रह सकता।

हमारा देश जो महावीर, बुद्ध, महात्मागाधी जैसे महान संत महात्माओं का है जो किसी की बुराई देखना, सुनना, और कहने तक को पाप समझते थे आज भाई-भाई के खून का प्यासा है, आखिर क्यो? त्रेतायुग में देखो, जब राम की सीता का अपहरण रावण ने किया था और राम ने जंगल के पशु पक्षियो से पूछा था- हे खग मृग, हे मधु कर श्रेणी। तुम देखी देखी सीता मृग नयनी॥

सीता का साथ पक्षी जटायू ने दिया। कैसा होगा मानव और पशु पक्षियों का संगम, कितनी मधुरता स्नेह प्यार वात्सत्य करुणा होगी। आज हम अपने पाले हुए जानवरों तक को खा जाते है। हमारा शरीर कैसे स्वस्थ रह सकता है ?

"तवेपिता महानां मनोहितम्।

अकारिचारू के तुना तवा हिमव सावधीत्" ॥

ऋग्वेद मण्डल। सुक्त 187 मंत्र सं 6 के अनुसार अन्न सेवन से दिव्य मन प्राप्त होता है। आहार की शुद्धि से अन्त करण की शुद्धि, वृद्धि का निर्माण होता है।

आहार के आवश्यक तत्व-एक विहंगम दृष्टि

प्रतिशत प्रति 100 ग्राम में

पदार्थ का नाम	प्रोटीन	कार्बोज	वसा	फाइबर	खनिज	कैलोरी
(क) शाकाहार-						
1 अन्न						
गेहूँ	12.1	69.4	1.7	1.9	2.7	341
जौ	11.5	69.6	1.3	3.9	[illegible]	[illegible]
[illegible]	11.6	67.5	5.0	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

	चावल	13 5	48 4	16 2	4 3	6 6	393
2	*दालें*						
	उड़द	24 0	-59 6	1 4	0 9	3 2	347
	मूँग	24 0	56 7	1 3	4 1	3 5	334
	मसूर	25 1	59 0	0 7	0 7	2 1	343
	मोंठ	23 6	56 5	1 1	4 5	3 5	330
	अरहर	22 3	57 6	1 7	1 5	3 5	335
	दालचना	20 8	60 9	5 6	3 9	2 7	360
	सोयाबीन	43 2	20 9	19 5	3 7	4 6	432
	राजमा	22 9	60 6	1 3	4 8	3 2	346
	लोभिया	24 1	54 5	1 3	3 8	3 2	323
	बीन्स	7 4	29 8	1 0	1 9	1 9	158
3	*हरी पत्तेदार सब्जियाँ*						
	गाजर के पत्ते	5 1	13 1	0 5	1 9	2 8	77
	मूली के पत्ते	3 8	2 4	0	1 0	1 6	28
	बथुआ	3 7	2 9	0 4	0 8	2 6	30
	मेथी	4 4	6 0	0 9	1 1	1 5	49
	पालक	2 0	2 9	0 7	0 6	1 7	26
	पोदीना	4 8	5 8	0 6	2 0	1 9	48
	पत्तेदार गोभी	1 8	4 6	0 1	1 0	0 6	27
4	*अन्य सब्जियाँ*						
	मटर	19 7	56 5	1 1	4 5	2 2	315
	टिण्डा	1 4	3 4	0 2	1 0	0 5	21
	गोभी	2 6	4 0	0 4	1 2	1 0	30
	भिन्डी	1 9	6 4	0 2	1 2	0 7	35
	टमाटर	1 5	6 7	0 2	4 2	1 2	35
5	*जड़ वाली सब्जियाँ*						
	आलू	1 6	22 6	0 1	0 4	0 6	97

6. दूध तथा दूध से बने पदार्थ						
भैंस का दूध	4.3	5.0	6.5	-	0.8	117
गाय का दूध	3.2	4.4	4 1	-	0.8	67
दही	3.1	3.0	4.0	-	0 8	60
छैना	18 3	1.2	20 8	-	2.6	265
पनीर	24.1	6 3	25.1	-	4.2	348
खोया	22.3	25.7	1.6	-	4.3	206
स्किम्ड मिल्क पाउडर	38.0	51.0	0.1	-	6.8	357
7. तेल व घी तथा तिलहन						
मूँगफली	26.2	26.7	39.8	3.1	2.5	570
तिल	18.3	25.0	43.3	2.9	5.2	563
घी	-	-	100.0	-	-	900
कुकिंग आयल	-	-	100.0	-	-	900
बटर	-	-	81.0	-	2 5	729
8. चीनी व गुड़						
गन्ने का रस	0.1	9.1	0.2	-	0.4	39
शर्करा (चीनी)	0.1	99.4	-	-	0 1	398
शहद	0.3	79 5	-	-	0.2	319
9. (क) फल						
तरबूजे के बीज	34.1	4.5	52.6	0.8	3.7	628
नारियल	6.8	18 4	62 3	6.6	1 6	662
खजूर	2.5	75.8	0.4	3 9	2 1	317
आंवला	0.5	13.7	0.1	3.4	0 5	58
केला	1 2	27.2	0.3	0.4	0 8	116
सेब	0 2	13.4	0 5	1 0	[illegible]	[illegible]
[illegible]	1 1	13 8	0 5	0 4	[illegible]	64
अंगूर	1 0	10 0	[illegible]	-	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

भगवान महावीर और उनके सिद्धान्त

✍ निर्मल कुमार शास्त्री 'सत्यार्थी'

अनादि-अनिधन जिन परम्परा में जैन तीर्थङ्करों की महिमा अत्यधिक है। वर्तमान चौबीसी में भगवान आदिनाथ स्वामी ने सर्वप्रथम इस युग में धर्मतीर्थ का प्रर्वतन किया। आपके पश्चात् अन्यान्य तीर्थंकरों ने देशना के माध्यम से धर्म का सदुपदेश प्रचारित किया और जन साधारण को आत्म स्वभाव की पहिचान कराई। अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर स्वामी ने सम्पूर्ण भारत में अहिसामयी उपदेश देकर व्यक्ति को सयमित जीवन जीने की कला को समझाया।

महावीर स्वामी ने कहा कि 'पाप से घृणा करो पापी से नही। इससे व्यक्ति का व्यक्ति से परस्पर स्नेह तो बना ही रहेगा, साथ ही पाप के प्रति घृणा रहेगी वह जीवन में उत्पन्न नहीं होगा। आत्मोन्नति का यही आधार है अन्य नहीं। व्यक्ति जब आत्मोन्नति को आधार बना लेगा तो निश्चित रूप से वह सयमित और अपरिग्रह हो जायेगा। तब एक नूतन दिव्य दया का प्रादुर्भाव होगा और समाज को एक नई दिशा मिलेगी प्रेम सहिष्णुता, क्षमा आदि मानवीय गुण विकसित होंगे।

वर्तमान में मानवीयता का निरन्तर ह्रास हो रहा है। यह एक चिन्तनीय विषय बनता जा रहा है। इसके मुख्य कारण यह है (1) अर्थ की ओर दौड़ (2) स्वार्थ प्रवृत्ति की वृद्धि (3) आधुनिकता की होड़ (4) पाश्चात्यीकरण की दिशा (5) नैतिक विचारधारा का अभाव (6) पारिवारिक विसगतियाँ।

उपरोक्त कारणों से हम अपने जीवन में विषमता को ही पाल रहे है, उन्नति नही अवनति ही प्राप्त कर रहे है। यदि हमें सुख और शान्ति चाहिए तो महावीर स्वामी के प्रमुख सिद्धान्तों को जीवन में उतारना ही होगा— आचार में अहिसा, विचार में अनेकात-स्याद्वाद एव जीवन में अपरिग्रह।

यदि हम अपने जीवन में अपरिग्रह के सिद्धान्त को ही धारण कर ले तो स्वार्थ भावना न्ष्ट हो जायेगी, अर्थ की ओर दृष्टि न होकर, परमार्थ के प्रति लगाव हो जायेगा। आधुनिकता की होड़ भी नही होगी, जीवन सयमित और सादगी पूर्ण हो जायेगा।

विचारों में अनेकान्त स्याद्वाद आ जाता है तो सामाजिक भावना का विकास होगा, साथ ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना जागृत हो जायेगी। पारिवारिक विसगतियों का भी अभाव हो जायेगा और सयुक्त परिवार की अवधारणा बनी रहेगी जिससे नैतिक भावना और परस्पर सहयोग, दया आपसी सामजस्य की भावना प्रस्फुटित होगी और समाज सुसस्कृत बन जायेगा।

आचरण में अहिसा होगी तो प्राणी मात्र सुख का अनुभव करेंगे। सभी निर्भय और परस्पर उन्नति में सहायक होंगे। महावीर की देशना है कि व्यक्ति के भावों में, आचारण में परस्पर के प्रति श्रेष्ठता समाहित हो जाए तो वह अपना कल्याण तो कर ही

लेता है साथ ही उसके सम्पर्क में आने वाले अन्य भी अपना कल्याण कर लेते है।

आचरण की पवित्रता सर्वोपरि है–

आचरण से मतलब मात्र शारीरिक क्रिया ही नहीं, भावनात्मक भी है। भावना की विशुद्धि से पूरा परिकर विशुद्ध और श्रेष्ठ बन जाता है। आस-पास या सम्पर्क में आने वाला जीव सुख/शान्ति का अनुभव करता है।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह जीवन के अंग बन जाते है तो जीवन आकुलता से रहित हो जाता है, एक सुखद स्वतंत्रता का आविर्भाव होता है।

भगवान महावीर ने "जियो और जीने दो" का प्रमुख सिद्धान्त दिया है। उन्होने कहा है कि व्यक्ति को सर्वप्रथम दूसरों को कष्ट दिए बिना ही स्वयं जीने का प्रयास करना चाहिए। यदि वह दूसरों को दुखित करता है तो वह स्वयं सुखी नहीं हो सकता है। इसलिए हमारे प्रयास और कार्य परस्पर सापेक्ष भावना से हो ताकि हम में मानवीयता बनी रहे।

आज आवश्यकता ही नहीं नितान्त आवश्यकता है महावीर स्वामी के सिद्धान्तो की। "सादा जीवन उच्च विचार" की प्रवृत्ति बने तब हम पुनः "वसुधैव कुटुम्बकम्" की जीवन्तता को अंकित कर सकते है और एक नयी क्रान्ति को जन्म दे सकते है।

आचार्य श्री दि. जैन संस्कृत
कॉलेज, जयपुर-3

पेज 8 से आगे...

कुगुरू कुदेव कुधर्म जु धरवा, कुगुरू कुदेव कुधर्म।
भूलि सराह करू नही यनकी, खट अनायतन कर्म॥

देव मूढ गुरू धर्म मूढता, ये त्रय मूढ निवार।
आठ आठ षट तीने मिले सब, पंच बीस मल टार॥

इस भव पर भव मरण बेदना, अन गुप्ता अनरक्ष।
अकस्मात भय सात निवारो, तुम दयाल परतक्ष॥

ज्ञान गर्भ मति मंद दशा वा, निठुर वचन उद्गार।
रुद्र भाव आलस्य दिशा प्रभु, मेट पंच परकार॥

लोक हास्य भय भोगन संरूचि, अग्र सोच तिथि देव।
मिथ्या आगम भक्ति तजु सब, मृषा दर्शनी सेव॥

माया मिथ्या और निदान जु, तीन शल्य दुखकार।
इनकर रहित करो अब जिनवर, मेरी ओर निहारि॥

दोष एकांत विनय विपरीत जु, शंसय और अज्ञान।
ये सब मेटि देहु जिन दर्शन, सम्यक गुण निधि थान॥

इत्यादिक सब दोष रहित, शुद्धातम दर्शन देव।
निज गुण सहित कराय दया निधि, करूणा नाहीं लेव॥

शंका रहित निकांक्षित निर विचिकित्सा अमूढ़ [illegible]।
उपगूहन थिति वात्सल्य दृगो जिन अंग प्रभावना सार॥

[illegible]

क्रमशः पेज 17

भगवान महावीर की देशना मे पर्यावरण चेतना

✍ डॉ. सनत कुमार जैन

आज से लाखों-करोड़ों वर्ष पूर्व पर्यावरण सतुलन के उपायों की सरचना युग प्रवर्तक प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने की थी। प्राणी का भौतिक और आध्यात्मिक विकास सतुलित पर्यावरण में ही सम्भव है। ससारी जीव को मूलभूत दो प्रवृत्तियाँ होती है, एक स्वभाव रूप प्रवृत्ति तथा दूसरी विभाव रूप प्रवृत्ति। स्वभाव रूप प्रवृत्ति पर्यावरण सतुलन है और असन्तुलित विभाव रूप प्रवृत्ति पर्यावरण प्रदूषण है।

तीर्थंकर ऋषभदेव ने अहिसा दया करुणा और सहिष्णुता का मूल मत्र देकर प्राणी मात्र के हितार्थ सुखकारक व्यवस्था दी जो निरन्तर प्रवाहमान रही। 24वें तीर्थंकर भगवान महावीर ने इसी व्यवस्था को 'जीयो और जीने दो" का सन्देश देकर आगे बढाया। पश्चात् केवली श्रुत केवली और आचार्यों द्वारा लाखों-करोड़ों वर्ष पूर्वकी व्यवस्था हमें यथावत् प्राप्त हुई, जो इस कलिकाल में भी अहिसा और विश्वशाति का शखनाद कर पर्यावरण सन्तुलन के प्रति जन चेतना जाग्रत कर रही है।

ईसा की प्रथम शताब्दी से ही आचार्य कुन्दकुन्द देव, आचार्य उमास्वामि आचार्य समन्तभद्र आदि ने जैसा वीतराग विज्ञान वर्णित किया, वही वीतरागता सम्पोषक सन्देश समय-समय पर आगे के जैनाचार्यों के द्वारा प्रणीत साहित्य में मिलता रहा। देश काल की परिस्थिति के अनुसार शब्द शैली या उदाहरणों में भिन्नता भले ही हो परन्तु सिद्धान्तों में समानता के ही दर्शन होते है।

आज विकास की अधी दौड़ में मानव प्रकृति के दोहन के नाम पर शोषण कर रहा है। नई सभ्यता, आधुनिक विज्ञान की टैक्नालोजी पर आधारित भोगवादी सस्कृति की प्रणेता है। यह भोगवादी सभ्यता दूसरे के सुख पर धावा बोलकर सुख से रहने की प्रवृत्ति पर आधारित है। इस असन्तुलन के भयकर परिणामों से चिन्तित सम्पूर्ण विश्व में एक चेतावनी, चिन्तन और चेतना का दौर चल रहा है।

चेतावनी का विषय पर्यावरण चिन्तन का विषय पर्यावरण प्रदूषण और चेतना का विषय पर्यावरण सरक्षण। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इसके लिए शिखर वार्ताएँ आयोजित हो रही है। चाहे वह 1972 में स्टॉकहोम में आयोजित मानव पर्यावरण सम्मेलन हो या 1992 में पृथ्वी सम्मेलन। सभी में एक ही विषय पर गहन चिन्ता व्यक्त की गयी कि जीवन और जगत को पर्यावरण प्रदूषण से कैसे बचाया जाय।

जैनाचार्यो ने पर्यावरण सरक्षण के उपायों पर विस्तार से लेखनी चलायी है। समयसार, प्रवचन सार

तत्वार्थसूत्र, रत्करण्डक श्रावकाचार आदि अनेक आगम ग्रंथ विश्व को समस्या रहित बनाने में समर्थ है। "परस्परोपग्रहो जीवनाम्" इस संक्षिप्त सूत्र के द्वारा भगवान महावीर ने सम्पूर्ण विश्व को पर्यावरण-सतुलन का पाठ पढाया है। प्रत्येक प्राणी वैर विरोध भूलकर (वात्सल्य) प्रेम का भाव धारण कर आत्मा से परमात्म पद को प्राप्त कर सकता है, अनन्त सुखी बन सकता है।

भगवान महावीर ने समस्या रहित समाज संरचना हेतु संदेश प्रसारित किया कि आचार मे अहिंसा, विचार में अनेकान्त और वाणी में स्याद्वाद के सिद्धान्त को अपनाकर विश्व का समाज आज भी समस्या रहित हो सकता है। अहिंसा, अनेकान्त और स्याद्वाद को किसी बाह्य देश या समाज से आयात नही करना है। यह तो प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर विद्यमान है। इसे अपने अन्दर खोजना है और अपने अन्दर से प्राप्त करना है। जीवन एक प्रयोगशाला है। जो ज्ञान और विवेक पूर्वक आत्म मंथन व शोधन करता है उसे सन्तुलित पर्यावरण के परिदृश्य के साथ सुखद् अनुभूति प्रतिफलित होती है। भगवान महावीर ने सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का प्रयोग स्वयं मे किया, इन्द्रिय जयी स्वयं बने, पर को जीतने में अपनी शक्ति, समय और श्रम को व्यर्थ नही किया। इस प्रकार भगवान महावीर ने समता की साधना से पर्यावरण सन्तुलन [illegible] किया।

◆

पेज 15 से आगे...

चित्त प्रभावना मांही रहै निति, हेय उपादेवान।
धीरज हरष विराग पॉच बिध, भूषण द्यो भगवान॥

आपा पर परचै ,जु विषैं कहूँ, उपजे नाही सदेह।
सहज प्रपंच जु रहित दशाशुभ, लक्षण दीजे येहे॥

प्रसम ओर संवेग भाव अरू, करूणा आस्तिकवान।
येह चिन सहित दरस द्यो जिनवर, स्व पर होय पिछान॥

मैत्री और प्रमोद जु करूणां, दुरजन सु समभाव।
च्यार भावना दीज्यो जिनपति, लागि रह्यो मन चाव॥

इत्यादिक गुण देहू अनंते, सम्यक दर्शन सार।
ज्ञान सहित चारित तप दीज्यो, शिव रमणी भरतार॥

अक्षर अरध, उभय, शुभ काल जु, विनय करै बहुमान।
तप गुरु नाम न गोपे अंग वसु, ज्ञान तने द्यो धान॥

मति श्रुत अवधि और मन पर्यय, सम्यक् सहित प्रधान।
सकल प्रतक्ष ज्ञान केवल द्यो, जांचत तुम ढिग आन॥

हिंसा झूठ चोरी तिय परिग्रह, पाप करत सताप।
इन को मेट महाव्रत दीज्यो, सो जिन धारे आप॥

ईरिया भाषा और ऐषणा, निक्षेपण आदान।
प्रतिष्ठापना [illegible]॥

क्रमशः पेज 20

अनुष्ठानों की आध्यात्मिक उपादेयता

✍ राजेन्द्र कुमार गोदीका

सामान्य जनसमूह आत्मा की शान्ति के लिए अनुष्ठान का सहारा लेता है। अनुष्ठान ध्यान-तप का एक प्रयोग है। इस प्रकार के प्रयोग के द्वारा वह अपने मन, परिवार, समाज तथा यहाँ तक कि विश्व शाति बढ़ाने का भाव रखता है। परन्तु इसके प्रस्तुत प्रभाव पर उसका विश्वास कभी कभी क्षीण हो जाता है। आज के वैज्ञानिक युग में तर्क के आधार पर वह उसकी उपयोगिता को कसौटी पर कसकर देखता है। परन्तु श्रद्धा व विश्वास को किस प्रकार जाँचा जा सकता है? इसके लिए हमें अपने भीतर की विभिन्न अवस्थाओं तथा चिन्तन की विधियों को समझना आवश्यक है। किसी भी तप या अनुष्ठान की सफलता के लिए श्रद्धा या विश्वास का दृढ़ होना आवश्यक है, स्थिर मनोयोग आवश्यक है। वीतरागी गुरुओं के जीवन में इसकी झाँकी हमें स्पष्ट दिखाई देती है। वहाँ नि स्वार्थता व करुणा अपने वास्तविक स्वरूप में परिलक्षित होती है। दृढ़ श्रद्धान में सदेह सूचक शब्दों का प्रयोग नहीं होता। वास्तव में श्रद्धा वही होती है जो बिना किसी अन्य सहायता के स्वय रुचिपूर्वक उस कार्य के प्रति अन्तरग झुकाव उत्पन्न करा देती है। ऐसे श्रद्धान में जब उत्तरोत्तर अधिकाधिक उल्लास उत्पन्न होता है तो हमारा विश्वास दृढ़ होता चला जाता है तथा हम सतोष का अनुभव करते है। यही श्रद्धा व विश्वास की कसौटी है। इसे ही शान्ति कहा जा सकता है।

इस शान्ति के प्राप्ति के लिए किये गये समस्त प्रयास यथा व्रत, उपवास, मत्र जाप आदि इसके साधन है। हमारा मन अति वेग से भ्रमण करने वाले चक्र के समान है जो साधारण प्रयासों से रुकता नहीं। अपने चारों ओर विद्यमान आकर्षणों, प्रलोभनों के प्रति वह आसक्त हुए बिना नहीं रहता। उसके इन्द्रिय विषय बाह्य होने के साथ-साथ अन्तरग में भी स्थित है। कामना या वासना एक ऐसी ही प्रधान शक्ति है। उसे वेदान्त की भाषा में माया कहते है। इसलिए इस मन को विकल्प रहित बनाने हेतु समय-समय पर योजना पूर्वक विधान/अनुष्ठान किया जाता है। इन अनुष्ठानों अथवा व्रतों के समय एकान्तवास में रहना, मौन रहना, वन में चले जाना, मन्दिर या उपाश्रय में रहना उपयुक्त कहा जाता है। किन्तु इस एकान्तवास या मौन का यह अर्थ कदापि नहीं कि केवल मात्र सासारिक साधनों को दूर हटा दिया जावे। वास्तव में चारों ओर के वातावरण के उपस्थित रहने पर भी अपने मन को समझा कर उसे विकल्पों से दूर हटाना ही व्रत या अनुष्ठानों की विधि का पालन करने का वास्तविक उद्देश्य है।

ध्यान का उपर्युक्त विधि द्वारा हमें अनेक बार प्रयास करने होंगे तथा हमारे दृष्टिकोण व चिन्तन को हमें हमेशा दिशा देनी होगी। जैसा एक कवि ने

कहा—मन के घोडे को मिलता है, प्रतिदिन जो संस्कार उसके ही अनुरूप करेगा, वह निश्चित व्यवहार॥

मन को स्थिर रखने एवं ध्यान मुद्रा हेतु कहा गया है कि भूमि या कुशासन पर पद्मासन अवस्था में गर्दन सीधी रखकर नेत्र व श्रोत्र दोनों को भीतर की ओर उन्मुख किया जावे–ऐसा प्रतीत हो कि नेत्र मन में होने वाले दृश्य कोदेख रहे हैं तथा श्रोत्र मन की वाणी सुन रहे हैं। इसे ही नासाग्र दृष्टि कहा गया है। इस विधि का निरन्तर अभ्यास किया जावे तो हमारा मन विकल्पों से दूर हटकर अन्तरंग भावना की ओर झुकना प्रारम्भ करेगा। विधानों की सम्पन्नता के समय अथवा व्रतोपवास के समय तो निश्चित अवधि के लिए इस प्रकार का प्रयास तथा चिन्तन आवश्यक है। इसके लिए अधोलिखित प्रक्रियाएं करनी चाहिए यथा— **मंत्र जाप्य–पंचणमोकार मंत्र,** केवल अर्हन्त या सिद्ध अथवा ॐकार आदि का नियमित पाठ। ॐकार का नाद स्वर बिना शब्द उच्चारण के मात्र अन्तरंग की आवाज द्वारा करने का अभ्यास। यह मंत्र सकल श्रुत ज्ञान तथा द्वादशांगवाणी का प्रतीक है, अतः इसका नाद व जाप सुफलकारक है। यही कारण है ॐ का प्रयोग भारतीय संस्कृति के प्रत्येक कार्य में प्रथमतः किया जाता है।

शब्द ब्रह्म की शक्ति अचिन्त्य है। शब्द का उच्चारण करने पर उसका वाच्यार्थ हमारे समक्ष आकर खड़ा हो जाता है। अर्हत् शब्द का उच्चारण करने पर अर्हंत प्रतिमा सांगोपांग रूप में हमारे मन में प्रत्यक्ष हो जाती है। अतः यदि मन को केन्द्रित कर सही उच्चारण के साथ मंत्र का उच्चारण किया जाता है तो इसका फल निश्चित रूप से मिलता है। यदि मन के योगदान या भावात्मक एकता का अभाव रहेगा तो यह मंत्रोच्चार मात्र टेप की ध्वनि के समान होगी जिसका न तो प्रभाव रहेगा तथा न ही जीवन में कोई फल प्राप्त होगा।

इसी प्रकार किसी स्तोत्र का नियमित अभ्यास अथवा पठन किया जावे और इसके साथ-साथ-साथ उस भक्ति भाव का उद्भव हमारे हृदय मे हो जावे जो कि सम्भवतः उसके रचयिता के मन में हुआ होगा तो इसका प्रभाव निश्चित रूप से हमें दिखाई देगा। इन क्रियाओं द्वारा चित्तवृत्ति-निरोध की यथार्थ सिद्धि होती रहे तभी ये सब संस्कार रूप मे स्थापित होते हैं।

आजकल जब हम इनके पाठ का प्रयोग करते हैं तो हमारा मन कही और घूमता रहता है। परन्तु यदि अपने मन मे जब इस प्रकार के विचार आयेंगे जैसे निम्न वाक्यो से प्रकट होते हैं तो धीरे-धीरे हमारा मन केन्द्रित होगा तथा भावात्मक रूप से हम मंत्र शक्ति से प्रभावित होंगे—

यथाः मै जिस जगत की ओर देखता हूँ वह सब कुछ अनित्य है। किसी की भी कोई शाश्वत सत्ता नहीं है। शान्ति के लिए इन बाह्य पदार्थों की शरण में जाने से लाभ नहीं होने वाला। यहाँ उत्पत्ति व विनाश, जन्म व मरण, सुख व दुःख सदैव चलता रहता है। यह सब संसरणशील है। इसलिए [illegible] मुझे [illegible] है। वस्तु-स्वरूप [illegible]

में स्वतन्त्र है। अत इनसे आशा भरी दृष्टि से अपेक्षाए करना निरर्थक है। दु ख-सुख स्वय अरपने कर्मों के आधार पर स्वय को ही भोगने पड़ेंगे। अत इस जड़ चेतन वर्ग की चिन्ता करना व्यर्थ है। शारीरिक आकर्षण को त्यागकर आत्मा के कल्याण की चिन्ता करना आवश्यक है।

इस प्रकार अपने आपको नित्य नतून अपराधों, बाह्यश्रित द्वन्द्वों तथा लगातार पुष्ट किये जा रहे दुष्ट सस्कारों से बचाता हुआ पूर्ण रूप से भय मुक्त होकर मानव जीवन यापन करे तभी ईश्वर या अर्हन्त से एकाकार होना सम्भव है। इसी के द्वारा समता रास की प्राप्ति एव शान्ति का पान तथा मुक्ति या निर्वाण के मार्ग पर निष्ठापूर्वक प्रयाण प्रारम्भ होगा। अपने विकल्पों को, 'इन्द्रिय वासना की तृप्ति से सुख होगा' इस भावना को, क्रमश छोड़ते जाना ही ध्यान व अनुष्ठानों का उद्देश्य है। इसे हम निम्न श्लोक द्वारा समझ सकते है— व्रतानि शास्त्राणि तपासि निर्जन निवासमतर्बहि सग मोचनम्। मौन क्षमातापनयोगधारण चितियामा कलयन् शिव श्रयेत॥ (तत्त्व तरगिणीज्ञान भूषण भट्टारक)

भावार्थ– जो कोई शुद्ध चैतन्य रूप के मनन के साथ-साथ व्रतों को पालता है शास्त्रों को पढता है तप करता है निर्जन स्थान में रहता है बाहरी भीतरी परिग्रह का त्याग करता है, मौन धारता है क्षमा पालता है व आतापनयोग धरता है वही मोक्ष को पाता है।

◆

पेज 17 से आगे

मन वच काय गुपति त्रय सब मिलि,त्रयोदश चरित येह।
आप धारि निज रूपलयो जिन, जावत है सो देहि॥

अष्ठ विशति लाख चौरासी, मूल उतर गुणधान।
सम्यक् चारित देहु जिनेश्वर, सेवग अपनो मान॥

दर्श विशद्धी विनय शील व्रत, अभिषण ज्ञानोपयोग।
भाव सवेंग त्याग तप दीज्यो, साधु समाधि सजोग॥

वैयावृत अरहत आचार्य सु, बहुश्रुत प्रवचन-भक्ति।
अवस्य प्रभावन प्रवचन वात्सल धारण की द्यो शक्ति॥

धर्म क्षमा मार्दव आर्ज व सति, श्रुचि सयम तप त्याग।
आकिंचन बह्चर्य जु उत्तम लक्षण द्यो बड भाग॥

षोडश कारण भावना भाऊ, दश लक्षण व्रत धारि।
रत्नत्रय आभूषण सजिद्यो, वेग बरू शिव नारि॥

अधिर सरण नही जग यक,अनि अश्रुचा श्रव सवर धार।
निर्ज्जर लोक बोधि दुलर्भ द्यो, धर्म भावना सार॥

अनशन ऊनोदर व्रत सख्या रस परित्याग वखान।
विवक्त सयासन काय क्लेश, जु षट तप द्यो धीमान॥

प्रायश्चित विनय वैयाव्रत, अरू स्वाध्याय विचारि।
कार्योत्सग ध्यान षट अन्तर द्यो शिव कारण सार॥

द्वादश तप समाधि बोधी अनुप्रेक्ष को आधेय।
इन गुण सहित करो अब जिनवर, करूणा म्हारी लेय॥

क्रमश पेज 27

धर्म और विज्ञान

✍ डॉ. भँवर देवी पाटनी

वर्तमान में विज्ञान जीवन के प्रायः सभी क्षैत्रो से सम्बद्ध हो गया है। विज्ञान तीव्र गति से प्रगति कर रहा है, अतः जो क्षेत्र विज्ञान से सम्बद्ध हो जाता है वह ही तीव्र गति से प्रगति पथ पर चल पडता है, तथा जो क्षेत्र विज्ञान से संबन्ध व सामंजस्य स्थापित नही कर पाता है, अथवा विरोध करता है वह न केवल पिछड़ ही जाता है , वरन उसके अस्तित्व को भी खतरा उपस्थित हो जाता है। यह धर्म पर भी बात कुछ अर्थो मे चरितार्थ हो रही है। अभी तक धर्म का विज्ञान के संाथ सामंजस्य नही बैठ पाया, जब कि दोनो ही सत्य का उद्‌घाटन करते हैं।

धर्म शक्ति रूप मे प्रत्येक प्राणी मात्र का स्वभाव होता है। जिस उपाय से विकार, अशुद्धता, अपूर्णता, समाप्त होकर स्वभाव में शुद्धता, पूर्णता प्रकट होती है, उस उपाय को धर्म कहते हैं, सम्यकत्व, सु-संस्कारिता, नम्रता, हिताहित विवेक से सुरक्षित विचार आचार, उच्चार (वचन) को धर्म कहते है। स्वभाव की शुद्धता, पूर्णता, सुख शान्ति का मार्ग ही धर्म है।

विज्ञान– इन्द्रियों से, यन्त्रादि से, भौतिक साधनो से सत्य का, भौतिक जगत का, प्रकृत्यादि का यत्किंचित परीक्षण करना, विश्लेषण करना, निरीक्षण करना, अनुसंधान करना, शोध करना, बोध करना, खोज करना आदि विज्ञान का कार्य है। विज्ञान [illegible] इन्द्रिय तथा भौतिक जगत है। वह [illegible], [illegible], खान-पान आदि शारीरिक सौंदर्य, बाह्य वातावरण, बाह्य सुन्दरता, आदि से सबंधित है। धर्म हृदय की कोमलता, उदारता, विश्वमैत्री, प्रेम आन्तरिक शान्ति, सत्य की पूर्ण उपलब्धि आदि से संबंधित है। विज्ञान बाह्य वातावरण, परिसर की शुदि की बात करता है, धर्म से आतमा पवित्र होती है।

विज्ञान का लक्ष्य शारीरिक और धर्म का आत्मिक पवित्रता तथा सत्य को उद्‌घाटित करना है, व उपलब्ध करना है, फिर भी दोनों मे सामंजस्य नही बैठ पा रहा है, विरोध भासित हो रहा है।

अध्यात्म या जीवन की आन्तरिक शक्तियों व उपलब्धियों से अपरिचित रहना ही मानव का सबसे बड़ा अज्ञान है। इसी अज्ञान के कारण वह शक्ति व संपत्ति का उपयोग हानिकारक भक्ष्य-अभक्ष्य पदार्थो में, विषय भोग व कषाय की वृदि में करता है। अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये किसी भी प्राणी को दुख पहुँचाने में नहीं झिझकता। विषय-कषायों की वृद्धि ही अन्तर द्वन्दो, दुखो, अपराधों व अशान्ति का मूल कारण है। अतः मानव को यदि सुख शान्ति अभीष्ठ है तो उसे अपने अज्ञान की देन स्वार्थ, विषय-कषाय जिनसे पूरा देश समाज आक्रान्त आकुलित है उसे मिटाना होगा। यह कार्य अध्यात्म या धर्म ही कर सकता है।

आज भौतिक युग है। इसमें प्रत्यक्ष की कसौटी पर खरे उतरने वाले सिद्धान्तों को ही मान्यता मिलता है। ऐसे सिद्धान्त [illegible]

परन्तु आज का धर्म शिव, मगल स्वरूप न रहकर अमगल स्वरूप हो गया है। धर्म के नाम पर युद्ध, कलह विग्रह, असहकार, अध श्रद्धा, शोषण मिथ्यादम्भ, अह के वश तोड़ फोड़, मिथ्या आडम्बरादि रूप दुर्गन्ध विश्व में फैल रही है। प्रेम से रहित, धर्म भावना रहित स्वार्थान्ध लोगों ने धर्म का रूप बिगाड़ दिया है। अपना ही स्वार्थ सिद्ध करने वाले पूँजीपति व राज सत्ताधारियों के हाथ में जाकर वैज्ञानिक अणुबमादि शक्ति जीव जगत के लिये विध्वसात्मक यम दूत बनी हुई है। अनेक राजनैतिक नेताओं ने तथा धर्म के अन्धानुयायियों ने सम्यक् धर्म के विपरीत मिथ्या परपरा मिथ्या प्रचार करके प्राणीयों के हृदय में मिथ्या मान्यता भर के अपना स्वार्थ सिद्ध करने के तरीके अपना रक्खे है।

इस तरह आज विज्ञान और धर्म दोनों का ही स्पष्ट घिनौना रूप हुआ दिखाई दे रहा है। आज के युग (समय) में महावीर के उपदेश व अहिसा धर्म की अत्यधिक आवश्यकता है। मानव समाज के सन्मुख यह प्रस्तुत करते हुये हर्ष होता है कि जैनधर्म में प्रतिपादित तात्विकवर्णन वैज्ञानिक अध्यात्मवाद है, जो कारण-कार्य, प्रत्यक्ष-प्रमाण व प्रयोग की कसौटी पर शत् प्रतिशत खरा उतरता है। इसमें स्याद्वाद, कर्मवाद-आदि सिद्धान्त विश्व के लिये महान देन है। जैन दर्शन में दुखों व बधनों से मुक्ति दिलाने वाले मार्ग को धर्म कहा है, यथा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्ष मार्ग अर्थात् सम्यग्दर्शन ज्ञान, चारित्र सुख देने वाला और दुख-मुक्ति का द्वार है। इस सूत्र में 'सम्यक्' शब्द बड़ा ही महत्व पूर्ण है। सम्यक् का अभिप्राय है 'सभी चीन । समीचीन अर्थात् सुख-सिद्धि की ओर आकुलता रहित आगे बढ़ाने वाले दर्शन ज्ञान चारित्र ही सच्चा शाश्वत सुख प्राप्त करने का मार्ग है।

सामान्यत प्रत्येक मानव अपनी शक्ति के अनुसार इस धर्म की साधना कर सकता है। इस मार्ग में अपनी शक्ति के अनुसार जितना बने उतने अशों में सीमा बाँधकर गृहस्थ अपने जीवन को भी सार्थक बना सकता है। जितना बने पापों का त्याग कर धर्म का मार्ग अपना ले। श्रावक धर्म स्वर्ण की सिल्ली के समान है। जिस प्रकार स्वर्ण की सिल्ली में से व्यक्ति अपनी आवश्यकता व शक्ति अनुसार स्वर्ण अश लेकर उपयोग कर सकता है, इसी प्रकार इस समीचीन धर्म को कोई भी व्यक्ति किसी भी देश, जाति, वर्ण, लिग, या आयु का हो, अमीर हो या गरीब हो, उच्च कुल का हो या नीचे का उसे किसी भी बाहरी वस्तु-पदार्थ या व्यक्ति या आडम्बर आदि की आवश्यकता नहीं है। यह सर्वभौमिक, सर्वकालीन, जन साधारण का आत्म धर्म है।

अत में विज्ञान और धर्म दोनों ही सत्य का उद्घाटन करते है। विज्ञान ने जितना जाना वह उस की खोज के अनुसार है और धर्म में पूर्ण सत्य केवल ज्ञान के द्वारा प्रतिपादित किया गया है। विवेक से अपनी आवश्यकताओं को सीमा में बाँधकर शक्तिनुसार त्याग को अपना कर धर्म का पालन करें तो हम सुख-शान्ति का अनुभव कर सकते है। इसके लिये कुछ समय बाहर से दृष्टि मोड़कर अपने अतरग में देखें, वहा ही से धर्म का प्रारभ होता है।

दरोगा जी के मन्दिर के पास,
चौकड़ी घाट दरवाजा, जयपुर

◆

जीवन मूल्यों में प्रदूषण और भगवान महावीर की देशना

✍ प्रद्युम्न कुमार जैन शास्त्री

वर्तमान युग में पूरा विश्व हिंसा, तनाव, आतंक, क्रूरता एवं हताशा आदि समस्याओं से ग्रस्त है। मानवीय मूल्यों का दिनोदिन ह्रास होता जा रहा है। अशान्त विश्व के इस वातावरण में प्रत्येक व्यक्ति शांति व सुख चाहता है। शान्ति विद्यमान है वयक्ति के अन्दर किन्तु वह उसे बाहर खोज रहा है। आज आवश्यकता है इस बात की कि हम अपना आत्म निरीक्षण करें और जीवन मूल्यों के ह्रास को रोकें।

सामाजिक बुराइयों से भी जीवन मूल्य घट रहे है। भगवान महावीर ने आचरण में अहिंसा, दृष्टि में अनेकांत तथा वाणी में स्याद्वाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था तथा सत्य, अहिंसा, क्षमा, अपरिग्रह, दया, मैत्री भावना, सहिष्णुता आदि गुणों को जीवन मूल्य बताया था।

वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व पर्यावरण प्रदूषण, मानिसक प्रदूषण, सामाजिक प्रदूषण आदि के माध्यम से त्रस्त होकर हा हा कार कर रहा है और इसके फलस्वरूप ही यत्र-तत्र भूकंप, तूफान, सूखा आदि प्राकृतिक आपदाओं में वृद्धि सर्वविदित ही है। मैं संक्षेप में पर्यावरणीय, मानसिक तथा सामाजिक प्रदूषण को स्पष्ट करना चाहता हूँ जिनसे आज मनुष्य संकट में पड गया है।

पर्यावरण प्रदूषण – पर्यावरण वायु, जल मिट्टी पेड़-पौधे, जीव जन्तु, मानव तथा उसकी विभिन्न गतिविधियों के परिणाम का मिला जुला स्वरूप है। पर्यावरण सजीव और निर्जीव घटकों का एक जटिल [illegible] है और ये ही हमारे अस्तित्व का आधार है।

जीवधारी अपनी आवश्यकताओं के लिए प्रकृति पर ही निर्भर है। सच पूछा जाए तो मानव सभ्यता को प्रकृति द्वारा प्रदान की गई सबसे मूल्यवान निधि पर्यावरण है। शाब्दिक अर्थो में हमारे चारों ओर छाया आवरण (परि+आवरण=पर्यावरण) ही पर्यावरण है।

हमारी संस्कृति पर्यावरणीय चेतना को जगाने वाली रही है। वह पर्यावरण को संरक्षण प्रदान करती है। प्रकृति के साहचर्च में ही हमारी संस्कृति फली-फूली। अर्थात् हमारी संस्कृति आरण्य प्रधान भी रही है।

आज पशुओं की हत्या, बूचड़खानों की बेतहाशा वृद्धि, मांसाहार का प्रचलन, जल में गंदगी के कारण सम्पूर्ण पर्यावरण प्रदूषण होता जा रहा है।

संतुलित आहार और प्रदूषणः– शरीर को ऊर्जा पहुँचाने के लिए संतुलित एवं पौष्टिक आहार लेना आवश्यक है। आहार शुद्ध तथा पौष्टिक होना चाहिये। कहा है–

जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन।
जैसा पीवे पानी वैसी होवे वाणी॥

वर्तमान में खाद्य पदार्थों में मिलावट अनेक घातक रोग उत्पन्न कर रही है। मिलावट एक प्रकार से धीमा ज़हर है। व्यापारी अपने लाभ के लिए मिर्च में रंग, हल्दी में अखरोट का चूर्ण, धनिया में लीद तथा शुद्ध घी में वनस्पति घी आदि मिला देते है। आधुनिक इलेक्ट्रोनिक मीडिया के माध्यम से विभिन्न कम्पनियाँ [illegible]

खाद्य पदार्थ अधाधुध सख्या में बेचकर लोगों को अनेक रोगों का उपहार दे रही है।

भगवान महावीर ने लोगों को भक्ष्य तथा अभक्ष्य के वैज्ञानिक दृष्टिकोण को समझाया था तथा 22 अभक्ष्यों से होने वाली हानि तथा रोगों के बारे में आगाह किया था।

मानसिक प्रदुषण– आज चारों ओर अशाति अराजकता, हिसा, मानव में उद्धिग्नता हताशा, निराशा एव व्यक्ति का असमय ही बूढ़ा व दूर्बल नजर आना, नौजवानों के चहरे पर तेज नहीं होना- इनका एक मात्र कारण मानसिक प्रदूषण है तथा वह अनेकानेक बीमारियो की ओर मानव को धकेल रहा है। मनुष्य का मन उसकी विभूति है। सुख और दुख की अनुभूति मन का ही परिणाम है।

भारतीय दार्शनिकों ने मन के तीन स्तर माने हैं। (1) चेतन (2) गुप्त चेतन और (3) अचेतन। बाहरी रूप से चेतन मन ही क्रियाशील रहता है। मन का स्वस्थ रहना अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। मन जब किसी प्रकार की चिता से बार-बार आक्रान्त हो जाता है, धीरे धीरे मनुष्य की मानसिक स्थिरता दृढता, आत्मविश्वास एव शारीरिक शक्ति का ह्रास हो जाता है। हिस्टीरिया, मृगी उन्माद एव हृदय रोग आदि मानसिक दुर्बलता के कारण ही होते है। कई रोगों का कारण मानसिक तनाव होता है।

भगवान महावीर ने क्रोध, मान, माया, लोभ कामादि को प्रमुख अवगुण बताये थे। ये ही मानव को सच्चे सुख से वचित करते है। क्रोधी व्यक्ति चिड़चिड़ा, आलसी, अकर्मण्य, निर्बल, असहिष्णु, अविश्वासी एव सनकी होता है। क्रोधी व्यक्ति का आत्मविश्वास कुठित हो जाता है। दया क्षमा प्रेम, सहनशीलता मौन, शान्ति अहिसा एव मृदु वचन बोलना आदि क्रोध पर नियन्त्रण पाने के अचूक उपाय है।

सामाजिक प्रदुषण– दहेज प्रथा, बाल विवाह छुआछूत मृत्युभोज स्पर्धा की कुभावना आदि सामाजिक प्रदूषण बढ़ा रहे है। सग्रह की प्रवृत्ति अनुचित है। परिग्रह एक सामाजिक पाप है। आज हर प्राणी वस्तुओं के अधिक सग्रह से अपने को अधिक सम्पन्न समझता है और उनके अधिकाधिक सग्रह के प्रयत्न में लगा रहता है। उसकी मान्यता रहती है कि वस्तुओं की प्राप्ति एव भोग में ही आनद है। वस्तुत यह अशान्ति का कारण है। एक विद्वान ने लिखा है—

वर्तमान सभ्यता एव शिक्षा प्रणाली मनुष्य को अधिक से अधिक विलासी बनाती है। पद लिखकर आमदनी बढ़ाई तो खर्च भी बढ़ता गया, मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की। दस रुपये रोज कमाने वाला मजदूर सुख से रहता है पर एक लखपति को सदैव यही चिन्ता सताया करती है कि कब मै करोड़पति बनू।

आज का युग अर्थ प्रधान युग हो गया है। आज के युग में सबसे बड़ी बात यह है कि धनोपार्जन कैसे किया जाये। आज मनुष्य अनैतिक उपायों द्वारा धन कमाने की धुन मे लगा हुआ है। यन्त्रवत वह इसी में रत रहता है किस प्रकार अधिक धन सचय किया जाए। आवश्यकतायें बढने के कारण आज धन कमाने की होड़ लगी हुई है। रिश्वतखोरी मिलावट, काला-बाजारी एव भ्रष्टाचारी का आज बोलबाला है।

आज शिक्षित युवा इंजीनियर डॉक्टर, वकील या सरकारी उच्च अफसर ही बनना पसन्द करते हैं क्योंकि उनमें उन्हें अतिरिक्त आय का आकर्षण दिखाई देता है। आज के विज्ञापन, बढते हुये भोग-विलास के साधन बरबस ही व्यक्ति को लिप्सा की ओर बढा रहे हैं। यह अधिक लालसा व बराबरी को होड़ मनुष्य की सुख-शांति भंग करती है।

आजादी के बाद आज हमारा देश सबसे कठिन दौर में गुजर रहा है। ऐसे संकटपूर्ण समय मे राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्तर पर ईमानदारी एवं संवेदनशीलता की आवश्यकता है, जीवन मूल्यों की पुनर्स्थापना की जरूरत है। नैतिक मूल्य अपनाने से नैतिक जीवन का विकास होता है। अच्छा चरित्र ही व्यक्ति का श्रेष्ठ श्रृंगार है। सद्विचारो से ही श्रेष्ठ चरित्र बनता है। चारित्र हमारे आचरण से उद्‌भुत जीवन की एक महत्त्वपूर्व उपलब्धि है।

चरित्र वह वस्तु है जो असफलताओ के बाद भी बना रहता है। जीवन-मूल्यो की स्थापना से ही नैतिक प्रदूषण से हम बच सकते है तथा भगवान महावीर के उपदेश पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा वनस्पति पांच स्थावर तथा त्रस जीवो की हिंसा से रहित तथा इन्द्रिय तथा मन पर संयम,अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह तथा ब्रह्मचर्य पंच अणुव्रत, भक्ष्य अभक्ष्य विचार तथा क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग आकिंचन तथा ब्रह्मचर्य उक्त दश लक्षण धर्मो के पालन से ही जीवन मूल्यों मे फैले प्रदूषण को रोका जा सकता है।

धर्मशाला, श्री दि.जैन मन्दिर पार्श्वनाथजी,
पानो का दरीबा, जयपुर।



तीर्थकर के 46 गुण

✍ कविवर वृन्दावन

जय अजित देव तव गुण अपार, पै कहूँ कछुक लघु बुद्धि धार।
दश जनमत अतिशय बलअनन्त, शुभ लच्छन मधुर वचन भनंत॥
संहनन प्रथम मलरहित देह, तन सौरभ शोणितस्वेत जेह।
वपु स्वेद बिना महरुपधार, समचतुर धरें संठान चार।
दस केवल गमन अकाशदेव, सुरभिच्छ रहै भोजन सतेव।
उपसर्ग रहित जिनतन सुहोभा, सब जीव रहित बाधा सुजोय॥
मुखचारि सर्व विद्या अधीश, कवला-अहारवर्जित गरीश।
छाया बिनु नखकच बढे नाहि, उन्मेश टमक नहि भ्रकुटि नाहि।
सुरकृत दशचार करों बखान, सबजीव मित्रता भाव ज्ञान।
कंटकविन छिन दर्पण वत सुभूमि, सबधान्यवृच्छफलरहे झूमि।
षटरितु के फूल फले निहार, दिशि निर्मल जिय आनन्द धार।
जहँ सीतल मंद सुगन्ध वाय, पदपंकजतल पंकज रचाय।
मल रहित गगन सुर जय उचार, वरषा गंधोदक होत सार।
वर धर्मचक्र आगे चलाय, [illegible] सुरराय।
सिंहासन छत्रचमर सुहात, भामण्डल छवि वरनी न जात।
तरु उच्च अशोक सुमनवृष्टि, धुनि दिव्य और दुंदुभि मिष्ट।
[illegible]
[illegible]

कर्म बन्धन व कर्मफल

✍ वैद्य लाभ चन्द जैन, जयपुर

जीव अनादि काल से कर्मबन्धन सहित है। रागादि भावों का निमित्त पाकर द्रव्यकर्मो का बन्धन होता है द्रव्य कर्मो के उदय का बल पाकर रागादि भाव हो जाते है, यह साधारणतया स्थिति है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव के अनुसार कर्म बन्धन की स्थिति पृथक-पृथक हो जाती है। द्रव्य शुद्ध होने पर (कर्म से रहित होने पर) किसी भी प्रकार का कर्मबन्धन जीव नहीं करता है, जैसे डठल से फल झड जाने पर पुन डठल में नही लगता है अर्थात जीव ससार भ्रमण नहीं करता है।

अनादि कालीन मिथ्यादृष्टि जीव 120 कर्म प्रकृतियों में से 117 का कर्म बन्धन करता है, आहारक शरीर, आहारक आगोपाग तीर्थकर प्रकृति का बन्धन नहीं करता है क्योंकि ये 3 प्रकृतियों सम्यक् दृष्टि ही बाँधता है। सम्यक् दृष्टि 41 कर्म प्रकृतियों का बन्धन नहीं करता है- मिथ्यात्व हुडक आदि पाच सस्थान, नपुसकवेद, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु असप्राप्तसृपाटिका आदि हीन सहनन एकेन्द्रिय जाति, विकलत्रय तीन, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अनन्तानुबधी कोध, मान, माया, लोभ, स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, दुर्भग, दु स्वर, अनादेय, अप्रशस्त विहायोगति स्त्रीवेद नीचगोत्र, तिर्यग्गति तिर्यगत्यानुपूर्वी तिर्यगायु, उद्योत, चाहे वह ससार का कार्य ही कर रहा हो, क्योंकि वह स्वरूप को समझ गया है अरूचि पूर्वक कर्मोदय की बरजोरी से उपभोग करता है, अन्याय का कार्य नहीं करता हैं ऐसा कार्य नहीं करता है जिससे जेल में जाना पड़े।

पचम काल में भरत क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले जीव मिथ्यादृष्टि ही होते है। किसी को भी क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं होता है क्योंकि साक्षात केवली श्रुतकेवली के पाद मूल में ही इस की उपलब्धि सभव है। वर्तमान में उपशम सम्यग्दर्शन हो सकता है जो अन्तर्मुहूत रहकर सम्यग् प्रकृति का उदय होकर क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन हो जाता है या पुन मिथ्यात्व में चला जाता है लेकिन एक बार सम्यग्दर्शन होने पर उसको मुक्ति अवश्य ही प्राप्त होगी।

बाँधे गये कर्म, आयु कर्म को छोडकर सात कर्मो में बँट जाते है। सबसे ज्यादा भाग वेदनीय कर्म को, उससे कम मोहनीय कर्म को, उससे कम ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तराय कर्म को उससे कम नाम गोत्र में जाता है।

जो कर्म जितनी स्थिति का बधा था, उसके आबाधा काल को छोड़कर वह उदय में आता है, उससे पूर्व सत्ता में बना रहता है। एक कोडा कोडी सागर की स्थिति के कर्म की आबाधा काल एक सौ वर्ष होता है, उसके बाद वह उदय में कर्म आता है।

बध से लेकर उदय में आने तक उत्कर्षण,

संक्रमण, अपकर्षण, उदीरणा, उपशम आदि हो सकते है। विशुद्ध भावों का निमित्त पाकर कर्मों की स्थिति व अनुभाग पाप प्रकृतियों में कम हो जाता है तथा पुण्य प्रकृतियों में अनुभाग बढ़ जाता है। यह सब परिवर्तन उदयावली में आने से पूर्व ही हो सकता है। अतः यह कहा जा सकता है कि जीव ने जैसा बाँधा था वैसा ही भोगेगा यह आवश्यक नहीं है। भाव के अनुसार उसके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग में अंतर आ जाता है।

कर्मो मे असाता के उदय होने पर उसके अनुसार भाव हो सकते है लेकिन यदि संज्ञी प्राणी अपने भावों को आतमा की ओर प्ररित करें और उसकी ओर ध्यान न दें और यह सोचे की अच्छा हुआ जो यह कर्म मेरी सावचेती में उदय में आकर खिर रहे है और मैं हल्का हो रहा हूँ तो नवीन कर्म लम्बी स्थिति के नही बंधेगे तथा तीव्र अनुभाग भी नही बंधेगा।

अतः यह स्वीकार कर के चलें की मै स्वतंत्र हूँ, मेरी शक्ति महान है, मै जब अपना उपयोग अपनी ओर कर लूंगा, तो कर्म क्या कर सकते है ? जो कर्म सत्ता मे पडे है वे तो मिट्टी के ढेले के समान है। वह मेरा कुछ बिगाड नही कर सकते है। मै उदयावली में आने से पूर्व ही उन्हे परिवर्तित कर सकता हूँ। जैसे वर्तमान में मेरे भाव होंगे उस ही के अनुसार आगामी कर्म उदय में आवेंगे।

अतः मै वर्तमान में अपने को सम्भालकर चलूं [illegible]

पेज 20 से आगे...

दोय बीस जे दुसह परीसह, सहवे को मन चाव
कमठ जनित उपसर्ग सहयो तुम, वैसे कर मो भाव ॥

हार जु भय वा ओर परिग्रह, मैथुन संज्ञा च्यार।
नादि काल की लाग्र रही सगि, इनते लेय उवारि ॥

सपरस रसना नैत्र नाशिका, करण जुंइंद्री पंच।
इनके भोग दुसह दुख कारण, मेट करो सुख संच ॥

क्रोध मान माया लोभादिक, षेडश भेद विडारि।
हास्य अरति रति सोक जुगुप्सा, भय जुत बेद निवारि ॥

ज्ञाना वरण दरशना वरनी, मोहनीय अंतराय।
च्यार धातिया नाश करण की, शक्ति दहु जिनराय ॥

कर्म वेदनी आयु नाम, गोतरजु अघाती चार।
इन कूं मेट सिद्ध पद दीज्यो, जनम मरण दुख टारि ॥

जनम जरा तिरषा जु षुधा अरू, विस्मैआरति खेद।
रोग सोक भय मोह निवारो, निद्रा चिन्ता स्वेद ॥

राग द्वेष मद मरण आठ दश, लागि रहे राग दोष
इनको हरि निज पद जिन दीजे, ज्यों आवै संतोष ॥

इस्ट वियोग अनिष्ट संजोग जु, पिड़ित चिन निदांन।
चहु विधि आरत मेट हमारी, सुखदाता भगवान ॥

हिंसा झूंठ चोरी जु परिग्रह, [illegible] आनन्द।
[illegible] ॥

क्रमशः पेज 30

जैन शैक्षणिक केन्द्र स्थापित करने की आवश्यकता

✍ प्रकाश चन्द जैन

यह एक दुखद वास्तविकता है कि हमारे नवयुवक बड़े कठिन दौर से गुजर रहे है । एक ओर तो सरकारी नियमों के कारण लगभग 50 प्रतिशत सीटें विभिन्न श्रेणियों के प्रत्याशियों के लिए आरक्षित होती है, दूसरी ओर माता-पिता नित प्रति बढती महगाई के इस दौर में आय बढाने के साधनों में व्यस्त रहते है ।थके हारे होने के कारण रात्रि का समय टी वी देखने तथा अन्य सामाजिक दायित्वों को पूरा करने में व्यतीत कर देते है ।आम घरों में पढने के स्थान का अभाव रहता है तथा पढने का माहौल उपलब्ध नही होता। उन्हें उनकी कमजोरी दूर करने हेतु कोई दिशा निर्देश करने वाला भी नहीं होता । समाज भी इस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दे रहा है जबकि अन्य सभी समुदाय अपने बच्चों को समयानुकूल उचित शिक्षा दिलाने हेतु सामाजिक स्तर पर विभिन्न प्रकार की सुविधाऐं मुहैया करवा रहे है।

जैन समाज एक साधन सम्पन्न ,बुद्धिजीवी, बनिक, धनिक समुदाय है। बनिक वर्ग का होने के कारण हर कार्य हानि-लाभ का विचार करके ही प्रत्येक कार्य करता है किन्तु दुर्भाग्यवश समाज की सारी शक्ति नवनिर्माण,जीर्णोद्वार, विधान प्रतिष्ठाऐं आदि अनुत्पादक कार्यो में ही प्राय व्यय हो रही है। जैन समाज द्वारा खर्च की जा रही यह धनराशि अन्य लोगों के हाथों में जा रही है जिसे वे मासाहार,मद्यपान आदि व्यसनों में व्यय कर रहे है जबकि हम इन्हें रोकने के प्रयासों पर लाखों रूपये प्रतिवर्ष खर्च कर रहे है। दूसरी ओर हमारी समाज के लाखों लोग रोजी-रोटी के लिए भी सघर्षरत है। एक दिगम्बर जैन तो दिल्ली में रिक्शा चलाकर जीवन यापन कर रहा है। श्री निर्मल जैन,दमोह के एकमात्र ग्रजुऐट पुत्र को जुलाई 2000 में सल्फास की गोलियाँ खाकर आत्महत्या करनी पड़ी क्योंकि समाज ने राष्ट्रीय समाचार पत्रों में विस्तृत समाचार आने के बावजूद भी इस परिवार की कोई विशेष मदद नही की। समाज के एक शीर्षस्थ सक्षम/समर्थ नेता भी उन्हें एक चपरासी तक की नौकरी देने/ दिलवाने में भी असमर्थ रहे और राष्ट्रीय मानव अधिकार कमीशन से कार्यवाही में सहायता करने का आश्वासन देने पर भी मच प्रधान कार्यक्रमों में अपनी अत्यधिक व्यस्तता के कारण वे चार महीने की अवधि गुजर जाने पर भी कुछ सहायता नहीं कर सके। दिल्ली में ही एक और अन्य युवक पढाई की सुविधाऐं जुटाने की आशा में प्रयासरत है किन्तु उसे समाज से किसी प्रकार की सहायता होने का कोई आसार नही दिखायी देते। कैसी विड़म्बना है? कैसी स्थिति है? लगता है जैन समाज मानवीय सवेदनाओं से शून्य हो गया है। केवल दूसरे के प्रतिफल पर श्रेय लेना चाहता है। विज्ञजनों को इस पर अविलम्ब विचार कर ठोस कदम उठाने की पहल करनी होगी । समय की माग है कि हम कम से से कम एक प्रायोगिक शैक्षणिक केन्द्र दिल्ली में प्रारभ करें जहाँ पर हर कक्षा के विद्यार्थी एकत्रित हों तथा उनकी शैक्षणिक कमजोरी को दूर करने हेतु प्रत्येक विषय के शिक्षकगण वहा पर उपलब्ध रहें इससे युवकों का मनोबल बढेगा, उन्हें समुचित मार्गदर्शन मिलेगा, उनके समय का सदुपयाग होगा तथा वे सही

रास्ते से भटकने से बचेंगे। युवकों को आपस में मिल बैठ कर विचार विमर्श द्वारा अपनी समस्याओ को हल करने का केन्द्र सुलभ होगा। जैन समाज के अधिसंख्य युवक आजकल 50-60 प्रतिशत अंक प्राप्त करते हैं जिसके कारण उन्हें उपयुक्त विषय में विशिष्ट कालेजों मे प्रवेश नही मिलता है। इस कारण वे जीवनभर के लिए प्रगति करने से वंचित रह जाते हैं तथा जीवनपर्यन्त उचित शिक्षा एवं उचित अवसरो के सुलभ न हो सकने के कारण तकलीफों में जीवन गुजारते हैं। इससे दहेज की समस्या भी हल होगी। समाज में आज ऐसी सैंकड़ों युवतियाँ है जो एम.ए., पीएच डी.तक शिक्षा ग्रहण कर चुकी है तथा उचित वर न मिलने के कारण या तो उन्हें जीवनभर अविवाहित ही रहना पड़ता है अथवा अन्य समाज में विवाह करने को विवश होना पड़ता है। अकेले जयपुर में ही ऐसी 15-20 लड़कियाँ मौजूद है।

आजकल प्रसार भारती मानव संसाधन विकास मंत्रालय एवं इन्दिरा गांधी मुक्त विश्वविद्यालय (इग्नु) ने मिलकर टी.वी. पर 'ज्ञान दर्शन चैनल' का शुभारंभ किया है जो प्रतिदिन 18 घन्टे शैक्षणिक कार्यक्रम ही प्रसारित करता है। इसके लिए सिर्फ एक डिश एंटिना, एक या दो उत्तम क्वालिटी के उच्च तकनीक वाले टी.वी. सैट्स, एक विडियो केसेट रिकार्डर तथा कुछ विडियो टेप्स की आवश्यकता है। विद्यार्थी इन कार्यक्रमों को रिकार्ड कर अपने अन्य साथियों को भी उपयोग हेतु देकर लाभान्वित करते रहेंगे। इस तरह उनके स्वयं की ज्ञानवृद्धि के साथ-साथ अनेकों विद्यार्थियों की भी ज्ञानवृद्धि होगी। इस प्रकार विद्यार्थियों की शैक्षणिक [illegible] पूर्ण होगी जिससे उनमें आत्मविश्वास पैदा होगा तथा वे न्यूनता की मनःस्थिति से उबर सकेंगे वे कॉन्वेंट स्कूलों से शिक्षित विद्यार्थियों की भाति अपनी समस्याओं को स्वयं हल करने में सफल होंगे। उनमें संवाद, ग्रुप डिस्कशन व इंटरव्यू देने की क्षमता का विकास होगा तथा वे भावी चुनौतियों का मुकाबला करने हेतु पूर्णरूपेण सक्षम होंगे।

आज पूरा विश्व परिर्वतन के दौर से गुजर रहा है। भारत में भी नित्य अनेकों परिवर्तन हो रहे है। सूचना क्रांति ने पुराने सब तौर-तरीके बदल दिए है। भूमंडलीकरण/वैश्वीकरण/निगमीकरण/निजीकरण का युग प्रारंभ हो चुका है। अनेकों सरकारी कार्यालयों को निगम के रूप में परिवर्तित किया जा रहा है। विदेशी पूंजी का भातर में प्रवेश हो रहा है। हाल ही में माननीय प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी जो के अमेरिका यात्रा के दौरान 6-7 अरब डॉलर की पूंजी निवेश के समझौते सम्पन्न हुए है। इन सबके लिए कुशल कार्यकर्ता (Sillked wokders/Technical personnel) की भारी आवश्यकता होगी। ब्रिटिश सरकार ने अपने यहां भारत से आने वाले काम्प्यूटर विशेषज्ञों की संख्या डेढ लाख से बढ़ा कर 2 लाख कर दी है। अमेरिका ने भी भारतीय काम्प्यूटर इंजीनियरों के अपने देश में प्रवेश की और सुगम बनाने की दृष्टि से एच-1-बी वर्ग के वीजा देने की संख्या बढ़ाने की घोषणा की है अतः आवश्यकता इस बात की है कि समाज के भावी कर्णधारों (नवयुवकों) को समयानुकूल उच्च तकनीकी व अन्य प्रकार की शिक्षा दिला कर सक्षम/समर्थ बनाएं। यह सब समाज के संयुक्त प्रयास के बिना संभव नहीं है।

देश की लगभग 70-80 प्रतिशत आबादी आज भी गांवों में ही निवास करती है। [illegible]

उन्हें शिक्षा की मूलभूत सुविधाएँ भी सुलभ नही है। अत अन्य अनेक विभिन्न प्रकार के कार्यों पर खर्च की जाने वाली धन राशि के साथ-साथ समाज को चाहिए कि वह अपनी आय का कुछ प्रतिशत समाज के युवकों की शिक्षा एव रोजगारपरक योजनाओं के लिए भी सुरक्षित कर इस प्रकार के प्रोजेक्ट्स को शुभारभ कराने तथा इन्हें पनपने देने में दिल खोल कर तन-मन-धन से भरपूर सहयोग/आशीर्वाद प्रदान करें। आज हमोर साधु-सत/मदिर/मूर्तिया असुरक्षित है। इन्हें बचाने वाले लोगों पर झूठे मुकदमे दायर कर उन्हें प्रताड़ित किया जा रहा है। गोलाकोट में 46 मूर्तियों के सिर विच्छेद होने पर जिन लोगों ने चोरों को पकड़वाने व विच्छेद किए हुए सिरों को पुन प्राप्त करने हेतु आन्दोलन में भाग लिया था ऐसे 30 लोग अभी भी पुलिस के द्वारा दायर इस प्रकार के मुकदमों में फसे पड़े है जिनकी समाज का नेतृत्व कोई मदद नही कर रहा है। जबलपुर में एक जैन मदिर को एक क्लब वालों ने जबरदस्ती अनाधिकार कब्जा कर रखा है। यदि हमारा समाज अब भी न चेता तो जैन समुदाय के अस्तित्व को बचा पाना कठिन होगा। यदि हम अपनी भावी पीढ़ी को हमारे सतों एव धर्मायतनों की सुरक्षा हेतु आर्थिक, शैक्षणिक एव राजनैतिक रूप से सुदृढ/समर्थ/सक्षम नही बनाएगे तो हम जो करोड़ों रुपये मूल्य के नवमदिरो/तीर्थों/गिरियों आदि का निर्माण करा रहे है उन सब पर समाज विरोधी लोगों को अधिकार होना निश्चित है। आज भी पावागढ गिरनार, खण्डगिरी-उदयगिरी आदि अनेकों तीर्थ स्थान इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। यहा यह भी स्मरणीय है जिन स्थानों पर ऐसे करोड़ों रुपए की लागत के निर्माण कार्य हो रहे है वहा जैनियों की सख्या एक तरह से नगण्य है।

एफ-2642, नेताजी नगर,
नई दिल्ली-110023

पेज 27 से आगे

आज्ञा विचय अपाय विचैरू, विपाक विचै सस्थान।
धर्म ध्यान चऊ विधि जिनवरजी, द्यो शिव कारण दान॥

पिड पदस्थ रुप अरु रुपातीत ध्यान चव रूप।
ध्यान को ध्याता होऊ ,आश मेरी पूरो हे जिनभूप॥

पृथक्त्त विर्तक विचार एकत्त्व विर्तक दुतीय अविचार।
सुक्ष्म क्रिया व्युपरीत क्रिया निरव्रत तुरिय सुखकार॥

धर्म शुक्ल ये ध्यान अनोपम,ध्याये आप जिनन्द।
सो निज ध्यान दया कर द्यो जिन, दीज्यो परमानन्द॥

पर परमाणित तज आप आप लखि ध्यायो शुद्ध स्वरूप।
सो निज रूप क्रिया निधि दे प्रभु कीजे आनद रूप॥

द्रव्य भाव नो कर्मादिक कूँ,जीत लयो शिव थान
सो निज था देह करूणापति, जाचत हूँ तजि मान॥

दर्शन ज्ञान सरम बल बीरज है जु अनन्त प्रमान।
सुख सत्ता चैतन्य बोध गुण, ये मम द्यो निज प्राण॥

समकित ज्ञान दरश बीरज सूक्षम अवगाहन रुप
अगुरू लघु निरवाध आदि गुण द्यो अनन्त सुख भूप॥

मेरे ओगुण चित्त नही धरिये दीन दयाल जिनद
अपनो लखि अपनो पद दीज्यो ,चरन सरण आनद॥

लशकर सहर जु मध्य सार जिन भवन विराजे।
समोशरण सयुक्त जिनद पारस प्रभु राजे॥

क्रमश पेज 32

दुःखों से मुक्ति का द्वार : ध्यान

✍ *कैलाश चन्द गोधा*

दुःखों से मुक्ति का केवल एक मार्ग है रत्नत्रय। सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः। मिथ्या दर्शन ज्ञान और चारित्र दुःखों का मार्ग है। मानव जब अज्ञान और हिंसा, झूठ आदमी का जीवन जीता है तो दुःखों के चक्र में फँस जन्म मरण करता रहता है। यह संसार चक्र अत्यन्त भयानक है। एक नीलांजना का नृत्य करते मरण होता देखकर ऋषभदेव स्वामी को वैराग्य हो गया था और राजपाट छोड के जंगल मे जाकर आत्म ध्यान मे लीन हो गये थे। हमारे सामने रोज मरण की घटनायें घटती है। अभी जनवरी माह में गुजरात में भयानक भूकम्प आया था। हजारो ही लोग उसमे मरण को प्राप्त हुए, नगर के नगर ध्वस्थ हो गये, पर हमे वैराग्य भाव नहीं होता। हम आर्त होकर रह जाते हैं। सम्पदा मिली तो हम फूल जाते हैं, रौद्र हो जाते है, कष्ट आये तो आर्त हो जाते हैं, ऋषभदेव की तरह धर्म ध्यान में प्रवृत्त नही होते। धर्म ध्यान के बिना हमें शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

आ. समन्तभद्र ने स्वयंभू स्तोत्र में भगवान शीतलनाथ स्वामी की स्तुति करते हुए कहा है-

अपत्य-वित्तोत्तर लोक तृष्णया
तपस्विनः केचन कर्म कुर्वते।
भवान्पुनर्जन्म जरा जिहासया
त्रयीं प्रवृत्ति समधीरवारुणत्॥

अर्थ- कितने ही तपस्वीजन संतान, धन तथा परलोक की तृष्णा के वशीभूत हुए कर्म करते है। आपने पुनर्जन्म और जरा को दूर करने की इच्छा से मन-वचन-काय तीनों की प्रवृत्ति को रोका है।

[illegible]

आत्म स्वरूप में एकाग्र चित्त होना ध्यान हैं। यह हमारे सब दुःख मिटाने की अमोघ औषधि हैं। यह ध्यान आनन्द का नाम है आनन्द स्वरूप हैं। आत्मा में हमारे स्वभाव से ही निरन्तर ज्ञान, आनन्द आदि गुणों की परिणमन धारा लहर पर लहर की तरह उठ रही है, बह रही है। अतः आत्म ध्यान आनन्द मग्न होने का ही दूसरा नाम है। आत्म ध्यान मे लीन महापुरुष स्वयं तो आनन्द मे नहाता ही है, चारों ओर का प्राणी जगत भी उसके निकट शान्ति का अनुभव करता है। चारो ओर आनन्द छा जाता है।

चित की स्थिरता को ध्यान कहते हैं। अतः विषय कषाय आदि के कारण जिसका चित चचंल हो रहा है वह ध्यान में तल्लीन नही हो सकता क्योंकिजिसके चित्त में कामाग्नि की ज्वालायें प्रज्वलित हो रही है उसका चित्त स्थिर नही हो सकता। अतः ध्यानाभिलाषी पुरुष को काम पर पूर्ण विजय प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है। साथ ही क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण आदि परिषहो मनुष्य तिर्य देव और अचेतन कृत उपसर्गों में भी अडिग रहना आवश्यक है। ध्यान के इच्छुक मनुष्य को अपनी इन्द्रियों के पराधिन नहीं होना चाहिये इन्द्रियों के पराधीन व्यक्ति यदि ध्यान का उपक्रम करता है तो वह महापुरुष की हँसी का पात्र होगा। ध्यान के उत्कृष्ट आनन्द का वर्णन करते हुए आचार्य सोमदेव ने अध्यात्म तरंगिणी की आठवीं गाथा में कहा है कि-

[illegible]

और सिह, हरिण एव शेर का बैर जगत् प्रसिद्ध है। किन्तु जहाँ पवित्र आत्मा के धारक योगीश्वर विराजमान होते है, वहॉ ये जीव शान्त होकर एक दूसरे से हिलमिल जाते है। भगवान महावीर के समवसरण आदि विशिष्ठ स्थानों पर मनुष्य देव आदि प्राणी निर्वैर हो जाये इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

ध्यान की उत्कृष्ट स्थिती में शरीर के स्थिर होने से श्वासोच्छावास इतनी धीमी गति से चलता है। कि वह चल रहा है या नहीं इसका भी प्राणी को पता नहीं लगता। अपनी अनादिभूल के दूर हो जाने एव अचिन्त्य आत्मशक्ति का भान हो जाने के कारण उनके शरीर में रोमाच उठने लगता और अज्ञानान्धकार दूर हो जाने से हृदय में सम्यक् ज्ञान का इतना भारी प्रकाश फैल जाता है। कि जिसका शब्दों के द्वारा वर्णन करना सभव नहीं है। आचार्य सोमदेव ने कहा कि जो प्राणी इस उत्कृष्ट ध्यान को धारण करते है वे धन्य है। वे अत्यन्त श्रेष्ठ है।

पेज 30 से आगे

जिनकी पूजा भक्ति करत नित कलिमल धोवै।
इद्रादिक पद पाय अनुक्रम शिवपति होवे।

ये सरधा उर धार करि,करी भक्ति हम तुम तनी।
हे जिन होऊ सहाय मम,चरण सरण द्यो शिव धनी॥

दोहा - सहली तेरे पथ की सोहे श्रुध अनूप
पुजा भक्ति जु दान करि बरतत आनद रूप॥
रत्नत्रय गुण परखि कै धारण किये जिनद
यही रतन जु दीजिये ज्हैारी श्री जिन चद॥
इतिस्तवन सपूर्णम् श्री ॥श्री॥श्री॥

सौजन्य से श्री बाबूलाल सेठी, जयपुर

◆

अहिसा अर्थात् सब का मगल हो

महावीर की जीवन साधना पर मैं विचार करता हूँ, तो मुझे दो बात दिखाई पड़ती है। एक कि महावीर सत्य को पाने को उत्सुक है। सत्य का वे अनुसधान कर रहे है। दूसरी यह कि वे प्रेम का विस्तार कर रहे हैं। सत्य को भीतर खोज रहे हैं और प्रेम को बाहर फैला रहे है। सत्य को भीतर पाया जाता है और प्रेम बाहर फैलाया जाता है। जब अपने अतिम अणु की आखिरी इकाई में कोई व्यक्ति प्रविष्ट हो जाता हैं तो वह सत्य को उपलब्ध होता है और जब इस विराट जगत के अतिम प्राणी तक कोई अपने प्रेम को पहुचा देता है -तब वह प्रेम को उपलब्ध होता है। सत्य का विकास उतरता है- अपने भीतर प्रविष्ठ हों आन्तरिक गहराई में ज्ञान उपलब्ध होगा और समस्त के भीतर प्रविष्ट हो जाए तो आन्तरिक गहराई में प्रेम या अहिंसा उपलब्ध होगी। जैसे कोई वृक्ष बढता है तो उसकी जड़े गहरी जाती हैं चारों तरफ पौधा बढ़ता जाता है। जिस व्यक्ति की सत्य में जितनी गहराई बढ़ेगी उसके जीवन के बाहिरी पौधे में प्रेम उतना ही बढ़ता चला जाएगा।

प्रेम परीक्ष है कसौटी है- उसे महावीर नें अहिसा कहा है। वह अहिसा ज्ञान की कसौटी व परख है। अगर ज्ञान के बाद अहिसा न आ जाए तो वह ज्ञान झूठा होगा- मिथ्या होगा। हम ज्ञान को नही जान सकते हम प्रेम को जान सकते हैं। अन्तस् के प्रेम ने हमें यह गवाही दी हैं कि भीतर सत्य उपलब्ध हुआ होगा । भीतर सत्य उपलब्ध न हुआ -तो इतनी आनन्द और प्रेम कैसे हो सकता है। इसलिए महावीर ने कहा- आत्मा अहिसा है। जो आदमी अपनी आत्मा में प्रतिष्ठित नहीं है-वह केवल हिसा निरोध कर सकता है अहिसा को नहीं पा सकता।

तो महावीर की साधना दो शब्दों में बटी है-सत्य और अहिंसा।

मौन की अवस्था में जब मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ मात्र साक्षी हूँ दृष्टा हूँ उसे महावीर ने सामायिक कहा है ध्यान कहा है। जो मेरे भीतर है वह सबके भीतर हैं-ऐसा जीवन प्रेम से आपूरित हो जाता है उसकें जीवन में अहिंसा आ जाती है। जो जितना अभय होता है- उतना परिग्रह छोड़ देता है। ओशो (महावीर या महा विनाश से)

हम महावीर है, हमें महावीर बनना है

✍ सुशीला देवी छावड़ा

हमारे मे वही शक्ति, सामार्थ्य है जो महावीर में है। हम उनके समान ही चेतन भगवान आत्मा है। आज वे महासुखी हैं, हम महादुखी हैं। उनका सुख अनंत है, हमारे दुःख अनन्त है। देह हमारी आयु बढने के साथ साथ जीर्ण होती जाती है,कभी क्या रोग होता है, कभी क्या। हम देह को बोझे की तरह ढोये जाते है। इससे महादुःखी है, इसकी सेवा करते करते थके जाते हैं। पर जब इसके छूटने की बात समाने आती है तो कॉप जाते है, इसे छोड़ना नहीं चाहते । पर क्या यह टिकी रहेगी? इसके लिये कितने पाप किये- जीवो की हिंसा, भूठ , चोरी, परिग्रह सब इसके लिये किये,पाप कर्म बाँधे और इसे छोड़कर वही जाकर पैदा हो जायेंगे, दूसरी कोई देह होगी, पशु की, पेड़ पौधे की, किसही की भी हो सकती है। देह को लेकर हमने बहुत पाप किये है तो ऊँची देह तो कैसे मिलेगी ? और, ऊँची देह भी मिल गई तो एक दिन वह भी इसकी तरह ही छूट जायेगी। शास्त्र कहते है— संसार में डोलते हुए हमने पेड़ पौधे से लेकर मनुष्य , देव तक की सब देह पायी है, अनादि से डोलते रहे है, किसी भी प्रकार का देह धारण बाकी नहीं रहा, एक बार ही नहीं बार-बार पायी है। यह भव-परावर्तन हम करते ही आ रहे है और करते ही जायेंगे यदि महावीर की तरह पाप-पुण्य कर्मों का करना, बांधना नहीं छोड़ा तो। पर भव -परावर्तन, देह परावर्तन [illegible] है। महावीर इससे मुक्त हो गये , हम [illegible]

महावीर महासुखी हैं, हम महादुःखी हैं । हमारे पति,पत्नि , माता, पिता, पुत्र, पुत्री ,भ्राता आदि का परिवार हैं। उनके दुःख दर्द होते है, सेवा को दौड़ते हैं। पर, क्या उनके दुःख -दर्द हम मिटा पाते हैं। सब करते भी उनके दुःख -दर्द बढते ही हैं, कम नहीं होते । हम चिंता किये जाते है, हिंसा -झूँठ - चोरी के पाप किये जाते हैं, उनको लेकर दूसरों से झगड़े करने को तैयार हो जाते है। उन्हें अपना अन्यो को पराया मानते हैं। हम समझते है, 'हमारा इनसे सम्बन्ध हमेशा का है, हमेशा रहेगा, पराये पराये ही रहेंगे हमारे हमारे ही रहेंगे।' शास्त्र कहते है- इस संसार के अनंत जीवों मे ऐसा एक भी नही है जो अनादि से बदलते सम्बन्धों में हमारे परिवार का न हों गया हो ,और इसी प्रकार अनादि से बदलते सम्बन्धों में हमारा जान लेवा शत्रु न हो गया हो। इस अनादि संसार की अंधी दौड में हम अपने कहे जाने वालो से कितनी कितनी बार कुचले,मारे, पीडित नही किये गये है? यदि वह सारा ब्योरा हमारे ज्ञान-नेत्र देख सकें तो क्या फिर भी हम उसे अपना कहेंगे, वह आज स्वार्थ से हमें अपना कह रहा है और तब अपने स्वार्थ से ही हमे कुचला, पीटा था, पीड़ा दी थी। 'स्वार्थी कहीं का, कौन कहे उसे अपना ?' हमारे ज्ञान-नेत्र खुल जाये, जाति स्मरण हो जाये तो अपनों के मोह की सारी गाँठ उतर जाये जिनमें पड़े हम हिंसा ,झूठ , चोरी के पाप कर [illegible] किये जा रहे है, आकुल-व्याकुल हो रहे है। महावीर को सिंह के भव में मुनिराज के उपदेश से [illegible] जाति स्मरण [illegible] हो गया था, और [illegible]

गया था। वे ऊँचे उठते उठते एक दिन त्रिशला नन्दन महावीर हुए तथा 30 वर्ष की आयु में फिर यह ही जाति स्मरण हुआ तो मुनि बन केवली अरहन्त परमात्मा बने, आज सिद्ध परमात्मा हैं। अपने पराये के भ्रम से छूटे तो आज महासुखी हैं । उनके न परिवार का अपना परायपन है, न धर्म-सम्प्रदाय - जाति -वर्ण -देश -प्रान्त -भाषा -वेशभूषा -किसी भी प्रकार का अपना-परायपन नहीं है। ये सब अपने-पराये के भाव दु ख-दायक हैं,कर्म बन्ध के कारण हैं जन्म-मरण के भयानक चक्र से निकलने नहीं देते हमें आत्म-बोध नही होने देते। यदि हमे महावीर की तरह सुखी, सदासुखी होना है तो देह परिवार , देश सम्प्रदाय, जाति के अपने पराये के पापकारी थोथेपन की पकड़ से हमें अपने चित्त को मुक्त करना होगा और एकाग्र होकर अपने परमात्मा स्वरूप से जुड़ना होगा, जिससे जुड़कर त्रिशलानन्दन महावीर सिद्ध परमात्मा हो गये।

1318, अजबघर के पीछे, जयपुर-3

◆

कुछ स्वयं के लिए

✍ शालिनी जैन, 20ए, जनता कॉलोनी, जयपुर (राज)

आज मेरा पूर्व शरीर सामने मृत पड़ा है। मै नहीं मरा हूँ। पहले मनुष्य देह धारी था, अब व्यन्तर देव हूँ- देखो तो, मैरे पैर जो चमकदार थे कभी दर्द ने छुआ नहीं था बहुत तेज कम समय में लम्बी दूरी तय करते थे आज निश्चल है, शरीर को उठाने में जो पैर सक्षम थे आज चार व्यक्ति कधा दे रहे है। मेरा चेहरा बडा ही सुन्दर औजस्वी, गोर वर्ण, गोल आज मलिन है। मेरी सुन्दर आँखे जो इतनी उम्र तक बगैर चश्मे के देखने में सक्षम थी आज बद हैं। मेरे कर्ण जो सुई गिरने की आवाज से ही चौंक उठते थे कुछ भी नही सुन पा रहे है। मेरा सिर कभी किसी के सामने नहीं झुका था।

मनुष्य देह महान है पर मैने उसका सदुपयोग नहीं किया । उससे तप हो सकता है, आत्मा की मलीनता धोई जा सकती है पर मै तो देह में ही उलझा रहा। मेरे पास बहुत धन था। परन्तु ,आज मैं उस धन का क्या करूँ। जो व्यक्ति मुझे छूने मात्र से घबराते थे वे मेरी शिथिल मृत देह के सामने कैसे अकड़ के खडे है। काश ! मैने कुछ तो आत्मा की शुद्धी के लिए किया होता ! अब पछताए क्या हो जब चिडिया चुग गई खेत।आज मै अपने कर्मो से व्यतर जाति का हीन देव हुँआ हूँ,सिवाय विलाप करने के या पछताने के कुछ नहीं कर सकता। मैन आत्मा की सुध बुध ली होती,त्याग - तप किया होता और जन्म मरण का चक्र मिटाया होता । हाय हाय क्या कर डाला मैने ।
अरे ।। देखो देखो वह स्त्री यह डिब्बा खराव हो जाने पर अनाज ,दाले दूसरे में भर रही है। क्या हमारा शरीर भी इस डिब्बे की तरह नहीं है कि आयु पूर्ण हो जाने पर नव शरीर आत्मा प्राप्त करती है डिब्बे की तरह नया नया। हम कब तक नये नये डिब्बे (शरीरा) में बन्द होते रहेगे। अन्न को तो नये डिब्बे में वह स्त्री बन्द कर रही है हमे कौन नये शरीर में बन्द /कैद कर देता है ?

भगवान महावीर के सिद्धान वर्तमान युग में

✍ हरक चन्द साह

वर्तमान युग में विश्व मे बढती हुई हिसा और शस्त्रासों की होड़ा-होड़ी, आण्विक अस्त्रो की स्पर्धा, विभिन्न धर्मो, वर्णो, वर्गों में बढ़ती हुई असहिष्णुता है।

आज हम, हर वस्तु को स्वीकार-नकारवाली पद्धति से या तो वाम है दक्षिण, काला है या गोरा, अमीर है या गरीब, सवर्ण है या दलित, इस प्रकार से पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण के परस्पर-विरोध के खानो में ही देखते हैं।

हजारों वर्ष पूर्व महावीर ने नय-पद्धति से अपेक्षा-भंग पर गहरा विचार किपा था। यदि उसे आज की समाजनीति-राजनीति-अर्थनीति पर लागू किया जाय तो प्रत्येक व्यक्ति अपना अपना कार्य करता हुआ 'योगः कर्मसु कौशलर्म'' का अनुसरण करेगा। जन्मना जातीय ऊँच-नीचता नही रहेगी। वर्गो का परस्पर हित-रक्षा पंचायत और पंच पद्धति से पंचाठ अवार्ड और ट्रस्टी विश्वस्त संस्था से, बातचीत और परस्पर संवाद से प्राप्त की जा सकेगी। हर छोटी-छोटी मांग के लिये परस्पर सिर फोड़ने, दंगे, रक्तपात, घेराव और दबाव से मानवी शक्ति का अपव्यय नहीं होगा।

स्याद्वाद और अनेकान्तवाद, सत्य और अहिंसा की भूमिका पर महावीर के सार्वभौमिक सिद्धान्त स्थित हैं। उनमे लोक हित और लोक संग्रह की भावना गर्भित हैं धार्मिक राजनैतिक सामाजिक और आर्थिक विषमताओं के दूर करने का अमोध अस्त्र है।

आज के जीवन में महानगरो की जहाॅ बढती हुई विषमता में मनोविकृति को यथार्थवाद के नाम पर उछालने का रोग उपन्यास, नाटक, सिनेमा, प्रचार चित्र, विज्ञान, टेलीविजन आदि मे स्पष्ट है, वहाॅ महावीर के इंद्रिय-संयम और सम्यक् आहार-विहार और मानसिक शुद्धि की बात बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

जीवन अधिकाधिक अप्राकृतिक और अ-सहज होता जाता है, प्रदूषण न केवल पर्यावरण में पर विचारों के सूक्ष्मलोक में भी पहुॅच चुका है। यदि मनुष्य आत्म हत्या के विरुद्ध से हटकर जीना चाहता है तो उसे पुनः प्राकृतिक और सहज जीवन पद्धति की ओर जाना होगा जिसकी बात महावीर ने की थी और बाद में गांधीजी ने उसे कृति द्वारा पुनः अधोरेखित किया था।

महावीर ने अपने जीवन का अधिकांश भाग सामाजिक क्रांति में लगाया। वे जातिवाद के विरोधी थे। उन्होंने दलित लोगों को सामाजिक सम्मान देकर उनमें आत्म सम्मान प्रज्वलित किया। महावीर ने

हरिकेशी चाण्डाल को अपने गले लगाकर जातिवाद के भेदभाव को समाप्त किया। अत महावीर किसी एक देश, जाति, समाज के न होकर मानव जाति के गौरव के रूप में प्रतिष्ठित हुये। महावीर के सिद्धान्त अहिसा, अनेकान्त, अपरिग्रह वर्तमान में युग में उतने ही सार्थक व सगत है।

महावीर के उपदेशों की सबसे बड़ी सार्थकता उनके अस्तेय और उपरिग्रह की श्रेष्ठता के प्रतिपादन में लगती है। आज जो स्मगलिग, मुनाफोखोरी, जमाखोरी, चोर बाजारी, काला-धन सग्राहक व्यापारी और जल्दी से जल्दी श्रीमत बनने वाले समाज के हर तबके और हर प्रदेश और भाषा भाषी समाज में दिखाई देते है भारत को यह जो घुन की तरह रोग लग गया है, इसका मूल है लोभ और तृष्णा। परिग्रह के सब साधन सामाजिक जीवन में कटुता घृणा और शोषण को जन्म देते है। अपने पास उतना ही रखना जितना आवश्यक है ही अपरिग्रह पद्धति है। परिग्रह के विरोध में महावीर ने आवाज उठाई और अपरिग्रह का उपदेश देकर नई जागृती पैदा कर आर्थिक क्राति द्वारा असमानता मिटाई। यदि सम्पूर्ण मानव समाज सुख व शाति चाहता है तो महावीर के अपरिग्रह रूपी दीपक से अपने हृदय व मन को आलोकित करें जिससे पूजीपति व मजदूर की, अमीर व गरीब की दूरी समाप्त हो सके।

मनु विला, 5-झ-5,
जवाहर नगर, जयपुर

◆

'महावीर की जय-मिल बोलें'

जन्म-जयन्ती के अवसर पर,
मन मेंलगे मैल को धोलें।
'महावीर की जय'-मिल बोलें॥

(1)

मूर्तिपूजक का पट पीला,
स्थानकवासी तो नीला,
श्वेताम्बर का दर्जा ढीला,
ऐसा कहकर जहर न घोलें।
'महावीर की जय -मिल बोलें॥

(2)

क्रियाकाण्ड में रग जहाँ है,
टेढ़े-तिरछे अग वहाँ है,
तत्त्वज्ञान में भग कहाँ है
सोचें, समझें, सीध होलें।
'महावीर की जय-'मिल बोलें॥

(3)

बीसपथ हल्का, दृढ़ तेरा,
इन तर्कों ने नीचें गेरा,
एक छाँह में करें बसेरा,
बँधी गाँठ का तागा खोलें।
'महावीर की जय'-मिल बोलें॥

(4)

मास और मदिरा को त्यागे,
समभावी हों सशय भागें,
मूर्च्छा तजें, आप में जागें
पर को नहीं, स्वय को तोलें।
'महावीर की जय-'मिल बोलें॥

(5)

हठधर्मी ने बहुत रुलाया,
भेदभाव ने हमें भुलाया,
अनसमझी ने सदा सुलाया,
अब तो ज्ञान-द्वीप को जोलें।
महावीर की जय'-मिल बोलें॥

✍ श्री प्रसन्न कुमार सेठी

विशुद्ध परिणाम और सम्यक्त्व की प्राप्ति

✍ बाबूलाल जैन
इन्जीनियर - छावनी कोटा (राज.)

पहले अशुभ परिणामों का अभाव होता है, शुभ मे प्रवृत्ति होती है। फिर शुभ का भी अभाव हो कर शुद्धोपयोग दशा प्रकट होती है। शुद्धोपयोग दशा प्रकट करने हेतु परिणामो की विशुद्धि आवश्यक है। जय धवला पुस्तक 4 पृ. 141 पर कहा है–

प्र. विशुद्धि क्या है ?

उ. जीवों के जिन परिणामों के होने पर कषायों की हानि होती है और स्थिर, शुभ, सुभग, साता, सुस्वर आदि शुभ प्रकृतियों का बंध होता है उन परिणामों का नाम विशुद्धि है। इन परिणामों से कर्मो का स्थिति काण्डक घात होता है। (स्मरण रहे एक स्थिति काण्डक घात सदैव असंख्यात अनुभाग काण्डकों के घात होने पर ही होता है।) यही बात पृ. 275 पर भी कही है। गोमट् सार जीवकाण्ड (165/391/4) में कहा है कि ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से आत्मा में जो निर्मलता आती है वह विशुद्धि है। इसी प्रकार जघन्य स्थिति बंध के कारणभूत परिणामों की विशुद्धि कहा गया है।

आगम ग्रन्थों में जीव के बांधे हुए सत्कर्म के अनुभाग घात के कारणों को विशुद्धि स्थान कहा गया है। क्रोध, मान, माया, लोभ के परिणामो की तीव्रता को संक्लेश कहा है। जहाँ साता आदि शुभ-प्रकृतियों के बंध के कारणों को विशुद्धि कहा गया है, वहाँ असाता, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय आदि परिवर्तमान अशुभ प्रकृतियों के बंध के कारणभूत भावों के उदय स्थान संक्लेश कहाते गये है।

समयसार गा. 53-54 की टीका में कषायों के विपाक की अतिशयता को संक्लेश स्थान तथा मंदता जिनका लक्षण है ऐसे जो स्थान है उन्हें विशुद्धि स्थान कहा है। चारित्रमोह के उदय से होने वाले विशुद्ध परिणाम, चित्त प्रसाद शुभ परिणाम है। शुभ-अशुभ, विशुद्ध-संक्लेश दोनों परिणाम कषाय रूप ही होते हैं, केवल तीव्रता मंदता की भिन्नता है।

आचार्य कुन्दकुन्द भाव पाहुड़ गाथा 151 में कहते है–

जिणवर चरणांबुरुहं णमंति जे परम भत्ति राएण।
ते जम्म वेलिमूलं खणंति वर भाव वसत्थेण ॥

जो जन परम भक्ति से जिनवर के चरण कमलों को नमस्कार करते हैं, वे संसार के मूल मिथ्याध्व आदि कर्मो को नष्ट कर देते हैं। इसी प्रकार धवला में जिन वन्दन के परिणाम को पाप विनाशक कहा गया है।

भगवती आराधना 752 मे आचार्य शिवकोटि कहते है, एक ही जिनेन्द्र भगवान की भक्ति दुर्गति निवारण कूं समर्थ है अर सिद्धि पर्यन्त सुगति के कारण जे पुण्य प्रकृति अथवा शुद्ध भाव तिनकौ परिपूर्ण करने को समर्थ है। तातै जिनभक्ति ही कूं प्राप्त होहु।

कषाय पाहुड 1/92 में अरहंत भक्ति, नमस्कार को तत् सम्बन्धी बंध की अपेक्षा असंख्यात गुणी कर्म की निर्जरा का कारण बताया है। धवला पु 6 पृ 427/9 में कहा है- जिन बिम्ब दर्शन से निधत्त-निकाचित रूप कर्म कलाप का क्षय देखा

जाता है।

प का 135/191/23 तात्पर्य वृत्ति में कहा है-"वीतराग देव पच परमेष्ठी का निर्मल गुणानुराग प्रशस्त धर्मानुराग व्यवहार धर्म अशुद्धोपयोग रूप है अथवा विशुद्ध परिणाम है, व्यवहार धर्म ध्यान है। उससे पापकर्मों का घात होता है। ज्ञानार्णव 3/32 में कहा है' शुभ ध्यान के फल से लक्ष्मी, ख्याति आदि को प्राप्त होकर (जीव) परम्परा से मोक्ष को पाता है।" तत्त्वार्थ सूत्र 6/12 में जीवों पर तथा व्रतीजनों पर अनुकपा, दान सरागसयम, योग, क्षमा शौच, अकाम निर्जरा, बालतप, अर्हद्भक्ति, वैय्यावृत्ति आदि को सातावेदनीय के आश्रव का कारण कहा है। तत्त्वार्थ सार में आचार्य अमृत चन्द्र ने भी यह ही बात कही है।

श्रावक जनों को प्रथमोपशय सम्यक्त्व प्राप्ति हेतु जैनाचार्य इस प्रकार जिन भक्ति रूप परिणामों की विशुद्धि को परमउपयोगी मानते है। नियमसार गा 135 में आचार्य कुदकुद कहते है– मोक्खगय पुरिसाण गुणभेद जाणिऊण तेसि पि।

जो कुणदि पर भत्ति ववहारणयेण परिकहिय मोक्ष गये पुरुषों के गुण भेद जानकर उनकी भक्ति करने को व्यवहार नय से उन्होंने परम भक्ति कहा है। प्रवचन सार गाथा 254 में वे इस प्रकार कहते हैं–

एसा पसत्थभूदा समणाण वा पुणो घरत्थाण।
चरिया परेत्तिभणिदा ता एव पर लहदि सोक्ख॥

इसमें प्रशस्त भूत अर्हन्तादि की भक्ति को गृहस्थों के परम सुख का कारण कहा है।

प्रवचन सार गा 256 की टीका मे बताया गया है कि सर्वज्ञ स्थापित वस्तुओ मे युक्त शुभोपयोग का फल पुण्य सचय पूर्वक मोक्ष की प्राप्ति है तथा छद्मस्थो द्वारा स्थापित वस्तुए कारण *विपरीतता से उनमे व्रत, नियम, ध्यान, अध्ययन,* **दान रूप से शुभापयोग का फल मोक्ष शून्य केवल अधम पुण्य की प्राप्ति है। तत्त्व निर्णय सहित शुभोपयोग स्वर्ग चक्रवर्ती पद आदि सहित परस्परा से मोक्ष का कारण है।**

परिणामों की विशुद्धि में यथाशक्ति, तपश्चरण, परीषह जय को भी जैनाचार्य आवश्यक मानते है। आचार्य पूज्यपद समाधि तत्र में कहते है–
अदुख भाविन ज्ञान क्षीयते दु ख सन्निधौ।
तस्माद्यथाबल दुखैरात्मान भावयेन्मुनि॥

आराम, देह की अनुकूलताओं से सहित किया गया ज्ञानाभ्यास कष्ट आने पर नष्ट हो जाता है। अत यथाशक्ति मुनि परीषह जीते/धवला टीका में कई उद्धरण मिलते है कि जो मुनि बिना 22 पीरषह सहन किये कोटिपूर्व काल तक छठे सातवें गुणस्थान में झूलते हैं वे मारणान्तिक तीव्र असाता का दु ख सहन नहीं करने के कारण सम्यक्त्क छूटने से कुगतियों में चले जाते है आज भी अनन्त जीव सम्यक्त्व से च्युत हो निगोद में पड़े है। ज्ञानाभ्यासी गृहस्थों के भी मारणान्तिक तीव्र असाता के उदय से परिणाम बिगडे देखे जाते है, परीषह सहन का अभ्यास नहीं होने से वे पीड़ा सहन नहीं कर पाते हैं और वे बेहोश हो जाते है। जित ज्ञान-ध्यान के अभ्यास के साथ-साथ परीषह जय भी यथाशक्ति करते हुए हमें परिणामों की विशुद्धि को दृढ करना चाहिए।

जय धवला में कहा है कि दर्शन मोह का उपशामक जीव विशुद्ध परिणामी ही होता है,

अविशुद्ध परिणामी नही। अध प्रवृत्तःकरण के पूर्व ही अन्तर्मुहूर्त से लेकर अनन्त गुणी विशुद्धि प्रारम्भ हो जाती है।

शका- किस कारण से ?

समाधान- जो जीव अतिदुस्तर मिथ्यात्व रूपी गर्त से उद्धार मनवाला है जो अलब्ध पूर्व सम्यक्त्व रूपी रत्न को प्राप्त करने की तीव्र इच्छा वाला है, जो प्रतिसमय क्षायोपशमिक लब्धि और देशना लब्धि आदि के बल से वृद्धिगत सामर्थ्य वाला है और जिसके संवेग और निर्वेद से उत्तरोत्तर हर्ष मे वृद्धि हो रही है उसके प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि की प्राप्ति होने का निषेध नहीं है। (ज.ध. पु.12)

विशुद्ध परिणामो से आयुकर्म को छोड़कर 6 कर्मो की स्थिति कोड़ाकोड़ी सागरो से घटाकर अन्त कोड़ा कोड़ी रह जाती है तथा अनुभाग नीम कांजिर विष हलाहल रूप था वह द्विस्थानीय नीम कांजिर रूप रह जाता है। ऐसी स्थिति में परिणाम सर्व विशुद्ध हो जाते है। अप्रमत्त अवस्था समान मिथ्यादृष्ट के परिणाम विशुद्ध हो जाते हैं। असाता, अस्थिर, अशुभ, अपशकीर्ति, अरति और शोक इन 6 प्रकृतियों का संवर हो जाता है। तथा 25 प्रकृतियो का जिनका अप्रमत्त गुणस्थान में विशेष रूप से बंध होता है उनका बंध होने लग जाता है। ऐसे सर्व विशुद्ध परिणाम होने पर ही यह जीव प्रयोग्य लब्धि से उछलकर करण लब्धि में प्रवेश करता है।

करण लब्धि मे सर्वविशुद्ध परिणाम आत्मा के सम्मुख ही होते हैं उनसे अपूर्वकरण, अनिवृत्ति करण में स्थितिकांडक घात, अनुभाग कांडक घात, गुण संक्रमण, गुणेक्षेणी निर्जरा करके दर्शन महोनीय कर्म को जीव उपशान्त कर देता है और प्रथमोपशय सम्यक्त्व प्राप्त कर लेता है।



तू अनाम, तेरो नाम न कोई

शब्द ,परस,रस ,गंध विहीना,ज्ञानाकारी,रूप न कोई॥
नहिं प्रकाश,नहिं है अंधियारा,बोधि दरस का निज उजियारा
निज उपयोग स्वातम रस भीना, चाह अचाह रहे नहि कोई।।
जीव कर्म का सेतु छिन्न हो, कर्म वर्गणा रिक्त भिन्न हो
परजुत टूटे भाव श्रृंखला , भावातीत आतम थिति होई॥
पर विभाव कुछ हो नहिं तेरे, टंकोत्कीर्ण आकार उकेरे
कृतकृत्य होय,स्वमांहि ठहरे , सुख अनन्त को पार न कोई॥
कर्त्ता भोक्ता निज सुभाव का, देह प्रमाणी बिन मूरत का
लोकाग्र गेह में जा जो ठहरे, ऐसी थिरता जिसके होई॥
पारदर्शी, आकार अबाधित, सोऽहं अनन्त एक मैं राजत
लोकालोक प्रत्यक्ष लखे जो [illegible], विस्मय नहीं कोई॥

(सौजन्य -गुरुवाणी प्रकाशन)

वर्तमान· एक अनुपम उपहार

✍ भानु प्रकाश जैन
आर्चीज गैलरी, छावनी चौराहा, कोटा

वर्तमान'— समय का एक वह बिन्दु जो न तो भूतकाल का अश है और न ही अनागत का। जो विद्यमान है, वही है ' वर्तमान''।

आग्ल भाषा में इसकी सज्ञा है 'Present'। Present शब्द द्वि-अर्थी है। समय के सन्दर्भ में वर्त्तमान काल है और वस्तु के सन्दर्भ में इसका अर्थ है उपहार। Present (वर्त्तमान) is a Present (एक उपहार)।

वर्त्तमान (जो भूतकाल व भविष्य काल से पूर्णत स्वतन्त्र इकाई है) में अवस्थित हुवा जावे तो यह एक ऐसा अवसर होगा जिसमें स्व स्वरूप की उस रूप में प्रतीति होगी जो अभूतपूर्व की सज्ञा प्राप्त करेगी।

भूतकाल के तिरोहित होने पर वर्तमान की इकाई प्रगट होती है। जो प्रगट हुवा है विद्यमान है, वह एक स्वतन्त्र इकाई है जो शुद्ध है विकारों से अछूती है।

भविष्य तो अनागत है जो अनागत है वह तो अनागत ही है उससे वर्तमान की स्वतत्रता बाधित नहीं होती। वर्त्तमान एक स्वतत्र इकाई है वह भूतकाल की कमजोरियों, अशुद्धियों व विकारों से भी असबद्ध है।

दूसरे शब्दों में वर्तमान की इकाई को यदि उसे भूतकाल की पर्यायों से सबद्ध नहीं किया जाय तो अपने स्वतत्र रूप में शुद्ध व अविकारी ही होगी इस प्रकार भूत काल की इकाई की कमजोरी अशुद्धता, विकार से उसे स्व असम्बद्ध रखा जा सकता है।

द्रव्य के सन्दर्भ में पर्याय की स्थिति भी ऐसी ही है। द्रव्य गुणों का समूह है और प्रति समय परिणमनशील है। एक समय में द्रव्य का जो परिणमन है वह एक पर्याय है।

पर्याय अर्थात एक समय की द्रव्य की परिणत स्थिति। प्रत्येक समय की पर्याय प्रति दूसरे (अन्य) समय की पर्याय से भिन्न होती है। पूर्व में द्रव्य में जितनी पर्याय है उन सब पर्यायों से वर्त्तमान समय की पर्याय एक भिन्न इकाई है। द्रव्य में अवस्थित पूर्व समय की पर्यायें भी अपने आप में सब भिन्न-भिन्न है। प्रत्येक पर्याय अपने आप में एक स्वतत्र इकाई है।

हम अनादि काल से अशुद्ध, विषय-कषाय सहित परिणमन कर रहे है। उसी लय में वर्तमान को भी सम्मिलित कर लेते हैं और जैसा परिणमन चल रहा है उसी लय में उसी प्रकार परिणमन करते रहना अपनी नियति मान लेते हैं। यह एक अज्ञान भाव है। इस भाव के रहते पूर्व की अशुद्ध विषय-कषाय मुक्त परिणमन से वियुक्त हो कर शुद्ध परिणमन के अवसर की सभावना ही नहीं बनती।

ज्ञानी जीव यह जानता है कि प्रत्येक पर्याय स्वतत्र है अर्थात् पिछली पर्याय से इसको असम्बद्ध रखा जा सकता है। अत वह बुद्धि पूर्वक कृत-प्रयत्न हो कर वर्तमान पर्याय को वर्तमान बनाये रखते हुये, पिछली अशुद्ध विषय-कषायपुक्त पर्यायों से व्रियुक्त रखता है।

वर्तमान पर्याय को पूर्व की पर्यायों से सबंद्ध

रखना अज्ञान भाव है। अज्ञानी जीव को वर्तमान समय की पर्याय की स्वतन्त्रता का अनुभवन नही होता, अपितु भूतकाल की पर्यायों के कर्मफल को इस वर्तमान काल की नियति मान कर वह इनको भोगने मे इतना व्यस्त रहता है कि स्वाभाविक स्वतन्त्र वर्तमान की स्थिति से वह अपरिचित बना रहता है। पूर्व पर्याय के कर्मो का फल शुभ हो या अशुभ, पुण्यमय हो या पापमय, सुखमय हो या दुख मय वह उनको वर्तमान पर्याय की नियति मानता है और उन्हे भोगता रहता है।

भविष्य की पर्यायो को वर्तमान पर्याय से संबद्ध करना भी अज्ञान भाव है। वर्तमान पर्याय में भूतकाल की पर्यायो के कर्मफल को भोगते हुये निरन्तर यह भाव बनाये रखना कि वर्तमान की पर्याय में जो भी कार्य हो रहा है उसका परिणाम भविष्य के सांसारिक सुखों का कारण बने और इस प्रकार वर्तमान पर्याय को अनागत पर्याय के लिए समर्पित करते हुये उससे सम्बद्ध करना पर्याय की इकाई की स्वतंत्रता को न समझने का परिणाम है।

भूत काल की पर्याय और अनागत पर्याय दोनो ही पर समय है। स्वसमय की पर्याय तो वर्तमान पर्याय है।

स्व समय अर्थात भूत व भविष्य के सारे विकल्पों से मुक्त हो कर वर्तमान पर्याय मे अपने संपूर्ण उपयोग को स्थिर करना वही है ज्ञानी का भाव। ज्ञानी केवल वर्तमान पर्याय मे रहता है।

वर्तमान पर्याय की इकाई का पूर्व पर्याय या उत्तर पर्याय की इकाई से सम्बद्ध करने का भाव [illegible] रहता है। मोह का प्रसार [illegible] [illegible] किया है कि पर्याय की इकाई की स्वतंत्रता

को आच्छादित कर लेता है। पूर्व पर्यायों मे जो भी शुभ-अशुभ संग्रहण (कर्मो का-भाव कर्म/द्रव्य कर्म/नो कर्म) हुवा था उसके प्रति मूर्च्छा एकाएक जाती नहीं। कर्मफलों को भोगने की वांच्छा बनी ही रहती है।

कर्म फल पुद्गल की परिणति है। उदय मे आये कर्म अपना फल भी देंगे ही लेकिन उनके साथ सम्बद्ध होना या नहीं होना यह हमारा अपना निर्णय है। मूर्च्छा इस निर्णय को प्रभावित करती है। उसका प्रभाव ऐसा होता है कि भोगने के अतिरिक्त अन्य भाव अज्ञानी को आता ही नही।

जो तत्वज्ञ आनद शांति के प्यासे है, दुख संक्लेश को जानते हुए जिन्हें सहन नही होते वे कर्मोदय से स्वयं को अस्पृष्ट अनुभव करते है और मुक्त भाव से अपने व पदार्थ पदार्थ के सुदर त्रैकालिक गुणवैभव/ स्वभाव भाव/स्वरूप को जानते हुए जीने का वर्तमान के प्रभूत अवकाश का लाभ लेकर अपने जीवन को धन्य करते है, स्वयं भी आनंद मे नहाते है और चारों ओर के जड़चेतन परिवेश को भी शांति शीतलता प्रदान करते हैं।

संयम से सहित और उत्तम ध्यान के योग से युक्त मोक्षमार्ग का लक्ष्य ज्ञान से प्राप्त होता है, अतः ज्ञान को जानना चाहिए ॥20॥ ज्ञान पुरुष के होता है, विनय से संयुक्त पुरुष ही ज्ञान को प्राप्त होता है, और ज्ञान के द्वारा ही वह मोक्ष मार्ग का लक्ष्य प्राप्त करता है ॥21॥ मति जिसका स्थिर धनुष है, श्रुत ज्ञान जिसकी डोरी है, रत्नत्रय जिसके बाण है और परमार्थ मे जिसने निशाना बांध रखा है वह मोक्षमार्ग से चूकता नहीं है ॥22॥ आ. कुन्दकुन्द कृत बोध पाहुड।

◆

तीर्थंकर महावीर का वैराग्य चिंतन

शीत के आक्रमण से मुरझाये हुए कमलों के समूह को देखकर श्रीमान् वर्धमान भगवान् के चित्त में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ ॥1॥ इस ससार में जिसने जन्म लिया है और जो सम्पति को प्राप्त करना चाहता है ऐसे मेरे भी कमल के समान एक क्षण भर में विपत्ति आ सकती है ॥2॥ यह इन्द्र-धनुष सर्व प्रकार से दर्शनीय है प्रसन्नता करने वाला है, इस प्रकार से देखने वाले पुरुष के लिए तत्पश्चात् नष्ट होता हुआ वही इन्द्र-धुनष उसी के विषाद के लिए हो जाता है ॥3॥ ससार की ऐसी क्षण-भगुर वस्तुओं को अपने अधिकार में करने के लिए यह प्राणी मोह से वृथा ही इच्छा करता है। जैसे कि बालक भूमि पर रहते हुए, चन्द्र को ग्रहण करने का व्यर्थ प्रयत्न करता है ॥4॥ यह ससारी जीव, वह नष्ट हो गया यह नष्ट हो रहा है ऐसा देखता-जानता हुआ भी आश्चर्य है कि स्वय को यम के मुख में स्थित हुआ नहीं जानता है ॥5॥ औरों से क्या, धीवर अर्थात् बुद्धि वाला भी मैं क्या इस माया से वचित नहीं हो रहा हूँ ? जैसे कि जल के प्रवाह के मध्य को प्राप्त हुआ धीवर (कहार) झझावात से आन्दोलित होकर उसी पानी के पूर में डूब जाता है उसी प्रकार मै भी इस ससार में डूब ही रहा हूँ ॥6॥ जैसे आख अपने भीतर लगे हुए अजन को नहीं जानती है और अन्य के लाछन (अजन या काजल) को झट देख लेती है इसी प्रकार यह लोक भी पराये दोषों को ही देखने वाला है, (किन्तु अपने दोषों को नहीं देखता है।)॥7॥ श्रोत्र (कर्ण) के समान विरला पुरुष ही ससार में अपने छिद्र (छेद या दोष) को प्रकाशित करता हुआ अन्य के उचित और अनुचित वचन को सुख से सुनता है ॥8॥ मैं जिससे ग्लानि करता हूँ, क्या वह यह विश्व ग्लानि-योग्य है ? सब से अधिक तो ग्लानि-योग्य यह शरीर ही है। दु ख है कि उसी में यह सारा ससार अनुरक्त हो रहा है ॥9॥ मै आज तक इस शरीर में अहकार करके इसके शोषक को तो चाहता रहा अर्थात् राग करता रहा और शरीर के पोषक से द्वेष करके उसके सहार का प्रयत्न करता रहा। मेरी यह राग-द्वेष-मयी प्रवृत्ति ही मेरे लिए अनर्थ का कारण हुई है ॥10॥ किन्तु आत्मा से इस शरीर को भिन्न समझ लेने पर सर्व वस्तुएँ सम्पदा के रूप ही हैं। पवन उच्चय अर्थात् पर्वत को छोड़कर सर्वत्र सचार करता ही है ॥11॥ वक्रता (कुटिलता) को प्राप्त होते हुए क्या कभी तूने अहीनता (सर्प, राजपना या उच्चपना) को ग्रहण किया है जिससे कि हे अग तू भोगों को बार-बार भोगते हुए भी नवीनता को धारण करता है ॥12॥ पुरुष अपनी चेष्टा के फल को स्वय ही भोगता है, इसमें और कोई कारण नहीं है। जैसे झझा वायु के वश होकर यह ध्वजा स्वय ही उलझती और सुलझती रहती है ॥13॥ मै ब्रह्मचारी होता हुआ भी वस्त्र से वेष्टित क्यो हो रहा हूँ ? अहो क्या यह दम्भ मेरे ब्रह्म (आत्म-प्राप्ति) के मार्ग में बाधक नहीं है ? ॥14॥ यदि यह प्राणी अपने मनरूप दर्पण में जगत् के रहस्य को स्पष्ट रूप से देखने की इच्छा करता है, तो इसे मनरूप दर्पण को निरीहता (वीतरागता) से मार्जन करना चाहिए ॥15॥ यह ससार सम्प्रदाय के मोह को अगीकार कर रहा है। यही कारण है कि बारम्बार प्रयत्न करता हुआ भी वह सत्य मार्ग को नहीं जानता है ॥16॥ इस प्रकार के विचारों में तत्पर जगदीश्वर श्री वर्धमान के होने पर देवर्षि लौकान्तिक देवों ने आकर के प्रभु की स्तुति की ॥22॥ वह मगसिर मास के कृष्ण पक्ष की दशमी तिथि है जिस दिन भगवान् ने दैगम्बरी दीक्षा ग्रहण की। यह हम सबके कल्याण करने वाली तिथि जगत् में जयवन्ती रहे ॥26॥

◆

पंचम खण्ड

ENGLISH SECTION



LORD MAHAVIR AND HIS AGE

✍ M.P. Jain, M.A.LL.B.
Retd. Registrar M. R. E. C. Jaipur

We shall be celebrating the holy 2600 the Birthday of Lord Mahavir-the last and 24th Tirthankar of Jain tenets in the present era (fifth of the six epochs of the cycle). According to Jainism Gods are not born. They attain Godhood by adopting Right Faith, Right Knowledge, and Right Conduct and after attaining omniscience they preach the world about the Right Path which can lead to salvation

On the sixth day of bright of half of Asadha the soul of King Nanda, having thought of sixteen causes, and who was destined to be a Tirthankara, descended from sixteenth heaven and entered into the womb of queen Trishala With the growth of the child in the mother's womb, increased the wealth, happiness and enthusiasm of the king

After a happy waiting by the near and dear ones and the members of the royal household, the child was born on the auspicious thirteenth day of the bright half of chaitra As in the morning hour, the east gives birth to the sun, in the same manner, mother Trishala gave birth to a powerful son Seeing him grow every day, a worthy name which suggested itself for him was Vardhamana.

He had the knowledge of the Self, [illegible] considerate, with a developed conscience and fearless He had never learnt to be afraid He was the very embodiment of bravery So from the childhood, he was called Vira, Ativira, a hero, a great hero. Since he had the knowledge of the Self, he was also called Sanmati Famous were his five names, which are as follows Vira, Ativira, Mahavira, Sanmati and Vardhamanan

The mid-century of the millennium preceding the birth of Jesus Christ and during which Mahavir and Buddha were born, was great epoch-making age which has tremendous significance in the history of mankind It was an age when the atmosphere of almost the entire civilized world was surcharged with an unprecedented emotional stir, intellectual awakening and speculative thinking A new era was ushering in both the East and the West, and a new order of things seemed to come into being India itself, in that period, saw the rise of not one or two but dozens of eminent thinkers, founders of philosophical systems religious reforms and saintly personages. Amongst the followers of the Veda the pundits of the orthodox section were giving final shape to the Samhitas (Collections of Vedic hymns), preparing explanatory notes [illegible]

Niryuktas and writing obstruse commentaries, the various Brahamanas and the Aranyakas, which not only tended to elaborate the sacrificial ritualism but to make it highly complicated and rigid The simple chanters of sacred hymns that the Brahamans were in Rigvedic times had now developed into an organised and powerful class of religious functionaries This priestly class, rather caste, succeeded in creating in the popular mind the impression that a suitable combination of rites, rituals, priests, articles and objects of sacrifice has the magical power of producing the desired effect, the increase in the power, pelf and fame of the sacrificer, the birth of a son, or the destruction of his enemies The sacrifices were enjoined not so much for any spritual benefit or moral elevation as for worldly gains No doubt, thanks to the efforts of the Tirthankaras, Aristanemi and Parsva, the sacrifices had become much less frequent as well as much less bloody Yet, they were very much in existence and held in high reverence, though only a few could afford to perform them All this contributed to increase the influence and hold of the Brahamanas over the rest of the population and consequently in their exclusiveness and the strict division of society into exclusive rigid castes based, not on one's calling or occupation, but on the incident of birth This gave rise to social inequalities, social injustice, untouchability, rigid marriage laws, very restricted social intercourse, lowering the status of women, persecution of the down and trodden, slavery and many other social evils Superstition was rampant The basis of polity was feudal and generally monarchial, although there were, particularly in eastern India, many freedom loving republiacan tribes also The latter, no doubt, encouraged free thinking, tolerance and charitable disposition It was in this region that among the followers of the Veda themselves there rose the exponents of the Upanishadic thought which were opposed to the thinking and doings of the priestly class and preferred to revel in philosophi-mystical spiritualism

There was a third group which comprised of intellectuals like Kapila, Kanada, Gautama, Patanjalai and Jaimini, the founders respectively of Sankhya, Vaisesika, Nyaya, Yoga and Barhspatya, Lokayata or Charvaka schools which propagated atheistic materialism also, belongs to about the same period

In the Sramana fold, people were eagerly expecting the appearance of the last Tirthankara, on the basis of the belief traditionally handed down from the times of Parsva (887-777BC) The result was that more than half a dozen thinkers and spiritual leaders roamed about enlisting

followers and each claiming himself to be the expected Tirthanakara Sakyaputta Gautam, the Buddha was one of them who gave the message of enlightenment, advocated the eightfold Middle Path and founded Buddhism which in the course of time, spread all over Asia, although in its land of birth it almost disappeared by the end of the 12th century A D.

It was in the midst of this Kaleidoscope of human wisdom that Lord Mahavir (599-527BC) stepped on the stage, led a life of unique renunciation, self sacrifice, self-purification and self-discipline, of utmost charity and self-less service to all the living beings, No sooner did he make his appearance than he was universally and unequivocally acclaimed as the ardently awaited Tirthankara

Tirthanakara Bhagavan Mahavira wandered and delivered sermons all over India for about 30 years As many of these wanderings took place in a certain region, it has come to bel called Bihar, which is a State in the Indian Union. Quite a few cities in this region took their names from him The districts of Vardhamana and Birbhum in West Bengal are also named after him The town of Singabhumi is named after his emblem

Wherever he went, he delivered his sermons thrice, morning, midday and evening. Just as with sunrise the darkness of the night goes in the same manner the perversion, ignorance began to disappear by his divine sermons

On account of the influence of his sermons, the whole country acquired a non-violent environment. Violence, pomp, guru-dom and devilry were wiped out Although he spoke on the serious things and explained their significance, yet everdoby heard his words in his own language. His sermons were called the divine voice (Divya Dhwani). The divine voice while announcing the inherent independence also propogated a path of self-reliance for acquiring full independence. Self-reliance means concentration on one's pure soul as as distiguished from others. Independence can be acquired only through one's effort Eternal bliss and independence cannot be a gift, nor can these be acquired with another's strength

What came out in the words of Mahavira was no new truth Truth is truth, it cannot be old or new What was said was permanent, eternally true He did not create truth, but simply revealed it as was done by former Tirthanakaras in their own times

- Each soul is independent, and not under any other
- All souls are equal, none being higher or lower
- Each soul has in it infinite knowledge and bliss. Happiness

does not come from outsıde

- Not only soul, but each object ıs subject to transformation, and there ıs not and cannot be, ınterference ın thıs process
- Each soul ıs unhappy due to ıts own mıstake and may be happy on rectıfyıng the mıstake
- The greatest mıstake lıes ın not knowıng one's own self, and to know one's true nature ıs the rectıfication of thıs mıstake
- God ıs not a separate entıty, through rıght effort every soul may become a God
- Know thyself, recognıse thyself, penetrate ınto thyself and be a God
- God ıs not the creator-protector of the unıverse He only knows and sees the whole unıverse
- He who after knowıng the entıre unıverse may remaın detached or who wıthout beıng ınvolved ınto ıt knows the unıverse ıs a God

Besıdes Indrabhutı, Mahavıra had ten other Gandhars, ı e chıef dıscıples and a large number of naked monks Among hıs actıve followers there were 14,000 monks, 36,000 nuns, 1 lac male sravakas and 3 lac female sravıkas The number of devotees and admırers was beyond count

In the end, whıle wanderıng form place to place, Bhagavan Mahavıra arrıved at Pava There he stopped any further wanderıng and sermonısıng ended all actıvıtıes of body mınd and speech, reached the hıghest state of the pure medıtatıon, exhausted all karma bondages,ıncludıng hıs mortal frame and entered ınto the final lıberatıon Nırvana For the benefit of humanıty hıs words have become a Tirtha Not only dıd he hımself cross through the worldly ocean hıs words have remaıned as a beacon lıght for mıllıons of others to cross ıt Hıs Tırthankarhood became worthwhıle because of hıs prıncıples for the uplıftment of all

Lokantıc, Anıta Colony Jaıpur

Just as a person who ıs an expert ın antı-posıon lore, even though he takes posıon, does not meetwıthdeath, even so when the Karmıc materıals become mature and produce theır ınevıtable resultsof paın and pleasure, the knowıng self wıth a neutral attıtude experıences these but remaıns unbound (195)

It has been declared by the great jınas that the rıse and fruıtıon of karmas are of vaıours kınds But they are not (related to) my pure nature I am certaınty the (non-varyıng) one, the knower by nature (198)

From Samayasara tr by Prof A Chakravartı

The Non-attachment Reflection of Chakravarti Bajranabhi

✍ Dr. S.C. Jain

The Hindi Text is a fragment from Shri Parashav Purana of Pt. Bhoodardas, a Jaina Hindi poet of sixteenth century. The soul of Lord Parshvanatha, in its previous incarnations, once appeared on this earth as Chakravarti Bajranabhi, the emperor of the six divisions of Jambud. The Chakravartis are well known for their fabulous power and prosperity. Not all Chakaravartis follow the path of religion, many of them go woefully astray. But the course of Bajranabhi was destined to be otherwise. He rolled in wealth and pleasure but with a prudence not to damage his religion. Hence, when he happened to be blessed with the presence of preceptor Kshemankar, he immediately decided to renounce the world with its delusive attractions. He adopted the course of a possessionless Jaina saint, and increased the merit of his religion gradually, ultimately to incarnate as Tirthankara Parshvanath and achieve his final emancipation.

बीज राखि फल भोगवै, ज्यों किसान जग माहिं।
त्यों चक्री नृप सुख करै, धर्म विसारै नाहि ॥ १ ॥

Just as, a farmer, in this world, enjoys the fruits (of his harvest) after keeping safe the seeds (for future); in the same way, the Chakaravarti (holder of the royal wheel) king ajranabhi enjoyed the pleasures of life but did not forget righteousness

इहविधि राज करै नरनायक, भोगै पुण्य विशालो। सुख सागर में रमत निरन्तर जात न लख्यौ कालो।
एक दिवस शुभकर्म संजोगे, क्षेमंकर मुनि वन्दे। देखि श्रीगुरु के पद पंकज, लोचन अलि आनन्दे ॥२॥

In this way the leader of people (i.e. the king) disposed off the royal business and enjoyed (the fruits of) grand merit (earned by him). Continuously wallowing in the ocean of pleasures, he did not feel the passing time. One day, on account of the concurrence of meritorious Karmas he happened to pay his salutations to saint Kshemanka. At the (very) sight of the lotus-feet of the venerable teacher the beetles of his eyes felt (great)

happiness

तीन प्रदक्षिण दे शिर नायो कर पूजा थुति कीनी। साधु समीप विनय कर बैठ्यो चरनन में दिठि दीनी।
गुरु उपदेश्यो धर्म शिरोमणि सुन राजा वैरागे राज रमा वनितादिक जे रस, ते रस बेरस लागे॥3॥

Aafter going thrice round the preceptor and bowing his head before him, the king, having worshipped him pronouneed eulogies in his praise He sat near the saint with humility and fixed his eyes in his feet The preceptor preached (to him) the excellent religion, hearing which the king developed the spirit of non-attachment Whatever sources of pleasures the kingdom, wealth, spouses etc are there, were felt by him as yielding no pleasure

मुनि सूरज कथनी किरणावलि, लगत भरम बुधि भागी। भव तन भोग स्वरूप विचार्यो, परमधर्म अनुरागी।
इह ससार महावन भीतर भरमत ओर न आवै जामन मरन जरा दव दाहे, जीव महादुख न पावै॥4॥

When the cluster of rays from the World of the Sun among the saints touched him, the delusive understanding disappeared With a loving emotion for the highest religion, he began to ponder over the nature of the worldly existence, the body and pleasures There is no end of wanderings in the extensive forest of this world, birth, death and old age continue to cause anguish and thus the jiva (constantly) suffers great afflictions

कबहूँ जाय नरक थिति भुजे छेदन भेदन भारी। कबहूँ पशु पर्याय धरै तह बध बधन भयकारी।।
सुरगति में पर सम्पति देखे, राग उदय दुख होई। मानुष योनि अनेक विपति मय सर्व सुखी नहि कोई॥5॥

Sometimes it has to a sojourn in the hell, where there are unbearable sufferings of piercing and cutting (of the body) Sometimes it happens to take the subhuman mode of life, where there terrible sufferings of being butchered and being chained In the condition of heavenly life it has to suffer unrest on the emergence of attachment (and aversion) at the sight of the prosperity of others The human condition of life is (also) full of a lot of sufferings Hence (in none of these conditions) no one can be said to be happy in all the ways

कोई इष्ट वियोगी विलखै कोई अनिष्ट सयोगी। कोई दीन-दरिद्र बिगूचे, कोई तन के रोगी॥
किसही घर कलिहारी नारी कै बैरी सम भाई। किस ही के दुख बाहिर दीखे किस ही उर दुचिताई॥6॥

Some people weep bitterly at the separation of the desired objects (and persons), while others have been provided with undersired objects (and persons). Some people suffer from poverty, deprivation. some are diseased by their bodies. Some one has termagant wife, or has brother just matching an enemy. In some cases the sufferings are visible externally. while others suffer from mental tortures (not so visible).

कोई पुत्र बिना नित झूरै, होई मरै तब रोवै। खोटी संतति सों दुख उपजे, क्यो प्राणी सुख सोवै॥

पुण्य उदय जिनके तिनके भी, नाहिं सदा सुख साता। यह जग वास जथी-रथ देखे, सब दीखै दुखदाता ॥7॥

Someone is always deeply disappointed for want of a son. If born. another laments his death. If the offsprings are bad tempered. they (again) cause pain. Why (and how) could a living (human) being enjoy comfortable sleep? There are those that have the concurrence of merit. They too do not always get happiness and peace. This worldly sojurn, when seen in its reality, is found wholly yeilding afflictions.

जो संसार विषै सुख होता, तीर्थंकर क्यो त्यागे। कोहे की शिव साधन करते, संजय सो अनुरागे॥

देह अपावन अथिर घिनावन, यामे सार न कोई। सागर के जल सो शुचि कीजे, तो भी शुद्ध न होई॥8॥

If happiness resided in the world. why then did the Lords—the makers of the path of liberation-renounce the world? (So doing) Why did they make efforts to achieve liberation being inclined to a life of abstinence ? This body is impure, unstable, full of disgust and it contains nothing valuable. Even when it is cleaned with waters of the ocean. it can not be made pure.

सात कुधात भरी मल मूरति, चाम लपेटी सोहै।अन्तर देखत या सम जग मे, अवर अपावन को है॥

नव मल द्वार स्रवै निशि वासर, नाम लिए घिन आवै। व्याधि उपाधि अनेक जहाँ तहँ, कौन सुधी सुख पावै ॥9॥

This body flourishes as an effigy of filth,full of seven bad elements wrapped in with skin. Seen from within and without there is no more impure thing than it in the world. There flow, day and night, nine outlets in the body for excreting filth and disgust (for it) is felt on the very mention of its name. What wise man can get solace from it which is fraught with many diseases and inflictions here and there.

पोषत तो दुख दौष करै अति सोषत सुख उपजावै। दुर्जन देह स्वभाव बराबर मूरख प्रीति बढ़ावै॥
राचन जोग स्वरूप न याको विरचन जोग सही है। यह तन पाय महातप कीजे या में सार यही है॥10॥

Being served it creates unhappiness and blemishes, being starved, it generates happiness The natures of a bad man and of the body are (just) the same Only the unwise enhance their fondness for it To entertain attachment for it is not its true purpose, to have a relation of unattachment is the right relation (with it) Having obtained body, perform great austerities is the only essence (purpose) of the body

भोग बुरे भव रोग बढ़ावें बैरी है जग जीके। वेरस होय विपाक समय अति सेवत लागें नीके॥
वज्र अगिनि विष से विषधर से ये अधिके दुख दाई। धर्म रतन के चोर चपल अति दुर्गति पथ सहाई॥11॥

The pleasures (of life) are unwholesome, they increase the worldly illness, and are the enemies of the self in the world They lose all pleasing effect at the time of their maturity, but appear congenial while enjoying They yield more sufferings than those caused by the heavenly weapon, fire, poison and the serpents They are the active thieves to theieve the jewels of religion, they are the helpers on the path leading to bad conditions of life

मोह उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जाने। ज्यों कोई जन खाइ धतूरा सो सब कचन मानै॥
ज्यों ज्यों भोग सजोग मनोहर, मन वाछित जन पावै। तृष्णा नागिन त्यों त्यो डके लहर जहर की आवै॥12॥

On the emergence of delusion the ignorant self understands the pleasures to be beneficial, just as a man after eating the herb 'Dhatura' or thoren takes every thing to be gold The more a man happens to get the occasion for having alluring and desired objects of pleasure, the more the reptile of the keen longings for pleasures spreads its effect with the waves of posion

मै चक्रीपद पाय निरन्तर, भोगे भोग घनेरे। तो भी तनिक भये नहि पूरन, भोग मनोरथ मेरे॥
राज समाज महा अघ कारण बैर बढावन हारा। वेश्या सम लछमी अति चचल याका कौन पत्यारा॥13॥

I enjoyed abundant pleasures after earning the status of an emperor incessantly, still my desires for pleasure could not be exhausted even in the least The kingdoms and the social organisation are the causes of great sins,

they increase enmity. Wealth is unstable like (the love of) a prostitute. What trust can be posited in it ?

मोह महा रिपु बैर विचार्यो, जग जिय संकट डारे। घर कारागृह वनिता बेड़ी, परिजन जन रखवारे॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप, ये जिय के हितकारी। ये ही सार असार और सब, यह चक्री चित धारी॥14॥

He thought over the great enemy of delusion and its inimical nature. it entraps the worldly selves into calamitous situations. The house is a prison. the spouses are the fetters, and the members of the family and the society are the sentinels of this priston. Right faith, knowledge. conduct and penance alone are the benefactors of the self. These alone are valuable: and all else is useless. The emperor. Bajranabhi. determined this (truth) in his mind.

छोडे चौदह रतन नवों निधि, अरु छोड़े संग साथी। कोडि अठारह घोड़े छोड़े, चौरासी लख हाथी॥
इत्यादिक संपति बहुतेरी, जीरण तृण सम त्यागी। नीति विचार नियोगी सुत को राज दियो बडभागी॥15॥

He renounced fourteen 'jelwels', nine treasures. and also the companions and associates. He renounced eighteen crore horses and eighty four lac elephants. Beginning with these he renounced abundant wealth like a worn-out straw and with due consideration of propriety the higly fourtunate (Bajaranahi) relinquished his kingdom to his son. the heir apparent

होइ निशल्य अनेक नृपति सँग, भूषण बसन उतारे। श्री गुरु चरण धरि जिन मुद्रा, पंच महाव्रत धारे।
धनि यह समझ सुबुद्धि जगोतम, धनि यह धीरज धारी। ऐसी संपति छोड़ बसे बन, तिन पद ढोक हमारी॥16॥

Getting rid of the pricking complexes he put off (all) ornaments and clothes: and, along with many kings. adopted the posture of Lord Jinendra at the feet of the venerable preceptor after taking on the five great vows Praise to this good understanding and intellect. excellent in the world Praise to the one maintained such a perseverance I (the author) bow at the feet of the one who renouncing such (so huge) wealth retired to forest

परिग्रह पोट उतार सब लीनों चारित पंथ। निज स्वभाव में थिर भये, वज्रनाभि निरग्रंथ

Putting off the bundle of all the possessions. the possessionless. Bajranabhi. followed the path of (right) conduct. and thus got established in his (pure spritual) nature.

◆

SRI MAHAVIRACARYA'S GANITASARASANGRHA

(ITS ENGLISH TRANSLATION AND KANNADA TRANSLATION-BOOK RELEASE FUNCTION ON 25-10-2000 AT A B R C AUDITORIUM UNIVERSITY OF MYSORE MYSORE - A BRIEF REPORT)

EDITOR AND TRANSLATOR
DR.(MRS) PADMAVATHAMMA
Professor of Mathematics
Mysore University, Mysore

Shri Mahaviracharya was the author of the original Sanskrit work Ganitasarasangraha Editor and translator Dr (Mrs) Padmavathamma, Professor of Mathematics University of Mysore He was an ancient Indian mathematician and a Jaina Acharya This valuable work is a replica of a ancient mathematics and was used for teaching purposes This work was written during the period (815 A.D to 877 A D) of Rashtrakuta king Amoghavrasha Nrupatunga at Manyakheda (present Malakheda of Gulbarga District)

In addition to literature, significant contribution has been made by Jains even to Mathematics Ganitasarasangraha is a good example for this The Mathematics in this work has been explained in a simple style which could be easily followed

This Sanskrit work which became non-available during the course of time was published in English with original Sanskrit verses in the year 1912 by Rao Bahadur M Rangacarya of Madras After this Prof L C Jain of Jabalpur translated this work into Hindi This was published by Jaina Sanskrit Samarakshka Sangha of Sholapur in 1963 But both these editions are exhausted since a long time Ganitasarasangraha which was vanishing like a perfumed flower in the forest was given a new dimension and brought to light by Dr Padmavathamma

Ganitasarasangraha consists of nine chapters There are 70 verses in the first chapter and they are all related to terminology connected to space, time, grain, gold, silver and other metals and also the names of some notational places The second chapter consisting of 115 verses deals with rules regarding the fundamental operations like multiplication, division, squaring, square root, cubing, cube root and summation of series Elementary operations with fractions are dealt in the third and fourth chapters having 140 and 72 verses repectively The fifth chapter consisting

of only 43 verses deals with Rule of Three and its generalized forms. Chapter 6 having 337 ½ verses is the longest chapter and many problems on interest and miscellaneous problems are considered. The seventh chapter consisting 232 ½ verses and the eighth having 66½ verses are related to measurement of areas. The ninth chapter consisting of 52½ verses deals with calculations relating to shadows. In every chapter the rules are beautifully illustrated by examples

This book which was only in Sanskrit has been translated into English, Hindi and now to Kannada As such this book will have a wider scope.

In the present edition, Dr. Padmavathamma has transliterated the original Sanskrit versions to English and translated to Kannada Just like "unity in diversity" The three languages Sanskrit, English and Kannda have been parallely compiled in this new edition. so that people can read the book in a language of their choice. Ganitasarasangraha which took birth in Malakheda, a small village of Gulbarga district in Karnataka State has all the features of gaining popularity at State, National and International levels

Sri Hombuja Jaina Math under the auspices of Sri Siddhantakrithi Granthamala is identifying and honouring eminent personalities. publishing many books written, edited or translated by various scholars and providing financial help for the publications related to Jaina religion This sacred tradition is in practice since a long time. The publication of Ganitasarasangraha by Dr Padmavathamma is one such good example.

The year 2000 is declared as the International Year of Mathematics On this special occasion the Kannada translation of Ganiasarasangraha by Dr Padmavathamma is like a jewel in the crown. In addition to this, the present new edition is indeed a great for the people of Karnatana and also to the Kannadians residing outside Karnataka who have interest in Mathematics

Following is the extract of Prof Arunachalam who talked on the salient features of the book:- "The contribution of Jaina School to sciences in general and to Mathematics in particular has been very significant One of the highlights in the area of Mathematics is the work of Mahaviracarya-known as

Ganıtasarasangraha It ıs the very first book totally devoted to Mathematics from the Jaına School Mahavıracarya lived in the ninth century A D and was supposed to have written his master piece during the period 815 A D to 877 A D This is also the period of the reign of the king Amoghavarsha Nrupatunga of the Rashtrakuta Dynasty

On an occasion like this when we are discussing about Mahaviracarya and his magnum opus a grateful reference to Jaına works is appropriate Amongst the religious works of Jainas, those that are important from the view point of Mathematics are

1) Suryaprajnapti with a commentary of Malayagiri (Ref J Asiatic Society of Bengal 1880) 2) Sthanagasutra 3) Bhagavati sutra with the commentary of Abhayadeva suri (Sri Vijayadeva Sangraha Series-1954) 4) Thathwarthadigama sutra of Umasvati edited by K P Modi, Calcutta 1903 5) Anuyogadhwara sutra with Hemachandra commentary, Jaina Pusthakadhara series No 17, Bombay 1916 6) Kshetra Samasa 7) Trilokasara with a commentary of Madhava Chandra (1919) and so on

There were certainly other mathematical treatises by the early Jaına scholars, which are now lost Dedicated and committed research about the ancient works of the Jainas is necessary We get the name of siddhasena, Bhadrabahu and others who referred to the mathematical formulae in their works, but were not mathematicians by themselves The literature of the Jainas is generally calssified into four groups (Datta B in his article The Jaina School of Mathematics, published by the Bulletin of Cal Math Soc 1929)
1) Dharma Kathanuyoga-the exposition of principles of religion 2) Ganithanuyoga-exposition of the principles of Mathematics 3) Sankyama-the science of Numbers 4) Jyotisha-Astronomy

The arithmetic and jyotisha have been considered as one of main accomplishments of a Jaina Saint Umasvati (150) B C) one of the greatest Jaina metaphysicians first cites the existence of Kusumapura School of Mathematics He resided in the city of Kusumapura (ancient Pataliputra near the present Patna) Probably the school should have existed long before the times of the famous Jaina Saint Bhadrabahu (300B C), who was a

resident of Kusumapura.

Let us come back to Mahaviracarya and his work Ganitasarasangraha, which is a Sanskrit work on Mathematics. Way back in the 11th century Pavaluri Mallana, a contemporary of Mahabharata fame who adorned the court of Raja Raja Narendra at Rajamahendravaram, translated the work of Mahavira into Telugu and called his translation Ganitasangrahasaram. This is hailed as the first scientific work in Telugu Language. Mallana was a Shaivite and his religious faith found expression in every stage of the translation. 'Abhinava Sankhyamani Deepti Sarasngraha Ganitasa-madrambu darumaga gadagithi preethin " Thus declared Mallana Mallana replaced in the narration Jaina temples by Shivalayas, Jaina Thirhankaras by Shiva Bhaktas. Where Mahaviracarya paid obeisance to Lord Mahavira as "Samanthasmijinen-draya Mahavirayathayine", Mallana instead said, "Tham Sivakaram vandhe sivam preyase". Mallana not even acknowledged the original work or its author. He added independently some concepts which were not found in the original

Prof Padmavathamma's work is a Triveni Sangamam. Along with the original Sanskrit, English and Kannada versions are given This type of attempt was not made by any one, as far as I know. Therefore Prof Padmavathamma deserves all our appreciation and we all congratulate her for bringing out such a significant work like this This is indeed a lifetime achievement on the part of Prof Padmavathamma

Writing is one thing and publishing it, is another thing This monumental work has come to our hands in a splendid from, because of illustrious Sri Hombuja Math under the distinguished guidance and auspices of Siddhantakirti Granthamala, Hombuja, Shimoga District, Karantaka Her proficiency in Sanskrit, Kannada, Hindi and English has been eloquently expressed in her work. She is unique in the sense that she has astounding proficiency in all these languages and Mathematics, a rare phenomenon indeed

His Holiness Srimad Jagadguru Bharata Gaurava Bhattaraka Ratna Syadvada Kesari samyaktva choodamani pratistabhaskara Jinama-[illegible] inanabhaskara swasti sri Devendrakirti Bhattaraka Pataearyavarya Maha[illegible]

of Sri Hombuja Jain Math had showered the Anugraha and Blessings over this epoch making attempt of Prof Padmavathamma Mahaswami hailed this work as a combination of three fragrant flowers blooming from the same creeper Mahaswami immediately assessed the real worth of this wonder ful book and consequently the book has come before us in the present form What more the Professor needs when Mahaswami showered upon her His Blessings and also invoked the Blessings from Lord Supreme Bhagvan Sri Parsvanath Swami and the Divine Mother Too

Another characteristic feature of Ganitasarasangraha is the fact that mathematics acquired an identity of its own through this book Before Mahaviracarya, Mathematics was in the garb of Jyotisha or it was a handmaid of religious rituals Mahaviracrya gave the subject a form, an identity and an independent existence He stressed its roles as purely theoretical as well as application oriented

Thus Mahaviracarya earned a very respectable place in the galaxy of Indian Mathematicians when people looked at Varanasi, Pataliputra, Ujjain, Nalanda, Takshasila for higher education, Mahaviracrya created a great center for learning in Karnataka

Prof Padmavathamma has done yeomen service to the world of Mathematics in general and to the Ancient Indian Mathematics in Particular by completing this monumental work of 1000 pages in short span of time

Besides the work on textual matter, Prof Padmavathamma included valuable introduction which are both interesting and informative The preface on page xxviii, the account on the way Ganitasarasangraha came to light Page xxvii and then ten appendicies from 667 onwards give us very useful information

Prof M R. Thanga said that for the promotion of literary works, protectors are necessary Sri Mahaviracarya's Ganitasarasangraha was written under the patronage of Rastrakuta king Amoghavarsha The role played by Amoghavarsha is now played by Sri Devendrakirthi Bhattaraka Swamiji of Sri Hombuja Jain Math for this monumental new edition of Ganitasarasangraha by Prof Poadmavathamma

Sri Devendrakirthi Bhattaraka Swamiji said the new work of Padmavathamma is a valuable addition

to the list of publications of Sri Siddhantakirthi Granthamala Ganitasarasangraha is the first book that is entriely devoted to mathematics He also said that the third chapter of Tattvarthasutra due to Umasvati contains Ganitasarasangraha. He opined that the new edition which consists of three languages Sanskrit, English and Kannada is of state, national as well as of international standard He asked the people to use such books for svadyaya, shastradana etc.

Prof. S N. Hegde who released the book and also presided over the function said that a Chair should be instituted in the University of Mysore for the department of Jainology at a cost of 25-30 lakhs He said that for the progress of the department of Jainology it is necessary to invite eminent Jaina scholars as visiting professors to the University of Mysore.

This new book is priced at Rs. 750/-. Interested persons may contact either the publisher or the editor.

Message received for the function are as detailed below.

1. Prof. T.N. Ramachandra Rao, Rao, Retired Senior Scientist, C.F.T.R.I. Mysore A Milestone in Science Publications.

2. Prof. A.K. Agarwal, Centre for Advanced Study in Mathematics, Punjab University, Chandigarh-The Kannada Society will remain highly indebted to Prof. Padmavathamma for making this great work of Sri Mahaviracarya available to its people in their own language. I am sure Prof. Padmavathamma's endeavour will prove to be a pioneering effort inspiring many others to start similar ventures. Undoubtedly, the divine presence of Paramapujya Sri Sri Devendrakirthi Bhattaraka Swamiji will multiply many times the importance of the function.

3. Prof. Anupam Jain, Kundkund Jnanpitha, Indore-

भारतीय संस्कृति विभिन्न धर्मो की मिली-जुली संस्कृति है ओर सभी धर्मो के ऋषियों मुनियों, आचार्यों एवं ज्ञान पुरूषों ने इसके विकास में अनेक रूपों में योगदान दिया है।

आत्म कल्याण हेतु समर्पित जैन मुनियों एवं आचार्यों ने अपनी साधना से बचे हुए समय का उपयोग जन कल्याण की भावनाओं से अनुप्राणित होकर लोकोपयोगी ग्रन्थों के सृजन में भी किया है। जैन दर्शन के जटिल तथ्यों को समझने और समझाने में गणित की उपादेयता तथा प्राचीन जैन आगमों में निहित गणितीय सिद्धान्तों को भली प्रकार समझने हेतु अपने शिष्यों को प्रारंभिक गणित में पारंगत करने हेतु 9वीं शताब्दी के प्रसिद्ध दिगम्बर जैनाचार्य आचार्य

महावीर ने पाठ्य पुस्तक शैली में गणितसार-सग्रह ग्रन्थ का सृजन किया था। वसतुत जैन गणितज्ञों की परम्परा की ओर विश्व समुदाय का ध्यान भी 1912 में इस ग्रन्थ के प्रकाश में आने से ही आकृष्ट हुआ है। जैन गणितीय परम्परा के इस प्रतिनिधि ग्रन्थ के 1912 में एम रगाचार्य द्वारा अनुदित एव सम्पादित अग्रेजी सस्करण तथा 1963 में प्रकाशित हिन्दी सस्करण के लम्बे समय तक अप्राप्त बने रहने से भारतीय गणित के अध्येताओं को बहुत असुविध हो रही थी। हमें खुशी है कि मैसूर विश्वविद्यालय की बहुश्रुत प्राध्यापिका प्रो पद्मावथ्म्भा ने इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का पूर्व प्रकाशित सस्कृत एव अग्रेजी अनुवाद सहित कन्नड अनुवाद प्रस्तुत किया है। मूलत कन्नड भाषी आचार्य महावीर की इस कृति की कन्नड भाषा में अनवाद न केवल कन्नड भाषा-भाषियो अपितु अन्य लोगों को भी उपयोगी होना एव अनेक स्थलों की अधिक सुस्पष्ट व्याख्या प्रस्तुत करेगा।

पूज्य भट्टारक श्री देवेन्द्र कीर्ति स्वामीजी महाराज ने इस ग्रन्थ का सस्कृत, अग्रेजी एव कन्नड अनुवाद सिद्धान्त कीर्ति ग्रन्थ माला से प्रकाशित करवाकर एक दीर्घकालीन अभाव की पूर्ति की है। एतदर्थ में उनके श्रीचरणों में नमन करता हुआ पेप्र पद्मावथ्म्मा को इस कृति के सम्पादन एव कन्नड अनुवाद हेतु बधाई देता हूँ।

4 Prof L C Jain, Hon Director, A Vidyaysagara Research Institute INSA Research Associate, Jabalpur (who translated Ganitasarasangraha into Hindi)- It has given me a great pleasure to receive the invitation as well as message about the inauguration of your monumental work on Sri Mahaviraracrya's Ganitasarasangraha You are the third in the list of editor-historian and first among the Kannada translators to have the fortune of getting Ganitasarasangraha published recently

There had been a great demand for this work as both the previous two editions had been out of print from a long time You have really obliged the hystorious of mathematiics and research seholars by putting up years of meritoious efforts to give the work a new shape for several years to come Kannada script and language, both have been subject of research, more so for the great Dhavala commentaris on the Satkhandagama and later works by scholars upto Kesavavarni Mahavriacarya picked up the tools from the material and propogated them with universal appeal for a common cause and in the larger interest

I congratulate you on behalf of A V Research Institute as well as on my personal behalf At the same time we all offer our credentials to sri Devendrakirthi Bhattraka Sawmaiji for his timely interest in getting your eminent work published

The Book Release Function was jointly

organized by Sri Siddhantakirthi Granthamala, Sri Hombuja Jaina Math and Department of Studies in Mathematics, University of Mysore, Mysore on 25th October 2000 at the A V R C Auditorium, Manasagangotri Mysore.

DIVINE PRESENCE : ParamapujyaSrimad Jagadguru Bharata Gaurava Swastisri Sri Devendrakirthi Bhattaraka Swamiji, Sri Hombuja Jain Math.

PRESIDENT : Prof. S.N. Hegde, Vice-chancellor, University of Mysore, Mysore.

CHIEF GUESTS : 1) Prof. P.V. Arunachalam, Vice-chancellor, Dravidian University, Kuppam, Andhra Pradesh He is also nominated for the post of president of the Indian Mathematical Society from April 2001 for 1 year.

2) Prof. M.R. Thanga, M.L.C, Gulbarga, Karnataka.

PUBLISHER
SRI SIDDHANATAKRITHI GRANTHAMALA
SRI HOMBUJA JAIN MATH
HOMBUJ-577 436
SHIMOGA DISTRICT
KATANATAKA

◆

Whentever an annihilation occured on the earth the "credit' goes only to the water, alluring for coolness he has plurdered her, and today this dharti (earth) is dhara only, she is neither vasundhara nor vasudha. And, that water has become rantnakaer (abode of gems), setting afloat has taken away the riches of the earth.

Getting attracted to others' riches is ignorance, collecting and taking away forcibly is excessive delusion, syncope Torturing oneself and others is extermely ignoble an act , is going to low hells and passing life there

Doing this reprenhensible deed Jaladhi (sea) has shown his idiocy (Jada-dhi), brainlessensss, and has made his name connotative

Even having been misbehaved the earth has determinded, not to retailate, and that is why she is called all-tolerating not all-consuming

And becoming all-tolerating is obtaining everything in life-this is the path of which saints sing

From Mook Mati of
Acharya Vidya Sagar
Tr by G C [illegible]

THE JAINA CONCEPT OF NON-ABSOLUTISM

✍ *Jagdish Prasad Jain "Sadhak"*
E-155, Kalkaji, New Delhi-110019

The Jaina Doctrine of anekant or Non-Absolutism provides a breadth of vision which reconciles differences and synthesizes the seemingly warring systems of thought or philosophy It draws attention to the fact that there are innumerable qualities in things and beings that exist, and ever so many sides to every question that may arise We can discuss only one of them at a time The seeming differences vanish when we understand the particular point of view or the contexts in which different statements are made For instance, I am father in relation to my son and son in relation to my father What is irreconciliable opposition in the eyes of others is, to a Jaina, not only a mere difference of point of view but a necessary stage in understanding a thing in all its aspects

Anekant propounds many-sided view of a thing and emphasizes the relativity of truth Amritchandra, a great Jain thinker, has defined Anekant thus

Tatra yadev Tattadevatat, Yadevaikam tadevanekam

yadev sattadevasat, yadav nityam tadevanityam,

ityekvastuavastutvanishpadakam paraspaarviruddhashakti dwyaprakashanam

anekantah (Explanation of Kalash 247 in Syadvada chapter of Samayasar)

In order words, the nature of things is extremely complex We cannot affirm or deny anything absolutely Every proposition is true only hypothetically Every object is full of contradictions and oppsitions The plant germinates, blooms, withers and dies Man is young, mature and old So to understand a thing fully, we should predicate the contradictions of existence and non-existence, one and many, permanence and change and so on For instance, let us take the antithesis of swift and the slow It would be nonsensee to say that every movement is either swift or slow It would be nearer the truth that every movement is both swift and slow swift by comparison with is slower than itself, slow by comparison with what is swifter than itself Anekantvad lays emphasis on the fact that " no judgement is true in itself and by itself Every judgement as a piece of concrete thinking is informed, conditioned to some extent and constituted by the apperceptient character of the mind " According to this doctrine, as there is truth in every idea, as there is reality in every existence, so every system of thought or religion has some truth to offer

According to Jain philosophy, the

Universe was always permanently existing, uncreated and indestructible. It consists of two substances, the sentient or living (*jiva*) and insentient or non-living (*ajiva*) They are not philosophical postulates but reals as spirit or *chetan* (consciousness) and matter, which are pluaralistic, constitutionally eternal and not liable to lose or interchange their nature. The substances are charaterized by and endowed with various qualities (*guna*) and modifications (i e. changes, paryaya) and they are all the while coupled with origination (*utpad*), destruction, (*vyaya*) and permanence (*dhrauvya*) without leaving their existential nature This concept of reality is the foundation of Jain philosophy and is technically known as *Anekantavada*, multi-sided reality. If as is claimed by the Vedantin, reality is an unchanging permanency there is no scope for life, no scope for *samsara*, no neccessity for *moksha*, or *moksha-marga* either. The whole religious framework will thus appear to be superfluous an useless, as it is based upon unreality. Change must be accepted as real. if life is to be real and if *samsara* is accepted to be as real. It is only then that we can appreciate the utility of piety or *dharma*, and religious doctrines contributing to the salvation of the soul

Similarly, one-sided is the Buddhistic emphasis of change alone as real The Buddhist doctrines of *Kshanikvada* (momentariness of reality which denies the permanent underlying reality of self or non-self) and *Anatmavada* (denial of the existence of a permanent self or *atman*), are also lacking in a complete comprehension of reality. Since there is no permanent self, there is no responsible person who can be taken to be the author of his conduct. "Moral conduct and its evolution would become meaningless. The person who did the act passes away and a different person comes to enjoy the fruits thereof There is no justification why a different personality should enjoy the fruits of the *Karma* by another distinct personality. Ethical responsibility loses its meaning and value in this *Anatmavada*. Thus, both the Vedantin and the Buddhist concepts of reality are incomplete and partial aspects of reality or " half-truths" as Sri Aurobindo calls them in his *magnum opus* entitled *Life Divine*. The Jaina philosophy combines in its own system both these aspects when it describes reality as an ever changing one with its permanent reality as foundation The Self, according to Jainism, is thus not only a permanent reality but a permanent reality which maintains its permanency through a continuous process of change *Anekant* pays attention to all aspects of an object To quote A N. Upadhye

Because of this infinite-fold constitution of a thing, there can be

infinite points of view The Jaina philosopher has taken the fullest advantage of it not only in building his system by a judicious search and balance of various viewpoints but also in understanding sympathetically the views of others from whom he differs and in appreciating why there is a difference between the two This analytical approach to reality has saved him from extremism, dogmatism and has further bred in him remarkable intellectual toleration, a rare virtue indeed

As long as we claim that we alone are in possession of truth and others are groping in darkness, we can never achieve the truth and consequently conflicts are sure to arise By decleanng that no system is wholly true and no system can be called absolutely untrue, the principle of Non-Absolutism or *anekant* is amply suited to reconcile the seeming differences and synthesize the warring systems of thought in poltical, economic, social or religious fields

Thus, the spirit of catholicity, tolerance, mutual respect, and trust, which is inculcated by the concept of *anekant* or Non-absolutism helps in overcoming the feelings of discontent, greed, selfishness, hatred and bigotry So long as the greed for power and wealth persist & as long as the feelings of conceit and pride are predominant, social harmony and peace are impossible

◆

What dreams of mother Trishla meant (from Sarga IV of Epice Virodaya of Acharaya Gyan Sagar)

57-60- (King Siddharta Says-) He will be an elevated soul like an elephannt a bearer of the cause of religion like a white ox, of free disposition like a lion, graced with unbroken ceremonies like Lashmi an adode of sumanas (flowers/gentle minded people) like the two garlands, a pleaseant spot like the moon for all of us, a guide like the sun auspicious to the world like the two pitchers sportful like the two fishes observer of the propriety of conduct like the ocean destroyer of the weariness of the emodied jivas like a pond, bestower of dignity on understading him like simhasan (ion-seat), applauded by the multitude of gods like heavenly car, a well sung tirth like the land of serpant gods full of virtues like the pile of jewels and will be pious like the fire

◆

Jain Ethics & Solution of Problems of Human life

✍ *Amar Chand Jain*

The ethical principles of Jainism, when compared with those of Hinduism & Budhism, we find that the "unity in diversity " found in Indian culture is as much true in the sphere of ethics also. There has been much give and take between these religions. and the Virtue of Non-Violence may be mentioned as the greatiest contribution of Jainism to the current of Indian Thought.

The History of Jain ethics is a fine example of what the Jains hold to be the nature of reality viz. continuity in change. The fundamentals of Jain Ethics have remained unchanged through all these years, though the rules of the code of conduct have shown some modification both as regards the conduct of a honseholder and a monk.

It may also be noted here that though the rules of conduct as prescribed by Jainism and recorded by us appear to be too eloboate and sometimes even superfluous, yet the basic idea behind these rules is that of self-realisation.

No ethical study could be useful unless it provided answer to the problems with which our lives are beset We are therefore tempted to discuss a few observations as to how the principles of Jain ethics could be helpful in solving the problems of humanity at large

The problems of human life arise out of various factors which can be classified under the following broad heads -

1 Scarcity 2. Injustice
3 Ignorance 4. Selfishness.

Scarcity : Scarcity inspite of the great strides of science and Technology, we know that humanity suffers from scarcity Science tries to solve this problem in its own way by investigating tools for increasing production, by improving means of comforts and luxuries and by developing new means of fighting against the furies of nature But we know that apart from the scarcity caused by natural circumstances there is also artificial scarcity created by indulgence into such selfish tendencies as hoarding and profiteering not only by indivoduals but by nations also, trying to expand and wanting to occupy other's territories by force

"The greater the possessions, the greater the happiness" is the motto of many Jainism teaches quite the opposite, "the lesser the possession. the greater the happiness"

Happiness comes from what we are and not from what we possess We should realise the blissful nature of the self and not become the slaves of worldly objects This puts an end to the struggle for wealth and other possessions

The answer of Jainism to the problem of Scarcity is be not attached to the worldly objects, be not their slaves, turn to the self within where from comes the true happiness What is true of the individual is true of the nations The Glorification of king who desires to conquer others' territory, though very common in other ancient Indian literature, is foreign to Jain literature, the greed for expansion is unmistakably condemned in the too well known story of Bharat & Bahubali

Injustice The haughty and aggressive prosper & the humble and meek suffer The bigger fishs wallow the smaller ones The result is the rule of Jungle In the sphere of politics, we kill and or crush in the name of caste, creed and Country The result is war & bloodshed

Jainism brings us hope of Justice in the form of doctrine of karma As we sow, so shall we reap This is a law based on the theory of cause & effect, which works automatically, and unfailingly All life is equal and the stronger have no right to do any injustice to the weaker, and if they do, they do not harm any body but themselves We sould meet an injustice not with force but with forbearance Enmity leads to enmity, but if we don't retaliate it, it subsides Jainism has also opposed from the be gining social injustice arising out of casteism and racialism "Mankind is one community" says Jinasena

Mahatma Gandhi successfully applied the creed of nonviolence to redress the injustice of one nation against another The creed of non-violance, if applied to the international problems, has the potentiality of wiping out the institution of war from the surface of Earth Thus the answer of jainism to the problem of injustice is fourfold Doctrine of karma, equality of life, non-violence and equanimity

Ignorance The problems of life seem to multiply rather than decrease inspite of the spread of education in modern times Of what use is knowledge which binds us rather than liberate?

Jainism teaches us that all knowledge is relative and co-related Let us be receptive to every thought Let us not assume the attitude of finality about our knowledge One sided attitude only complicates problems rather than solve them The answer of Jainism to the problem of knowledge is represented in its doctrine of non- absolutism Non-absolutism shows us the path of synthesis among fate and human effort, faith, knowledge & action, and super-

moral plane of life and parochial code of morality.

Selfishness: All immoral practices arise out of selfishness. It lies at the root of all problems. Selfishness can be overcome by realising the true nature of self. According to "Vedanta" the individual self (atman) is identical with the universal self (brahman) and man should realise this identity. This broadens our outlook and lifts us above selfishness.

Jainism is a realistic system . It propounds that the self is a real permanent entity and that each soul has a distinct existence. What Jainism lays down is neither belief in the unity of life nor in the non-entity of the self, but a distinction between the self (Jiva) and the non-self (ajiva) and a victory over passions which are based on a false conception of the identity of the two.

The above ethical idea which Jainism gave with reference to individual could be interpreted afresh in the context of modern day problems to suggest that all nations could also maintain their individuality and live in peace and harmony if negative, ideas of anger, pride, hypocrisy and greed could be renounced. It could, thus, teach the possibility and relativity of co- existence in modern times and bring the hope of a brighter future for war-ridden humanity of today.

Questions of goddesses answered by mother Trishla
(from Sarga V of Epice Virodaya of Acharaya Gyan Sagar.)

28-29- Oh mother! Why does a man get suffering? Due to sin Why does his mind get in sin? As overwhelmed with irrationality. Why is there inrrationality? That is due to the curse of delusion. Why is the destruction of delusion very diffcult for the worldly persons? That gets destroyed by the purity of heart of one detached How is detachment possible? By God-mindedness. How does one become God-minded? Through a (Proper) device God mindedness quckly manifests.

30. What is attachement? It is the service of the body. What sort of the body is? It is wicked. How wicked? It gets destroyed even on nourishing But the worldly jiva remains under its subjugation.

31. Why is the Jiva under its subjugation? He does not possess Tatua-buddhi (truth awareness) How does that awareness take place? It takes place when the heart is pure What is the gate to purity? Application (in one's life) of the utterances of Jina.It destroys the disease of the rounds of births and deaths

SAMYAKDARSHAN*
The Gateway to Peace and Happiness

✍ *Jagdish Prasad Jain "Sadhak"*

Peace and happiness can be achieved only through subsidence of passions, self-restraint, contentment and fellow-feeling, which are the attributes of a *Samyakadrashti*, who is determined, dedicated and devoted of follow the path of righteousness, non-injury, limitation of one's desires and possessions and other virtues Our efforts should first of all be directed towards converting the Jains(who are called Jains because of birth in Jain family) to jainism and make them true Jains A *samyakdrashti* is a true Jain in the real sense of the world As stated in the sacred books of the Jains, *Dansan Mulo Dhammo*, i e *samyakdarshan* (right preception) is the root or foundation of piety or *Dharma*

The Prerequisites of Samyakdarshan

The four prerequisites of samykdarshan are prasham, samvega (with its obverse aspect nirevda), anukampa (compassion) and astikya— form the world-view of both a Jain house holder as also of an ascetic The quality of *prasham* endows a man with a certain degree of equanimity, calmness, balance which enables him to feel happy, contented and "at peace with himself" In *Prashamratiprakarana*, authored by Acharya Umasawami or Umasvati, who also wrote *Tattvarthsutra*, the so-called bible of the Jainas, it is stated

Sawrgasukhani parokshanyatyant Parokshameva Mokshasukham,

Pratyaksham prashamsukham Na parokasham na cha Vyaya Praptam (237)

The happiness of heaven is indirect, it is beyond our experience thus we may be disinterested in it The happiness of salvation is still more indirect On the other hand, the peace and clam brought about by the subsidence or quelling down the excitement of passions (anger, pride, deceit and greed) and the happiness resulting therefrom can be directly experienced right here This happiness is not dependent on other objects, things or beings It is not perishable either The so called pleasures of worldly life, viz sensual pleasures are always accompanied with pain. They are never full and unadulterated They are preceded and/or followed by suffering They are transient, passing and short-lived What people in general consider happiness is mostly sensual pleasure which by its very nature is dependent on worldly objects pleasing to our senses *Prashamsukha*, i e

happiness derived from or resulting from clamness and equanimity is free from all these short comings.

This calmness or equananmity and consequent peace and happiness in our lives results from subsidence of gross forms of anger, pride, deceitufulness and greed (anantambandhi kashaya or passions) and by having a proper atttitude towards life and by understanding and accepting the real nature of things. Accept the reality of things as they are and accept what you cannot change is a sure prescription for avoidance of stress and depression which are so common and prevalent in modern day life.

Samvega results in a man having real enthusiasm for righteousness and avoidance of evil deeds. The obverse of samvega is nireveda or a spirit of renunciation. Some consider it a separate characterisitc. It leads to disinterest in sensual pleasure, disenchantment with worldly things and possessions and detachment or renunciation in life. Yet another characteristic of *samyakdarshan* is *anukampa* (compassion), which is both negative and positive. In its negative sense it is *ahimsa* (non-voilence) and in its positive sense it is compassion, goodwill, fellow-feeling The four-fold *bhavana* (feelings/ reflections or mental dispositions) *mairtri* (amity or follow feeling to wards all living beings), *pramoda* (appreciation of the merits of others). Karuna (unstinted sympathy and compassion for those in distress) and *madhyastha* (equanimity towrads the perversely inclined) are considered part of *aneekampa* and are golden principles for social intercourse and happy and peaceful life in the world Astikya is belief in the principles of Truth It may be said to correspond to six fundamental truths of Shrimad Rajchandra, viz the soul exists, it is eternal, it is the author of its activities, that therefore it is responsible for the consequences of its activities, it aspires for liberation and that there are means to achieve liberation *Samyakdarshan* (right perception), *samyakgyan* (right knowledge) and *samyacharitra* (right conduct) combined are the means to achieve liberation (moksha).

The affirmation, faith or conviction (*astikya* or *shraddha*) about the existence of soul, distinct from non-self, makes for *samyakdarshan*, forms the basis of understanding the reality of things or the fundamentals of life (*tattvas*) and leads to spiritual awakening and advancement In the absence of *samyakdarsha*, neither Knowedge can be samyak (right or enlightened) nor conduct can be *samyak*. It was probably

keeping this in mind that Shrimad Rajchandra observed

koi kriyajad thai rahya sushkagyan ma koi

mane marg mokshno karuna upje joi

Some are entangled in barren rituals, others stuck in knowledge dry,

And in these they view a road to liberation I have pity on these

If a person is not convinced of the existence and reality of sentient being (*jiva*) and its special characteristics (such as consciouness, performer of actions and liable for the results there of, etc), he would remain deeply engrossed and attached to his body and sensual pleasures This will result in the adoption of the attitude of aggressivensess and possessiveness, which militate against social harmony, peace and well-being of mankind Peace can be achieved only through contentment and fellow feeling

Characterisitics of Samyakdarshan

In addition to the above-mentioned prerequisites of *Samyakdrishti*, there also are certain other dcharacteristics, the so-called limbs or component parts of *samyakdarshan* One of them is unshakable faith or conviction in the existence and reality of self and non-self and in the doctrine of *Anekant* (Non-absolutism) This faith is not blind faith or mental slavery since it is in fact a decision arrived at after mature consideration and understanding of things A *Samyakdrasthi* is aware of the limitations of thinking and the harmful effects of frustration Therefore, after deliberating on different aspects and viewpoints he wants to arrive at rational decisions and be free from skepticism or doubt (*Nihshankita*) He knows that doublt kills decision and without an act of decision an individual is unable to muster enough courage to go forward This faith in Self or *atman* enables him to attain a sort of mental equilibrium and consequently he does not fear death, pain, censure, insecurity, etc He becomes modest, forsaking all pride of learning, honour, family, affluence, etc and desire with regard to the future Eventually, he wants to be *Nihkankshita* (free from desires for worldly things)

A *Samyakdrashti*, having an open mind, ever eager to learn from history and experience and grounded in *Anekant* scientific outlook and rational thinking, is not slave to customary beliefs or conventions or vested interests He is thus free from delusive notions and follies (*Amudhatas*) As he has gained true insight about the reality of things, the self and non-self, he is free from disgust (*Nirvichikitsa*), and feels no revulsion at the sight of human sickness, insanity or ugliness He does not hate or condemn others on grounds of religion, race, colour, creed or nationality Not only he avoids hating others, he is also enjoined to practice

vatsalya (disinterested affection or selfless love) for the fellow beings, dedicating his life to the service and support of all human beings without any distinction of race, religion, sex or nationality.

Another characterisitc of a *Samyakdrasthi* is *upguhana* (tendency to coverup or hide from public view the shrotcomings of persons) or *upavrahan*, , that is cultivation of virtuous dispositions of honesty, gratitude, ahimsa (non-violence), forgivness, modesty, straightforwardness, etc. When people deviate from the apth of righteousness under the influence of greed, possessivness, conceit and pride and indulge in aggressiveness and exploitation of the weak, a *Samyakdrasthi* endeavours to re-establish them on the path of righeousness (*sthitikarana.*) Lastly, he tries to propagate values of life (*Prabhavana*) by making good ways of life, of thinking and doing things widely known and easily accessible to people at large the world over through pulications, radio, television, internet, etc.

Conclusion

As a result of *samyakdarshan*, one becomes an entirely transformed being. His attidude towards life, his outlook of the world and worldly things, the basis of his relations with others, his conception and assessment of values, all are changed. This miraculous transormation is evidenced in the persons's attitude and behaviour by the five tendencies (calmness, entusiasm, detachment, compassion and acceptance of reality) which become automatically manifest in a person gifted with *samyakdarsahn* and are, as it wre, its differentiate.

This transformation of individual consciousness rarely occurs overnight It is a matter of growth and the flollowing of a plan with a fixed mental intent. That is why a life of following discipline, self-restraint, the five abstentions or vows (non-injury, truthfulness, non-stealing, sex-fidelity and setting a limit to the maximum wealth or worldy objects one would possess) together with their angmenting and supporting vows, five samitio (caefulness in moveing & speaking, eating, keeping and receiving things and evacuating bowels), three kins of self-control in mind, speech and body. twelve reflections and ten virtues (forgiveness, humlity, straighforwardness, truth, purity of body and mind, self-restraint, austerities, renunciation, non-acquisitiveness, and chastity) is considered essential. Thus, *samyakdarshan* not only enables an individual to obtain peace of mind and happiness, but also facilitates social harmony and peace in the world

"Be a Samyakdrashti Today !"



Kundakunda on the Modifications (Paryayas) of Self and their ethico-spiritual implications

✍ Prof (Dr) Kamal Chand Sogani

It can not be gainsaid that Kundakunda, the great philospher of the Ist Century A.D stands for the ethico-spiritual transformation of the individual and society He bases his doctrine of transformation on the Parayayas (modifications) of self According to Kundakunda, the self, as an ontologically underived fact, is one of the six substances subsisting independently of anything else It is styled 'Mahatha[2]' (a great objectivity) In consoance with the definition of substance adopted by Kundakunda in conformity with the Jaina tradition, self is the repostiory of qualities (Gunas) and modifications (Paryayas) and is characterised by simultaneous origination of new mode, cessation of old mode and continuance of quality as such along with the substance self[3] On this basis it may be said that it is a synthesis of permancnce and flowingness Permanance refers to qualities and flowingness refers to modifications According to Kundakunda, consciouness is the essential quality of the self[4] Its flowing character manifiests itself at the mundane stage of existence in auspicious and inasuspicious psychical dispositions[5] Whenever the auspicious mode of kindness originates, inauspicious mode of cruelty ceases and the quality of consciousness continues simultaneously Thus self as substance exists with its modifications and qualities In the present paper I intend to discuss the modifications of self and their ethico-spiritual implications

Kundakunda speaks of essential modifications (Svabhava Paryayas) and non-essential modificatons[6] (Vibhava Paryayas) and accepts that the empirical self has been associated with the non-essential modifications (Vibhava Paryayas) since an indeterminable past thereby it has identified itself with attachment and aversion The consequence of which is that it is the doer of right and wrong actions and the enjoyer of their results" We may point out in passing that the transcendental self occupies itself with essential modifications (Svabhava Paryayas) and goes beyond the duality of attachment and aversiona and is the doer of detached actions and the enjoyer of pure knowledge and bliss It may be noted here that the relation between the empirical self and the transcendental one is one of identity-cum-difference, i e, there is metaphysical identity between

the two states (empirical and transcendantal) of the same self[9], but the difference is also undeniable in respect of the Vibhavas which have been persisting since an infinite past The empirical self is potentially transcendental[10], though this transcendental state of existence is not actualised at present; hence the distinction is incontrovertible.

Now the empirical self with non-essential modifications (Vibhava Paryayas) from begnningless past is given to us in the mundance form. These selves (jivas) are infinite in number. Kundakunda classifies empirical selves into five kinds. one-sensed to five sensed Jivas (living beings)[11]. The lowest in the grade of existence are the one-sensed Jivas These one-sensed Jivas admit of five-fold classification, namely, the earth bodied, water bodied, fire-boided, air-bodied and, lastly, vegetable-bodied selves[12]. These Jivas possess only pleasure-pain consiciousness[13] Two sensed to five sensed Jivas possess end-consciouness[14]. Thse living beings are constantly engaged in action, which is by its very nature directed to some end, conscious or unconscious. In other words, every action is impregnated with some conscious or unconcious end. It follows from this that actions with unconscious end are absolutely determined having no choice, whereas the actions with conscious end involve freedom of choice The former are excluded from the scope of ethics, since they are non-moral actions, but the latter are subject of ethical enquiry, since they are either moral or immoral. It has been very well recognised that non-human actions are unconscious, and therefore instinctive, and the human actions which are conscious are deliberative It is with human actions that we are concerned here. Human beings are behaving with other human beings and with other non-human beings either morally or immorally Now the question is : what end does make human actions moral? and what end does make human actions immoral? The Jinist may answer : If the end is good (Subha) the action that is directed towards it will be called moral action or right action, and if the end is bad (Asubha), the action that is directed towards it will be called immoral action or wrong action.

According to Kundakunda Subha Bhava is good and Asubha Bhava is bad The examples of Subha Bhava are (1) Devotion to Arthant, Siddha, Sadhu and to moral values, respect for the persons to be revered[15] (2) Compassionatensess towards those who are in distress and are thirsty and hungry[16] (3) charity and a state of mind bereft of anger, pride, deceit and greed[17]. The examples of Asubha Bhava[18] are (1) Conduct mixed with excessive sluggishness, (2) mental states infected with anger, pride deceit

and greed (3) sensual indulgence (4) belittlement of others, (5) affliction caused to others (6) employment of knowledge in unworthy and base object (7) cruelty and immoral inclinations

The above discussions takes us to the view that the wordly human beings who have identified themselves with the non-essential modifications (Vibhava Paryayas) from beginningless past are capable of leading an ethical life in society They are no doubt useful for society and its development Though they are dedicated to multi-dimensional social progress, yet they are not completely free from mental tensions in observing moral prescriptions

Kundakunda seems to be aware of this limitation of socio-ethical life In his view it is all due to the fact that the self has identified itself with the non-essential modifications (Vibhava Paryayas) which manifests themselve in Subha and Asubha Bhavas or the moral and immoral observances Kundakunda therefore draws our attention to the essential modifications (Svabhava Paryayas) of self He advises us to relinquish the working of Vibhava Paryayas after turning to Svavhava - Paryayas of self He expresses grief that people at large have not only listened and are not only intensely familiar with the dualities of life, but also they have expressed them a great deal[20] No boubt we are in the empirical from beginningless past, but his theory of Svabhava Paryaya reminds us of our spiritual magnificence and glory It prompts the sullied self to behold its spiritual heritage It endeavours to infuse and instil into our minds the imperativeness of Suddha Bhavas after abundantly showing us the empirical and evansescnet character of Subha and Asubha Bhavas that bind the self to merely socio-ethical living The doctrine of Svabhava Paryaya does not assert that the self is at present perfect but simple affirm that the self ought to attain the height illumined by it It has the force of 'ought' and not of 'is', but the force is valid for empirical selves having Vibhava-Paryayas

Kundakunda, the prominent exponent of the doctrine of Svabhava Paryaya, has bequeathed to us the philosophy of the doer and the deed He proclaims that in whatever deeds the empirical self may get itself engaged in the world, they are not the representavtives of the self with the emergence of Svabhava Paryayas the doer of its own pure states of existance[21] The empirical self having Vibhava-Paryaya is the doer of impure dispositions No substance is capable of doing a thing foreign to its nature And since these impure dispositions do not pertain to the self in its origianal nature, the transcendental self is denied the agency even of these impure

dispositions The denial of the authorship of auspicious and inauspicious psychical dispositions points to the suprmundae, uncontaminated state of the self There is no denying the fact the empirical self has been the doer of impure dispositions since an indeterminable past; so it is the author of these dispositions. If this is not granted, it will make the position of the Jaina indistinguishable from the position of the Samykhya which imputes all actions to the material Buddhi, and regards the principle of consciousness as immutable. When the Jaina says that the empirical self is not the agent of impure dispositions, he simple pursuades the empirical self to look to Svabhava Paryaya Hence here the chief point of reference is the self in its pure nature The Jaina reads no contradiction in affirming that the enlightened self which has become familiar with its true nature manifests the pure modes (Svabhava Paryayas) and there by becomes the substantial agent of those modes, and in affirming that the ignorant self because of its erroneous identification with the alien nature develops impure dispositions, and thereby it is called their agent[22] Just as from gold only golden things can be produced, and from iron only iron things, so the enlightened self produces pure modifications (Svabhava Paryayas) and the ignorant self produces impure ones (Vibhava Paryayas)[23]. When the ignorant self becomes englighted, it starts generating pure modifications without any discongruity. Thus the self is simply the doer of its own states and not the doer of anything else whatsoever. The empirical self is the author of impure psychical dispositions But if we advance a step further and reflect transcendentally, we arive at the inevitable conclusion tha the pure self cannot be the author of thse impure psychical dispositions because they are foreign to its nature. Thus the transcendental self is the doer of transcendental Bhavas. Besides, it is also their enjoyer.[24]

It has been said that consciousness is the essential characterisitc of the self It manifiests itself in psychical dispositions which follows from consciousness as the conclusion from premises The psychial dispositions is of three kinds, namely, Subha (auspicious). Asubha (inauspicious) and Suddha (pure).[25] The self is said to possess auspicious psychical dispositions when it is absorbed in the performance of meritorious deeds of moral nature[26] Besides, when the self entangles itself in demeritorious actions of violence, sensual pleasure, and the like, it is said to possess inauspicious psychical disposition[27] Both these auspicious and inauspicious psychical dispositions continue to captivate the self in the never-ending tensions of mreers

Kundakunda, therefore, makes an explict pronouncement that so long as the self is mated with these two types of psychical dispositons, it will be unfruitfully dissipating its energies in pursuit of vain mirages But as soon as the self parts company with these auspicious and inauspicious psychical dispositions it joins hands with Suddha (Pure) psychical dispositions[28] In other words, the experience of Suddha (Pure) psychical disposition automatically obliges the Asuddha psychical dispositions (Subha and Asubha) to disappear The inauspicious psychical dispositions should by all means be disapprobated, inasmuch as they will bring about thousands of heart rending tensions The pure consciousness which relinquishes the impure psychical dispositions associated with empirical consciousness realises omniscience and such happiness as is trascendental, born of the sets,supersensuous, incomparable, infinite and indestructible [29] This transcendental self may be designated as Sayambhu (Svayambhu) [30] To make it clear, it is a state of self-sufficiency which requires no other foreign assistance to sustain itself It is itself the subject, the object, the means for its achievement, it achieves for itself, destroys the extraneous elements, and is the support of its infinite potencies Hence the self manifests its original nature by transforming itself into six cases, it is at once the nominative, the accusative, the instrumental, the dative, the ablative, and the locative case respectively [31]

Kundakunda regards the attainment of Svabhava Paryaya as the attainment of knowledge-consciousness (Jnana Cetana) which is the fullfledged and legitimate manifestation of consciousness [32] The Arhat or Siddha state is the state of knowledge-consciousness, the state of omniscience and bliess [33]

When the self identifies itself with Vibhava Paryaya, Kundakunda calls it Bahiratman When it turns to the significance of Svabhava Paryaya it is styled Antaratman and with the emergence and realisation of Svabhava-Paryaya it is designated as Paramatmana [34]

Kundakunda's doctrine of Svabhava Paryaya and Vibhava Paryaya pertaining to self is identical with Svasamaya and Parsamaya respectively In Parasamaya the self identifies itself with the body and the foreign psychical states of attachment and aversion and the like and in Svasamaya the self is established in one's own self [35] The Parasamaya individual is either moral or immoral, where as the Svasamaya individual is out and out spiritual with morality as its social manifestation

:REFERENCES:

1. Pancastikaya,97. : (Srimad Rajacandra Asrama. Agasa, 1968)
2 Pravacanasara, 11.100. : (Edited by A.N. Upadhye Srimad Rajacandra Asrama. Agasa,1984)
3. Pancastikaya, 10.
4. Ibid. 124.
5. Pravacanasara, II, 95.
   Pravacanasara, I, 46.
6. Niyamasara, 14,15. : (Sri Kundakunda Kahana Digambara Jaina Tirtha Suraksa Trust. Jaipur, 1993)
7. Pravacanasara, II, 95
8. Pancastikaya, 27.
9. Niyamasara, 49.
10. Ibid. 48.
11. Pancastikaya, 110 to 117.
12. Ibid. 110
13. Ibid. 39
14 Ibid. 39
15 Ibid 136.
16. Ibid. 137.
17. Pravacanasara, I, 69.
18 Pancastikaya, 135.
19. Ibid. 138 to 140.
20- Samaysara, 4 : (Edited by Balbhadra Jain. Jaina Vidya Samsthana Digambara Jaina Atisaya Ksetra, Sri Mahavirjai. 1997)
21. Ibid 83.
22 Ibid. 126.
23. Ibid. 130, 131.
24 Ibid 83
25 Bhava Pahuda, 76 : (Patni Digambara Jaina Granthamala. Marotha. Under the title' Asta Pahuda'.)
26 Pravacanasara. II.65.
27 Ibid. II, 66.
28 Bhava Pahuda, 77
29 Pancastikaya. 29.
   Pravacanasara. I.1 3.
30 Pravacanasara, I. 16.
31 Pravacnasara. Comm. Amrtacandra. I.16
32 Pancastikaya Comm. Amrtacandra. 39
33 Ibid 38.
34 Moksa Pahuda. 5 . (Patni Digambara jaina Granthamala, [illegible] the title' Asta Pahuda'.)
35 Pravacananasara. II.2. 6.
   Samayasara, 2

TRILOK INSTITUTE OF HIGHER STUDIES & RESEARCH (TIHRS)

✍ Dr Jineshwar Das

Dr Trilok Chand Kothari, an *eminent industrialist and chairman of* Kothari Group of Industries has established "Trilok Institute of Higher Studies and Research", under the aegis of **OM KOTHARI FOUNDATION** initially at three places — Kota, Delhi and Jaipur, to commemorate 2600th year of Janam Kalyanak of the 24th Tirthankara, Bhagwan Mahaveer

Dr T C Kothari is an educationist, philanthropist and person of multifarious facets The fact that Dr Kothari obtained the degree of Ph D (Doctor of Philosophy) from Kota Open University on January 26, 2001 at the age of 75 years, is an ample proof of his dedication *to the pursuit of knowledge specially in* the field of Jain Philosophy Cool temperament, humbleness, dedication and softspokenness, are the inbuilt qualities in him He is a well read person and highly concerned for protecting the Jaina religious monuments and pilgrimage centres

The said Institute (TIHSR) aims to an integrated approach towards higher research in social sciences by initiating 26 point research programme with focus on Puranas & manuscripts written in Brahmi & Prakrit languages on areas related to Jain Philosophy and its underlying scientific prenciples as laid down by renowned Jain Acharyas For initiation of these activities, Dr Kothari has given a fabulous grant of Rs 26 lakhs to TIHSR These activities will be launched through the modern infomation technology by creating a Website on Friday, the 6th April, 2001 The 26 point research programme will be in force over a period of next 12 months

The main objectives to be pursued by TIHSR are to create a team of dedicated scientists and Research Scholars, who can apply the modern methods of Hypothesis, Observation, experimentation, empirical verification and conclusion with special attention to analyze and evaluate the prevalent religious concepts and principles on the basis of oriental religious books in jainism and other religions To meet this end attractive scholarships and financial grants will be offered to competent researchers Scientific Infrastructure will be created by setting up scientific labs having state-of-art equipment, accessories at all its centres

The ultimate goal of all these

activities will be to bridge a gap between science & Religion with a common goal— The pursuit of Truth.

PROPOSED WEBSITE

The proposed website would function under 3 different domain names :—

(a) www.jainism research to date.com
(b) www.world record phd on jainsm.com (c) www.trilok institute of higher studies and research com

The important sublinks to the above websites will be— 1. Synopsis research site. 2. Researchers information cum help line. 3. Details of Rs.1 lac prize.

Please Note : This prize has been initiated by the inspiration from Param Pujya Acharya Vidyanandji. This prize will be offered to any research scholar working on Brahmi and Prakrit languages.

4. Directory of all the websites in the field of Jainism, its doctrine and principles .

5. Visuals of Jain Acharyas Munis and Bhattaraks.

6. Abstracts of websites and papers read and to be read and on-going past and future seminars, workshops and conferences at TIHSR.

7. Encyclopedia on Jainism, be avairable on — 1. Jaina dictionary 2 placement facilities for researchers and academicians at TIHSR 3. Connection to world wide funding bodies.

Dr. T.C.Kothari has taken an examplary step, a step which will go a longway to promote the understanding between all the religions of the world and Jainsim on the basis of three strong pillars— Anekantvad, Syadvad and Non-violence.

Let us all pay reverence to LOrd Mahaveer by remembering that the age of Lord Mahaveer was of far-reaching religious reformist activities not only in India but also throughout the ancient world. It was an enlightenment for the human race. It was a classless and castless movement, and it had no special affinity with the attitude and interests of any particular social class. The teachings of Lord Mahaveer are supposed to have been embodied in the fourteen Purvas and Eleven Angas. Right faith, Right knowledge and right conduct are the three essential points in the Mahaveer's teachings which lead to perfection by the destruction of Karmas.

I on my behalf and on behalf of Jain community congratulate Dr. T.C.Kothari for his contribution towards this goal. Jain community will always be grateful to him and his foundation— OM KOTHARI FOUNDATION for the noble cause I am sure under the able guidance of its young and enthusiast Director Prof Sudershan Batra this institute will be successful in achieving its goals

A-2 Shriji Nagar, Durgapura
Jaipur-302018

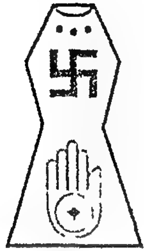


Ravana stopped animal sacrifieces forcibly

There is an interesting chapter in Jaina Ramayan, Padmapurana of the Jainas, which narrates the life story of Sri Rama The Chapter refers to the elaborate preparations made by one Kshatriya prince called Marutha for the prupose of vedic sacrifice The Chapter is called Maruthayagnaduamsa sarga These preparations for the performance of yagna are made in the borders of Ravan's territory Narada who happens to pass by that way observes these elaborate preparations According to the Jainas, Narada is considered to be a champion of Ahimsa He avised the Kshatriya prince Marutha not to perform the sacrifice Narada's advice was rejected He then goes to Ravana straight and informs him of the vast preparations made by a Kshatriya prince quite in violation of Ahimsa Ravana sends a few officers to stop these preparations These officers were sent away unceremoniously by the prince Marutha But Ravana himself appears in person officially with his soldiers Then Marutha confessed that he was instructed by the Vedic priests to perform this yagna though he was not every well informed about this Then Ravana rebukes him, stops the preparations, releases all the animals intended to the sacrifice and threatens the priests Then Marutha was initiated to the practice of Ahimsa Dharam and he was made to give a solemn promise that he would be no more a party to animal sacrifice or yagna This story found in Jaina Ramayana clearly indicates that the Vidyadharas since they were followers of Ahimsa cult were sternly opposed to any performance of yagna within their borders Perhpas that explains why according to Valmiki Ramayana, the Rakshasas were always bent upon preventing the performance of yagnas and whenever an attempt is made to perform yagna the parties had to seek the aid of military protection before they could carry on the ceremony This is illustrated in Ramayana where Viswamitra takes the military aid of the royal princes, Rama and Lakshmana before he starts the rituals Thus the circumstantial evidence goes to support the theory that the people of the land were all followers of Rishabha cult and they were staunchly defending their cult of Ahimsa whenever there was interference from outside

From A Chakravarti, in
Introduction to Samayasara
Page cxxiii-iv

◆



विज्ञापन



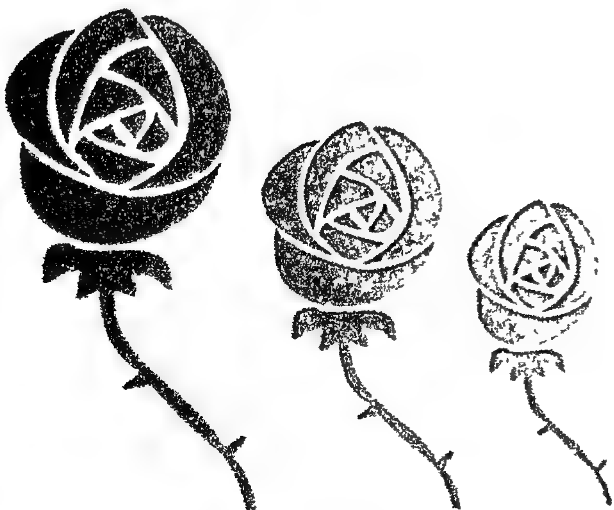
ADVERTISEMENT

राजस्थान जैन सभा उन सभी विज्ञापन दाताओ की आभारी हैं जिन्होंने इस स्मारिका के 38 वे अंक मे अपने प्रतिष्ठान का विज्ञापन देकर सभा का सहयोग प्रदान किया है। यह वर्ष भगवान महावीर का 2600 वां जन्म कल्याणक वर्ष है, इसका अपने आप में विशेष महत्व है। अतः यह अंक भी बहुत महत्व पूर्ण है।

स्मारिका में विज्ञापनो के प्रकाशन का पूरा ध्यान रखा गया है, उसके पश्चात् भी यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो पाठक गण व विज्ञापन दाता हमें उदार हृदय से क्षमा कर अनुग्रहित करेंगे।

प्रेमचन्द छाबड़ा

प्रबन्ध सम्पादक



महावीर जयन्ती पर शुभ कामनाएँ

जीवन में विपत्ति से हार नहीं मानो अपितु
सिर उठाकर उन्हें पराजित करने का प्रयास करो।

पूनम चन्द जैन

झरिया वाला





143, नेमीसागर कॉलोनी
श्री 1008 नेमीनाथ दिगम्बर जैन
मन्दिर मार्ग
क्वींस रोड, जयपुर
फोन 357026, 358409



हार्दिक शुभ कामनाओं सहित:

गुलाब चन्द शंकरलाल

सी 24, नई अनाज मंडी, चांदपोल बाहर, जयपुर 302 001

फोन: (ऑ) 365735, 367981 (घर) 360031

तार: व्योपारी

सम्बन्धित फर्म:

रामअवतार राजकुमार

सी--24, नई अनाज मंडी, चांदपोल बाहर, जयपुर-- 302 001

With Best Compliments From:

RAMTEK MARBLES (P) LTD.

Mfg. of all type of Marble Slabs & Tiles

Harmara Road, Industrial Area, Madanganj Kishangarh
Dist. Ajmer (Raj.) 305801
PH.: 375322, 372836 (O), 301099 (R)
Mobile : 98290-52831

Sister Concern:

SARAOGI TRADERS

B-14, NEW ANAJ MANDI, CHANDPOLE, BAZAR, JAIPUR (RAJ.)

BHAGCHAND TILOKCHAND JAIN

MERTACITY Ph.: 20246 (O), 20146 (R)





प्रभात हुआ निद्रा से मुक्त हुआ, भाव-निद्रा (पर में मोह-राग-द्वेष) टालने का प्रयत्न कर।



With Best Compliments From:

Sudhir Bakliwal

Dynamic Felts

MANUFACTURERS of :
WOOLLEN FELTS, FILTER CLOTH & POLISHING WHEELS

Factory : 6-D, Malviya Industrial Area, Jaipur -302 017
Res.: B-103, University Marg, Bapu Naga, Jaipur-302 015
Tel.: (Fact.) 751797, 751359
Resi.: 514532, 510765 Fax : 0141-703402
E-mail: dvnamicfelt@satvam.net.in

शुभ कामनाओं सहित:
राजस्थान खादी तथा ग्रामोद्योग बोर्ड द्वारा लाभान्वित
S.S I. No 1713/PMT/05374 DT.: 24-10-75

लक्ष्मी ईंट व चूना उत्पादक सहकारी समिति लि.

दगराना आगरा रोड़, (पं.स. झोटवाड़ा) जयपुर द्वारा निर्मित
सुन्दर टिकाऊ पक्की

लक्ष्मी ईंट

का निर्माण कार्यों में उपयोग कर ग्रामीण
कामगारों को रोजगार
उपलब्ध कराने में सहयोग करें।
फोन (ऑ) 640376 (घर) 513585











[illegible]

With Best Compliments from:

KHUSHBOO Polymers' (P) Ltd.

D-80, ROAD-7, V K I AREA, JAIPUR (RAJ)
PH (OFF) 332269/28, 331683, FAX 332415
E-mail tibre-sathi@yahoo.com
Website www khushboopolymers com

DUCT **KPPL** LOWFRIC

LOWFRIC

Permanently Lubricated HDPE Duct

"LOWFRIC" Permanently Lubricated HDPE Duct are lubricated from inside so as to reduce the friction up to 0 06 LOWFRIC" DUCT is extruded from special formulated compound that results to very low Co-efficient of Friciton which enables the cable to move freely in it

LOWFRIC" Duct features -

1 Solid permanently lubrication resulting to low Co-efficient of Friction
2 Easy & fast laying of cable
3 Tasteless, Oddorless with stable chemical Properties
4 LOWFRIC Duct can be used in extreme cold climate e g (-15° C) as well as extreme hot climate (+50° C) with out any adverse affect



CO-EFFICIENT OF FRICTION AROUND 3

"LOWFRIC" Duct Befefits -

1 Low cost of Installation & Maintenance
2 Allows longer length of cable installation with leak proof Joints
3 No Bacterial Growth results to long life of the cable
4 Retains Physical Properties for life long
5 Can also be easily upgraded in future



LOWFRIC CO-EFFICIENT OF FRICTION











S.S. Enterprises

Near Gandhi Nagar Post Office, Tonk Road, JAIPUR-15

Phone : (O) 510172 (R) 513097



With Best Compliments From :

Sunil Jain

Stationary

Computer Stationary

Printers &

Govt General Order Suppliers





एक युग पुरुष को भावपूर्ण श्रध्द्धाजलि



ताराचंद बड़जात्या

(१०.५.१९१४-२१-९-१९९२)

राजश्री के सस्थापक



भारतीय चित्रपट उद्योग

की प्रमुख सस्था

राजश्री प्रोडक्शन्स (प्रा.) लि.

राजश्री पिक्चर्स (प्रा) लि.

भावना पहली मजिल

422 वीर सावरकर मार्ग

प्रभादेवी मुबई 400 025

फोन 430 7688

फेक्स (91 22) 422 9181

(पुत्र)

कमल कुमार बडजात्या

राजकुमार बडजात्या

अजित कुमार बडजात्या

(पौत्र)

सूरज बडजात्या

रजत बडजात्या

भगवान महावीर के 2600 वे
जन्मोत्सव पर हार्दिक शुभकामनाओ सहित

अपने आत्मा को विषय कषायो के उलझाव से सुलझाव से सुलझाना तथा लोगो को हिसा रहित सत्य मार्ग मे प्रवर्तन कराना ही उत्तम कला है।

विनोद एण्ड कम्पनी

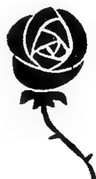
डीलर
इण्डियन ऑयल क लिमिटेड
गगापुर रोड, तिराया, लालसोट
फोन 01431-22348

भगवान महावीर के 2600 वे
जन्मोत्सव पर हार्दिक शुभकामनाओ सहित

मानपुर एग्रो सर्विस

डीलर्स
भारत पेट्रोलियम कार्पो लि
मानपुर सिकराय
NH 11, आगरा रोड, दौसा
फोन 1420-54281, 54209
निवास 45028

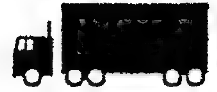


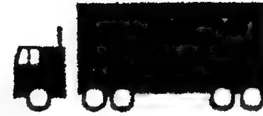


भगवान महावीर के 2600 वें
जन्मोत्सव पर हार्दिक शुभकामनाओं सहित

With Best Compliments From:







JAIN BULK CARRIERS

(FLEET OWNERS & TRANSPORT CONTRACTORS)

HELLO : OFF. 642030, 442030
FAX : 0141-641020
E-MAIL : jainbulk@datainfosys.net
visit us at : www.jainbulk.com
B-7, IInd Floor, Transport Nagar,
Agra Road, JAIPUR-302 003 (Raj.)

Branch Office : Kandla
5, Arun Chamber, Nr. Mukesh Guest House
Gandhidham (Kutch- Gujarat)
Phone : 02836-54345 Mobile : 98252 26904

Kamal Kala
Ph :516547

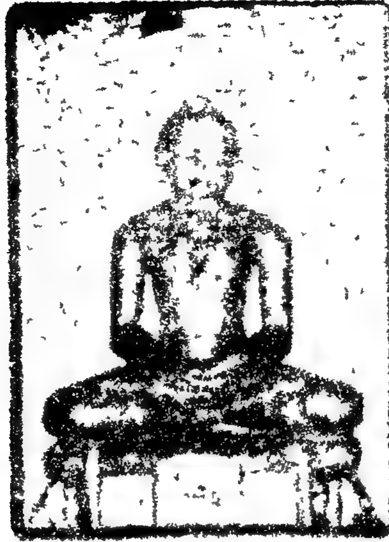


Jitendra Ajmera
Ph.: 516012



Naveen Jain
Ph.: 562660



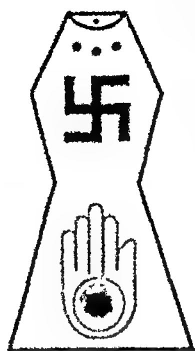


विजय हो गई हो रही, अरु आगे भी होय।
विजय पक्ष जो भी गहै, क्यों नहि विजयी होय।।

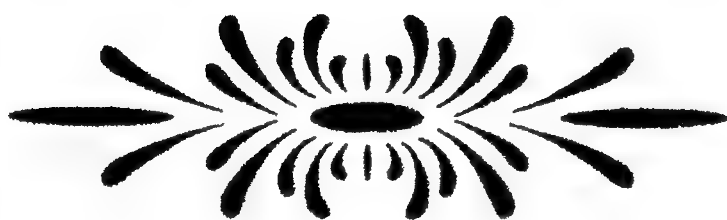
भगवान महावीर के 2600 वें
जन्मोत्सव पर
हार्दिक शुभकामनाओं सहित

राजीव जैन

जयपुर



भगवान महावीर
के 2600 वें जन्मोत्सव
पर हार्दिक शुभकामनाओं
सहित



जरा सोचो।

गुण न हो तो रूप व्यर्थ है।
नम्रता न हो तो विद्या व्यर्थ है।
उपयोग न हो तो धन व्यर्थ है।
साहस न हो तो हथियार व्यर्थ है।
होश न हो तो जोश व्यर्थ है।
भूख न हो तो भोजन व्यर्थ है।
स्वास्थ्य न हो तो शरीर व्यर्थ है।
सत्यता न हो तो बोलना व्यर्थ है।
आचरण न हो तो ज्ञान व्यर्थ है।
परोपकार न हो तो जीवन व्यर्थ है।







भगवान महावीर के 2600 वें जन्मोत्सव
पर हार्दिक शुभकामनाऐं





JAIN SOCIAL GROUP
(HERITAGE-CITY) JAIPUR

T-28, IIIrd Lane, Near Sanghi Farm, Mahaveer Nagar,
Tonk Road, JAIPUR-302 018 (Raj)
Tel 0141-722843 Telefax 0141-310271

President
SUBHASH KUMAR BAJ

Secretary
PRAVEEN KUMAR SOGANI

Vice-President
ARUN KALA

Jt Secretary
ARVIND K PATNI (RAJU)

Treasurer
PADAM CHAND JAIN

एव समस्त सदस्य गण





[illegible] भगवान महावीर के 2600 वें जन्म जयन्ती के शुभअवसर पर

भगवान महावीर का दिव्य सन्देश

1. [illegible] इच्छाएं के जनक हैं। उनकी निवृत्ति ही संसार से छूटने [illegible]

2. [illegible] शाश्वत नहीं है। मृत्यु समीप ही है। अतः धर्म का [illegible] करना श्रेयस्कर है।

3. [illegible] आत्मा [illegible] अपनी आत्म ज्योति की ओर [illegible] त्रिलोकीनाथ बन जावे।

4. [illegible] विजय प्राप्त करना ही [illegible] है।

5. [illegible] हृदय में निर्मल आत्मा का वास नहीं होता उसे शास्त्र, पुराण एव [illegible] प्रदान नहीं कर सकती है।

6. [illegible] आत्मा ही तो परमात्मा है। कर्मोदय के कारण वह सामान्य के स्थान [illegible]

7. [illegible] के कारण कर्मों की [illegible] आत्मा का भी कभी पतन नहीं होता।

8. [illegible]

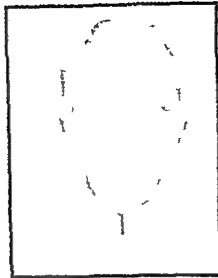


[illegible] द्वारा प्रकाशित









स्व श्री विद्या विनाद काला
1932–1998

स्वप्नदृष्टा एव सस्थापक प्रबन्ध न्यासी
भगवान महावीर कसर गिकित्सालय एव अनुसधान केन्द्र

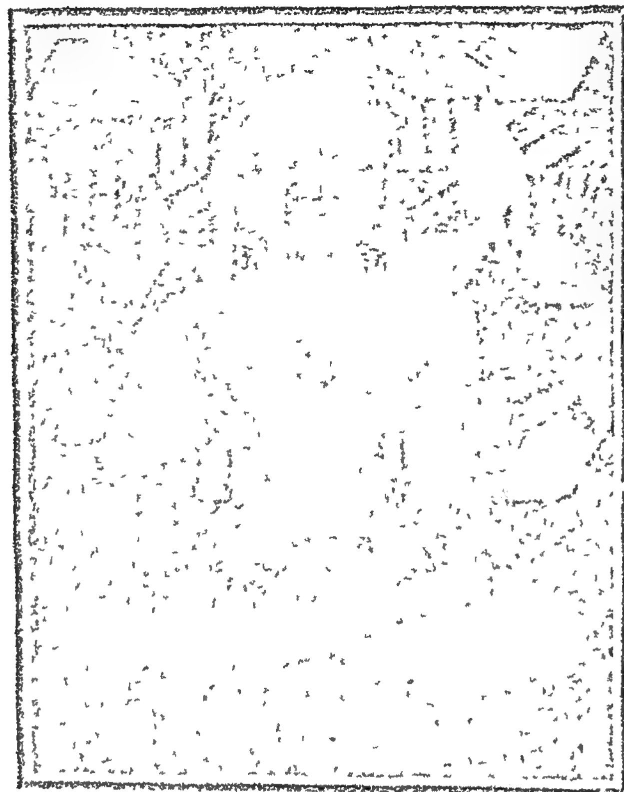
जीवन दर्शन

- मामाजिक कुरीतिया क विरोध म अपन विचार दुनियादारी व समाज की चिन्ता किय बगैर दृढता स रख आर उस पर अडिग रह।
- अपन मघष के समय की चर्चा गव स करा आर ईश्वर क प्रति कृतज्ञता व्यक्त करा।
- कुछ सद्कार्य अपन बच्चा व साथिया के लिय उदाहरण स्वरूप ही करो।
- जीवन म लागा द्वारा अपन पर किय गये उपकार व एहसाना का बच्चा को अवश्य बताओ आर कई–कई बार बताओ।
- पिता व बच्चा क बीच अधिक से अधिक वार्तालाप सम्प्रेषण हाना चाहिय।
- आथिक लनदन एव व्यक्तिगत सम्बन्धो की निकटना का कम से कम सार्वजनिक कर।
- प्रत्येक वह काय जिसस आपका नाम जुडा हो उसक क्रियान्वयन म पूर्ण ऊर्जा व शक्ति लगाआ।
- जब कोई इसान बिल्कुल अकेला आर नि सहाय हो तब आगे बढकर चुनाती के रूप म उसकी महायता करा।

स्मृति शष स साभार

श्री विद्या विनोद काला ममोरियल ट्रस्ट
जरनल हाऊस ए–95 ज ता कॉलानी जयपुर फोन 564974 569965 फक्स 564260 568233

श्री दिगम्बर जैन चन्द्रप्रभु अतिशय क्षेत्र चन्द्रगिरि, वैनाड़



मन्दिरजी में विराजमान 1008 भगवान चन्द्रप्रभु की प्राचीन सौम्यमुद्राधारी अतिशय मनोज्ञ प्रतिमा को कोटिशः नमन!!



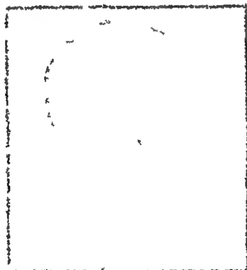
राजस्थान आवासन मण्डल

कदम–दर–कदम

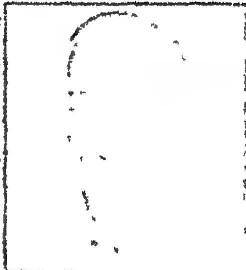
बढ़ते कदम...

जनहित में प्रगति की राह पर

अनुभवी नेतृत्व और उपलब्धियों के 2 वर्ष



[illegible]



[illegible]

[illegible]

दो वर्षों की गतिविधियाँ

[illegible]